स्वामी

*

मूल-कृति
रणजित देसाई

हिन्दी रूपान्तर
ओम् शिवराज

परिचय

प्रस्तुत उपन्यास श्रीमन्त माधवराव पेशवा के जीवन पर लिखा गया है। हिन्दी के पाठकों को इसका परिचय देना उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है।

क्षत्रिय-कुलावतंस शिव छत्रपति महाराज ने संस्कृत शब्दों में वर्णित अष्ट प्रधानों की योजना की थी। वे अष्ट प्रधान इस प्रकार थे—१. पन्तप्रधान, २. पन्त अमात्य, ३. पन्त सचिव, ४. मन्त्री, ५. सेनापति, ६. सुमन्त, ७. न्यायाधीश, ८. पण्डितराव। पन्तप्रधान को उर्दू में 'पेशवा' कहते हैं। पन्तप्रधान मुख्य प्रधान थे तथा छत्रपति की अनुपस्थिति में मुख्याधिकारी होते थे। न्यायाधीश और पण्डितराव युद्धनिपुण नहीं होते थे, शेष सबको अवसर आने पर लड़ाई के लिए तैयार होना पड़ता था। छत्रपति शिवाजी के दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र सम्भाजी था। सम्भाजी की माता सईबाई थी। छोटा पुत्र राजाराम था। राजाराम की माता का नाम सोयराबाई था। जिस समय रायगढ़ पर शिवाजी की मृत्यु हुई थी उस समय सम्भाजी पन्हालगढ़ पर था। सम्भाजी एक बार मुग़लों से जाकर मिल गया था इसलिए कुछ मराठा सरदारों ने सम्भाजी के छोटे भाई राजाराम को गद्दी पर बैठाने का षड्यन्त्र रचा। उस षड्यन्त्र में राजाराम की माता सोयराबाई का भी हाथ था। वह षड्यन्त्र सफल नहीं हुआ, इसलिए सोयराबाई ने आत्महत्या कर ली। सम्भाजी ने रायगढ़ की गद्दी पर अधिकार कर लिया तथा विरोधियों को दण्ड देना आरम्भ किया। ई. सन् १६८९ में औरंगजेब ने सम्भाजी का क्रूर वध करवा दिया। उस समय सम्भाजी का लड़का शाहू नौ वर्ष का था। इसलिए सम्भाजी की पत्नी येसूबाई ने राजाराम को गद्दी पर बैठाया। राजाराम ने राजधानी रायगढ़ से हटाकर सातारा कर दी। ई. सन् १७०० में राजाराम की मृत्यु हो गयी। राजाराम की मृत्यु के बाद राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी सम्भाजी का लड़का शाहू गद्दी पर बैठना चाहिए था, किन्तु वह औरंगजेब की क़ैद में था। इधर राजाराम की स्त्री ताराबाई अपने दस वर्षीय पुत्र शिवाजी (द्वितीय) को गद्दी पर बैठाना चाहती थी, इसलिए वही राजा हुआ। ई. सन् १६८९ में सम्भाजी के वध के बाद औरंगजेब ने उसकी पत्नी येसूबाई तथा लड़का शाहू

को क़ैद कर लिया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसका लड़का मुअज्जम उर्फ शाहआलम बहादुरशाह नाम धारण कर गद्दी पर बैठा। उसने सम्भाजी की पत्नी तथा पुत्र शाहू को क़ैद से छोड़ दिया—यह सोचकर कि इससे मराठाओं में राज्य के लिए संघर्ष उत्पन्न होगा। शाहू नर्मदा नदी पार कर दक्षिण में सातारा की ओर चला। अनेक मराठा सरदार ताराबाई का पक्ष छोड़कर शाहू के साथ हो गये। शाहू की सब प्रकार से सहायता करके उसको विजय दिलानेवाला व्यक्ति था—बालाजी विश्वनाथ भट। शाहू ने बालाजी विश्वनाथ भट का कर्तृत्व देखकर उसको ई. सन् १७१३ में पेशवा का पद प्रदान किया। ई. सन् १७२० में बालाजी की मृत्यु हो गयी। पेशवा बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद शाहू ने उसके लड़के बाजीराव को पेशवाई का पद दिया। बाजीराव के छोटे भाई का नाम चिमाजी अप्पा था। बाजीराव पेशवा का कर्तृत्व इतिहासप्रसिद्ध है। ई. सन् १७४० में बाजीराव की मृत्यु हो गयी। बाजीराव के चार लड़के थे—बालाजी उर्फ नाना साहेब, रघुनाथ, जनार्दन और मुसलमान स्त्री मस्तानी से एक समशेर बहादुर। चिमाजी अप्पा के पुत्र का नाम सदाशिवराव भाऊ था। पूना के शनिवार-भवन का निर्माण बाजीराव ने ही कराया था तथा उसके उत्तरी द्वार का नाम उसने दिल्ली-दरवाजा रखा। बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त बाजीराव के बड़े पुत्र नाना साहब को पेशवा पद प्राप्त हुआ।

शाहू अब वृद्ध हो गया था। किसी समय सातारा और कोल्हापुर—इन दोनों स्थानों की गद्दियों को एक करने का प्रयत्न बालाजी बाजीराव ने किया था। शाहू ने बालाजी बाजीराव को एक पत्र लिखा। उस पत्र में लिखा था—(१) कोल्हापुर के सम्बन्ध में प्रयत्न मत करो। (२) पेशवे समस्त राजमण्डल में परिश्रेष्ठ बनकर राजकार्य देखें। (३) शाहू के बाद आनेवाला छत्रपति रामराजा भी पेशवाओं का ऐसा ही सम्मान करेगा। आज तक पेशवा छत्रपति के अनेक सरदारों—दाभाडे, प्रतिनिधि, भोंसले—की तरह ही एक सरदार था, इस पत्र के बाद पेशवा सब सरदारों में श्रेष्ठ हो गये। ई. सन्. १७४९ में शाहू की मृत्यु हो गयी।

ई. सन् १७६१ में पानीपत के युद्ध में सदाशिवराव भाऊ की मृत्यु हो गयी तथा मराठों की पराजय हुई। सदाशिवराव भाऊ की मृत्यु का तीव्र आघात नाना साहब सहन न कर सके। उनकी भी मृत्यु हो गयी। नाना साहब की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र माधवराव को पेशवा का पद प्राप्त हुआ। माधवराव के छोटे भाई का नाम नारायणराव था। जिस समय पेशवाई के वस्त्र माधवराव को प्राप्त हुए उस समय उनकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी।

—ओम् शिवराज

उस तरुण पेशवा की अकाल मृत्यु से मराठी साम्राज्य के मर्मस्थल पर ऐसा आघात लगा, जिसके सामने पानीपत का आघात भी कुछ नहीं था।

And the plains of Panipat were not more fatal to the Maratha Empire than the early end of this excellent prince.

—*Grant Duff.*

स्वामी

एक

दोपहर का समय बीत चुका था। सूर्यदेव तेजी से पश्चिमी क्षितिज की ओर झुक रहे थे। शनिवार-भवन के दिल्ली-दरवाजे पर स्थित नक्कारखाने पर भगवा झण्डा बड़ी शान से फहरा रहा था। दोनों ओर पत्थर की बनी हुई प्राचीर द्वारा रक्षित बुलन्द दिल्ली-दरवाजा पूरा खुला हुआ था। दरवाजे में कीलें ठुकी हुई थीं। शनिवार-भवन के इस उत्तराभिमुख प्रवेश द्वार पर रात में पहरा देनेवाले घुड़सवारों के दल के सिपाही मुस्तैदी से खड़े थे।

गंगोबा तात्या शनिवार-भवन की ओर तेजी से कदम बढ़ाते हुए आ रहे थे। दुबली-पतली देह के, भेदक आँखोंवाले गंगोबा तात्या शनिवार-भवन के सामने आये, सिर उठाकर उन्होंने एक बार दृष्टि नक्कारखाने पर फहराते हुए भगवा झण्डे पर डाली और वे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

गंगोबा तात्या बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। होलकरों के सरदार तथा विश्वासपात्र के रूप में वे प्रसिद्ध थे। राघोबा दादा की गंगोबा तात्या पर जो कृपा थी, वह सर्वविदित थी। सीढ़ियाँ चढ़कर आते हुए गंगोबा को देखते ही दिल्ली-दरवाजे के भीतर खड़े हुए व्यक्तिगत सचिव दत्तोपन्त आगे बढ़े। सिर पर पगड़ी, शरीर पर मलमल का अँगरखा, धोती और पैरों में जूतियाँ धारण किये हुए गंगोबा जैसे ही पास आये वैसे ही दत्तोपन्त ने बड़े आदर से उनको नमस्कार किया। उस नमस्कार को स्वीकार कर गंगोबा ने पूछा,

"दरबार शुरू हो गया ?"

"नहीं" दत्तोपन्त बोले, "परन्तु दरबार भर गया है। श्रीमन्त अभी दरबार में नहीं आये हैं।"

गंगोबा हँसते हुए बोले, "दत्तोपन्त! तुम लोग नये हो, तुम लोग कल्पना नहीं कर सकते।"

"किस बात की ?"

"काश, तुम लोग नाना साहब के समय में होते! कैसा था वह ठाट! वैभव के दिन बीत गये, केवल उनकी स्मृति रह गयी है—ऐसी दशा हो गयी है। अब वह रौब तो चला ही गया, उसके साथ अनुशासन भी गया!"

दत्तोपन्त कुछ नहीं बोले। क्षण-भर रुककर गंगोबा अपना कलाबत्तू का दुपट्टा ठीक करते हुए बोले,

"समय हो गया। जाना चाहिए। नहीं तो श्रीमन्त दरबार में हाजिर हो जायेंगे। उनके बाद हम दरबार में पहुँचेंगे तो सारा दरबार हमें घूरने लगेगा।" अपने किये हुए परिहास पर प्रसन्न होकर गंगोबा तात्या खुद ही हँसे, परन्तु दत्तोपन्त के चेहरे की एक रेखा भी नहीं हिली। गंगोबाजी ने एक बार अपनी भेदक दृष्टि से दत्तोपन्त की ओर देखा, फिर वे दिल्ली-दरवाज़े की ओर मुड़े। दत्तोपन्त पहले खाँसे फिर उनको पुकारा,

"तात्या!"

गंगोबा मुड़े, "क्या है?"

"तात्या, आप इस दरवाजे से नहीं जा सकेंगे।" दत्तोपन्त एकदम बोले।

"क्या मतलब?"

"कल ही श्रीमन्त ने सख्त आदेश दिया है कि जिनका दिल्ली-दरवाजे से आने-जाने का मान हो, उन्हीं को प्रवेश करने दिया जाये। तात्या, बुरा मत मानिए; परन्तु आप गणेश-दरवाज़े से जायें, यह ठीक है।"

स्वयं को सँभालते हुए गंगोबा तात्या बोले,

"अच्छा, अच्छा! ठीक है। जैसी श्रीमन्त की आज्ञा। हम गणेश-दरवाज़े से चले जायेंगे।" और इतना कहकर वे जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगे। सीढ़ियों पर उतरते समय उनकी पुणे-निर्मित जूतियों की चर्र-चर्र आवाज़ उठ रही थी।

पूर्वाभिमुख गणेश-दरवाज़े से गंगोबा भीतर गये। आधे भवन का पैदल चक्कर काटने के कारण उनकी जूतियों पर धूल जम गयी थी। फ़र्श पर पैर झटककर वे भीतर घुसे और गणेश-महल की ओर चलने लगे।

गणेश-महल में दरबार भर चुका था। पेशवाई के सभी सरदार, सम्मानित सदस्य अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए थे।

सहज ही क्रोड़ में न समानेवाले, नीचे अधिक चौड़े और ऊपर की ओर क्रमशः संकुचित होते गये सागौन के स्तम्भ अपने सूक्ष्म खुदाई के काम से तथा चिकनी काली चमक से तत्क्षण मन आकर्षित कर लेते थे। एक दूसरे से समान्तर पंक्ति में खड़े हुए ये स्तम्भ तथा उनपर टिकी हुई लकड़ी की छत मसनद की ओर शनैः-शनैः संकुचित होती गयी थी तथा उसी का एक ओर का भाग छत्र के रूप में नीचे उतर आया था। उस छत्र के नीचे गणेश की विशाल मूर्ति थी। मूर्ति के चरणों में पेशवाओं की मसनद थी। गणेश-महल की दीवारों पर चारों ओर रामायण-महाभारत की प्रमुख घटनाएँ दक्षिणी कला में चित्रित थीं।

गणेश-महल के प्रवेश-द्वार से पेशवाओं की मसनद तक लाल रंग का पाँवड़ा बिछा हुआ था। मसनद के दोनों ओर सरदारों तथा ओहदेदारों के लिए आसन

सजे हुए थे ।

जिस समय सरदार-मण्डली धीमी आवाज़ में आपस में बातें करने में तल्लीन थी, उसी समय मसनद की बायीं ओर लगे हुए चिक के परदों में हलचल हुई । क्षण-भर में दरबार में स्तब्धता फैल गयी । उसी समय बेतधारियों और चोबदारों की पुकार सबके कानों में पड़ी ।

"बा-अदब बा-मुलाहिज़ा होशियाऽऽर !

निगा रखोऽऽ !

राजा वल राजा जू बल इख्तिदार माने दौलत, पनाए मुल्क, दियानते दस्तगार, गरीबदे पनाह, श्रीमान् राजमण्डल पेशवा, त्रिदीप श्रीमन्त महाराज सिंहासनाधीश्वर, क्षत्रिय-कुलावतंस छत्रपति रामराजा महाराज विश्वासनिधि सकल-राजकार्य-धुरन्धर, राजनिष्ठा-विराजित श्रीमन्त माधवराव बल्लाळ पन्त-प्रधान तशरीफ़ लाते हैं ! ऽऽ !"

उस पुकार के साथ ही सबकी आँखें प्रवेश-द्वार की ओर लग गयीं । बेत-धारी—चोबदार धीरे-धीरे चलते हुए भीतर आये । चोबदार ने हस्तस्थ रुपहले लौहदण्ड को ठोकते हुए पुकारा—

"नज़रे सालिम, निगा रखो महाराजऽऽ !"

सारा दरबार तत्काल खड़ा हो गया और श्रीमन्त माधवराव पेशवा ने दरबार में प्रवेश किया । क्षण-भर में सबकी दृष्टियाँ झुक गयी । चोबदार पुकार रहा था ।

"आस्ते क़दम महाराज ! नज़र बकदम होशियाऽऽरऽऽ !"

मखमल के पायदंदाज़ पर धीरे-धीरे पैर बढ़ाते हुए माधवराव मसनद की ओर आ रहे थे । दोनों ओर खड़े हुए सरदार, सम्मान्य सदस्य, मनसबदार आदि श्रीमन्त पेशवा के प्रत्येक क़दम पर मुजरे कर रहे थे । बड़ी शान से गरदन झुकाकर माधवराव मुजरों को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ रहे थे । हरे रंग की मखमल से आच्छादित मसनद के सम्मुख आते ही माधवराव के पैर ठिठक गये । क्षण-भर स्थिर दृष्टि से उन्होंने सामने गणेश की ओर देखा और दूसरे ही क्षण आगे झुककर बड़ी श्रद्धा से मसनद को मुजरा किया । वीरासन लगाकर वे मसनद पर आसीन हो गये । समस्त दरबार अपने-अपने स्थान पर आसीन हो गया । सभी की आँखें श्रीमन्त पेशवा की ओर लगी हुई थीं ।

अवस्था अधिक से अधिक सोलह वर्ष की होगी । यद्यपि रेख का श्याम रंग अधरों पर फैला नहीं था । गौरवर्ण, लम्बी इकहरी परन्तु भरी हुई देहयष्टि, सुन्दर मुखाकृति—ऐसी माधवराव की मूर्ति अपने तीक्ष्ण नेत्रों से दरबार देख रही थी । सिर पर पगड़ी में हीरों का शिरपेच शोभा दे रहा था । पगड़ी पर

मोतियों के शिरोभूषण की लड़ियाँ कान को स्पर्श कर रही थीं। कानों में कुण्डल तथा कण्ठ में बड़े-बड़े मोतियों का हार शोभित हो रहा था। शरीर पर धारण किये हुए महीन अंगरखा के भीतर से कमख्वाब की बण्डी की बेलपत्ती स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वीरासन लगाकर बैठने के कारण चूड़ीदार पायजामा अँगरखा के नीचे ढक गया था।

माधवराव ने दरबार पर दृष्टि घुमायी। दृष्टि से दृष्टि मिलते ही त्रिम्बकराव पेठे अपने स्थान से आगे बढ़े। वे जैसे ही माधवराव के पास आये, माधवराव ने पूछा,

"मामा, अब दरबार का कामकाज शुरू होने दो।"

"परन्तु..." त्रिम्बक मामा झिझके।

"परन्तु क्या?" माधवराव ने पूछा!

त्रिम्बकराव आगे झुके और फुसफुसाते हुए बोले,

"अभी तक श्रीमन्त दादा साहब नहीं आये हैं।"

"तो फिर?"

"और सखाराम बापू भी—"

श्रीमन्त पेशवा ने देखा—दायीं ओर मसनद के समीप के दोनों स्थान रिक्त थे। माधवराव के मस्तक पर लगा हुआ तिलक सिकुड़नों से मिट गया। वे शान्त स्वर में बोले,

"मामा, दरबार शुरू होने दो!"

"आज्ञा!" कहकर मुजरा करके त्रिम्बकराव मामा तीन क़दम पीछे हटे और अचानक सारा दरबार खड़ा हो गया। माधवराव ने देखा। राघोबा दादा फुरती से भीतर आ रहे थे। उनके पीछे-पीछे सखाराम बापू बोकील कमर पर बस्ता सँभालते हुए प्रवेश कर रहे थे। दरबार के मुजरे स्वीकार करते हुए राघोबा दादा अपने स्थान पर पहुँचे। श्रीमन्त के बायें हाथ पर सखाराम पन्त आकर खड़े हो गये। वे बोले,

"श्रीमन्त..."

उनका कथन अनसुना-सा कर माधवराव बोले,

"बापू, दरबार जमा हुआ है, काम-काज शुरू होने दो!"

"जो आज्ञा!" बापू बोले।

दरबार के साधारण कामकाज आरम्भ हो गये।

रास्तेराव दरेकर ने अधिक घोड़ों के लिए अर्जी पेश की। वह स्वीकार हुई। नारो आप्पाजी तुळशीबागवालों ने शहर सुधारने के लिए अधिक धन की माँग की, वह मान ली गयी। गोपालराव पटवर्धन मिरज का वृत्तान्त

स्वामी

आये थे, वह श्रीमन्त ने सुना। घर की मसलों की सुनवाई श्रीमन्त ने स्वयं सुनी। दरबार के काम समाप्त हुए थे कि अचानक त्रिंबक महादेव खड़ा हो गया। सखाराम बापू के माथे पर सिकुड़नें पड़ गयीं। मुजरा स्वीकार कर श्रीमन्त ने जैसे ही आज्ञा दी, त्रिंबक महादेव बोला—

"हुजूर माफ किया जाये। श्रीमन्त की सेवा में जिन्दगी बिता कर बूढ़ा हुआ, चार दफ़ा की। अब अवस्था के कारण इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी का पालन करना असम्भव है। इसलिए, जवाहरखाने की देखरेख से मुक्ति मिले, यही प्रार्थना है..."

माधवराव हँसे और बोले, "त्रिंबक राव, अवस्था इतनी ज़्यादा हो गयी है जो तुम्हें इस काम का भार महसूस होने लगा है?"

"मैंने श्रीमन्त से जो कहा है वह सत्य है। यह बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है, इसको निभाना..."

सखाराम बापू बोले, "त्रिंबकराव, यह प्रश्न तुमने दरबार में उपस्थित किया, इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। तुम यह हमें बता देते, फिर भी काम हो जाता। हम तुम्हारी अर्ज़ी पर विचार करेंगे और उचित व्यक्ति को सेवा से मुक्त कर देंगे—"

"परन्तु श्रीमन्त..." त्रिंबकराव बापू की ओर न देखकर माधवराव से बोला।

"तुम बैठ जाओ" सखाराम बापू बोले, "यह देवताओं का दरबार है। इसलिए मुसाहब-गर्दियों का स्थान नहीं है। तुम्हारे जैसे अनुभवी व्यक्ति को यह बात बताने की ज़रूरत नहीं है!"

माधवराव सिर झुकाये यह बातचीत सुनते हुए हस्तस्थ गुलाब का फूल सूँघते हुए बैठे थे। उन्होंने एकदम सिर उठाया और बोले,

"हम भी यही कहते हैं।"

बापू ने चौंककर माधवराव की ओर देखा। माधवराव के चेहरे से मुस्कान लुप्त हो गयी थी। चेहरा उग्र हो गया था। उनकी आवाज़ तेज़ हो रही थी...

"सखाराम बापू, आपको यह ध्यान में रखना चाहिए। जब हमारे सामने अर्ज़ी पेश की जाती है, तब उसका निर्णय हम करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर आपसे हम सलाह माँगें, यह रीति है। हमारी उपस्थिति में हमारे निर्णय आप न दें। यदि ऐसा होता है तो वह दरबार की रीति का उल्लंघन होगा!"

"जो आज्ञा!" सखाराम बापू ने सिर झुका लिया।

माधवराव त्रिंबकराव की ओर मुड़कर बोले, "बोलो त्रिंबक राव, किस

लाये थे, वह श्रीमन्त ने सुना। घर की मण्डली की कुशल-क्षेम श्रीमन्त ने स्वयं पूछी। दरबार के काम समाप्तप्राय थे कि अचानक दिनकर महादेव खड़ा हो गया। सखाराम बापू के माथे पर सिकुड़नें पड़ गयीं। मुजरा स्वीकार कर श्रीमन्त ने जैसे ही आज्ञा दी, दिनकर महादेव बोला—

"कसूर माफ किया जाये। श्रीमन्त की सेवा में जितनी सेवा कर सकता था, आज तक की। अब अवस्था के कारण इतनी बड़ी जवाबदारी का पालन करना असम्भव है। इसलिए जवाहरखाने की देखरेख से मुक्ति मिले, यही प्रार्थना है..."

माधवराव हँसे और बोले, "दिनकर राव, अवस्था इतनी कितनी हो गयी है जो तुम्हें इस काम का भार महसूस होने लगा है?"

"मैंने श्रीमन्त से जो कहा है वह सत्य है। यह बड़ी जवाबदारी का काम है, इसको निभाना..."

सखाराम बापू बोले, "दिनकरराव, यह प्रश्न तुमने दरबार में उपस्थित किया, इसकी कोई जरूरत नहीं थी। तुम यह हमें बता देते, फिर भी काम हो जाता। हम तुम्हारी अर्जी पर विचार करेंगे और उचित समझेंगे तो सेवा से मुक्त कर देंगे—"

"परन्तु श्रीमन्त..." दिनकरराव बापू की ओर न देखकर माधवराव से बोला।

"तुम बैठ जाओ" सखाराम बापू बोले, "यह पेशवाओं का दरबार है। व्यक्तिगत सलाह-मशविरे का स्थान नहीं है। तुम्हारे जैसे अनुभवी व्यक्ति को यह बात बताने की जरूरत नहीं है!"

माधवराव सिर झुकाये यह वार्तालाप सुनते हुए हस्तस्थ गुलाब का फूल सूँघते हुए बैठे थे। उन्होंने एकदम सिर उठाया और बोले,

"हम भी यही कहते हैं।"

बापू ने चौंककर माधवराव की ओर देखा। माधवराव के चेहरे से मृदुता लुप्त हो गयी थी। चेहरा उग्र हो गया था। उनकी आवाज तेज हो रही थी....

"सखाराम बापू, आपको यह ध्यान में रखना चाहिए। जब हमारे सामने अर्जी पेश की जाती है, तब उसका निर्णय हम करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर आपसे हम सलाह माँगें, यह रीति है। हमारी उपस्थिति में हमारे निर्णय आप न दें। यदि ऐसा होता है तो यह दरबार की रीति का उल्लंघन होगा!"

"जो आज्ञा!" सखाराम बापू ने सिर झुका लिया।

माधवराव दिनकरराव की ओर मुड़कर बोले, "बोलो दिनकर राव, बिना

किसी संकोच के, तुम हमें सेवा से निवृत्त होने का कारण बताओ। हम उसको जरूर सुनेंगे।"

क्षणभर ठहर दिनकर राव बोले, "श्रीमन्त ! पेशवाओं का जवाहरखाना एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। त्योहार-वार को बड़े लोगों के पास अनेक नग आते जाते हैं। उनकी लिखित पावतियाँ न आयें तो गड़बड़ी होने की सम्भावना बढ़ जाती है। एक आभूषण इधर-उधर होने से पेशवाओं का जवाहरखाना खाली नहीं हो जायेगा, परन्तु मुझ-जैसा साधारण आदमी तबाह हो जायेगा...."

"आवश्यकतानुसार जो माँगें की जाती हैं, वे लिखित ही होती हैं और उनकी प्राप्ति की पावतियाँ भी होती हैं न ? मैं समझता हूँ यही रीति है।"

"जी, हाँ। परन्तु इसका पालन नहीं किया जाता है।" दिनकरराव कहकर मुक्त हो गये।

राघोबा एकदम खड़े हो गये। उनका चेहरा सन्तप्त हो उठा था। वे बोले, "इस तरह आड़ लेकर बोलने की अपेक्षा, दिनकरराव, तुम साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते हो ? कहो ना कि हमने पावतियाँ नहीं दी हैं !"

सारा दरबार इस अनपेक्षित घटना से आश्चर्यचकित हो गया था। क्रोध से उन्मत्त बने हुए राघोबा के विशाल शरीर की ओर सारा दरबार एकटक देख रहा था। माधवराव ने चौंककर राघोबा दादा की ओर देखा। सखाराम बापू जैसे-तैसे बोले,

"दिनकरराव, तुम अर्जी वापस ले लो। दफ़्तर के नियमों के अपवाद होते हैं। विश्वास और मनुष्य देखकर इन नियमों का पालन किया जाता है।"

दिनकरराव खड़ा-खड़ा काँप रहा था।

"बापू !" माधवराव मसनद से उठते हुए बोले, "यह पेशवाओं की मसनद है, इस बात को भुला मत दीजिए। यदि कोई उसका अपमान करने का साहस करेगा, तो फिर अवस्था का, मान का या अधिकार का लिहाज हम नहीं रख सकेंगे ! दिनकरराव, तुम जो कहते हो वह ठीक है; परन्तु नियमों के जो अपवाद होते हैं वे क्वचित् होते हैं, इसलिए आज तक जवाहरखाने का जो अनुशासन चलता आया है, उसको ऐसे ही चलाते रहो। स्वयं पेशवा भी इन नियमों के अपवाद नहीं होंगे। इस आदेश का पालन आज से ही जारी कर दीजिए !"

देखते-देखते माधवराव उठे और दरबार की समझ में आये उससे पहले ही चल दिये। वेत्रधारी, चोबदार पीछे-पीछे दौड़े। जबतक दरबार खड़ा हो पाया तबतक माधवराव जा चुके थे ! सारे दरबार में कानाफूसी शुरू हो गयी।

सन्तप्त राघोबा सखाराम बापू के साथ दरबार से बाहर निकले।

दरबार समाप्त हो गया।

माधवराव का चेहरा सन्ताप से तमतमा रहा था। गणेश-महल से बाहर निकलते ही वे मुड़े। आठ-फव्वारोंवाले हौज में फुहारें उड़ रही थीं, परन्तु उस ओर ध्यान न देकर वे सीधे मोत्थी का हौज पार कर यज्ञशाला के सामने आये। यहाँ से आती हुई आवाजें सुनकर उन्होंने एकदम अपने पैर मोड़ लिये और वे उस चौक में आये जहाँ सरकारी काम-काज होता था। दरबार इतनी जल्दी समाप्त हो जायेगा, यह किसी ने सोचा तक नहीं था, इसलिए रास्ते पर निश्चिन्त होकर बैठे हुए नौकर-चाकर माधवराव को देखते ही घबरा गये थे। चौक में गप्पों का बाजार गर्म था, किन्तु माधवराव को देखते ही गप्पें गायब हो गयीं। उस ओर ध्यान न देकर माधवराव मध्यभाग पार करके सीधे गोपिका बाई के महल की ओर जाने लगे। गोपिका बाई के महल के पास आते ही उनके पैर ठिठक गये। द्वार पर खड़ी हुई दासी मैना ने सिर झुका लिया और आदर से वह खड़ी रही।

"मैना! मातोश्री[1] हैं न?" माधवराव ने पूछा।

"जी! अभी-अभी आयी हैं जी।"

"और तू यहाँ कैसे है?"

"बाई साहेब आयी हैं जी।"

"मातोश्री को सन्देश दे। कहना कि हम आये हैं!"

"जी!" कहकर मैना भीतर चली गयी। थोड़ी देर बाद वह बाहर आयी। मणियों का परदा एक ओर हटाकर माधवराव भीतर गये। उन्होंने देखा कि बायीं ओर बैठक पर उनकी मातोश्री गोपिका बाई बैठी हुई थीं। उनका गौरवर्ण चेहरा प्रसन्न दिखाई दे रहा था। यद्यपि अवस्था अधिक नहीं थी, तथापि वैधव्य के वस्त्रों में वे प्रौढ़ दिखाई दे रही थीं। माधवराव पास गये और उन्होंने गोपिका बाई के चरणों को स्पर्श किया। गोपिका बाई बोलीं,

"चिरायु हों! बैठिए!"

माधवराव बैठ गये। उन्होंने देखा कि गोपिका बाई के एक ओर उनकी दासी खिड़ी खड़ी थी और खिड़ी के पास सिर को अंचल से ढके एक किशोरी संकोचपूर्वक खड़ी हुई थी। उसके आरक्त पैरों की ओर माधवराव की दृष्टि गयी। बायें पैर का अँगूठा गलीचे पर मोड़कर वह अंचल सँवारती हुई खड़ी थी। माधवराव चौंके। कुछ उठते हुए वे बोले,

"क्षमा किया जाये! मुझको मालूम नहीं था कि आपके पास कोई आया

---

१. पूज्या माताजी।

होगा ! मैं फिर आऊँगा ।"

गोपिका बाई उस वाक्य से प्रसन्न होकर हँस पड़ीं । विठी भी मुँह मोड़कर हँस रही थी । माधवराव ने चौंककर मैना की ओर देखा । वह भी हँस रही थी । माधवराव असमंजस में पड़ गये । गोपिका बाई बोलीं,

"पेशवे अपनी पत्नी को भी न पहचान पायें, यह बड़े आश्चर्य की बात है । बहूरानी, आरती लाओ !"

विठी भीतर से आरती का सामान लायी । माधवराव हक्के-बक्के रह गये । उन्होंने ऊपर देखा । रमाबाई आरती लेकर खड़ी थीं । अंचल से उनका चेहरा कुछ मुक्त हो गया था । माधवराव उस सौन्दर्य को देख रहे थे । वे रमाबाई को आज तक देखते आये थे । घाघरा पहननेवाली रमा उनकी साथिन थी । पेशवे पद पर आरूढ़ होने के बाद रेशमी साड़ी पहने हुए भी रमा देखी थी; परन्तु आज जो रमा सम्मुख खड़ी थी, उसका सौन्दर्य निराला था । सुवर्णचम्पा के वर्ण की रूपवती रमाबाई खड़ी थीं । आरती के प्रकाश में उनके नाजुक कण्ठ में हीरों की लड़ियाँ चमक रही थीं । बाँहों में सुवर्ण-शृंखलाओं के भुजबन्द थे । उनके फूलों में जड़े हुए नग चमक रहे थे । नाक में नथ चमचमा रही थी । सावधान होकर माधवराव ने आगे बढ़ाया हुआ बीड़ा हाथ में लिया । आरती हुई ।

"परन्तु आरती किस लिए उतारी गयी है यह समझ में नहीं आया" माधवराव ने हँसकर पूछा ।

"माधव, आज का दिन ही वैसा है । पेशवाओं की गद्दी पर बैठे महीनों बीत गये, फिर भी वास्तविक अर्थों में सच्ची आरती आज ही उतारी गयी है ।"

"मैं नहीं समझा ।"

"आज ऐसा लगा जैसे शनिवार-भवन में पेशवा आ गये हों । पिछले दो महीनों से मेरी आशा समाप्त होती जा रही थी । आपको अपने पिताजी के पुण्य कर्मों का स्मरण बना रहे, आप विश्वासराव के योग्य भाई शोभा दें, इतनी ही इच्छा है हमारी !"

"हम क्या आपकी इच्छा के बाहर हैं ?"

"वह हमें मालूम है, परन्तु..."

विठी घबड़ाती हुई भीतर आयी । बोली,

"दादा साहब महाराज !"

"उनको भीतर आने दो ।" गोपिका बाई बोलीं ।

रमाबाई ने आँचल सँवारा, माधवराव उठकर खड़े हो गये और राघोबा दादा भीतर आये । भीतर आते ही उन्होंने गोपिका बाई को मुजरा किया ।

"मुजरा भाभीजी !"

"चिरायु हो !"

राघोबा ने माधवराव की ओर दृष्टि डाली। आसन पर रखी हुई आरती की ओर देखा। उस समय रमाबाई ने झुककर त्रिवार नमस्कार किया। होठों ही होठों में आशीर्वाद देते हुए राघोबा ने पूछा,

"आज माधव को आरती उतारी मालूम पड़ती है ?"

"हाँ ! दरबार हो गया। आज पौर्णमासी है न ?" गोपिका बाई बोलीं।

"और फिर वे कैसा पराक्रम भी तो कर आये हैं। भरे दरबार में हमारा अपमान। यह कोई साधारण बात नहीं है !"

"काका !" माधवराव बोले, "मैं आपका अपमान करने का साहस कैसे कर सकता हूँ ?"

छद्म हँसी हँसकर राघोबा दादा बोले, "हूँ ! अपमान और कैसा होता है जरा हम भी सुनें !"

"हम भी थी वहाँ !" गोपिका बाई बोली, "माधव ने आपका अपमान किया हो ऐसा हमें तो लगा नहीं। हमने तो समझा था कि माधव का दरबार में व्यवहार देखकर आपको भी सन्तोष हुआ होगा !"

स्वयं को सँभालते हुए कुछ नरम स्वर में राघोबा दादा बोले, "जरूर ! परन्तु छोटे मुँह बड़ी बात नहीं करनी चाहिए, आज बापू से कहा, कल हमसे भी—"

"काका—" माधवराव बोले, "बापू और आपमें क्या अन्तर है, यह क्या हम जानते नहीं हैं ?"

"माधव, तुम भूलते हो। जिस समय तुम्हें पेशवाई के वस्त्र दिये गये थे उसी समय सखाराम बापू को भी व्यवस्थापक के वस्त्र मिले थे।" राघोबाजी ने याद दिलायी।

"हाँ, परन्तु वे पेशवाई के वस्त्र नहीं थे, व्यवस्थापक के थे ! व्यवस्था का निर्धारण यदि पेशवे अपनी इच्छानुसार न कर सकते हों तो फिर उस पेशवाई का महत्त्व ही क्या ?"

"इसका अर्थ यह है कि हमारे मत का अब कोई मूल्य नहीं है, यही समझें हम !"

"काका !" माधवराव व्यथित होकर बोले, "आप आज्ञा दें और हम उसका पालन करें, इससे बढ़कर आनन्ददायक बात हमारे लिए नहीं है, यह हम शपथ-पूर्वक कहते हैं। हम बापू से माफी माँगें—क्या यह आज्ञा है आपकी ?"

राघोबाजी का चेहरा बदल गया। वे हँसते हुए बोले,

"नहीं माधव, यह कैसे कह सकता हूँ मैं ? मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा

था। आज हमें भी आनन्द हुआ। इसी तरह व्यवस्था में ध्यान दोगे तो हमें निश्चिन्त हो जायेंगे। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी इस दायित्व से मुक्त हो जायें, बस यही इच्छा है हमारी!" और गोपिका बाई को मुजरा करते हुए वे बोले, "हम जाते हैं। बापू हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

माधवराव ने राघोबा को मुजरा किया। रमा ने झुककर नमस्कार किया तथा राघोबा बाहर निकले।

उनके जाते ही माधवराव ने गोपिका बाई के चरणों को स्पर्श किया। गोपिका बाई ने पूछा, "आप थेऊर जायेंगे न?"

"जी हाँ! रविवार को जायेंगे। सोमवार को अभिषेक समाप्त करके मंगलवार को फिर आपके दर्शन करेंगे।"

"साथ कौन-कौन जा रहे हैं?"

"अभी निश्चित नहीं है; परन्तु त्र्यम्बक मामा, गोपालराव और...."

"फिर इसको भी ले जाओ न, यह भी दर्शन कर आयेगी!"

माधवराव ने एक बार रमा पर दृष्टि डाली और वे बोले, "जैसी आज्ञा!" यह कहकर माधवराव बाहर निकले।

महल में गोपिका बाई, रमाबाई, विठी और मैना—ये ही थीं। महल में धीरे-धीरे अन्धकार छा रहा था। गोपिका बाई बोलीं,

"विठी, समइयाँ जलाने को कहो।"

रमाबाई आगे आयीं और झुककर नमस्कार करके बोलीं,

"चलती हूँ मैं।"

आगे झुकी हुई रमाबाई को अपने पास खींचती हुई गोपिका बाई बोलीं,

"जल्दी क्या है जाने को! बैठो थोड़ी देर। मैना—"

"जी।"

"आज अपनी बाई साहब की नज़र उतारने को कह। हो सकता है छोकरी को मेरी ही नज़र लग गयी हो!"

मैना हँसती हुई बाहर चली गयी। विठी चारों कोनों में समइयाँ जला रही थी। धीरे-धीरे महल में प्रकाश फैल रहा था। विठी फरफर करती हुई बातियों को डण्डी से बराबर कर रही थी। उस फैलते हुए आलोक में गोपिका बाई रमाबाई का चेहरा निरख रही थीं। विहँसती आँखों से अपनी सास की दृष्टि को देखती हुई रमाबाई खिलखिलाकर हँस पड़ीं और एकदम गोपिका बाई से लिपट गयीं। उनको हृदय से लगाती हुई गोपिका बाई बोलीं,

"इसी तरह हँसते-गाते जीवन बिताओ। आनन्द से रहो!"

राघोबा दादा के महल में खिड़की के पास सखाराम बापू खड़े थे। उनकी दृष्टि पश्चिम की ओर माधवराव के महल पर लगी थी। माधवराव के महल से लेकर गोपिका बाई के महल तक फैली हुई अनेक मंजिलोंवाली इमारत को बापू निरख रहे थे। उस इमारत की सभी मेहराबें, खिड़कियाँ अन्दर के आलोक से प्रकाशित हो रही थीं। उस महल में जो हलचल हो रही थी, उसका पता चल रहा था। नीचे के चौक में चारों कोनों में मशालें जल रही थीं। उनके प्रकाश में सेवक आ-जा रहे थे। बापू अपनी मूँछों में ऐंठा भरते हुए यह देख रहे थे। पीछे आहट सुनाई देने पर वे मुड़े। महल में आनन्दी बाई आ रही थीं। जल्दी-जल्दी नमस्कार करते हुए सखाराम बापू बोले,

"मुजरा भाभी साहिबा!"

"कब आये बापू?"

"बस अभी-अभी आया हूँ।"

"और श्रीमान् कहाँ हैं?"

"मुझे निश्चित पता नहीं" बापू बोले, "सम्भव है बड़ी भाभी साहिबा के महल की ओर चले गये हों!"

"होगा। अभी कोई कह रहा था। बैठिए न बापू।"

परन्तु बापू न बैठकर वैसे ही खड़े रहे। आनन्दी बाई ने हँसते हुए पूछा,

"बापू! दरबार कैसा हुआ?"

"आप भी तो वहाँ थीं न?" बापू ने पूछा।

"हाँ-हाँ, परन्तु हम क्या समझती हैं!"

"क्या समझना है?" इस कथन के साथ ही आनन्दी बाई ने चौंककर ऊपर देखा। राघोबा दादा भीतर आ रहे थे। आनन्दी बाई आँचल सँवारकर बोलीं,

"नहीं। बापू से दरबार के हाल-चाल पूछ रही थी।"

राघोबा दादा शीशम के मंच पर बैठते हुए बोले,

"देखने के लिए आप तो थीं?"

"थी तो!" आनन्दी बाई बोली, "बापू का प्रभाव देखकर दंग रह गयी मैं!"

"माधव अभी छोटा है। समझ उतनी नहीं है उसमें।" राघोबा दादा बोले।

"श्रीमन्त को बालक के पैर पालने में देखने चाहिए।"

"आपके कहने का तात्पर्य?" पगड़ी उतारकर आनन्दी बाई के हाथ में देते हुए राघोबा ने बापू से पूछा।

"क्या मतलब ? काम नहीं हुआ ?"

"यह कभी हो सकता है क्या ?" गुलाबराव हँसते हुए बोले, "श्रीमान् के घर से बुलावा आने पर गरीब का भी स्वाभिमान जाग जाता है। राधी के भी ऐसे ही नखरे थे। परन्तु जब धमकाया तब आयी राह पर।"

राघोबा दादा एकदम हक्के-बक्के रह गये। आसपास देखते हुए वे बोले, "श्‌ऽ! धीरे बोलो, दीवारों के भी कान होते हैं!"

गुलाबराव झिझका। वह धीमी आवाज़ में बोला,

"परन्तु जो तय हुआ था उससे कुछ अधिक ही—"

"उसकी चिन्ता नहीं है। जब हम कहें तब उसको हाज़िर करना। इस समय तुम जाओ!"

'जी' कहते हुए गुलाबराव ने मुजरा किया और वह चला गया। राघोबा दादा खुश होकर उठे और आसन पर मसनद के सहारे बैठ गये। बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने सामने रखा चाँदी का पानदान उठाया। आनन्दीबाई भीतर आयीं। उन्होंने पूछा,

"गुलाबराव इतनी जल्दी कैसे चले गये ?"

"सरकारी काम था। काम होते ही चले गये, लेकिन आप फिर कैसे तशरीफ ले आयी ?"

"क्यों ? नहीं आना चाहिए था ?"

"वाह!" बात सँभालते हुए राघोबा दादा बोले, "यह कभी कहा है हमने ? उल्टे हम तो यही चाहते हैं कि आप हमेशा हमारे पास ही रहें।"

"रहने दीजिए! किसी ने सुन लिया तो कहेगा—"

"क्या कहेगा ?"

"जैसे औरत के बिना इनसे रहा ही नहीं जाता है।"

"इसमें क्या झूठ है ?" राघोबा दादा हँसते हुए बोले, "हमारे बारे में यह तो जगज़ाहिर है।"

"परन्तु यह सच है क्या ?" आनन्दीबाई पास बैठती हुई बोली।

"बिलकुल सच!"

"तो फिर एक बात पूछूँ ?"

"पूछिए न ?"

"कल ऐसा हुआ कि मामी साहिबा आयी थी—"

"कौन रास्तेबाई ?"

"हाँ।"

"फिर ?"

"उनके गले में मोतियों का एक हार था।"

"समझ गये। वह तुम्हारे मन भा गया, यही न? कल ही हम बापू से कह देंगे और उसको मँगवा लेंगे। उसी नमूने का बनवाकर लाने को कह देंगे। ठीक है न?"

आनन्दीबाई प्रसन्न होकर हँस पड़ीं। उठती हुई वे बोलीं, "अरी माँ! बातों के झमेले में मैं भूल ही गयी! पान लगाऊँ न?"

"लगाइए न!"

राघोबा पानों को जोड़ने लगे। उन पानों की ओर देखती हुई वे बोलीं,

"परन्तु आपका पान—"

"है! देखो यह डाल दिया।" कहते हुए उन्होंने डण्ठल तोड़े हुए पान डिब्बे में डाल दिये और बोले,

"नहीं तो हमें कहाँ शौक़ है कि बीड़ा लगाकर खायें?"

"जाइए!" कहती हुई आनन्दीबाई मुड़ीं, उसी समय उनके कानों में पुकार पड़ी, "अजीऽ!"

आनन्दीबाई मुड़ीं। राघोबा दादा समई की ओर देखते हुए बोले,

"तुम्हें पूछना भूल ही गया। तुम्हें एक दासी और चाहिए थी न? हमने आज प्रबन्ध कर लिया है।"

आनन्दीबाई का चेहरा एकदम लज्जा से लाल हो गया। वे क्रोध से तमतमाकर बोलीं, "तो इसीलिए गुलाबराव आया था? मैं उसी समय समझ गयी थी। दासी कम हैं न; उनमें एक और बढ़ गयी। जो मन में आये वह करो!"

—और राघोबा 'अजीऽऽ अजीऽऽ' पुकारते रहे, किन्तु अनसुनी कर आनन्दीबाई सीधी भीतर चली गयीं।

राघोबा के चेहरे पर सन्तोष की हँसी क्रीड़ा कर रही थी।

माधवराव की आँख खुल गयी। भवन में एक कोने में समई जल रही थी। माधवराव का ध्यान खिड़की के बाहर गया। अभी अन्धकार था। सर्वत्र नीरव शान्ति थी। भवन में कहीं भी जागृति के चिह्न नहीं थे। माधवराव ने देह पर से चादर हटायी और वे पलंग पर उठकर बैठ गये। इतनी जल्दी आँख कैसे खुल गयी, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उसी समय वे स्वर पुनः उनके कानों में पड़े; परन्तु यह भाट की नित्य गायी जानेवाली भूपाली नहीं थी। किसी अन्य राग के वे स्वर थे। इतनी प्रत्यूषा में भवन में गूँजनेवाले उन स्वरों को सुनकर माधवराव का कौतूहल जाग्रत् हो गया। उन्होंने अपनी चादर पीठ

पर डाली और वे भवन से बाहर आये। द्वार पर श्रीपति शास्त्री के रहा था। वह चौंककर खड़ा हो गया तथा उसने मुजरा किया।

"श्रीपति, कौन गा रहा है?"

"जी" उस प्रश्न को न समझकर श्रीपति बोला।

"कुछ नहीं, चलो! और कौन जग गया है?"

"माँ साहब के महल की ओर जगार हो गयी है जी।"

"अच्छा चलो।"

भवन में, बरामदों में समइयाँ मन्द-मन्द जल रही थीं। उनके प्रकाश में माधवराव आवाज की ओर जा रहे थे। आवाज नीचे से आ रही थी। उसी समय प्रातःकाल के तीन बजने का घण्टा बजा। माधवराव जैसे ही जीने के पास आये, श्रीपति ने वहाँ की समादानी उठायी और प्रकाश दिखाता हुआ वह आगे हो गया। माधवराव जीना उतरकर नीचे आये। बाहर के चौक में गये। आवाज गणेशमहल की ओर से आ रही थी।

माधवराव ने गणेशमहल की ओर कदम बढ़ाये। स्थान-स्थान पर नींद लेते हुए सिपाही नींद से अर्धजागृत् होकर माधवराव को पहचानते ही मुजरे कर रहे थे; परन्तु माधवराव का ध्यान मुजरों की ओर नहीं था। वे जल्दी-जल्दी गणेशमहल की ओर जा रहे थे। अब गाने के बोल स्पष्ट रूप में सुनाई दे रहे थे।

"बोल न पापी पपीहाऽऽऽ"

उस मधुर आवाज से माधवराव रोमांचित हो गये। प्रत्यूषा का उत्साहजनक समय। प्रातःकाल की ठण्ड और ऐसे निस्तब्ध वातावरण में गूँजते हुए उन स्वरों को सुनकर माधवराव की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। अधीर होकर वे महल के द्वार पर आये। महल का एक द्वार खुला हुआ था। अन्दर का दृश्य देखते ही उनके पैर द्वार पर ही रुक गये। पीछे-पीछे आनेवाले श्रीपति को वहीं खड़े रहने का संकेत कर माधवराव द्वार पर ही खड़े रहे।

गणेशमहल में गद्दी के दोनों ओर समइयाँ जल रही थीं। उनके प्रकाश में गद्दी पर श्रीगणेश की मूर्ति दृष्टिगोचर हो रही थी। गद्दी के आगे बैठकर भाट गा रहा था। उसके हाथ में तानपूरा था। सम्पूर्ण गणेशभवन उस आवाज से परिपूरित हो रहा था। माधवराव भावाभिभूत होकर गाते हुए भाट की ओर देख रहे थे। वह उनकी ओर पीठ किये बैठा था। भाट अब द्रुत गति में गा रहा था।

"बाजो रे बाजोऽऽ मन्दरवाऽऽ"

तन्मय होकर भाट गा रहा था। उसके रसीले गले से सुरीली तानें सहजता

से वाहर निकल रही थीं। आखिर गाना रुका और भाट की तल्लीनता भंग हुई। जल्दी-जल्दी उसने तानपूरा उठाया। देव के सम्मुख नतमस्तक होकर वह मुड़ा ही था कि उसके पैर जहाँ के तहाँ स्तम्भित हो गये। विस्फारित नेत्रों से वह देख रहा था। माधवराव उसकी ओर शान्तिपूर्वक देख रहे थे। एकदम आगे बढ़कर भाट ने माधवराव के पैर पकड़ लिये।

"अरे यह क्या करता है?" माधवराव ने पूछा।

"श्रीमन्त, भूल हो गयी। क्षमा करें!" भाट बोला।

"कैसी क्षमा?"

"बहुत जल्दी आ गया। बैठकर सहज ही गुनगुनाने लगा था कि कब गाने लग गया इसका पता भी न चला। भूपाली की जगह..."

"क्या गा रहा था?" माधवराव ने पूछा।

"शुद्ध कल्याण!" भाट बोला।

"प्रतिदिन प्रातःकाल तू ही भूपाली गाता है!"

"जी हाँ!"

"गाना सीख रहा है तू?"

"हाँ।" अब तक भाट एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था।

"घबड़ाओ मत।" माधवराव हँसकर बोले, "सीखो, जरूर सीखो। हम तुम्हारे गाने पर प्रसन्न हैं। अरे, देव भूपाली से ही जाग्रत् होते हैं, ऐसी बात थोड़ी ही है? वह तो भाव से जाग्रत् होता है। हमारी संगीत में कोई गति नहीं है, परन्तु तुम्हारे कण्ठ में वह भाव है कि जिसके कारण नींद से जगे हुए के पैर तुम्हारी आवाज की ओर मुड़ जाते हैं! आज से तुम्हारे लिए भूपाली का बन्धन नहीं है। मुक्तकण्ठ से तुम गाते रहो! निष्ठा और लगन से संगीत की सेवा करो। ऐसी सेवा करो कि उससे साक्षात् परमेश्वर प्रसन्न हो जायें। यह हमारे लिए आनन्द की बात है। नाम क्या है तुम्हारा?"

"मोरेश्वर।"

"ठीक है! मोरेश्वर, कल तुम प्रबन्धकों से मिलना। वे तुम्हारे गुणों का सम्मान करेंगे। हम आज उनको आज्ञा दे देंगे।"

मोरेश्वर ने झुककर मुजरा किया। माधवराव हँसते हुए उसकी ओर देख रहे थे। वे मुड़े और उन्होंने पैर उठाये। महल से बाहर जाते हुए माधवराव के पृष्ठभाग की ओर मोरेश्वर विस्फारित नेत्रों से देख रहा था। जो कुछ घटित हुआ उसपर विश्वास नहीं हो रहा था।

व्यायाम, स्नान-सन्ध्या, देवपूजा से निवृत्त होकर देवगृह से बाहर आने में सूर्योदय हो गया था। माधवराव अपने महल में आये। वहाँ रमाबाई खड़ी थी। उनके हाथ में माधवराव का अँगरखा था। पति के यज्ञोपवीत धारण किये हुए सुपुष्ट शरीर पर एक बार दृष्टि डालकर उन्होंने अँगरखा आगे बढ़ा दिया। अँगरखा हाथ में लेते हुए माधवराव ने पूछा,

"मातोश्री की पूजा हो गयी ?"

"कब की ! वे आपकी ही राह देख रही हैं। वे कह रही थीं कि आज तो देर हो गयी है।"

"हाँ ! आज थोड़ी देर तो हो गयी है !" कहते हुए माधवराव बैठकी पर बैठ गये। रमाबाई ने तत्परता से शीशम की तिपाई पर रखा हुआ दूध का प्याला हाथ में उठा लिया और उस चाँदी के प्याले को माधवराव के हाथ में देकर वे बोलीं,

"माताजी कह रही थीं कि थेऊर को जाना है...."

"हाँ, हाँ, जरूर जाना है !" माधवराव हँसते हुए बोले, "हमने सारी व्यवस्था कर दी है। इसकी सूचना भी मातोश्री को भिजवा दी थी।"

"माताजी कह रही थी...."

"क्या ?" माधवराव ने पूछा।

"उन्होंने कहा, देखो भई, पूछता लो, क्या पता, कहीं विचार बदल न गया हो....उसका कुछ निश्चित नहीं।"

माधवराव रमाबाई की ओर देख रहे थे। रमाबाई का नक़ल उतारने का ढंग देखकर वे जोर से हँस पड़े। उनकी हँसी का अर्थ न समझकर रमाबाई सकते में पड़कर माधवराव की ओर देख रही थी। माधवराव बोले,

"माँ साहिबा हमको इतना मनमौजी समझती हैं क्या ? देखिए, आपकी शिविकाएँ पहले जायेंगी। हम दोपहर के आसपास थेऊर पहुँचेंगे।"

"रामजी काका को साथ ले जाऊँ ?"

"ले जाइए ना ! मैं कह दूँगा, ठीक है न ? चलिए, हम लोग मातोश्री के दर्शनों को चलें।"

माधवराव उठे और महल के बाहर चल दिये। अंचल सँवारकर रमाबाई माधवराव के पीछे-पीछे चल दीं।

गोपिकाबाई के महल में जैसे ही पहुँचे, गोपिकाबाई ने पूछा,

"आप दोनों आज साथ-साथ ही जा रहे हैं न ?"

"नहीं !" रमाबाई की ओर देखते हुए माधवराव बोले, "ये पहले जायेंगी। हम बाद में जायेंगे।"

"फिर लड़की के साथ ?"

"त्र्यम्बक मामा, शास्त्रीजी आदि लोग जायेंगे।"

"और आपके साथ ?"

"गोपालराव, घोरपडे आदि लोग हैं। कल अभिषेक सम्पन्न कर हम सन्ध्या-समय आपके दर्शन के लिए उपस्थित होंगे।"

"अच्छी तरह जाना।"

गोपिकाबाई के महल से माधवराव बाहर निकले। समस्त शनिवार-भवन चहल-पहल से भर गया था। गो-शाला की ओर गायों के रँभाने की आवाजें आ रही थीं, नौकर-चाकरों की दौड़-धूप प्रारम्भ हो गयी थी। अधिकतर बड़े लोगों की पूजा-अर्चना समाप्त हो चुकी थी। माधवराव अपने महल में न जाकर सहस्र धारावाले फ़व्वारे के चौक में आये। फ़व्वारा अपने शतमुखों से तुषार उड़ा रहा था। क्षण-भर फ़व्वारे के सौन्दर्य का निरीक्षण कर माधवराव मध्यभाग के उस स्थान की ओर गये जहाँ गद्दी थी और गद्दी को मुजरा कर उन्होंने बीच के उस चौक में प्रवेश किया जहाँ सरकारी काम-काज होता था। माधवराव के गुजरते समय नौकर-चाकर मुजरे कर रहे थे। चौक पार कर माधवराव बाहर आये। उनकी दृष्टि दायीं ओर के खुले स्थान में खड़ी हुई पत्थर की प्राचीर पर शान से फहराते हुए स्वतन्त्र मराठों के राष्ट्रीय ध्वज पर पड़ी। उनकी दृष्टि कुछ ऊँची उठी और वह नक्क़ारखाने पर फरफराते हुए भगवा ध्वज पर स्थिर हो गयी। उसी समय पीछे आहट हुई। माधवराव ने मुड़कर देखा। मोरोबा और नाना खड़े थे।

"क्या बात है नाना ?" उनका नमस्कार स्वीकार कर माधवराव ने पूछा।

"श्रीमन्त" मोरोबा बोले, "सभागृह में रामशास्त्री, गोपालराव पटवर्धन, त्र्यम्बकराव आदि लोग आ चुके हैं।"

"हम भी अभी आ रहे हैं।"

माधवराव मुड़े। बायीं ओर की सभागृह की सीढ़ियाँ चढ़कर वे ऊपर गये। सभागृह में माधवराव के प्रवेश करते ही सबने झुककर नमस्कार किया। माधवराव ने शास्त्रीजी से पूछा,

"कब आये ?"

"आपकी आज्ञानुसार समय पर ही आ गया।"

"अच्छा ? आज जप में थोड़ा समय लग गया।"

"कोई बात नहीं।" शास्त्रीजी बोले, "परन्तु आज थेऊर को जाना है न ?"

"निश्चय ही, उसमें सन्देह नहीं। नाना, सब व्यवस्था हो गयी है न ?"

"लोग कल ही थेऊर को चले गये हैं। सन्देश भेजे हैं। परन्तु अभी यहाँ के

स्वामी

कार्यक्रम का विवरण...."

"शास्त्रीजी, हमने यह निश्चय किया है कि आप, नाना और मामा तो 'इनके' साथ जायें। हम लोग धूप ढलने पर चलेंगे। गोपालराव, घोरपडे—ये लोग हमारे साथ आयेंगे।"

"जो आज्ञा" शास्त्रीजी ने कहा।

सूर्य आकाश में चढ रहा था। माधवराव छत पर खड़े थे। गणेशद्वार पर अश्वारोही सैनिक कठोर अनुशासन में खड़े थे। द्वार के अन्दर राजकीय शिविका रखी थी। उस शिविका पर आच्छादित वस्त्र के कलाबत्तू सूर्यकिरणों में चमक रहे थे। उस शिविका के पास ही एक और सादी डोली रखी थी। सिर पर मोटा मुंडासा, देह पर कुरता और पैरों में तंग पायजामा परिधान किये हुए कहारों का दल सिर झुकाये खड़ा था। गणेशमहल के बाहर सवारी बैलगाडियाँ खड़ी थी। हाथ में बैलों की रास पकडे गाड़ीवान खड़े थे। रामजी काका जल्दी-जल्दी पैर रखता हुआ शिविका की ओर जाता ऊपर से दिखाई दिया। अश्वारोही सैनिक एक ओर हट गये। रमाबाई गोपिकाबाई के भवन से बाहर निकल रही थी। उनके आगे-पीछे दासियाँ आ रही थीं। दासियों के अतिरिक्त अन्य पाँच-छह स्त्रियाँ भी उस समूह में दिखाई दे रही थीं। उनके पीछे-पीछे त्र्यम्बकराव पेठे पगडी सँवारते हुए आ रहे थे।

रमाबाई शिविका में बैठी। परदा डाल दिया गया। पीछेवाली शिविका में स्थूल देह की, रेशम की कीमती साडी पहने हुए एक स्त्री बैठती हुई दिखाई दी। माधवराव ने पीछे खड़े हुए श्रीपति से पूछा,

"ये कौन हैं रे?"

"मामी साहिबा!" श्रीपति बोला।

"रास्तेमामी?"

"जी।"

कहार अन्दर आये। मामा ने जैसे ही संकेत किया, वैसे ही शिविकाएँ उठा ली गयी। मामा घोड़े पर सवार हो गये। शास्त्रीजी और नाना बैलगाडी में बैठे। बैल जोते गये। साँडणीसवार आरूढ़ हुए। खिदमतगारों ने घोड़ों को एड लगायी। घोडे आगे बढ़े। शिविकाएँ राजमार्ग पर आ गयी और जल्दी-जल्दी जाने लगी। घोड़ों की टापों की और बैलों की घण्टियों की आवाज जबतक अस्पष्ट सुनाई पड़ती रही तबतक माधवराव छत पर खडे रहे। जैसे ही शिविकाएँ ओझल हुईं, वे पीछे मुड़े।

दोपहर को माधवराव जब सभागृह में गये, उस समय वहाँ गोपालराव पटवर्धन और घोरपडे उपस्थित थे। माधवराव की पगड़ी पर मणियों का सिरपेच चमक रहा था। देह पर महीन मलमल का चुन्नटोंवाला कुरता और पैरों में चूड़ीदार पायजामा था। गले में मोतियों का हार दृष्टि आकर्षित कर रहा था। सभागृह के बाहर आते ही सेवक ने कलावत्तू की जूतियाँ सामने रख दीं। उनको पैरों में डालकर माधवराव के पैर दिल्ली-दरवाजे की ओर मुड़ गये। पीछे-पीछे पटवर्धन-घोरपडे जा रहे थे। दिल्ली-दरवाजे के पास ही मल्हारराव रास्ते सामने आये। मुजरा करते हुए माधवराव बोले,

"मामा, हमें लगा था कि आप नहीं चलेंगे।"

"कल ही ताई[1] साहिबा का आदेश मिला था।"

"हमें मालूम है। मामी साहिबा आगे गयीं न ?"

"हाँ।"

"तो फिर चलें न ?"

"जो आज्ञा।" मल्हारराव रास्ते बोले।

"चलो !"

दिल्ली-दरवाजे के सामने जाते ही माधवराव ने देखा पचीस घुड़सवार अपने-अपने घोड़े की लगाम थामे खड़े थे। उनके मुजरे स्वीकार कर माधवराव सीढ़ियों पर उतरने लगे। सेवक माधवराव का उत्तम घोड़ा आगे ले आया। वह उत्तम अश्व फुरफुरा रहा था। उसकी पीठ पर लाल मखमल से आवृत जीन कसी हुई थी। माधवराव सवार हुए। सभी अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गये। माधवराव ने सिर उठाया। नक्क़ारखाने पर भगवा ध्वज शान से फहरा रहा था। अनजाने ही माधवराव का सिर झुक गया और दूसरे ही क्षण उन्होंने घोड़े को एड़ लगायी। पीछे-पीछे घोड़े जा रहे थे। नागरिकों के मुजरे स्वीकार करते हुए माधवराव पुणे में होकर जा रहे थे। नगर पार कर बाहर जाते ही माधवराव ने घोड़े को फिर एड़ लगायी और भीमानदी के तट-प्रदेश का वह उत्तम अश्व बेतहाशा दौड़ने लगा। पूर्णवेग से घोड़े खटाखट थेऊर के मार्ग पर जा रहे थे।

मुख्य मार्ग छोड़कर घोड़े जब थेऊर के रास्ते पर आये उस समय सूर्य पश्चिम क्षितिज की ओर झुक गया था। इस लम्बी दौड़ से घोड़े पसीने से तर हो गये थे। देखते-देखते थेऊर दिखाई देने लगा। देवालय के शिखर के दर्शन होते ही

---

१. बड़ी बहन, दीदी।

माधवराव ने लगाम खींची। वेग कम हुआ और माधवराव ने हाथ जोड़े। एकान्त में टीले-जैसे ऊँचे स्थान पर बसे हुए थेऊर को देखते हुए माधवराव चले जा रहे थे। उस छोटे-से गाँव के आसपास की भूमि आँखों में समा रही थी। उसमें प्रमुख रूप से भवन का दक्षिणोत्तर तट दिखाई दे रहा था। भवन की ऊपरी मंजिलें दिखाई देते ही माधवराव के चेहरे पर अकारण हँसी आ गयी और उन्होंने एड़ लगायी। घोड़ा हवा से बात करता हुआ थेऊर की ओर दौड़ने लगा। घोड़ों की टापों की आवाज ने पेशवाओं के आगमन की सूचना बहुत पहले ही थेऊर में आकर दे दी थी। थेऊर के प्रवेश द्वार के पास बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये थे। मुजरों को स्वीकार करते हुए माधवराव भवन के पास आये। सेवक दौड़कर आगे आया। घोड़े को पकड़ते ही माधवराव उतरे। भवन के नक्कारखाने पर नगाड़ा बज रहा था। पेशवाओं के आगमन की सूचना सारे गाँव में फैल रही थी। नाना, रामशास्त्री खड़े थे। उत्तरीय सँवारते हुए नाना आगे आये।

"क्यों नाना, कब पहुँचे ?"

"दोपहर होते ही हम लोग यहाँ आ गये।" नाना बोले।

बातें करते-करते माधवराव का ध्यान पीछे की ओर गया। पीठ पीछे रामजी खड़ा था, हाथ के कंगन को ठीक करते हुए माधवराव ने पूछा,

"रामजी—"

"जी !"

"तुम्हारी मालकिन क्या कर रही हैं ?"

"मन्दिर में गयी हैं जी !"

अन्य लोगों की ओर मुड़कर माधवराव बोले, "चलिए, हम लोग भी देवदर्शन करके ही भवन में जायेंगे।"

माधवराव मन्दिर की ओर चले। उनके पीछे-पीछे पटवर्धन, घोरपडे, नाना, त्र्यम्बकराव, इच्छाराम पन्त तेरे, दरेकर—ये लोग जा रहे थे। वे लोग देवालय के पास पहुँचे। प्रवेश-द्वार पर सेवक खड़े थे। माधवराव आगे आये। उन्होंने प्रवेश-द्वार से भीतर क़दम रखा। सामने के संकीर्ण बरामदे में से उन्होंने देखा। देवालय का आँगन खाली था। अचानक हँसने की आवाज़ उनके कानों में पड़ी। चारों ओर के बरामदों से घिरे हुए देवालय के आँगन में होकर एक दासी हँसती हुई भागी जा रही थी। तभी दूसरी दौड़ती हुई दिखाई दी। उसी समय किसी बरामदे से आवाज़ आयी,

"साईं छूटा ऽऽ !"

माधवराव तत्क्षण मुड़े। पीछे-पीछे आनेवाले शास्त्रीजी सँभल नहीं पाये।

माधवराव का धक्का उनको लगा। माधवराव धीरे से बोले,

"बाहर चलो !"

रास्ता निकालते हुए जल्दी-जल्दी माधवराव बाहर आये। पीछे-पीछे सब लोग आये। वे सब उलझन में पड़ गये थे। शास्त्रीजी ने पूछा,

"क्यों श्रीमन्त ?"

"लगता है भीतर खेल चल रहा है! उसमें व्यवधान न पड़े! तब तक हम लोग यहीं बैठते हैं।"

रामशास्त्री अपनी हँसी रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। नाना मुख मोड़कर खड़े थे। क्या कहा जाये, यह किसी को समझ में नहीं आ रहा था। इसी तरह थोड़ा समय बीता और रामजी वहाँ आ गया। सब लोगों को मन्दिर के सामने खड़े देखकर उसने पूछा,

"सरकार, बाहर क्यों खड़े हैं ?"

"रामजी, अरे! भीतर खेल चल रहा है।" माधवराव ने कह डाला।

"तो फिर उसके खतम होने तक बाहर ही खड़े रहेंगे क्या ?"

"ठहर रामजी! चलने दे उनका, हमको जल्दी नहीं है ?"

"वा ऽऽ" उनके कथन से असहमत होता हुआ रामजी बोला, "ऐसा भी हुआ है क्या कभी ?"

माधवराव की ओर न देखते हुए रामजी भीतर घुसा। आँगन में आकर उसने देखा कि एक बरामदे से रमाबाई हँसती हुई बाहर आ रही थीं। पीछे-पीछे बिठो दौड़ रही थी। दोनों जोर से हँस रही थीं। रामजी ने पुकारा,

"आक्का साब !"

रमाबाई रुक गयीं। उन्होंने रामजी को देखा। माथे के पसीने को आँचल से पोंछती हुई वे रामजी के पास आती हुई बोलीं,

"क्या है रामजी काका ?"

"क्या, क्या बताऊँ ? सरकार कब से द्वार में आकर खड़े हैं ?"

"सच ?" रमाबाई ने पूछा।

"वैसे ही बनाकर कह रहा है रामजी काका!" नाक सूँतती हुई बिठो बोली। तबतक रमाबाई की अन्य सखियाँ इकट्ठी हो गयीं। उन सब पर दृष्टि डालता हुआ रामजी बिठो से बोला,

"तू है आफ़त ? इतना नगाड़ा बजा वह भी सुनाई नहीं दिया ? सरकार अन्दर आकर तुम्हारा खेल देखकर पीछे लौट गये, तब भी खेल चल ही रहा है! खेल है कि स्वांग ? जाकर देख आ, द्वार में खड़े हैं!"

"अरी माँ!" कहती हुई रमाबाई ने पंजा मुँह पर रखा। झटपट अंचल

सँवारकर वे चलने लगीं। उनके पीछे-पीछे और सब चलने लगीं। रामजी काका आगे बढ़ा। रामजी को बाहर आते हुए देखकर सब एक ओर हट गये। मन्दिर के बाहर आते ही रमाबाई की दृष्टि क्षण-भर को माधवराव की ओर गयी। माधवराव के चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण मुसकराहट थी। दूसरे ही क्षण रमाबाई की दृष्टि झुक गयी और वे शीघ्रता से आगे बढ़ गयीं। भवन के इस ओर के द्वार से जब वे ओझल हो गयीं तब माधवराव मन्दिर की ओर मुड़े।

मन्दिर के बाहर जूतियाँ उतारकर माधवराव ने मन्दिर में प्रवेश किया। गर्भगृह में सिन्दूर से रँगी हुई स्वयम्भू श्री चिन्तामणि की डेढ़-दो हाथ ऊँची बैठी हुई मूर्ति थी। दोनों ओर प्रज्वलित समइयों के प्रकाश में गर्भगृह प्रकाशित हो रहा था। कुछ क्षण तक माधवराव अपलक उस मूर्ति की ओर देखते रहे। उनके हाथ जुड़ गये, आँखें बन्द हो गयीं। सभी लोग हाथ जोड़कर खड़े थे। रामशास्त्रीजी के होंठ बुदबुदा रहे थे। जब माधवराव ने आँखें खोलीं तब पुजारी ने उनके हाथ में फूल दिये। उनको देवता को अर्पण कर माधवराव लौटे। सभी लोग सामने के मण्डप में गये। वहाँ से देवता का गर्भगृह दिखाई पड़ रहा था। वहाँ माधवराव को फ़र्श पर ही बैठते देखकर इच्छाराम पन्त आगे आकर बोले,

"ठहरें श्रीमन्त! अभी बैठक आ जायेगी। आप सीधे यहाँ आ जायेंगे, यह किसी ने सोचा भी नहीं था।"

माधवराव हँसकर बोले, "नहीं पन्त! हम नीचे ही बैठ जायेंगे। देवता के दरबार में हमारा उपयुक्त स्थान यही है। क्या कह रहे हैं शास्त्रीजी?"

"श्रीमन्त सच कह रहे हैं। उसकी सत्ता सब पर है। लेकिन इस बात को बहुत थोड़े लोग समझ पाते हैं। जो कुछ होता है, वह उसी की आज्ञा और इच्छा से!"

माधवराव फ़र्श पर बैठ गये थे। वे रामशास्त्रीजी से बोले, "परन्तु शास्त्री-जी, श्री गजानन ने यह उत्तरदायित्व सौंपा है, इसको हम कैसे उठा पायेंगे यह समझ में नहीं आता है!"

"क्यों?"

"अवस्था हमारी छोटी है; अनुभव, चिन्ता और राज्य की परिस्थिति इतनी विकट! तंजावर से लेकर अटक तक जिसका दबदबा था, वह मराठा राज्य आज चारों ओर से शिथिल हो गया है; निजाम हैदराबाद-जैसे प्रबल शत्रु पुराने अपमान का बदला लेने के लिए तैयार हो रहे हैं; उत्तर में सब अपनी-अपनी डफली लेकर अपना-अपना राग बजा रहे हैं; सरदारों में एकता नहीं है, घर क़र्ज़ के बोझ से दबा हुआ है, गुरुजनों का आधार नहीं है। ऐसी परिस्थिति में, असमय में अचानक ऊपर आये हुए इस बड़े उत्तरदायित्व से मन एकदम

बेचैन हो जाता है। अनेक बार तो रात को आँख तक नहीं लगती !"

"श्रीमन्त ! जिसने यह दायित्व सौंपा है, उसको उसकी चिन्ता है। आप गणेशस्तोत्र का सदा पाठ करते हैं। उन नामों के स्मरण मात्र से यह चिन्ता दूर हो जायेगी। वह मंगलमूर्ति है। विघ्नहर्ता है। उसी का नाम सिद्धिविनायक है। उस-जैसे पालनकर्ता के होते हुए भय कैसा ?"

शास्त्रीजी, यह तो सच है; परन्तु हमारी अवस्था तो छोटी है !"

"कर्तृत्व क्या अवस्था पर अवलम्बित होता है, श्रीमन्त ! यदि ऐसा होता तो सोलहवें वर्ष में तोरणा जीतकर छत्रपति मराठा राज्य की नींव न रख देते।"

"भूलते हैं आप !" माधवराव निःश्वास छोड़कर बोले, "कहाँ वह महान् युगपुरुष और कहाँ हम ! उन शिव छत्रपति को पूज्या जिजा माता का आधार था। दादोजी कोण्डदेव-जैसे नीतिज्ञ सलाह-मशविरा देनेवाले थे। तानाजी, येसाजी-जैसे प्रखर स्वामिनिष्ठ सेवक थे। एक मनुष्य की बुद्धि राज्य संस्थापना में उपयोगी नहीं होती शास्त्रीजी !"

"तो फिर आपको ही क्या कमी है ?" गोपालराव पटवर्धन ने पूछा, "नाना, शास्त्रीजी-जैसे व्यक्ति आपके पास हैं। घोरपडे, विंचूरकर, दरेकर-जैसे कुशल योद्धा हैं। बिगड़ता हुआ काम बातों ही बातों में सँवारा जा सकता है !"

"जिस दिन ऐसा होगा, वह सचमुच ही भाग्य का दिन होगा !" माधवराव बोले, "हमारा एकमात्र आधार आप सब अनुभवी लोग ही हैं। आप लोग हैं, इसीलिए तो इस उत्तरदायित्व का भय हमें नहीं है। इसी कारण वश हम तुमको यहाँ लेकर आये हैं।"

बातें करते-करते कब अँधेरा घिरने लगा, इसका पता भी न चला। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर जब मशालें जलायी गयीं, तब सबको ध्यान आया।

माधवराव उठे। वे नाना से बोले,

"नाना ! कल के अभिषेक का समस्त प्रबन्ध हो गया है न ?"

"हाँ !"

"देर मत होने दीजिए। कल हम लोगों को लौटना है !"

"इसके लिए सावधान कर दिया है !"

"चलिए, भवन में चलें !"

देव-दर्शन कर सब लोग भवन की ओर मुड़े। रात्रि के पहरेदार अश्वारोही सैनिकों के मुजरे स्वीकार कर माधवराव दीवानखाने की ओर मुड़े। शमादान और समइयों के प्रकाश से दीवानखाना रोशन हो रहा था। छत से टँगे हुए झाड़-फानूस के लोलक हवा के झोंके के साथ किमकिना रहे थे। दीवानखाने में गलीचे बिछे हुए थे। मध्य भाग में जरी-जटित कलाबत्तू से सजी हुई बैठक थी।

माधवराव बैठक पर रखे हुए मखमली मसनद के सहारे टिककर बैठ गये। उनकी आज्ञा से सब लोग स्थानापन्न हो गये और फिर देखते ही देखते नयी-पुरानी यादों की चर्चा जो छिड़ी तो ऐसी छिड़ी कि भोजन की सूचना आने तक चलती रही।

भोजन समाप्त कर माधवराव जब फिर दीवानखाने में आये तब चन्द्रमा उदित हो गया था। माधवराव अकेले ही दीवानखाने में खड़े थे। मेहराबदार खिड़की से दिखाई देनेवाले चन्द्रोदय को वे देख रहे थे। चन्द्रप्रकाश में नदी तक का प्रदेश दृष्टिगोचर हो रहा था। सर्वत्र निस्तब्ध शान्ति विराज रही थी। समस्त वातावरण रहस्यमय लग रहा था। परदे की सरसर सुनकर उनको भान हुआ। माधवराव ने चौंककर पीछे देखा। पानदान हाथ में लिये रमाबाई खड़ी थीं।

"आइए न!" माधवराव मुड़ते हुए बोले।

रमाबाई अन्दर आयी। आगे बढ़ाये हुए पानदान से बीड़ा माधवराव ने हाथ में ले लिया और वे बोले,

"हमको क्षमा माँगनी चाहिए!"

"क्यों?"

"हमारे अकस्मात् आने से आपके खेल के रंग में भंग हो गया न?"

"मैंने समझा कि...." रमाबाई रुक गयी।

"क्या समझा? बोलिए न?"

"मैंने समझा कि आप नाराज हो गये होंगे?"

"किस लिए?"

"हम सब खेल रही थीं इसलिए!"

माधवराव हँस पड़े। हँसते-हँसते गम्भीर हो गये। वे बोले,

"ये ही आपके खेलने-फिरने के दिन हैं। वह आपको मिलता नहीं, यह हमारा दोष है।"

रमाबाई सकते में पड़कर माधवराव की ओर देख रही थी। क्षण-भर रमाबाई की ओर देखकर माधवराव एकदम विषय बदलते हुए बोले,

"सचमुच! तुम लड़कियों की दुनिया ही निराली है! हमारी समझ में नहीं आता कुछ।"

प्रश्नार्थक मुद्रा से रमा बाई ने माधवराव की ओर देखा। माधवराव हँसकर बोले,

"अब देखो न! कल-परसों तक तुम घाघरा पहनकर घूमा करती थी, असमय में ही साड़ी पहनने का प्रसंग आते ही कितनी गम्भीर और प्रौढ़ दिखाई

देने लगीं; विचार करने लगीं !"

"जाइए ! यह भी कोई बात है !"

भवन के द्वार के पास कोई खड़ा था ।

"कौन ?" माधवराव ने पूछा ।

"जी मैं ! विठो हूँ ।" विठो अन्दर आयी ।

"क्यों आयी है ?"

"मामी साहिबा ने बुलाया है जी ।"

"किसको ? मुझको ?" माधवराव ने पूछा ।

रमाबाई खिलखिलाकर हँस पड़ीं । माधवराव लज्जित हो गये । विठो हँसी दबाती हुई बोली,

"बाई साहिबा को ! उन्होंने कहा, कल जल्दी उठना है, रात बहुत हो गयी है !"

"हाँ ! ठीक है । आप जाइए !"

रमाबाई के जाते ही माधवराव ने पुकारा, "कौन है बाहर ?"

"जी" कहता हुआ श्रीपति अन्दर आया ।

"नीचे सभागृह में लोग हैं क्या ?"

"जी ! हैं ।"

"उनको ऊपर भेज दो और तुम द्वार पर खड़े रहो । किसी को भीतर मत आने दो ।"

"जी !"

थोड़ी ही देर में दीवानखाने में रामशास्त्री, नाना, घोरपडे, पटवर्धन, रास्ते, ढेरे—इन लोगों ने प्रवेश किया । श्रीपति द्वार पर खड़ा हो गया । अर्धरात्रि हो जाने पर सब लोग दीवानखाने के बाहर निकले । माधवराव शयनगृह की ओर जा रहे थे । श्रीपति उनके पीछे-पीछे जा रहा था । भवन में शान्ति थी । बीच का चौक चन्द्रिका-स्नात हो गया था । शयनगृह की पूर्वाभिमुख मेहराबदार खिड़की से माधवराव दक्षिण की ओर की इमारत की तरफ़ देख रहे थे । अनजाने ही उनके मुख से निःश्वास बाहर निकला और वे पलंग की ओर मुड़े ।

प्रातःकाल स्नान-सन्ध्या से निवृत्त होकर माधवराव जब अपने भवन में आये तब रमाबाई वहाँ उपस्थित थीं । माधवराव के मस्तक पर पगड़ी, देह पर चुन्नटदार बाँहोंवाला कुरता और पैरों में चूड़ीदार पायजामा देखकर रमाबाई चकित हो गयीं । माधवराव के मस्तक पर केशर के तिलक के नीचे कस्तूरी का तिलक देखती हुई रमाबाई से माधवराव ने पूछा,

"क्या देख रही हैं ?"

स्वामी

"बाहर जा रहे हैं न ?"

"हाँ, श्री के दर्शनों के लिए जा रहे हैं। चलेंगी क्या ?"

"मैं हो आयी हूँ ! मामी साहिबा और मैं—हम दोनों साथ ही गयी थीं।"

"भाग्यवती हैं मामी साहिबा ! हमको यह भाग्य मिलेगा क्या ?"

"कैसा ?" अनजाने रमाबाई ने पूछा।

"आपके साथ रहने का !"

"जाइए ! बेकार की बातें करते हैं आप ! आपकी आज्ञा हो तो...."

"आपको आज्ञा कौन देगा ? यह तो हमारी प्रार्थना है।"

रमाबाई खिलखिलाकर हँस पड़ीं। "मैं अभी आती हूँ" यह कहती हुई वे झटपट बाहर निकलीं। जब वे वापस आयीं तब उनके साथ रामजी था।

"सरकार, और किसको साथ लिया जाये ?" रामजी ने पूछा।

"किस लिए ? पास ही तो जाना है। हम अभी लौट आयेंगे।"

देवालय के द्वार पर रामजी खड़ा हो गया और रमा-माधवराव ने आड़े दरवाजे से भीतर प्रवेश किया। चारों ओर के बरामदों को देखते हुए दोनों जा रहे थे। देवालय में दोनों खड़े हो गये। पुजारी द्वारा दिये गये फूल, हल्दी-कुंकुम देव को अर्पण करने के बाद तीर्थोदक लेकर माधवराव पीछे लौटे। गर्भगृह से पुजारी भी जल्दी-जल्दी बाहर आया। देव के सभामण्डप में रमा-माधवराव खड़े थे।

माधवराव ने पूछा, "आपको यह स्थान अच्छा लगता है न ?"

"मैं क्या पहली बार आयी हूँ यहाँ ?"

"आज अभिषेक है। सायं समय लौटना है। नहीं तो हम लोग नदी किनारे चलते। फिर कभी आयेंगे तो जरूर जायेंगे। आपको अच्छा लगेगा वह स्थान।

वह स्थान बहुत सुन्दर है। प्रशस्त घाट है। इस घाट के थोड़ा-सा ऊपर की ओर खड़े रहकर देखने पर काले पत्थरों से रेखांकित नदी तट दृष्टिगोचर होता है। नदी के पात्र में पवन के साथ सरसराती आती हुई लहरें मन में तरंग उठाती हैं। नदी के दोनों ओर फैले हुए विस्तृत उद्यान और ऊपर नीला आकाश मन को मोह लेते हैं। वह स्थान मुझको बहुत अच्छा लगता है। जब समय मिलेगा तब मैं आपको उस स्थान पर अवश्य ले जाऊँगा।"

रमाबाई कुछ नहीं बोलीं। वे माधवराव के चेहरे की ओर देख रही थीं। माधवराव सब कुछ भूलकर कह रहे थे,

"दिन कितनी जल्दी बीत जाते हैं, हैं न ? आपको याद है ? मातोश्री के साथ हम लोग यहाँ आये थे। तुम घाघरा पहननेवाली लड़की थीं। हम इसी छज्जे पर खेल रहे थे। हम लोग कंकड़ों से खेल रहे थे। दाव मुझपर उलट

गया। मैं चिढ़ गया। तुम आगे झुककर कंकड़ इकट्ठे कर रही थीं कि मैं तुम्हारी पीठ में मुक्का मारकर भाग गया। तुम तिलमिला गयीं और दूसरे बरामदे में, जहाँ मातोश्री बैठी थीं, उनके पास रोती हुई पहुँचीं। डर के मारे मेरे प्राण काँपने लगे। तुम शिकायत कर रही थीं, मैं आड़ में खड़ा होकर सुन रहा था। तुम्हारी शिकायत सुनकर सब जनी तुम्हारे ही ऊपर हँसीं। मातोश्री बोलीं, 'बावरी कहीं की! अरी, पति के मारने की बात कोई सबके सामने कहता है क्या? अच्छा, मैं कहूँगी माधव से!"

रमाबाई आश्चर्यचकित होकर यह सुन रही थीं। वे बोलीं, "तो आपको याद है यह! मैं सोच रही थी कि आप सब कुछ भूल गये होंगे?"

"इन मधुर यादों को क्या कोई भूलता है? उलटे ये तो जन्म-भर की सहचरी बन जाती हैं। इस स्थान के बराबर सुन्दर स्मृतियाँ कहीं की नहीं हैं। बारम्बार वे मेरे मन में चक्कर काटती रहती हैं। उनसे मेरे थके हुए मन को चैन मिलता है। पूज्य पिताजी के साथ मैं अनेक बार यहाँ आया हूँ। नदी किनारे जी भरकर खेला हूँ। कभी-कभी ऊब जाने पर, घुड़साल से घोड़े खोले और अश्वारोही सैनिक साथ लेकर थेऊर पहुँचे, ऐसा अनेक बार हुआ है। इस थेऊर में आने पर शान्ति मिलती है। देवता के अस्तित्व की प्रतीति सचमुच यहीं होती है!"

"आपसे एक बात पूछूँ क्या?"

"पूछिए न?" माधवराव बोले।

"कल मैं आयी तब मैंने यह सुना कि श्री के अभिषेक के लिए फूल पुणे से लाये गये हैं। उपाध्याय कह रहे थे कि यहाँ फूल नहीं मिलते हैं। पेड़ लगाये भी जायें तो गर्मियों में पानी के अभाव में वे टिकते नहीं हैं। श्री की पूजा के लिए यहाँ सदैव फूला रहनेवाला एक बग़ीचा होना चाहिए—यह सोचती हूँ।"

"सुन्दर! हमें अच्छा लगा। आप अब जब यहाँ आयेंगी, तब यह परिवर्तन आपको ज़रूर यहाँ दिखाई देगा। चलो, हम चलें! फिर अभिषेक के लिए आना है।"

अभिषेक सम्पन्न कर भोजन होने में दो प्रहर बीत गये। माधवराव भोजन के उपरान्त जब ऊपर भवन में गये, तब उनके महल में रमाबाई जड़ाऊ चाँदी का पानदान लेकर खड़ी थीं। पानदान में एक विशेष प्रकार का बनाया हुआ बीड़ा था। रमाबाई ने पानदान आगे बढ़ा दिया। तब माधवराव ने पूछा,

"आपका भोजन हो गया न?"

"हाँ।"

"हमें बीड़ा नहीं चाहिए।"

"क्यों ?" आश्चर्य से रमाबाई ने पूछा।

"हम हमेशा देखते हैं कि आप एक ही बीड़ा लाती हैं। अकेले-अकेले बीड़ा खाने में मजा ही क्या ?"

"मैं बाद में खा लूँगी न!"

"बाद में ? सो नहीं होगा। आप बीड़ा लेकर आयेंगी तभी हम बीड़ा स्वीकार करेंगे!"

"लीजिए न ? यह भी कोई बात है!" अनुनयपूर्वक रमाबाई बोलीं।

"उँहूँ! बीड़ा ले आइए!"

"रमाबाई मुड़ी और जल्दी-जल्दी नीचे गयीं। माधव के चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण हँसी थी। जब रमाबाई वापस आयीं तब तश्तरी में दो बीड़े दिखाई दे रहे थे। माधवराव ने एक बीड़ा उठाया और वे बोले, "लीजिए न!"

लजाते हुए रमाबाई ने बीड़ा लिया।

"चलने की तैयारी हो गयी है न ?" माधवराव ने पूछा।

"हाँ।" रमाबाई जैसे-तैसे बोलीं। देखते-देखते रमाबाई के कोमल होंठ रँग गये। माधवराव बोले,

"अरे वाह! बीड़ा रंग गया तो!"

"क्यों, बीड़ा तो रँगता ही है! आपका भी रँग गया है।"

"बीड़ा यों ही नहीं रँगता है!" आंख मिचकाते हुए माधवराव बोले।

"क्या मतलब ? मैं नहीं समझी!"

"आपको मालूम नहीं है ?"

"उँहूँ!"

"बीड़ा रँगना—यह संकेत है। पति-पत्नी का यदि परस्पर प्रेम न हो तो बीड़ा रँगता नहीं है—यह कहते हैं!"

"जाइए, आप भी...!"

"आपको सच नहीं लगता ? बोलिए न ?"

क्षण-भर रमाबाई ने माधवराव को देखा, फिर वे बोलीं, "यह समझने के लिए क्या बीड़ा का रँगना जरूरी है ?"

इस कथन के साथ ही माधवराव ने चौंककर ऊपर देखा। रमाबाई हक्की-बक्की रह गयीं। माधवराव की दृष्टि बचाकर जल्दी-जल्दी उन्होंने झट से तश्तरी उठा ली और वे घूमीं। माधवराव ने पुकारा, "अहो!" परन्तु उस पुकार को सुनने के लिए वे रुकी ही नहीं। जल्दी-जल्दी वे जीने से उतर भी गयीं। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ पार कर वे जीने के नीचे पहुँचीं। वहाँ मैना खड़ी थी। रमाबाई का हृदय जोर से धड़क रहा था। सारा चेहरा पसीने से तर था। मैना ने यह

देखा। उसने पूछा,

"क्या हो गया अक्कासाब ?"

उसके हाथ में तश्तरी देती हुई रमाबाई बोलीं, "चुप रह ! कुछ मत बोल। नटखट कहीं की !" और यह कहकर वे चलने लगीं। मैना रमाबाई के पृष्ठभाग की ओर आश्चर्य से देख रही थी।

सन्ध्या समय धूप ढलने पर माधवराव भवन से बाहर निकले। देवदर्शन कर वे बाहर आये। गांव के पाटील आदि अधिकारी मण्डल बाहर द्वार में खड़ा था। माधवराव ने पाटील से कहा—

"पाटील ! चिन्तामणि की पूजा के लिए यहाँ यथेष्ट फूल नहीं मिलते हैं, यह सुना है मैंने। तो अबकी वर्षा में पुणे से शासन की ओर से फूलों के पौधे मँगवा लेना ! गर्मियों में नदी से पानी लाने के लिए एक अलग व्यक्ति की नियुक्ति बाग़ में कीजिए। हम फिर जब यहाँ आयें तब भवन में और मन्दिर के प्रांगण में मुसकराता बाग़ हमको दिखाई देना चाहिए।"

"जो आज्ञा !" पाटील बोले।

"मैं पुणे पहुँचते ही यहाँ के बाग़ की व्यवस्था कर रहा हूँ। अब चलते हैं हम।"

भवन के सामने सभी लोग सवार हो गये; घोड़े चलने लगे। दायीं ओर घोरपडे थे। बायीं ओर गोपालराव पटवर्धन थे। गोपालराव बोले, "जल्दी चलना चाहिए; नहीं तो पुणे पहुँचने में रात हो जायेगी श्रीमन्त !"

"गोपालराव, न जाने क्यों, परन्तु थेऊर छोड़ते समय मन खिन्न हो जाता है ! हम अनेक बार चिंचवड भी गये हैं, परन्तु यह अनुभव वहाँ नहीं हुआ। इस स्थान का आकर्षण कुछ विलक्षण ही है। कुछ स्थान मन को आश्चर्यजनक ढंग से आकर्षित करते हैं।"

अब तक घोड़े गांव के बाहर आ चुके थे। पठार पर होकर दूर तक गया हुआ सर्पाकृति रास्ता दिखाई दे रहा था। सन्ध्याकाल था। वातावरण प्रफुल्ल था। बायें हाथ पर खड़ी हुई पहाड़ियाँ नीला रंग लिये हुए थीं। उन पहाड़ियों की पादभूमि तक फैला हुआ, विरल वृक्षों से सुशोभित वह विस्तृत प्रदेश माधवराव ने एक बार देखा और घोड़े को एड़ लगायी। घोड़ा दौड़ने लगा और देखते ही देखते धूल के बादल उड़ाते हुए घोड़े पूर्ण वेग से दौड़ते हुए पुणे की राह काटने लगे।

अश्वारोही पथक के सैनिक, जिनको दिन की पारी थी, दिल्ली-दरवाजे के

स्वामी

पास उपस्थित हो गये थे। दिल्ली-दरवाजे से लोगों का आना-जाना, सेवकों की दौड़धूप चल रही थी। दरवाजे की दायीं ओर साईसों ने तीन-चार घोड़े पकड़ रखे थे, उनको देखकर यह पता चलता था कि कोई महत्त्वपूर्ण सरदार आया है। उसी समय भवन के सामने के रास्ते से पालकी आती हुई दिखाई दी। पालकी को देखते ही सूचना देनेवाला सेवक जल्दी-जल्दी भवन में घुसा और थोड़ी ही देर बाद दुपट्टा सँवारते हुए नाना फडणीस की चिड़चिड़ी, पगड़ी धारण की हुई मूर्ति दिल्ली-दरवाजे में आयी। जैसे ही पालकी भवन के सामने खड़ी हुई, रामशास्त्री पालकी से उतरे। नाना फडणीस द्वारा किये गये अभिवादन को स्वीकार कर वे उनके साथ भवन में प्रविष्ट हो गये। चलते हुए रामशास्त्री बोले,

"नाना, आज तो श्रीमन्त से मिलने का अवसर मिल जायेगा न?"

"रामशास्त्रीजी, आपसे पहले ही गोपालराव पटवर्धन आ चुके हैं, परन्तु अभी तक देवगृह से श्रीमन्त बाहर नहीं आये हैं।" नाना बोले।

"श्रीमन्त का पूजा-पाठ की ओर बहुत ध्यान दिखाई देता है!" रामशास्त्री बोले।

"निश्चय ही! श्रीमन्त पर कैसा ही अवसर क्यों न आये वे नित्य की पूजा, पाठ जब तक नहीं कर लेते तबतक किसी काम को हाथ नहीं लगाते!"

"अच्छा!" रामशास्त्री सिर हिलाते हुए बोले। उसी समय एक सेवक दौड़ता हुआ अन्दर आया। नाना फडणीस के कान में उसने कुछ कहा।

"मैं अभी आया!" उन्होंने सेवक को भेज दिया और रामशास्त्री की ओर मुड़कर बोले, "शास्त्रीजी, आप सभागृह में चलकर बैठें। वहाँ पटवर्धन हैं। तबतक मैं यह पता लगा लाऊँ कि तुलसी के पत्ते क्यों नहीं आये हैं।"

"कैसे तुलसी के पत्ते?"

"अनुष्ठान चल रहा है न, आज सप्तमी का दिन है। तुलसीदल न लाने का अपराध यदि श्रीमन्त के ध्यान में आ गया तो फिर क्षमा नहीं मिल सकेगी!" और उसी समय नाना चले गये। कुछ क्षणों तक रामशास्त्री खड़े रहे। भवन के द्वार में कहीं से मन्त्रघोष सुनाई दे रहा था। रामशास्त्री ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उन्होंने सभागृह की ओर कदम बढ़ाये।

खास सभागृह में घोरपडे, पटवर्धन आदि सरदार हास्यविनोद करते हुए बैठे थे। रामशास्त्रीजी को देखते ही सब चुप हो गये। रामशास्त्रीजी ने सभागृह में प्रवेश किया। गोपालराव पटवर्धन जल्दी से उठकर सामने आये। रामशास्त्री ने उनसे कहा, "गोपालराव, आप आज आयेंगे न?"

"जरूर! परन्तु श्रीमन्त से बिना मिले कैसे जाऊँगा?"

"यह भी सही है।"

"हम भी इसीलिए दो दिन से पुणे में रुके हुए हैं !" घोरपडे बोले।

एक किनारे पर बैठकर ये बातें सुननेवाले गंगोबा तात्या खिलखिलाकर हँस पड़े। सभी का ध्यान उनकी ओर गया। गंगोबा तात्या दरबार के पुराने असामी हैं। वयस्क और राघोबा दादा के कृपापात्र।

"क्यों तात्या, हँसे क्यों ?"

"अजी ! हँसूँ नहीं तो क्या रोऊँ ? नन्दी मिल जाये तो महादेव नहीं मिलते हैं और यदि महादेव मिल जायें तो नन्दी से भेंट नहीं होती, यह हाल हो गया है ! एक का दर्शन करने से दर्शन पूरे नहीं होते हैं। यह भी साला एक झंझट है !"

"हम नहीं समझे ?" घोरपडे बोले।

"अजी, इसमें समझना क्या है ? दादा साहब मिल जायें, तो रावसाहब नहीं मिलते हैं, और जबतक वे दोनों नहीं मिलते हैं, तबतक अनुमति नहीं मिलती है ! खीऽ खीऽ खीऽऽ" गंगोबा हँसे। सब उस हँसी में सम्मिलित हो गये।

रामशास्त्री अकारण उत्तरीय झटककर खड़े हो गये। सभी लोग शान्त हो गये। बड़े-बड़े मोतियों के कुण्डलों से शोभित उनके कानों के निचले भाग एकदम लाल दिखाई देने लगे। मस्तक पर गन्ध की पट्टी सिकुड़नों से संकुचित हो गयी। अपनी तीक्ष्ण दृष्टि गंगोबा पर स्थिर कर शास्त्रीजी बोले, "तात्या, अब इतना और बता दो कि महादेव कौन है और नन्दी कौन है ?"

"नहीं ! बात यह है कि...." गंगोबा तात्या रुक-रुककर बोले, "मेरे कहने का मतलब....!"

"समझ गया !" रामशास्त्री बोले, "आप लोग दरबार के पुराने आदमी हैं ! बड़े लोगों के सम्बन्ध में क्या बोलना है, कहाँ और कैसे बोलना है; इसकी जानकारी आपको होनी ही चाहिए। किसी समय यह ज़बान अनर्थ कर सकती है। इसपर संयम रखिए !" और यह कहकर रामशास्त्री तत्क्षण बाहर आये। अभी वे दो-चार क़दम ही चल पाये होंगे कि सामने से नाना फडणीस आ गये, "क्यों ? शास्त्रीजी, जल्दी उठ आये ?"

लगभग सिर के ऊपर आये हुए सूर्य की ओर रामशास्त्री ने देखा और वे बोले, "जल्दी ! नाना, हम श्रीमन्त की तरह स्वतन्त्र थोड़े ही हैं। हम तो स्वामी के सेवक हैं। न्यायासन का भार है। कचहरी में लोग क्या कह रहे होंगे ?"

"परन्तु श्रीमन्त अब आने ही वाले हैं !"

"यह आग्रह करनेवाला मैं कौन होता हूँ ? मैं दो दिन से आ रहा हूँ।

स्वामी

कचहरी से पहले भेंट नहीं होती है। सन्ध्या समय आओ तो ग्रन्थ-पठन और कीर्तन चल रहा होता है। श्रीमन्त को हमारे आने की सूचना दे देना। जब उनकी आज्ञा होगी, तब उनसे मिलने आ जाऊँगा मैं !"

नाना रामशास्त्रीजी के पीछे-पीछे आ रहे थे। शास्त्रीजी के सन्ताप से वे परिचित थे। तभी उनकी दृष्टि सामने से जाते हुए श्रीपति पर पड़ी। उन्होंने आवाज दी, "श्रीपति !"

"जी" कहते हुए श्रीपति आया। "सरकार दीवानखाने में पहुँच गये हैं। आपको ही बुला लाने को कहा है उन्होंने।"

"शास्त्रीजी" नाना प्रसन्न होकर बोले।

शास्त्रीजी मुड़े। नाना बोले, "श्रीमन्त दीवानखाने में आ गये हैं। आप क्षण-भर रुकिए। मैं श्रीमन्त को सूचना देता हूँ !"

रामशास्त्री ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। नाना श्रीपति के साथ जीने से ऊपर गये। कुछ देर बाद श्रीपति आया और उसने रामशास्त्री को बुलाये जाने की सूचना दी।

माधवराव अपने महल में पलंग पर बैठे थे। शास्त्रीजी के जाते ही वे उठकर खड़े हो गये। शास्त्रीजी ने अभिवादन किया। उसको स्वीकार कर वे बोले,

"आइए, शास्त्रीजी ! हमको नाना ने बताया कि आप दो दिन आ चुके हैं, किन्तु आपसे भेंट नहीं हो सकी !"

"सच है श्रीमन्त !"

"स्नान-सन्ध्या, जप आदि सम्पन्न करने में समय लगता है। ये बातें मन के अनुरूप नहीं होती हैं तो मन को प्रसन्नता ही नहीं होती है !"

"सच है !"

"परन्तु आपका ऐसा कौन-सा अत्यावश्यक काम निकल आया ?"

"अत्यावश्यक नहीं !" रामशास्त्री बोले, "परन्तु अब शेष जीवन गंगा के तट पर ईश्वर-चिन्तन में बिताने की इच्छा हो रही है। इसलिए आपकी सेवा से मुक्ति मिले, इतना ही निवेदन करने के लिए मैं आया था।"

माधवराव को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। नाना को यह धक्का अकल्पित था। स्वयं को सँभालते हुए रामशास्त्री गम्भीर आवाज में बोले, "श्रीमन्त ! यह न्यायाधीश का स्थान काँटों का ताज है। निर्णय निश्चित करने में बड़ा श्रम और समय लगता है। इस झंझट में वेदाध्ययन और नित्यपाठ भी नहीं हो पाता है। इसलिए निश्चय किया कि गंगा के किनारे जाकर ईश्वर की सेवा में लगा जाये !"

"परन्तु शास्त्रीजी, इस निवृत्ति के मार्ग की ओर आपका ध्यान एकाएक

कैसे चला गया ? हम आपको कितना मानते हैं—यह आप जानते ही हैं ! राज्य की इस विकट परिस्थिति में आप-जैसे गुरुजनों का हमें बड़ा सहारा रहता है !"

"यह सत्य है। किन्तु हम किसका आधार ढूढ़ें ?"

"क्यों ? हम नहीं हैं ?"

रामशास्त्री अकारण ही खांसे। उन्होंने दुकूल को झटका। "श्रीमन्त ! स्पष्ट बोल रहा हूँ, इसलिए माफ़ करें ! आप ब्राह्मण हैं। वेदाध्ययन, स्नान-सन्ध्या, जप-तप यही सच्चा ब्राह्मणधर्म है। उसका आप निष्ठापूर्वक पालन कर रहे हैं, यह देखकर हमें आश्चर्य होता है। परन्तु, श्रीमन्त ! आपने ब्राह्मण होकर क्षात्रधर्म स्वीकार किया है। आप प्रधान मन्त्री हैं, राज्य का उत्तरदायित्व आपके ऊपर है। प्रजापालन आपका कर्तव्य है ! या यों कहें कि वह आपका धर्म है ! इन कर्त्तव्यों को कौन करेगा ? हम जब भी आते हैं, तभी आप होम-हवन, पूजा और अनुष्ठान में लीन ! हम-जैसे अधिकारी सलाह-मशविरा करें तो किससे ?"

स्तब्ध होकर माधवराव उनका कथन सुन रहे थे। सावधान होकर वे बोले, "परन्तु शास्त्रीजी, हमने तो यह समझा था कि आप तो हमारा..."

"रुक क्यों गये श्रीमन्त ! बोलिए ! कौतुक करेंगे—यही न ? ज़रूर ! आपको वेदाध्ययन, जप-तप करना हो तो उसमें कौन विघ्न डालेगा ? इसके समान पवित्र कर्तव्य नहीं है ! परन्तु..."

"परन्तु क्या ?"

"परन्तु वह गद्दी पर बैठकर नहीं ! यदि राज्य के कर्तव्य करते हुए यह करना सम्भव न हो, तो श्रीमन्त ! मेरी आपको स्पष्ट सलाह है कि गद्दी छोड़िए ! मैं आपका साथ दूँगा ! हम दोनों ही गंगातट पर चलें और वहाँ शेष जीवन वितायें !"

क्या कहा जाये—यह माधवराव को सूझ नहीं रहा था। सुन्न मन से वे सुन रहे थे। रामशास्त्री कह रहे थे, "श्रीमन्त ! यह क्या हो रहा है ? दरबार के सदस्य घण्टों बैठे रहते हैं। कर्मचारी राज्य-कार्यभार छोड़कर तुलसीदल और बिल्वपत्र इकट्ठे करते हुए घूमते रहते हैं ! जिस शनिवार-भवन में अटक के पार जाने की योजनाएँ बनीं, जहाँ भाऊसाहब ने कुतुबशाह के रक्त का बीड़ा उठाया, जहाँ नवीन विजय की मस्ती में हर दिन नगाड़े बजते थे, उसी भवन में आज अहोरात्र होम-हवन का धुआँ उठ रहा है। श्रीमन्त, जहाँ सदैव राजनीतिज्ञों की राजनीति का पट बिछा रहता था, उस शनिवार-भवन में आज जपों की संख्याएँ लिखी जा रही हैं ! आज हम-जैसे सेवक आखिर करें तो क्या और निर्णय करें भी तो किस बल पर ?"

नाना फडणीस का सम्पूर्ण शरीर सुन्न हुआ जा रहा था। माधवराव का आशुकोप सब जानते थे। आज तक उनके सामने इतना बोलने का साहस किसी का नहीं हुआ था। नाना बोले, "रामशास्त्री! किससे कह रहे हैं आप यह ?"

माधवराव ने हाथ के संकेत से रोका और बोले, "ठहरो! बोलने दो उनको! कटु हो तो क्या, यह सत्य है! भूल हमसे हुई है। हमको अवश्य सुन लेनी चाहिए!"

रामशास्त्री स्वयं को सँभालते हुए बोले, "यह बात नहीं, श्रीमन्त! राज्यकर्ता ही यदि इस प्रकार शिथिलता दिखायेंगे तो इसको अधिकारियों में पहुँचने में देर नहीं लगेगी और जहाँ धर्मनिष्ठापूर्वक सेवा न हो सके वहाँ मनुष्य को रहना नहीं चाहिए!"

"हम स्वीकार करते हैं, शास्त्रीजी! हमसे भूल हुई, यह हम मानते हैं! हम आपको वचन देते हैं कि अब आगे ऐसा कभी नहीं होगा! आप चाहे जब आयें! आप हमको सदैव मिलने के लिए प्रतीक्षा करते हुए पायेंगे! अब तो आप गुस्सा नहीं हैं हमपर ?"

रामशास्त्री हँसकर बोले, "गुस्सा? और आपपर? श्रीमन्त! स्वामी पर गुस्सा करके सेवक कहाँ जायेगा? अच्छा, चलता हूँ मैं। आज्ञा दीजिए...."

"परन्तु शास्त्रीजी, आप क्यों आये थे, यह पता नहीं चला। या केवल हमारे कान खोलने के लिए?...."

"नहीं....नहीं....यह बात नहीं है, श्रीमन्त! अन्य लोग राह देख रहे हैं। आपके आदेशानुसार बेगारबन्द करने का हुक्म जारी कर दिया है!"

"अच्छा किया!"

"परन्तु यह हुक्म बहुत-से लोगों को कष्टदायक प्रतीत हो सकता है!"

"इसकी बिलकुल चिन्ता मत कीजिए! यह हम देख लेंगे!"

नमस्कार करके रामशास्त्री चले गये। नाना बोले, "नीचे पटवर्धन, घोरपड़े आदि लोग..."

"भेज दो न। हम मिलेंगे उनसे!"

और नाना शास्त्रीजी के पीछे-पीछे चले गये। परन्तु माधवराव वहीं खड़े थे। अनुष्ठानकी मन्त्रध्वनि उनके कानों तक पहुँच रही थी। वे खिड़की के पास गये। ईशान्य दिशा में जो इमारत थी, उसमें से हवन का धुआँ ऊपर उठ रहा था। वह शनिवार-भवन पर फैल रहा था। वह असह्य लगा, इसलिए माधवराव झट् से मुड़े। द्वार में पटवर्धन, घोरपडे खड़े थे। उनके मुजरों को स्वीकार कर माधवराव बोले।

"आइए न! अन्दर आइए!"

दोनों अन्दर आये। माधवराव बोले, "गोपाल राव, आज जायेंगे आप ?"

"जी हाँ।"

"माँ साहिबा से मिल लिये ?"

"जी हाँ।"

"घोरपड़े, आप भी जायेंगे ?"

"जी ! विगत दो दिनों से कूच करने का विचार कर रहा हूँ। जब से उरली का समझौता हुआ है, तब से मैं यहीं हूँ। बहुत दिन हो गये !"

"सच है ! परन्तु आप जैसे, गोपालराव जैसे निकटवर्ती लोग पास से न जायें, यही इच्छा होती है !"

"जब आज्ञा होगी, तब पुनः सेवा में हाजिर हो जायेंगे हम !" घोरपड़े बोले।

"इसमें सन्देह नहीं ! इसपर विश्वास है हमको। गोपालराव ! गोविन्द हरीजी को हमारा नमस्कार कहना। बारम्बार कुशलवार्ता भेजते रहना। घोरपड़े, मातोश्री से हमारा नमस्कार कहना। यह भी कहना कि जब हम दक्षिण में आयेंगे, तब उनसे ज़रूर मिलेंगे।"

दोनों मुजरा करके चले गये। श्रीपति अन्दर आया।

"सरकार, मामा आये हैं !"

"उनको अन्दर भेज दो।"

त्र्यम्बकराव मामा अन्दर आये। उनका चेहरा प्रसन्न दिखाई दे रहा था। वे बोले, "श्रीमन्त ! आपके हुक्म के अनुसार घुड़साल की ओर अरब लोग घोड़े लेकर आये हैं। बारह जानवर हैं।"

"सब बढ़िया हैं ?" माधवराव ने पूछा।

"दृष्टि नहीं ठहरती है, इतने बढ़िया हैं। इसलिए यदि आप..."

"हम ज़रूर चलेंगे !" माधवराव बोले, "अफ़सोस ! अगर थोड़ी देर पहले कह देते तो ?"

"क्यों ? क्या हो गया ?"

"घोरपड़े आपके आगे हो गये हैं। उनको भी घोड़े दिखा दिये होते। उनको घोड़ों की अच्छी पहचान है। मामा आप ऐसा कीजिए कि घोरपड़े को अश्वशाला की ओर आने की सूचना देने के लिए कहिए। वे भावताव कर लेंगे। मैं कपड़े बदलकर अभी नीचे आ रहा हूँ।"

"जो आज्ञा !" कहकर मामा महल से बाहर निकले।

माधवराव के महलमें सारे राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गये थे। त्र्यम्बकराव पेठे, टवे, विंचूरकर, सखाराम बापू जैसे लोग उनमें प्रमुख रूपसे दिखाई दे रहे। माधवराव मसनद के सहारे बैठे थे। उनकी मुखमुद्रा सन्त्रस्त दिखाई दे ही थी। निजाम ने मराठा राज्य में जो बवण्डर मचा रखा था, उसका वृत्तान्त माधवराव के कानों तक पहुँच चुका था। निजाम ने पेशवाओं का ठाम सैनिक अड्डा नलदुर्ग जीत लिया था। अक्कलकोट का परगना रौंदकर वीरान कर दिया था। सोलापुर पर लक्ष्य केन्द्रित कर निजाम पूरे वेग से दौड़ रहा था। नाना साहब की मृत्यु के बाद पेशवाई डांवाडोल देखकर उदगीर के पराभव से चोट खाया हुआ निजाम मराठों का मुल्क बेचिराग करता हुआ, देवालय उद्ध्वस्त करता हुआ पुणे की ओर आ रहा था। माधवराव सुन्न मन से यह सुन रहे थे। त्र्यम्बकराव मामा ने आये हुए खलीते पढ़कर सुनाये और वे खड़े रहे। कुछ क्षणों तक कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव के मुख से दीर्घ-निःश्वास बाहर निकला।

"मामा! अब आगे क्या करना चाहिए?"

"श्रीमन्त! यदि निजाम को समय रहते रोका नहीं गया तो वह पुणे में आये बिना नहीं रहेगा!"

"पुणे इतना आसान लगता है उसको! बस! हम निजाम पर आक्रमण करेंगे। संकटों का जबतक सामना नहीं किया जाता तब तक वे रुकते नहीं हैं। आज ही पटवर्धन, घोरपड़े, निंबालकर और होल्कर को अत्यावश्यक खलीते भेजिये! नाना अभीतक कैसे नहीं आये? श्रीपति भी अभी नहीं आया!"

"मैं देखता हूँ" कहते हुए त्र्यम्बकराव मुड़े। तभी रावसाहब बोले।

"ठहरिए मामाजी! आ ही रहे होंगे, उनके पास सूचना पहुँच गयी है।"

"नाना आ गये!" रास्ते द्वार की ओर देखते हुए बोले। नाना जैसे ही दरवाजे के पास आये, माधवराव कठोर स्वर में बोले, यह क्या बात नाना! हम लोग कितनी देर तक प्रतीक्षा करें? हमारा सन्देश नहीं पहुँचा?"

परन्तु नाना शान्त थे। माधवराव का कथन समाप्त होते ही वे बोले, "श्रीमन्त! जरा खास काम है। आप थोड़ा बाहर आने की कृपा करेंगे क्या?"

"जो कहना हो वह यहीं कहिए न!"

"यदि ऐसी ही खास बात न होती तो..."

माधवराव उठे। महल के बाहर आते ही नाना बोले, "माँ साहिब ने आपको बुलाया है!"

"अभी?"

"हाँ! जैसे हों-वैसे ही..."

"बात क्या है ?"

"आपकी आज्ञा मिल गयी थी; परन्तु उस समय मैं माँ साहिबा के महल में था। दादा साहब भी वहीं हैं !"

"कौन ? काका ?"

"हाँ ! बहुत सन्तप्त हैं। उन्होंने होम की आज्ञा की थी। मैंने यह कहा कि आपके आदेश से होम-हवन भवन में बन्द कर दिये गये हैं। उसकी शिकायत...."

"समझ गया ! चलो, देखें काका क्या कहते हैं ?"

"श्रीमन्त !"

माधवराव रुक गये। उन्होंने मुड़कर देखा। नाना चुपचाप खड़े थे।

"बोलिए नाना !" माधवराव बोले।

"कुछ नहीं ! थोड़ा सँभलकर चलें। समय अच्छा नहीं है..."

"चलो ! नाना, जब समय फिर जाता है, तब ग्रह भी फिर जाते हैं !"

कुछ न कहते हुए नाना पीछे-पीछे चल दिये। जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाते हुए माधवराव दालानों को पार कर रहे थे। गोपिकाबाई का महल पास आने पर उनकी गति कुछ धीमी पड़ गयी।

माधवराव ने महल में प्रवेश किया। गोपिकाबाई मसनद के सहारे बैठी हुई थीं। राघोबा दादा ग़लीचे के कोने पर खड़े थे। अन्दर जाते ही माधवराव ने दोनों को मुजरे किये। राघोबा देखा अनदेखा कर गोपिकाबाई से बोले, "पूछिए न अपने चिरंजीव से !"

"क्या हुआ ?" माधवराव ने पूछा।

"माधवराव ! आपने देवकार्य बन्द कर दिये हैं ?"

"बिलकुल नहीं !" माधवराव बोले, "नित्य के देवकार्य व्यवस्थित चल रहे हैं, यह मैं स्वयं देखता हूँ !"

"माधव, क्या कहते हो ? मैंने जो होम प्रारम्भ किया था, वह बन्द कैसे हुआ ? तेरी आज्ञा के बिना क्या नाना की हिम्मत थी ?"

"ज़रूर, वह आज्ञा मैंने दी थी...."

"सुना भाभी साहिबा ! विश्वास हो गया न ? अब माधवराव पेशवे हो गये हैं। अब उनको राजनीति में हमारे सलाह-मशविरे की ज़रूरत नहीं है ! सयाने हो गये हैं वे ! अब इस भवन में भी हमारी सत्ता नहीं रही है !"

"काका ! किसने कहा है कि आपकी सत्ता नहीं है ? आपकी कौन-सी आज्ञा का उल्लंघन हमने किया है ?" माधवराव का स्वर तीव्र होता जा रहा था।

"सुन रही हैं भाभी साहिबा ! अब हमसे ही जवाब तलब कर रहे हैं !"

"माधव, होम क्यों बन्द हो गया है, इसका कारण चाहिए मुझे !" गोपिकाबाई ने पूछा।

माधवराव शान्तिपूर्वक बोले, "होम बन्द नहीं हुआ है। केवल स्थान बदल गया है। यज्ञादि करने के लिए गाँव में अनेक मन्दिर तथा अन्य सुन्दर स्थान हैं। उनको वहाँ किया जाना चाहिए, यह आदेश दिया है मैंने !"

"देखो ! कैसा कह रहा है ! जहाँ देवता से ही भय नहीं रहा, वहाँ हमसे डरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता !"

"काका ! ईश्वर से मुझको सचमुच ही भय नहीं लगता है ! आपसे भी नहीं।"

"माधव !" गोपिकाबाई ने चिल्लाकर कहा।

"सच है, मातोश्री ! ईश्वर से डरने की क्या जरूरत है ? परमेश्वर के प्रति प्रेम होना चाहिए, आदर होना चाहिए। भय होना चाहिए शत्रु का ! काका, आपका नहीं !"

"मेरी आज्ञा का उल्लंघन करना ही वह प्रेम है शायद ?"

"ग़लतफ़हमी हो रही है काका ! यह शनिवार-भवन है। दक्षिण की राजनीति के सूत्र-संचालन का स्थान, राजनीतिज्ञों का निवासस्थान, वीरों का विश्रामस्थल ! यहाँ होम-हवन, छुआछूत का बन्धन पालने से काम कैसे चलेगा ? यहाँ तो जैसे पटवर्धन आते हैं, वैसे ही घोरपडे आते हैं ! राजा के लिए सारी प्रजा समान है ! धर्म उसका व्यक्तिगत कार्य है ! और इसीलिए हमने होम-हवन के अनुष्ठानों को कम कर दिया है ! पूर्ण रूप से बन्द नहीं किया है। भवन में आपका देवगृह है, मातोश्री का है, मेरा है ! उनकी व्यवस्था पूर्ववत् ही चल रही है। केवल इसके अतिरिक्त अन्य धार्मिक विधियाँ जरूर होंगी; परन्तु वे शनिवार-भवन में नहीं ! यह राजनीति का स्थल है, मन्दिर नहीं है। राज्य का रक्षण करने में ही स्नान-सन्ध्या हो जाती है। मैं यही समझता हूँ।"

"यह बुद्धि किसने दी है ?" राघोबा ने व्यंग्यपूर्वक पूछा।

काका की दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए माधवराव बोले, "निजाम ने ! काका, निजाम द्वारा प्रज्वलित किये गये होमकुण्ड में महाराष्ट्र के देवताओं की आहुति पड़ रही है ! मन्दिर भ्रष्ट किये जा रहे हैं ! निजाम मंजिलें तय करता हुआ पुणे की ओर दौड़ा चला आ रहा है ! छोर पर बने मन्दिर के श्री गजानन को भग्न करने की उसने प्रतिज्ञा कर रखी है। अक्कल कोट फ़तह करके वह सोलापुर तक आ गया है। आप होम-हवन का प्रश्न लेकर मन में सन्देह पाल रहे हैं ! बापू के द्वारा आपके पास सन्देश भिजवाया था। सारी बैठक आपकी प्रतीक्षा कर रही थी; परन्तु आप आये ही नहीं ? पेशवाई क़र्ज़ में डूब रही है ! सब

अपनी-अपनी डफली लेकर अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। सरदारों में एकता नहीं है। जामदराव-जैसा सम्भ्रान्त सरदार पचास हज़ार सैनिक लेकर पुणे पर चढ़ाई कर गया, फिर भी आपका क्रोध ठण्डा नहीं होता है! मेरी आज्ञा यदि अनुचित लग रही हो, तो आप अवश्य उसको तोड़िए! यह अधिकार आपको है! मैं यथासम्भव सैनिक लेकर निजाम का मुक़ाबला करने जा रहा हूँ। वह पुणे तक न आने पाये—इसके लिए प्राणों की बाज़ी लगा दूँगा। आप निश्चिन्त होकर यज्ञ सम्पन्न करें। चलता हूँ मैं!"

"ठहर माधव!" राघोबा बोले।

माधवराव ने देखा, राघोबा की आँखें भर आयी थीं।

"माधव, जिसकी तलवार अटक तक पहुँची थी, जिसने उद्‌गीर में निजाम को चौदह लाख का मुल्क छोड़ने को विवश किया, उस अपने काका को तू सादा संन्यासी समझता है? सभागृह में कौन-कौन आ गये हैं?"

"रास्ते, विंचूरकर चह्वाण आदि लोग हैं।"

"ठीक है! आज ही भोसले, होल्कर और पटवर्धन को आज्ञापत्र भेजो। सांडणी-सवारों को आज ही रवाना करो!"

"जो आज्ञा!" नाना बोले।

"और देखो नाना! प्रयाण के लिए मुहूर्त देखने के लिए कह दो। अब रुकने से काम नहीं चलेगा। चल माधव, देखें कौन-कौन आये हैं। चलते हैं भाभी साहिबा!"

"थोड़ा रुकें!" गोपिकाबाई बोलीं।

आश्चर्य से दोनों ने गोपिकाबाई की ओर देखा। गोपिकाबाई के मुख पर सन्तोष झलक रहा था। उन्होंने पुकारा,

"कौन है बाहर?"

विठी अन्दर आयी। उसके आते ही गोपिकाबाई बोलीं, "विठी, केशर-मिश्रित दूध ले आ झटपट!"

"जी!" कहकर विठी चली गयी और गोपिकाबाई दोनों की ओर मुड़कर बोलीं,

"मुँह मीठा किये बिना दोनों उठें नहीं!"

रमाबाई अपने महल में बैठी थीं। रमाबाई की खास दासी मैना पास खड़ी थी! रमाबाई ने पूछा,

"मैना, माताजी पर्वती से आ गयीं क्या?"

स्वामी

"नहीं जी ! परन्तु आने ही वाली है।"
"माताजी मेरे पीछे बहुत पड़ी थी कि 'चल' !"
"फिर क्यों नहीं गयी ?"
"जाने की इच्छा नहीं हुई !"
"मैं....मैं जानती हूँ !" मैना बोली।
"क्या जानती है री !"
"जबतक सरकार युद्ध से लौट नहीं आयेंगे, तबतक आप पर्वती पर नहीं जायेंगी, यह प्रण कर लिया है न ? सब जानती हूँ मैं ?"
"चुप रह। जरा बोलने को कह दो, फिर देखो मैना को ! किसने कहा है री तुझसे ?"
"आइए, ▌ नहीं बताती।" मैना मुँह फुलाती हुई बोली।
"क्यों री ? तू भी गुस्सा हो गयी ?"
"क्यों नहीं गुस्सा होऊँगी ? मैं आपकी दासी हूँ और आप जो मनौती करती हैं, उसके बारे में विठी मुझे बताती है !"
"आग लगे इस मरी के मुँह में ! इसके पेट में कोई बात पचती ही नहीं है ! माताजी बार-बार कह रही थीं। फिर क्या करती ? तब विठी से कहना पड़ा, तब वही जाकर माताजी की समझ में आया।"
"और माँ साहिबा ने क्या कहा, मालूम है ?"
"क्या कहा री ?"
"मुझे नहीं मालूम !" कहती हुई मैना मुड़ी।
"मैना, क़सम है मेरी !"
"अभय दीजिए !"
"अरी बता दो !"
"पहले अभय दीजिए !"
"अच्छी बात है। अभय दिया।"
"माँ साहिबा बोलीं," गर्व से खड़ी होकर, सिर हिलाती हुई मैना बोली, "लड़की बड़ी हो गयी !"
रमाबाई का चेहरा लज्जा से लाल हो गया। खिलखिलाकर हँसकर उन्होंने पूछा, "सच ?"
"बिलकुल सच ! आपकी शपथ, अभय दीजिए।"
अचानक दरवाजे के पास खाँसने की आवाज आयी। मैना बुदबुदायी, "अरी माँ ! काकी साहिबा महाराज ऽ !"
रमाबाई जल्दी-जल्दी उठीं। द्वार में से आनन्दीबाई आ रही थीं। जैसे

ही वे अन्दर आयीं, रमाबाई ने झुककर उनको त्रिवार नमस्कार किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर, पास जाकर, पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, "रहने दे ! रहने दे ! और रमा, तुम पर्वती को क्यों नहीं गयी ? रामजी दिखाई दिया, उससे पूछा। उसने बताया कि तुम गयी नहीं हो। सोचा कि तीन-चार दिन से दिखाई नहीं दी हो, इसलिए मिल आऊँ !"

"बैठिए !" रमाबाई बोलीं।

बिस्तर बिछा हुआ था। मसनद और तकिये रखे हुए थे। उस पर आनन्दीबाई मसनद के सहारे बैठ गयीं। रमाबाई बिस्तर के कोने पर बैठ गयीं। आनन्दीबाई भवन का निरीक्षण कर रही थीं। चारों ओर की दीवारों पर नीला रंग पुता हुआ था, कोने में पलंग था, उसपर सादी स्वच्छ चादर बिछी थी, भींत पर राम-सीता और नल-दमयन्ती के चित्र बने हुए थे—यह सब देखते-देखते उनकी दृष्टि एक जगह रखी हुई पुस्तकों पर पड़ी। वे बोलीं,

"रमा ! क्या पढ़ती हो तुम ?"

"हरिविजय ! माताजी ने दिया है पढ़ने के लिए !"

"तो फिर नियमित रूप से पढ़ती हो न ?"

"जी हां !"

"बड़ा अच्छा है यह। मैंने एक बार सुना था। पाण्डव वनवास को जाते हैं, सच ! उस प्रसंग को सुनते समय आंखें भीग जाती हैं !"

"वह पाण्डवप्रताप है !"

"होगा ! होगा !" आनन्दीबाई सुधारती हुई बोलीं। रमाबाई की दृष्टि जब-जब आनन्दीबाई की ओर जाती थी, तब-तब वह उनके गले में चमकनेवाले मणियों के हार पर अटक जाती थी। यह बात आनन्दीबाई के ध्यान में आयी। वे बोलीं, "तुमको अच्छा लगा यह !"

"अच्छा है !"

"तुमसे क्या कहूं, इनसे जरा कहने की देर है कि बस आ जाता है ! मैं तो बाई, जैसा कहती हूं, हो जाता है। तुमको अच्छा लगता है तो तुम क्यों नहीं पहनती हो ? माधव न देता हो तो नाना से कहना ! जवाहरखाने से ला देंगे वे !"

"मुझको इतना शौक़ नहीं है।"

आनन्दी बाई हँस पड़ीं और बोलीं, "मुझको बहका रही हो ! ग़रीब बेचारी !"

"सचमुच, मुझको शौक़ नहीं है।" रमाबाई घबड़ाकर बोलीं।

"अच्छा बाई, शौक़ नहीं है ! अभी तेरह वर्ष की नहीं है और मुझको बहका

रही है ?"

"मैना !" रमाबाई ने पुकारा।

मैना अन्दर आयी। पलंग के नीचे रखी हुई छोटी सन्दूकची की ओर उँगली से संकेत कर रमाबाई बोली, "उस सन्दूकची को ला !"

मैना सन्दूकची ले आयी। रमाबाई ने उसका ढक्कन खोला। भीतर मोती जड़े सुवर्ण के आभूषण थे। उनको देखकर आनन्दीबाई का चेहरा फीका पड़ गया। रमाबाई शान्त भाव से बोलीं, "माताजी ने दिये हैं मुझको !"

"बड़े बढ़िया हैं तेरे गहने !"

सन्दूकची बन्द करते ही मैना ने उसको यथास्थान रख दिया और वह बाहर चली गयी।

"मैना, शर्बत ले आ !' रमाबाई बोली।

"नहीं बाई, मुझको कुछ नहीं चाहिए। मोतीचूर के लड्डू बनवाये थे। निजाम का वह संकट टल गया। मैंने मँगवा लिये कि देर क्यों की जाये !"

"संकट टल गया ?" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम्हें मालूम नहीं ? रहती कहाँ हो ? निजाम को इन्होंने ऐसा ठोका है ! धोंभारगोंदी पर तो उसको धज्जियाँ उड़ा दीं ! उसने श्रीमंत किया था न ! उसपर दया कौन दिखायेगा ? आखिर दाँतों तले तिनका दबाकर आया !"

"फिर ?" आँखें विस्फारित कर रमाबाई बोली।

"फिर क्या ? ये ठहरे दयालु ! शत्रु पर भी दया करनेवाले हैं ये ! इनको दया आ गयी और समझौता करके छुट्टी पायी ! अब फिर कभी निजाम सिर नहीं उठायेगा !"

"तो फिर लड़ाई समाप्त हो गयी ?"

"लड़ाई कैसे समाप्त हो जायेगी ?" सुनते हैं कि कर्नाटक की ओर जा रहे हैं। एक-दो दिन में खलीता आ जायेगा। परन्तु माधव को ऐसा नहीं करना था !"

रमाबाई चुप हो बैठी हुई थी।

"मिरज तुम्हारे पिताजी के अधिकार में था। वह माधव ने उनसे लेकर पटवर्धन को दे दिया। अरे, ससुर से लड़ाई करके क्या ऐसी बातें करते हैं ? छि ! छोऽ ! तुमको भी पता चल गया होगा ?"

रमाबाई ने नकारसूचक सिर हिलाया। वे बोलीं, "मैं राजनीति बिलकुल नहीं जानती हूँ। पिताजी कुशलपूर्वक हैं, इतना ही मैं जानती हूँ। इन्होंने क्या किया है, इसका विचार करना मुझको शोभा नहीं देता !"

"यही सच है ! रमा, यही सच है !" कहते हुए आनन्दीबाई ने सिर ऊपर

उठाया। द्वार में गोपिकाबाई की दासी विठी को खड़ी हुई देखते ही वे चौंक पड़ीं। उन्होंने पूछा, "अरे विठी! कब आयी?"

"अभी अभी!"

"जेठानीजी आ गयीं?"

"जी! यही सूचना देने आयी थी।"

जल्दी-जल्दी उठती हुई आनन्दीबाई बोलीं, "रमा! चलती हूँ मैं। तबीयत का ध्यान रखना!"

रमाबाई ने पुनः झुककर उनको त्रिवार नमस्कार किया। आनन्दीबाई महल से बाहर निकलीं। रमाबाई ने जब दृष्टि ऊपर उठायी तब उनकी आँखों में जल भर आया था। विठी की ओर क्षण-भर देखकर वे बोलीं, "माताजी से कहना कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है, मैं थोड़ी देर बाद आऊँगी।"

"जी!" कहकर विठी चली गयी। रमाबाई उठीं और अन्दर आयी हुई मैना से बोलीं, "किसी को भी अन्दर मत आने दो!" और यह कहकर वे दौड़ती हुई उस पलंग की ओर गयीं तथा पलंग पर एकदम गिर पड़ीं—अधोमुखी लेटकर वे रो रही थीं।

जब उनके सिर पर हाथ रखा गया, तब मैना समझकर हाथ झटके से अलग करती हुई वे बोलीं, "मुझको परेशान मत कर!"

"लड़की!"

इस पुकार को सुनते ही रमाबाई ने चौंककर ऊपर देखा। गुलाबी रंग की शाल ओढ़े हुए गोपिकाबाई पलंग के पास खड़ी थीं। रमाबाई के नेत्र लाल हो गये थे। जल्दी-जल्दी अंचल सँवार कर वे उठने का प्रयत्न कर ही रही थीं कि गोपिकाबाई आगे आयीं और बलपूर्वक सुलाती हुई वे बोलीं, "रमा! लेटो तुम!"

उस स्पर्श से रमाबाई सिसक उठीं और दूसरे ही क्षण गोपिकाबाई के फैले हुए हाथों में वे समा गयीं। रमाबाई सिसक-सिसककर रो रही थीं। गोपिकाबाई उनको थपथपा रही थीं। जब सिसकियाँ थमीं तब गोपिकाबाई बोलीं,

"आज तुम पेशवा की पत्नी के रूप में सुशोभित हुई हो। विठी ने मुझसे सब कुछ कह दिया है। रमा, मैं माधव को अच्छी तरह जानती हूँ। उसके हाथ से अनुचित कुछ भी नहीं होगा। उसको विवश होकर ही ऐसा करना पड़ा होगा। राज्यकर्ताओं को इच्छाएँ नहीं होतीं हैं, केवल कर्तव्य होते हैं। मुझपर विश्वास रखो! अब तुम सोओ। तबीयत कुछ हलकी हो जाये तब आना। फिर हम दोनों जनी मिलकर भोजन के लिए बैठेंगी।"

और रमाबाई को सुलाकर गोपिकाबाई महल से बाहर निकलीं।

स्वामी

मैना दौड़ रही थी। बरामदे पार करते समय मिलनेवाले सेवक, काम करनेवाली स्त्रियाँ आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देख रही थीं। वह सीधी रमाबाई के महल में घुसी। रामजी काका महल में खड़ा था। रमाबाई पलंग पर बैठी हुई थीं। जैसे ही मैना अन्दर प्रविष्ट हुई, वैसे ही रमाबाई ने उसकी ओर देखा। मैना की साँस फूल रही थी। रमाबाई ने पूछा,

"क्यों री मैना ? दौड़ती क्यों आयी है ?"

"दादा साहब महाराज आ गये हैं !" यह कहते हुए उसका चेहरा आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा था।

"मैना ! अच्छी तरह पता लगाये बिना बात मत कहा करो !" रामजी ने डाँटा। उस कथन से मैना का आनन्द फुर्र से उड़ गया। वह रामजी काका की ओर देखने लगी। पगड़ी में से गाल तक लटकते हुए सफेद बालों को खुजलाता हुआ रामजी काका खड़ा था। उसकी सफेद गलमुच्छें थरथरा रही थीं। चेहरे पर झुर्रियों के जाल में मस्तक की सिकुड़नों की वृद्धि और हो गयी थी। मैना ने रमाबाई की ओर देखा। रमाबाई उँगली से सफेद पलंगपोश पर रेखाएँ खींचती हुई खड़ी थीं। मैना उलझन में पड़ गयी। राघोबा दादा लड़ाई से लौट आये हैं, यह पता लगते ही वह दौड़कर चली आयी थी। वह वार्ता रमाबाई को सुनाने के लिए उसको एक-एक पल भारी लगने लगा था। उसने पूछा,

"क्या हुआ, काका ?"

"कुछ नहीं, छोरी ! दादा साहब आ गये, परन्तु राव साहब अभी नहीं आये हैं। वे वहीं से कर्नाटक पर आक्रमण करने चले गये हैं। वे भी थोड़े ही दिनों में आ जायेंगे !"

यह सुनते ही मैना हक्की-बक्की रह गयी। रामजी काका बोला, "क्यों री मैना, अब चुप क्यों हो गयी ?"

मैना कुछ नहीं बोली। रमाबाई ने जैसे ही दृष्टि ऊपर की, रामजी काका बोला, "इस मैना को इसलिए बुरा नहीं लगा है कि रावसाहब नहीं आये हैं !"

"तो फिर ?" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

मैना लज्जा से लाल हो गयी। वह बोली, "अब क्या कहना चाहता है [illegible] ? क्यों चुप हो गयी मैं ?"

"बताऊँ ?"

"बता ! बता !"

रामजी के झुर्रियोंवाले चेहरे पर शरारत-भरी हँसी प्रकट हुई। वह बोला,

"दीदी साहिबा, यह मैना इसलिए चुप हो गयी है कि चोरपती नहीं आया है !"

मैना रमाबाई के पास दौड़कर गयी। वह बोली, "नहीं बाई साहब ! यह बुड्ढा झूठ बोल रहा है !"

रमाबाई हँस रही थीं। उनके हँसने से मैना और अधिक चक्कर में पड़ गयी। रामजी काका ने हँसते हुए जोड़ा,

"क्या बताऊँ दीदी साहिबा ! बुड्ढा हो गया। नजर कम हो गयी है तो बिलकुल अन्धा हो गया हूँ ! श्रीमान् जब मुग़लों से लड़ने गये तब रात को फ़व्वारे के पास हिचकी भर-भरकर रो रही थी। तभी ताड़ गया था मैं !"

"अब चुप होता है कि नहीं..." कहती हुई मैना उठी।

"मैना !" रमाबाई ने पुकारा। मैना झटपट मुड़ी। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे। वह बोली, "आप ही देखिये बाईसाहबऽऽ।"

"रामजी, चुप रह रे ! बेकार मत चिढ़ा उसे। मैना, तू सीधी माताजी के पास जा और वे क्या कर रही हैं, यह देख आ !"

रामजी की ओर क्रोध से देखती हुई मैना महल से बाहर निकली।

मैना जब गोपिकाबाई के महल के पास पहुँची उस समय महल में बहुत-से लोग थे। द्वार पर खड़ी हुई विठी ने मैना को इशारा किया। मैना विठी के पास पहुँची। उसने झाँककर देखा।

गोपिकाबाई ग़लीचे पर बैठी हुई थीं। राघोबा दादा पास ही खड़े थे। उनके सिर पर पगड़ी थी। मोतियों का शिरपेच और लड़ियाँ पगड़ी की शोभा बढ़ा रही थीं। वे गले में हार, देह पर कुरता और पैरों में पायजामा पहने हुए थे। कमर में लिपटे हुए दुशाले में पल्लेदार तलवार खोंसी हुई थी। हरे रंग की मखमली जरी कलाबत्तू की म्यान की मूठ पर बायाँ हाथ रखे राघोबा दादा खड़े थे। कुछ स्थूल शरीरवाले, मध्यम ऊँचाई के राघोबा लापरवाही से गोपिकाबाई के सामने खड़े थे। आज तक किसी ने राघोबा को गोपिकाबाई के सामने इतनी धृष्टता से खड़ा नहीं देखा था। परन्तु गोपिकाबाई शान्त थीं। उन्होंने पूछा,

"कुल मिलाकर आप अकेले ही आगे आये हैं तो !"

"जी हाँ !" शब्दों पर जोर देते हुए राघोबा बोले, "माधवराव को अब हमारी जरूरत नहीं रही है। वे सर्वाधिकारी हैं ! हम क्यों उनके लिए रोड़ा बनें, इसलिए हम पहले आ गये !"

"माधव को अकेला छोड़कर ?"

"अकेले क्यों ? उनके विश्वासपात्र त्र्यम्बकराव मामा, गोपालराव पटवर्धन आदि तो हैं न ! आप इसकी बिलकुल भी चिन्ता न करें !"

"ऐसी बात क्यों कहते हैं ? माधव की अवस्था छोटी है !"

"छोटी ! भाभी साहिबा, आपको ऐसा लगता है ! वे जितने छोटे लगते हैं, उतने छोटे नहीं रहे हैं। साक्षात् श्वसुर से लड़ाई करके, मिरज अधिकार में लेकर उसको पटवर्धन को सौंपनेवाले क्या छोटे हैं ? आप्तस्वजनों की अपेक्षा उनको पराये लोग अपने लगने लगे। हम-जैसे लोगों को सम्मान के साथ रहना कठिन लगने लगा, इसीलिए हम पीछे लौट आये। आप के पास नित्य खलीते आते ही हैं, फिर हमसे और अधिक पूछताछ करने में क्या रखा है ? 'मैं रोने का बहाना करता हूँ, तू मारने का बहाना कर' यह देखकर हम ऊब गये हैं अब !"

"देवरजी, किससे कह रहे हैं आप ? किसने पढ़ाया है यह मन्त्र आपको ?"

यह आवाज कान में पड़ते ही राघोबा सावधान हुए। उन्होंने चौंककर सिर उठाकर देखा। गोपिकाबाई का चेहरा सन्ताप से लाल हो गया था, आँखें अंगारों-सी जल रही थीं। राघोबा झटपट बोले,

"नहीं भाभी साहिबा ! ईश्वर की शपथ, मेरा मतलब आपसे..."

"देवरजी, दोषारोपण करते समय विचार कर लेना चाहिए। मैं विधवा औरत ठहरी, माधव छोटा है, घर के कर्ता-धर्ता पुरुष आप हैं, आप ही जब इस तरह का व्यवहार करेंगे तो घरबार की क्या दशा होगी ? आप जैसा कहते हैं, वैसे ही माधव चलता है। निजाम के साथ समझौते की बात आपने की, यह माधव नहीं चाहता था। आपकी इच्छा मालूम होते ही मैंने उसको यह बात लिख दी। जिसने छ:र पर बनी देव-प्रतिमा तोड़ी, उसके साथ अकारण समझौता किया !"

"यही तो बात है, भाभी साहिबा ! यही तो बात है ! हम करते हैं एक भावना से और उसका उलटा अर्थ लगाया जाता है दूसरी भावना से। जब से निजाम से समझौता किया है, तब से हम अपने ही घर में उपहासास्पद बन गये हैं। निजाम को क्या इतना सरल समझ लिया है ? समझौता न करके यदि लड़ाई होती और उसमें कुछ विपरीत हो जाता, अपयश प्राप्त होता, तब आपने क्या कहा होता ? क्या मुँह लेकर हम आपके पास आते ? यदि हमारा राज्य होता तो प्राण-पण से हम लड़ते। आपने माधव का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर डाला। उसको सँभालें नहीं तो क्या करें ? ऐसी दशा में हम-जैसे लोगों को जो कुण्ठा सहनी पड़ती है, उसको आप नहीं समझ पायेंगी !"

राघोबा के इस भाषण से गोपिकाबाई कुछ शान्त हुईं। वे बोलीं, "लोग क्या कहते हैं, यह मैंने आपको बताया। मैं या माधव—हम आपको ऐसा नहीं कहते हैं। राज्य की ऐसी कठिन परिस्थिति में यदि आप माधव को इस प्रकार

छोड़ देंगे, तो फिर वह किसकी तरफ़ देखे ?"

"भाभी साहिबा ! मैंने माधव को छोड़ा नहीं है। मुझको वह पुत्र से भी अधिक प्रिय है। यदि ऐसा न होता तो मैंने अपने स्थान पर पेशवाई के वस्त्र माधव को न दिलवाये होते ! स्वयं ताराबाई ने भी टालमटोल की थी। उस समय मैंने उनसे कहा था—माधव छोटा है तो क्या, फिर भी मेरा है। राज्य के भार का उत्तरदायी मैं हूं, यह आपको भी मालूम है न ?"

"वही कहती हूं मैं !" गोपिकाबाई बोलीं, "माधव आपका है, मैं अपना नहीं कहती हूं। उसको छोड़ने की भाषा क्यों ?"

"मैंने कहा न, मैंने उसको छोड़ा नहीं है, उसी को जरूरत नहीं है तो फिर मैं रुकावट क्यों बनूं ? ये चढ़ाइयां, यह उत्तरदायित्व वहन करना अब कठिन है। रावसाहब में नया खून है, नया दम है। सब कुछ उनको सौंपकर शेष जीवन बिताने के लिए गंगा-किनारे जाकर रहने की इच्छा है !"

"दादा साहब ! त्याग की ये बातें आपको शोभा नहीं देती हैं। आप जायेंगे तो फिर मेरा ही यहां क्या काम है ? यदि ऐसा ही होना है तो मैं भी आपके साथ गंगा-किनारे चलूंगी। परन्तु माधव के आने तक आप रुकिए। जो कुछ करना होगा, हम सब लोग मिलकर निश्चय कर लेंगे। तभी आप भी जो उचित समझें वह निर्णय कर लें। मैं आज माधव को खलीता भेज रही हूं !"

"जैसी आपकी आज्ञा !" राघोबा बोले, "अब हमें आज्ञा मिले। हम सीधे आपके पास आये हैं। अभी हमें स्नान करना है। साथ में और लोग भी हैं।"

"ठीक है ! जायें आप !"

राघोबा दादा मुजरा कर महल से बाहर निकले। मैना अन्दर आयी। उसको देखते ही गोपिकाबाई बोलीं,

"कौन ! मैना ? क्यों आयी है ?"

"आप अकेली हैं क्या—यह देख आने के लिए बाई साहब ने भेजा है।"

"भेज दे लड़की को।" और लम्बी सांस छोड़कर वे बोलीं, "अब इस लड़की से क्या कहूं ?"

वैशाख की प्रचण्ड धूप में सारा वातावरण तप्त हो रहा था। दोपहर का समय था। शनिवार-भवन की भीड़भाड़ और कोलाहल शान्त हो गये थे। केवल पाकशाला की ओर जगार हो रही थी। चारों द्वारों पर सशस्त्र सैनिक धूप की प्रचण्डता में तमतमाते सामने के रास्तों को देख रहे थे। राघोबा दादा अपने महल में गर्मी से बेचैन होकर पलंग पर पड़े हुए थे। चारों ओर खिड़कियों पर

स्वामी

लगाये हुए खसखस के परदों से महल में पर्याप्त प्रकाश नहीं हो रहा था। यमुना और केसरी—राघोबा की ये दोनों खास दासियाँ उनके पैर दबा रही थीं। स्वरूपा पंखा से हवा कर रही थी। दादा को नींद नहीं आ रही थी। उनके मुख में पान था। एकदम झुककर उन्होंने पीकदान को हाथ लगाया। जल्दी से स्वरूपा ने पीकदान उठाया। राघोबा पीक डालकर बोले,

"स्वरूपा, आज धामा कहीं दिखाई नहीं दी ?"

स्वरूपा सचमुच ही नाम के अनुरूप कसी हुई देह यष्टि की पर्याप्त लम्बी थी। राघोबा की उसपर कृपा रहती थी। वह बोली,

"धामा बाई साहब की सेवा में तैनात है।"

"उसको वहाँ तैनात होने के लिए किसने भेजा ?"

"आप लड़ाई में गये थे इसलिए मैंने ही धामा को बाई साहब के यहाँ भेज दिया।"

"बड़ी अक़लमन्द है! उसको इधर बुलाओ।"

"जी! आज कह दूँगी बाई साहब से!" स्वरूपा के चेहरे पर हँसी थी। जल्दी-जल्दी उठते हुए राघोबा बोले,

"बड़ी अक़लमन्द दिखाई दे रही है! आज ही नहीं, परन्तु दो दिन बाद पता चले बिना वह यहाँ आ जाये, ऐसा करना!"

"जाइए! जो पास हैं, उनको कोई क़ीमत नहीं सरकार की निगाह में! जो दूर है उसी को पास लेना चाहते हैं।"

राघोबा प्रसन्न होकर हँसे। स्वरूपा के हाथ से मयूरपंख छीनकर लेते हुए वे पैर दबानेवाली यमुना-केसरी से बोले, "तुम जाओ अब, मैं अब ज़रा सोऊँगा।"

"जी!" कहकर दोनों उठीं। स्वरूपा भी मुड़ी। राघोबा बोले, "तू रुक जा!"

स्वरूपा राघोबा की ओर देख रही थी। महल के बाहर गयी हुई यमुना लौटकर आयी। उसको देखते ही राघोबा बोले, "क्यों री ?"

"बापू आये हैं।"

"इनको भी यहाँ आने के लिए अभी ही मुहूर्त मिला था!" कहते हुए राघोबा उठे। पलंग पर बैठते हुए वे यमुना से बोले, "यमुना, उनको अन्दर भेज दे। स्वरूपा, तू जा और शरबत के प्याले भेज देने को कह देना!"

दोनों जाने लगीं। राघोबा ने पुकारा, "स्वरूपा!"

"जी!"

"जाते-जाते उस आख़िरी खिड़की के परदे को ऊपर करती जाओ!"

परदा ऊपर करते ही प्रकाश एकदम अन्दर आया। दादा ने आँखें बन्द कर

[लीं। जब खोलीं तब द्वार पर सखाराम बापू उपस्थित थे।

"आओ बापू! आज भरी दोपहरी में ही चले आये?"

सखाराम बापू अधिक कुछ न कहकर ग़लीचे पर बैठ गये। द्वार पर पैरों की आहट सुनकर राघोबा ने सिर उठाया। द्वार में गंगोबा तात्या खड़े थे। गंगोबा तात्या को देखते ही राघोबा बोले, "वाह! वाह! गंगोबा तात्या, आइए आइए, भीतर आइए! आप भी आये हैं, यह बात बापू ने हमें नहीं बतायी!"

गंगोबा तात्या आकर, मुजरा करके, बापू के पास बैठ गये। होलकरों के जो विश्वस्त व्यक्ति दादा की ओर थे, उनमें ही एक गंगोबा भी थे।

"क्यों बापू? क्या कहते हैं तात्या?"

"तात्या क्या कहेंगे? श्रीमन्त, आपके निर्देशानुसार मल्हारराव होलकर वाफगाँव का अड्डा छोड़कर आगे डेरा डाले पड़े हैं।"

"अच्छा!" राघोबा बोले, "तो फिर तात्या, हमारी बात उनके कानों में डाल दो ना? क्या विचार है मल्हार बाबा का?"

"वे क्या कहेंगे? किसी की भी बुद्धि काम नहीं कर रही है। आपके साथ ही रावसाहब का यह व्यवहार? तो फिर हम ही कैसे विश्वास कर लें?"

"यह कहा मल्हार बाबा ने?"

"नहीं! उन्होंने नहीं कहा, मैंने ही कही यह बात!"

"ठीक है। जो कुछ हो रहा है उसका सामना करना चाहिए!"

"यही हम कहते हैं!" गंगोबा बोले।

"पूजनीया माँ साहिबा के दो-तीन पत्र अब तक रावसाहब को रवाना हो गये हैं।"

"तात्या! आप कुछ मत कहिए! गरदन पर छुरी फिरने का समय आ जायेगा तब भी हमारे दादा साहब को विश्वास नहीं होगा। पिछले एक महीने से मैं दादा साहब को सावधान कर रहा हूँ, परन्तु दादा साहब का यही हाल है!"

"फिर करें भी तो क्या?" दादा तोंद पर हाथ फिराते हुए बोले।

"हम क्या बतायें?" बापू बोले, "हम आपके सेवक हैं। जो आज्ञा होगी, उसका पालन करना ही हमारे हाथ में है। अब रावसाहब भी लड़ाई से लौटने ही वाले हैं, उससे पहले ही पक्का निर्णय हो जाना चाहिए!"

"कैसा निर्णय?" राघोबा ने पूछा। शब्दों में तीखापन था। बापू ने गंगोबा की ओर देखा। गंगोबा बोले, "दादा साहब, ये जो कह रहे हैं, सही है। समय कठिन है। ईश्वर की कृपा से सब ठीक हो जाये, हमें आनन्द है। परन्तु यदि उलटा हो गया तो?"

"हो जाने दो ! अधिक से अधिक क्या होगा ? हमें घर बैठने की आज्ञा मिल जायेगी—यही न ? बैठ जायेंगे हम । माधव यदि समर्थ बनता है तो हमें प्रसन्नता होगी !"

"सुनो ! तात्या सुनो ! और आप कहते हैं, मैं दादा साहब से कहूँ !" बापू बोले ।

गंगोबा जंघा पर थाप मारते हुए बोले, "दादा साहब ! आप-जैसे उदारमन के बहुत थोड़े लोग होते हैं ! इतना सीधापन राजनीति में नहीं चलता है । यदि यह केवल घर का मामला होता, तो हमने कुछ न कहा होता । परन्तु रावसाहब ने नानारफरजी को किले से नीचे उतारकर मुखत्यारी दे दी है । ताराबाई के बाद जिजाबाई के साथ सहयोग की बातें शुरू हो रही हैं । इसके परिणाम सारे राज्य को एक दिन भोगने पड़ेंगे । उनका तरुण रक्त है । गोपालराव को ओर उनकी छेड़छाड़ लड़कपन में गिन ली जायेगी, किन्तु उसका अपयश आपके मत्थे मढ़ दिया जायेगा । उसके उत्तरदायी आप रहेंगे, इस बात को दादा साहब ध्यान में रखें !"

"तात्या ! इस ओर मेरा ध्यान नहीं है, यह समझते हैं क्या आप ? मैं क्या चुप बैठा हुआ हूँ ? मैंने भाभी साहिबा को वचन दिया है । माधव के आने की राह देख रहा हूँ ।"

"अनुमान है कि रावसाहब सम्भवतः मृगनक्षत्र के प्रारम्भ में आ पहुँचेंगे !" बापू बोले ।

"ठीक है । जब आयेंगे तभी सब बातों का निपटारा कर लेंगे । गंगोबा, हम भी जितने अकेले समझे जाते हैं, उतने अलग थलग अभी नहीं हैं ।"

"छि-छि ! यह कौन कहता है ! आप बाहर निकलेंगे तो सारी मराठेशाही आपकी सहायता के लिए खड़ी हो जायेगी । आपके पराक्रम से कौन परिचित नहीं है ? नाना साहब आपसे कभी कुछ न कह सके । आपका वह दबदबा क्या हम जानते नहीं हैं ?

उस वाक्य से राघोबा एकदम प्रसन्न हो गये । वे दिल खोलकर हँस पड़े । उस हँसी में बापू, तात्या शामिल हो गये और उसी समय सेवक शरबत का थाल लेकर अन्दर आया । बापू और गंगोबा को उठते देखकर दादा बोले, "रुको तात्या ! शरबत पीकर जाना ।"

शरबत पीते-पीते दादा बोले, "तात्या, आज सायंकाल हम पर्वती पर जायेंगे । आपको भी चलना चाहिए ।"

"जो आज्ञा !" शरबत का चषक थाल में रखकर अँगोछे से मुँह पोंछते हुए गंगोबा बोले, "श्रीमन्त, बहुत दिनों बाद ऐसा लगा कि पेशवाओं के महल में

आये हैं !"

"क्या मतलब ?"

"अब तो सादा शरबत मिलना भी इस भवन में दुर्लभ हो गया है ! श्रीमन्त नाना साहेब के समय कैसा ठाट था ! वे भोजनावलियाँ—एक-एक बार में हज़ार-हज़ार पत्तलें उठती थीं इस भवन में ! तीज-त्योहार पर गाने की, नृत्य की महफ़िल होती थी। फूलों की गन्ध महकती थी। अजी, गये वे दिन ! वे अब लौटनेवाले नहीं हैं !"

"लौटेंगे, वे दिन भी लौटेंगे।" बापू बोले।

राघोबा दादा अपनी मूँछों पर ताव देते हुए प्रसन्न होकर यह कथन सुन रहे थे।

रमाबाई ने हरी साड़ी पहन रखी थी। उनके कुछ लम्बे चेहरे पर आनन्द दिखाई पड़ रहा था। मस्तक पर लगी हुई कुंकुम की चन्द्रबिन्दी रमाबाई के सात्त्विक चेहरे पर बड़ी सुन्दर लग रही थी। रमाबाई माधवराव के महल में आयीं। सारे महल का बिछावन इकट्ठा करके रख दिया था। लिपी-पुती आसन-बिछावन रहित जमीन के कारण महल उजड़ा हुआ वीरान लग रहा था। इतने में ही रामजी काका धूपदानी ले आया। धूपदानी से धूप का धुआँ सुगन्ध फैलाता बाहर निकल रहा था।

"रामजी काका ! गोपाल, विष्णु सारे कहाँ गये ? अभी बिछावन तक नहीं, कुछ नहीं हुआ। सन्ध्या हो रही है। अकस्मात् ये आ गये तो ?"

"दीदी साहिबा, सारी तैयारी हो गयी है। मैं ही विस्नु और गोपाल को शमादान, अरगनी पोंछने को लगाकर इस ओर आया हूँ। आप जाइए और थोड़ी देर बाद चक्कर लगाइए। फिर देखना मैं कैसे करता हूँ !"

रमाबाई लौट गयीं। उनको चैन नहीं था। बेचैनी का कारण उनकी समझ में नहीं आ रहा था। वे दौड़ती हुई सीधी गोपिकाबाई के चौक में गयीं। फ़व्वारा जलकण बिखेर रहा था। उसके पास जाकर पानी में झाँककर देखा। फ़व्वारे के पानी में छोटी-छोटी मछलियाँ धीरे-धीरे तैर रही थीं। फ़व्वारे की फुहारों को अपनी देह पर झेल रही थीं। रमाबाई को देखते ही वे मछलियाँ झट से पानी में डुबकी लगा गयीं। रमाबाई यह देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

"लड़की !"

रमाबाई ने झटपट ऊपर देखा। महल की खिड़की में गोपिकाबाई खड़ी थीं। रमाबाई ने फ़व्वारे में भीगा हुआ हाथ झटपट पीछे छिपाया और जल्दी-

स्वामी

जल्दी से गोपिकाबाई के पास गयीं। महल के बाहर विठी खड़ी थी। रमाबाई जल्दी से आगे बढ़ीं और विठी के आँचल से हाथ पोंछकर महल में पहुँचीं।

"बेटी, सारी तैयारी हो गयी?"

"जी हाँ।"

"आज कितना अच्छा लग रहा है, नहीं? मालिक के बिना घर की शोभा नहीं है, यही सच है। तू अभी छोटी है। बाद में समझेगी तू। आ बैठ!"

गोपिकाबाई के पास जाकर रमाबाई बैठ गयीं। गोपिकाबाई अपनी ही धुन में थीं। "तू अभी नादान है। तुझे अभी बहुत-सी बातें समझ लेनी हैं। लड़ाई से स्वामी के लौटने का क्या सुख है, यह तुझे आगे चलकर पता चलेगा। हम स्त्रियों का जन्म ही विचित्र है। ये अपने दुःख किससे कहें? जब पति लड़ाई पर होते हैं तब एक-एक दिन बैरी के समान लगता है। अनेक अशुभ आशंकाओं से कौर निगला नहीं जाता। कुंकुम की चाँदी की डिबिया में हाथ घण्टों दबा रहता है। इतना सहन करने पर जब वे लौटते हैं तब मन के बाँध टूट जाते हैं। दिल्ली-दरवाजे से प्रवेश करनेवाली मूर्ति जब तक आँखों को दिखाई नहीं देती साँस स्थिर नहीं होती। यह अनुभव अभी तुझको करना है। जब तू बड़ी होगी, तब मैंने जो कुछ कहा है, वह तुझे याद आयेगा। उसकी प्रतीति होगी!"

गोपिकाबाई अपनी ही धुन में कहते-कहते अचानक रुक गयीं। कदाचित् इतनी छोटी लड़की से बातें करना उनको उचित न लगा। दासी ने समइयाँ लाकर जला दीं। गोपिकाबाई ने हाथ जोड़े और वे बोलीं, "अँधेरा कब घिर आया इसका पता भी नहीं चला!"

रमाबाई उठीं। उन्होंने झुककर गोपिकाबाई को त्रिवार नमस्कार किया। गोपिकाबाई आशीर्वाद देकर बोलीं, "जा, बेटी! जाकर देख, सब हो गया क्या?"

रमाबाई झटपट मुड़ीं। पीछे से आवाज आयी, "चाहो तो विठी को ले जाओ। अँधेरा छा रहा है!"

द्वार के बाहर मैना खड़ी थी। विठी को भी रमाबाई ने संकेत किया और तीनों माधवराव के महल की ओर जाने लगीं।

माधवराव के महल में धूपबत्ती की गन्ध फैल रही थी। समइयाँ जल रही थीं। हलके नीले रंग का मखमली मोटा गलीचा बिछा हुआ था। मंच पर चमकती हुई पीतल की शमादानियाँ तथा अगरदानियाँ रखी हुई थीं। शीशम के भव्य पलंग पर शुभ्र रेशमी आच्छादन बिछाया गया था। मसनदों से बैठक सजी हुई थी। मसनदों पर कलाबत्तू का काम हो रहा था। यह देखकर रमाबाई

प्रसन्न हो गयीं। उसी समय पीछे से आवाज़ आयी, "ठीक हो गया न ?" रमाबाई ने पीछे देखा। रामजी काका पीछे खड़ा था। रामजी अन्दर आया। मैना भी खड़ी-खड़ी सारा महल देख रही थी। मैना से वह बोला, "क्यों री मैना ? कोई कमी रह गयी है क्या ?"

"वाह ! काका, तुम्हारे बाल काले के सफ़ेद हो गये इस महल में। भला कमी क्या रहेगी ?"

"यह कैसे हो सकता है ? मैं ठहरा बुड्ढा आदमी। सीरपती की तरह मेरे हाथ कैसे कर सकते हैं ?"

"जाओ काका ! तुम भी बेकार की बात...." मैना झुंझलाकर बोली। रमाबाई और विठी मुक्तमन से हँस पड़ीं। उनकी हँसी से महल गूंज गया।

रात्रि-भोजन समाप्त हो गया, तब भी माधवराव नहीं आये। रमाबाई की पलकें भारी होती देखकर गोपिकाबाई बोलीं,

"बेटी, अब जाकर सो !"

रमाबाई सोने चली गयीं। पलंग पर लेटते ही उनकी आँख लग गयी।

प्रातःकाल जब वे जगीं उस समय भवन में नीरव शान्ति व्याप्त थी; उन्होंने पुकारा, "मैना !"

मैना दौड़ती हुई आयी, "क्या है दीदी साहिबा ?"

अलसायी हुई रमाबाई जँभाई लेती हुई बोलीं, "मैंने स्वप्न देखा !"

"सच ?"

"सच मैना, ये आये हैं, यह मैंने स्वप्न में देखा और मैं जग गयी।"

"सुनते हैं कि प्रातःकाल का सपना सच होता है, दीदी साहिबा !"

"तू भी बेकार की बात करती है !"

"नहीं दीदी साहिबा, बिलकुल सच है यह !" मैना हँसी रोकती हुई बोली, "अब आपने सपना देखा और सरकार रात ही महल में आ गये !"

एकदम उठकर बैठती हुई रमाबाई ने पूछा,

"सच !"

"जी ! सुबह ही सुबह झूठ किस लिए बोलूँ ?"

"मर कम्बख्त ! रात को जगाने में क्या बिजली गिर पड़ी थी तुझपर ?"

"सरकार ने कहा—सोने दो !"

"जान गयी तेरी बुद्धि ! चल, जल्दी स्नान की तैयारी कर। माताजी उठ गयीं ?"

"बहुत देर की !"

रमाबाई झटपट खड़ी हो गयीं।

स्नानादि से निवृत्त होकर जब रमाबाई महल में आयीं तब पौ फटने लगी थी। रमाबाई मैना से बोलीं,

"मैना, जाकर देख आ न कि वे क्या कर रहे हैं !"

"कौन, माँ साहिबा ?"

"अरी नहीं !"

"तो फिर ?"

"अब जाती है किऽऽ"

हँसती हुई मैना चली गयी। माधवराव के महल में शान्ति थी। द्वार पर श्रीपति खड़ा था। उसको देखते ही मैना रुक गयी। आँचल ठीक कर आगे बढ़ते ही श्रीपति ने उँगली मुँह पर रखी और धीरे से बुदबुदाया, "सरकार सो रहे हैं !"

"अभी तक ?"

"हाँ !"

"क्यों ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

"हाँ ! बुखार आता है। रात को आते ही माँ साहिबा से मिले और फिर सो गये !"

"फिर औषध ?"

"कैसी औषध ? पिछले आठ दिनों से इसी तरह सहन करते चले आ रहे हैं, इतना बड़ा राजा, लेकिन उसकी चिन्ता किसी को नहीं !"

"जाती हूँ मैं ! बाई साहिबा राह देख रही होंगी।"

"अरी रुक, चली जाना।"

"अच्छा ! अच्छा ! इतना प्यार था तो रात से अब तक बोला क्यों नहीं ?"

"कैसे बोलता ? उस समय कैसी भगदड़ मची हुई थी !"

"जाती हूँ मैं। बाई साहिबा गुस्सा होंगी !"

"अच्छा, जा तो। परन्तु किसी से कहना मत कि सरकार को बुखार आता है ! मुझको आदेश है कि किसी से कहना मत !"

"बड़ा सयाना है !" कहकर मैना मुड़ी।

रमाबाई राह देख ही रही थीं। उन्होंने पूछा, "क्यों री ?"

"सो रहे हैं सरकार !"

"तूने फिर मज़ाक़ शुरू कर दी !"

"नहीं दीदी साहिबा, बिलकुल सच। आपकी शपथ। अभय दीजिए !"

"दिया।"

रमाबाई विचारमग्न हो गयी थीं। वे बोलीं, "रात को कितना ही जगना

पड़े, फिर भी ये जल्दी उठ जाते हैं। फिर आज देर क्यों ?"

"सुनते हैं तबीयत ठीक नहीं है।"

"कौन कहता है ?" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

"वे कह रहे थे !"

"अरी वे कौन ?" रमाबाई ने पूछा; परन्तु मैना कुछ नहीं बोली।

"अब सब बातें बताती है कि नहीं ?" रमाबाई ने चिढ़कर पूछा।

"सीरपती कह रहा था !" मैना ने लजाते हुए मुँह खोला।

"शादी हुई नहीं है तब तो यह हाल है ! कल को शादी हो जाने पर तो तेरे मुँह पर ताला ही लग जायेगा ! क्या कह रहा था श्रीपति ?"

"कह रहा था कि आठ दिन से सरकार को रोज बुखार आ रहा है।"

"फिर औषध ?"

"कैसी औषध ? औषध-वौषध कुछ नहीं। इसीलिए सो रहे हैं; परन्तु बाई साहिबा, किसी से यह कहना मत !"

"क्यों री ?"

"कह रहे थे कि सरकार का आदेश है !"

"बड़ी सयानी है ! चल महल की ओर, मैं देखती हूँ क्या बात है !"

रमाबाई को आती हुई देखकर श्रीपति ने मुजरा किया और आदर के साथ एक ओर खड़ा हो गया। रमाबाई दरवाजे से भीतर गयीं। माधवराव पलंग पर उठकर बैठ गये थे। रमाबाई को देखकर वे बोले, "देवीजी के कैसे हालचाल हैं ?"

रमाबाई कुछ नहीं बोलीं। वह सीधी पलंग के पास जाकर खड़ी हो गयीं। उनका चेहरा फ़क़ पड़ रहा था। आँखों में पानी तैर रहा था। यह देखकर माधवराव स्तब्ध रह गये। वे बोले, "क्या हो गया ?"

रामाबाई व्याकुल स्वर में बोलीं, "सचमुच मुझे नींद आ गयी थी ! मुझको किसी ने जगाया नहीं !"

"बस इतनी-सी बात ! इसके लिए इतना मानसिक कष्ट ?" माधवराव हँसते हुए बोले।

"कम से कम आप ही मुझको जगाने के लिए कह देते।"

"किस लिए ? रात बहुत हो गयी थी, इसलिए मैंने ही कहा कि सोने दो।" यह कहते-कहते माधवराव खाँसने लगे।

रमाबाई बोलीं,

"आपकी तबीयत ठीक नहीं है न ?"

"कौन कहता है ?" माधवराव ने आश्चर्य से पूछा।

"कोई भी क्यों न कहे, परन्तु सच है न यह ?"

"नहीं जी ! घुड़दौड़ से थोड़ा-सा कष्ट हो गया है, बस ! श्रीपति !"

श्रीपति अन्दर आया ।

माधवराव बोले, "श्रीपति, मेरी स्नान-सन्ध्या की व्यवस्था हो गयी ?"

"जी !" रमाबाई की ओर देखता हुआ श्रीपति बोला ।

"आप स्नान करेंगे ?" रमाबाई ने पूछा । उस प्रश्न का उत्तर देने से पहले ही मैना अन्दर आयी और बोली, "दादा साहब महाराज...."

रमाबाई अंचल सँवारकर एक ओर हो गयी । माधवराव जल्दी-जल्दी पलंग से नीचे उतरे । राघोबा दादा अन्दर आये । माधवराव ने आगे बढ़कर प्रणाम किया ।

"रहने दे ! रहने दे !" कहते हुए राघोबा आगे आये और उन्होंने पूछा, "माधव, बुखार आता है तुम्हें ?"

माधवराव असमंजस में पड़ गये । उन्होंने रमाबाई की ओर देखा और कहा, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है ! हल्की हरारत-सी हो गयी थी, अब ठीक है । यात्रा में बार-बार पानी बदलने से शायद...."

"इतना ही न ? मैंने समझा कि तुम्हें बुखार आ गया है और तुम सो रहे हो । चिन्ता हो गयी और दौड़ता चला आया । अभी स्नान नहीं हुआ शायद ?"

"नहीं ।"

"तो स्नान-सन्ध्या कर लो । फिर बातें करेंगे हम ।" यह कहकर राघोबा दादा जैसे आये थे वैसे ही चले गये ।

रमाबाई हँस रही थी । माधवराव बोले, "क्यों हँस रही हैं ?"

"बुखार नहीं आता था न ?"

"दादा से किसने कहा यह ? श्रीपति !"

"जी, मैंने नहीं !" श्रीपति घबराकर बोला । मैना चुपचाप महल से बाहर चली गयी । दरवाजे की ओर जाते हुए माधवराव बोले, "इस भवन में अब कुछ भी कहने की सुविधा नहीं रही !"

माधवराव ने शरीर को जो कष्ट दिया था, वह उनसे सहन नहीं हुआ । ज्वर आने लगा । वैद्य की औषध शुरू हो गयी । इसी समय बाहर बरसती हुई वर्षा की झड़ी के साथ-साथ, शनिवार-भवन में राजनीति की झड़ी लग गयी । दादा के महल में सखाराम बापू, गंगोबा, विट्ठल शिवदेव, बाबूजी नाईक-जैसे लोग रात-दिन गुप्त मन्त्रणाएँ कर रहे थे, तो गोपिकाबाई के महल में नाना,

त्र्यम्बक राव, गोपालराव आदि लोगों का उठना-बैठना हो रहा था। सम्पूर्ण वातावरण सन्देहयुक्त होने के कारण शनिवार-भवन पर उदासीनता छायी हुई थी। दोनों पक्षों को मिलाने के लिए मल्हारबा होलकर पुणे में आये हुए थे। राघोबा के महल से गोपिकाबाई के महल की ओर उनके चक्कर लग रहे थे। माधवराव के कानों तक ये बातें पहुँच रही थीं। माधवराव के उठने-बैठने लायक़ होते ही घर की आग का धुआँ घुटने लगा।

सन्ध्या-समय माधवराव के पास मल्हारराव होलकर आये थे। नाना, त्र्यम्बकराव—ये लोग भी साथ थे। माधवराव ने देह पर शाल ओढ़ रखी थी। बीमारी के कारण चेहरा म्लान दिखाई दे रहा था। मल्हारबा बोले,

"राव साहब ! दादा साहब को समझाना सम्भव नहीं लगता। झगड़े के चिह्न मुझको दिखाई दे रहे हैं।"

"मल्हारबा ! मैं ऐसा नहीं समझता। काका आते हैं, हमारी तबीयत की पूछताछ स्नेह से करते हैं। वे अपने मन की बात मुझसे साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते हैं ? उनकी आज्ञा का उल्लंघन हमने कब किया है ?"

"माधव, तुम अभी छोटे हो। इस मामले को तुम जितना सरल समझ रहे हो, यह उतना सरल नहीं है। दादा साहब के विचार बदल गये हैं। अब न उन्हें क़िला चाहिए, न वेतन। वे पेशवा बनना चाहते हैं।" मल्हारराव बोले।

"मुझको ऐसा नहीं लगता मल्हारबा ! मेरे लिए तो जैसे काका हैं, वैसे ही आप हैं। काका-जैसा स्वच्छ मन का मनुष्य कठिनाई से मिलेगा। काका तो गंगाजल हैं।"

"मैं कब मना करता हूँ; परन्तु गंगाजल का खुद का रंग नहीं होता है। जो रंग उसमें मिलाया जाये वैसा ही उसका रंग हो जाता है और इस समय के रंग कुछ ठीक नहीं हैं !"

"परन्तु रावसाहब से आखिर ऐसी कौन-सी भूल हुई है जिसके कारण दादा साहब इतने उत्तेजित हो गये हैं ?" त्र्यम्बकराव मामा ने पूछा।

"हम यहीं रहे हैं। आज तक रावसाहब ने दादा साहब की बात को कभी टाला है—यह हमने नहीं देखा। मिरज के बाद बीच में ही दादा साहब आने के लिए चल दिये। आप नहीं थे सरकार, रावसाहब ने उनको मनाने की हद कर दी; परन्तु दादा साहब ने एक न सुनी !"

"यहीं तो गाड़ी अटकी ! श्रीमन्त ने मिरज पटवर्धनजी को दिया। कोल्हापुरकर के साथ समझौता किया। सातारकर को गद्दी पर बैठाया।—और यह सब था दादा की इच्छा के विपरीत ! और दादा साहब के लौट आने पर भी आप आगे बढ़ते ही गये !"

माधवराव सन्ताप को न रोक सके। वे बोले, "बाबा, आप बड़े हैं—अवस्था मे, अनुभव में। आपसे क्या छिपाना है? यहाँ क्या दशा हो रही है, मालूम है? हम आकण्ठ कर्ज में डूबे हुए हैं। पैसे के बिना यह खर्च कैसे चलेगा? फौज का सामझाम कैसे रखा जा सकेगा? इसके लिए कर्नाटक में जाना पड़ा। प्रदेश का इन्तजाम कर तथा कर वसूलकर हम घर आ गये। मराठों की गद्दी के मालिक कौन हैं? हम? कौन कहेगा इस बात को? आप कहेंगे? सातारकर छत्रपतिजी को कैद से छुड़ाना हमारा परम कर्तव्य था। उसका हमको खेद नहीं है। स्वामी के प्रति यदि हम ही निष्ठावान् नहीं रहेंगे तो हमारे प्रति कौन निष्ठावान् रहेगा? यदि हम छत्रपति से लड़ें तो आप करेंगे मदद?"

मल्हारबा की मूँछें फड़कने लगी। वह वृद्ध कातर स्वर में बोला, "अभी आपके मल्हारबा की तलवार इतनी बेईमान नहीं हुई है। आपको कोई दोष नहीं देता है! दादा साहब के सामने किसी की हिम्मत भले ही न होती हो पीछे तो सब आपकी तारीफ ही करते हैं!"

"इसके लिए हमने यह नहीं किया है।" माधवराव बोले, "हमारा कर्तव्य था यह तो। क्या बताऊँ मल्हारबा, लड़ाई के लिए हम लोग बाहर निकले और इतने में ही यह धुसुर-फुसुर शुरू हो गयी। काका मामा से शत्रुता मानने लगे। बापू ने राज-काज से अपने को अलग कर लिया और अन्त में मामा भी त्याग की बातें हमें सुनाने लगे। हम एकदम अकेले रह गये!"

"आपको गलतफहमी हो रही है, श्रीमन्त!" त्र्यम्बकराव मामा बोले, "दादा साहब मुझसे नाराज हैं, किसी के भी कहने से सही। श्रीमन्त अभी छोटी अवस्था के हैं। मेरे कारण यह कलह बढ़ रहा है, यह लांछन लग सकता था। राव-साहब के मन में बापू नाईकजी पर विश्वास नहीं है। उनके हाथों रावसाहब को सौंपकर मैं भी कैसे मुक्त हो सकता हूँ? सभी ओर से कुण्ठाओं ने आ घेरा। अन्त में, जो लांछन लगना हो वह लग जाये, यह निश्चय कर दादा साहब पीछे लौट आये; फिर भी हम रावसाहब को लेकर कर्नाटक में गये।"

"अच्छा किया आपने। इस सम्बन्ध में आपको कौन दोष देगा? परन्तु दादा साहब का क्रोध आपपर ही है!"

"उसको दूर करना तो आपके ही हाथ में है।" त्र्यम्बकराव बोले।

"सच है मल्हारबा!" माधवराव बोले, "आप बड़े हैं, मान्य हैं। आप जो कुछ कहेंगे, वह माना जायेगा। परन्तु यदि हम कुछ कहने जाते हैं तो वह छोटे मुँह बड़ी बात होगी!"

"सच कहूँ रावसाहब! मेरी बात का दादा साहब उलटा जवाब नहीं देते

हैं, यह सत्य है; परन्तु साथ ही वे हमारी सुनते हैं, यह बात भी नहीं है। उनको सलाह देनेवाले लोग वजनदार हैं। ये घर के मामले हैं। इनकी ओर ध्यान देना हम-जैसे लोगों के लिए उचित नहीं है। आपको और माँ साहिबा को आगे बढ़कर राज़ी-बाज़ी से इस मामले को सुलझा लेना चाहिए। बाहर के लोगों का हस्तक्षेप ठीक नहीं है। यदि वह होता है तो उसका दूसरा ही अर्थ लगाया जायेगा !"

त्र्यम्बकराव मामा बोले, "ऐसा होगा ही क्यों ? यदि मेरे कारण ही यह आग लगनेवाली हो तो उसका अन्तिम निपटारा भी मुझको ही करना चाहिए। मैं कल दादा साहब से मिलूँगा। देखूँ वे क्या कहते हैं।"

"यह ठीक है। परन्तु ज़रा सौम्यता से काम लेना !"

"यह क्या बताने की ज़रूरत है ? स्वामी से किस तरह व्यवहार करना चाहिए, यह भी हम लोग भूल गये हैं, यह समझते हैं क्या आप ?"

मल्हारबा हँसे। वे बोले, "देखा श्रीमन्त ! मैंने क्या यह कहा था ? यह मामला इतना खिंच गया है कि किसी से कुछ कहना खतरे से खाली नहीं है। इसमें मामा, आपका दोष नहीं है। सब लोगों के ही मन संत्रस्त हों तो आश्चर्य क्या ? यह प्रसंग ही ऐसा कठिन है। ऐसे अवसर अनेक बार आते हैं और चले जाते हैं। इनमें ही लोग तैयार होते हैं। श्रीमन्त की परीक्षा की यह घड़ी है !"

"मल्हारबा, जो शनिवार-भवन पानीपत के घावों से नहीं फूटा, जिस अपयश से उसके पक्के किनारे में दरार तक नहीं पड़ी, उसके सामने इस क्षणभंगुर कलह की क्या चलेगी ?"

"कैसी सुन्दर बात कही है ! नाना, श्रीमन्त की यदि कोई बात हमको बेहद अच्छी लगती है तो उनकी यह निर्भयता ! रावसाहब, चलते हैं हम !"

"नहीं....नहीं...! मल्हारबा, ऐसे नहीं जाने देंगे हम। आप फलाहार...."

"नहीं ! रावसाहब, हाथ जोड़ता हूँ आपके !"

"क्यों ? हमारे यहाँ कुछ भी नहीं लेना है, यह प्रतिज्ञा कर ली है क्या ?"

"नहीं, नहीं....! यह आप सोचें भी नहीं। परन्तु अब अवस्था हो गयी है। इस अवस्था में दादा साहब, राजसभा, माँ साहिबा—इन जगहों पर जाना पड़ता है। वहाँ फलाहार करना पड़ता है। इन तीनों ही स्थानों पर मना नहीं कर सकता ! केवल आपके पास ही इतना स्थान है कि यहाँ हम इनकार करने का साहस कर सकते हैं !"

माधवराव प्रसन्न होकर हँसे। वे बोले, "यदि यह कारण है तो हमारा आग्रह नहीं है। कल आयेंगे न ?"

"आपसे आज्ञा लिये बिना हम जायेंगे नहीं !" कहते हुए मल्हारबा उठे।

नाना उनको पहुँचाने के लिए बाहर गये। महल में केवल मामा और माधवराव थे। माधवराव बोले,

"मामा, थोड़ी थकावट लग रही है। हम जरा..."

"जरूर! मैं भी यही कहनेवाला था। मैं जाता हूँ।" मामा मुजरा करके जैसे ही रवाना हुए, माधवराव ने दीर्घ उच्छ्वास छोड़ा। माथे पर पसीने को उन्होंने पोंछा। श्रीपति जलती हुई शमादानी लेकर अन्दर आया। मंच पर उसने शमादानी रख दी। माधवराव ने दीये को हाथ जोड़े और श्रीपति से उन्होंने कहा,

"श्रीपति, उस ओर की यह खिड़की लगा दे रे, ठण्डी हवा आ रही है।" श्रीपति ने खिड़की लगा दी। माधवराव ने शाल देह पर ओढ़ ली और तकिये के सहारे लेटकर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। झींगुरों की आवाज वातावरण में निरन्तर गूँज रही थी।

राघोबा दादा अपने बादामी बँगले के खास सभागृह में चक्कर काट रहे थे। सखाराम बापू और गंगोबा दोनों खड़े थे। सखाराम बापू खाँसकर बोले,

"अब तक त्र्यम्बक मामा को आ जाना चाहिए था!"

"किस लिए?" राघोबाजी ने रुककर पूछा।

"कल की बातचीत में यही तय हुआ था।"

"कैसी बातचीत?"

गंगोबा तात्या बोले, "बात यह है दादा साहब, कल हमारे सरकार गये थे श्रीमन्त के पास। नाना और मामा भी थे। आपसे मिलकर सरकार सीधे श्रीमन्त के पास गये। वे कह रहे थे।"

"क्या कह रहे थे मल्हारबा?"

"सरकार ने माधवराव से साफ-साफ कह दिया। एक छोड़कर दस लड़ाइयाँ लड़ेंगे; परन्तु घर में आपस में नहीं लड़ेंगे!"

"उनका कहना सच है।" राघोबा बोले।

"तब मामा साहब ने उठकर कहा था कि मैं ही जाकर अन्तिम निर्णय करता हूँ, मैं ही पूछूँगा दादा साहब से।"

"अरे वाह! मामा का साहस इतना बढ़ गया है!" राघोबा बोले।

"खी खी खीऽऽ" गंगोबा हँसे, "इस प्रकार का साहस करना आश्चर्यजनक है। यह तो वही बात है, जैसे कोई सियार सिंह को सीख दे। खीऽऽ [illegible] यह बात क्या भिक्षा माँगने की तरह सरल है?"

दादा साहब आसन पर बैठते हुए बोले, "नहीं गंगोबा, इसमें मामा का दोष नहीं है। हाथी जब दलदल में फँस जाता है तब सियार भी उसको उपदेश देने लगते हैं! हमने ही व्यर्थ का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और इस दलदल में फँस गये। यह हमारा अपराध है।"

"यह तो सच है!" गंगोबा घुटने पर हाथ मारते हुए बोले।

"तात्या, वह देखो" बापू ने उँगली से खिड़की की ओर संकेत किया। हजार फव्वारे के चौक से त्र्यम्बकराव मामा आ रहे थे। उनको देखते ही गंगोबा बोले,

"बापू का अनुमान कभी ग़लत नहीं होता! हम चलते हैं।"

"बैठिए न गंगोबा! मामा के आने से कुछ बिगड़ेगा नहीं।"

"नहीं दादा साहब! आपके सात्विक क्रोध से हम परिचित हैं। बिना कारण हमारे सम्मुख मामा की फजीती न हो! मैं जा नहीं रहा हूँ। बाहर बैठक में बैठता हूँ।"

गंगोबा तात्या के उठते ही राघोबा भी उठे। सखाराम बापू को उन्होंने संकेत किया। वे अन्दर महल में चले गये। पीछे-पीछे सखाराम बापू भी गये। गंगोबा तात्या बाहर की बैठक में आये। त्र्यम्बकराव मामा से भेंट हो गयी। मामा बोले,

"कहिए तात्या?"

"कुछ नहीं। दर्शन करने आया था। रावसाहब की तबीयत कैसी है?"

"ठीक है। दादा साहब हैं?"

"हैं!"

"और कौन है?"

"दूसरा कौन होगा? बापू हैं।"

सेवक बाहर आया और बोला,

"सरकार ने बुलाया है!"

"चलो चलते हैं। जाता हूँ तात्या।"

"जाइए, मैं यहीं हूँ!" गंगोबा बोले।

मामा ने रघुनाथराव के महल में पैर रखा ही था कि उनके कानों में राघोबा के शब्द पड़े,

"कौन, त्र्यम्बकराव मामा! आश्चर्य है!"

राघोबा दादा को मुजरा कर मामा बोले, "आश्चर्य कैसा दादा साहब?"

"आपके पैर हमारे निवासस्थान में पड़े, यह!"

"दादा साहब को ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। हम लोग तो सदा आपके

के लिए आते ही रहते हैं। श्रीमन्त की तबीयत खराब होने के कारण
चित् पिछले आठ दिनों में उसमें कुछ व्यवधान पड़ गया होगा !"
"और इसके अतिरिक्त राज्य का उत्तरदायित्व भी है !" राघोबा बोले।
"स्वामी उत्तरदायित्व सौंपेंगे तो हम कैसे मना कर सकते हैं ? हुक्म के
लाम हैं हम तो !"
"बिना कारण बेकार की बातें किस लिए मामा ! अब हम जा रहे हैं। आप
बिलकुल निश्चिन्त रहें !"
"दादा साहब, इन बातों का अर्थ मैं समझता हूँ। मैंने भी बहुत-से दिन
राजनीति में काटे हैं। स्वामी चले जायें और सेवक रहें—यह हमारी इच्छा
नहीं है !"
"है कैसे नहीं ? हमारे सामने रास्ता ही यही एक रह गया है !"
"मैं नहीं समझा दादा साहब ! आपको जाने की जरूरत नहीं है—यही
कहने के लिए आया हूँ। मेरे बारे में आपके मन में जिन लोगों ने गलतफ़हमी
पैदा की है, उन्होंने अपना भला देखा होगा ! परन्तु मेरे कारण आपमें और
श्रीमन्त में मनमुटाव हुआ—यह लांछन सहन करने की शक्ति अब मुझमें नहीं
रही है, दादा साहब !" त्र्यम्बकराव बोले।
"खामोश ! मामा, तुमको पहली और आखिरी बार कहता हूँ। जहाँ
आप हैं, वहाँ मैं नहीं रह सकता हूँ। या तो आप रहेंगे या मैं। माधव को
किसी एक को ही चुनना होगा !"
त्र्यम्बकराव मामा ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उनकी एकमात्र आशा भी समाप्त
हो गयी। हताश होकर वे बोले, "ठीक है। मेरे कारण यदि गृहकलह समाप्त
होता हो तो इसमें मुझको आनन्द ही है। आज तक जो सेवा की, वह सार्थक
हो गयी, यही समझूँगा ! अब सन्तोष के साथ यात्रा को जाने की अनुमति
दीजिए !"
और यह कहकर त्र्यम्बकराव मामा रुके। क्या कहा जाये क्षण-भर राघोबाजी
को भी नहीं सूझा। वे उपेक्षा से बोले,
"यह अधिकार आपके स्वामी को है—हमें नहीं !"
"दादा साहब ! आप ऐसा समझते होंगे। मेरे लिए आपमें और श्रीमन्त
में कोई अन्तर नहीं है। परन्तु जाने से पहले दो-चार बातें मन में हैं, उन
आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हूँ। अभय मिले तो कहूँ...."
राघोबा गले पड़े हार को टटोलते हुए बोले, "कहिए !"
त्र्यम्बकराव मामा सँभलकर कहने लगे,
"दादा साहब, कर्नाटक की लड़ाई में से आप चले आये। यह

सोचा भी नहीं था—उस दशा में रावसाहब का उत्तरदायित्व आपने मुझपर डाला। उस उत्तरदायित्व को जी-जान से निभाकर तुम्हारे चिरंजीव को मैं तुम्हारे पास ले आया। आपने यह तक नहीं पूछा कि आपके आने के बाद वहाँ क्या हुआ, क्या नहीं? और अब मुझको छुट्टी दे रहे हैं। आप सत्ताधीश हैं, हम ठहरे सेवक! आपकी आज्ञा हमको माननी ही चाहिए! दादा साहब, अब इस ढलती आयु में हम बाहर के लोगों को क्या उत्तर दें? और कुछ नहीं, तो हमको हमारे दोष तो बता दीजिए! किस अपराध में आप हमसे जाने के लिए कह रहे हैं? किस सरकारी काम को हमने हानि पहुँचायी है?"

उस भाषण से राघोबा उलझन में पड़ गये। उनको कुछ समझ में नहीं आया कि क्या कहें? वे स्वयं को सँभालते हुए बोले,

"मामा, आप बालक नहीं हैं। सभी बातें क्या बतायी ही जाती हैं? इस निर्णय के पीछे जो कारण हैं उनको अपने मन से ही पूछिए!"

त्र्यम्बकराव मामा ने झुका हुआ सिर उठाया। राघोबा की आँखों से आँखें मिलाते हुए वे बोले, "दादा साहब, बहुत सुन चुका। ज्यादा से ज्यादा आप धक्का मारकर निकलवा देंगे, यही न! भले की बात कहना चाहता हूँ तो दूसरों के बहकावे में आकर मुझको ही अपराधी बना रहे हैं। अपने मन से तो मैंने खूब पूछा, समझ में नहीं आया इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ। दादा साहब! मैं पूछता हूँ, आपने अपने मन से पूछकर देखा है क्या?"

इस कथन से इन सब बातों को सुननेवाले बापू को पसीना आ गया। राघोबा दादा चिल्लाये, "त्र्यम्बकराव, किससे कह रहे हैं ये?"

"आपसे ही, दादा साहब, आपसे ही!" त्र्यम्बकराव शब्दों पर जोर देकर बोले। देखते-देखते उनके होंठ थरथराने लगे। आँखें भर आयीं। काँपती हुई आवाज में वे बोले, "नाना साहब चले गये। उनके बाद आप ही श्रीमन्त के लिए पिता के समान हैं। वह बच्चा है। उसके उत्तरदायित्व को वहन करते हुए राज्य का रक्षण करना आपका कर्तव्य था। किन्तु उसको आप भूल गये। उलटे आप स्वयं ही विद्रोह करने चल दिये। आप्त-स्वजनों की अपेक्षा मुगल आपको अपने लगते हैं। यह क्या हम जानते नहीं हैं? परन्तु कल को मराठा राज्य को डुबोने का अपयश आपको ही स्वीकार करना पड़ेगा! दादा साहब, यह उत्तरदायित्व उठाया जा सकेगा क्या? यह बात अपने सलाहकारों से जरूर पूछिए!"

त्र्यम्बकराव खड़े-खड़े अँगोछा से नाक पोंछ रहे थे। राघोबा स्तब्ध होकर उनका कथन सुन रहे थे। जैसे ही त्र्यम्बकराव ने कहना बन्द किया, वे भरी हुई आवाज में बोले,

"मामा, इस बात का हमको शौक थोड़े ही है ! परन्तु यदि सम्मान सहित जीना सम्भव हो, तभी मनुष्य को जीना चाहिए !"

"सच है। मैं भी यही कहता हूँ। शत्रुदल का सरदार बनने की अपेक्षा सर्वाधीश पेशवा के काका के रूप में रहना निश्चय ही सम्मानजनक, कौतुकपूर्ण और अभिमानास्पद है। मैं ही क्या, यदि आप हठ ही करें तो श्रीमन्त भी आपके मार्ग में रुकावट नहीं डालेंगे, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ। आप चैन से राज्य करें...!"

"मामा, ज्यादा मत बोलिए। आपकी अपेक्षा मेरा माधव पर निश्चय ही अधिक प्रेम है। यह तो आपको मानना पड़ेगा ही ! कुछ लोग ऐसी-वैसी बातें कह जाते हैं और हम उनसे बहक जाते हैं, यह हमारा अपराध है। परन्तु हमको भी आप नहीं सँभालेंगे तो कौन सँभालेगा ? श्री गजानन को साक्षी बनाकर हम आपसे कहते हैं कि मामा, आपके सम्बन्ध में हमारे मन में कोई सन्देह नहीं रहा है। आप जाकर माधव से कह दें। अब आगे आप माधव को अपनी देखरेख में रखकर राजकाज सँभालें। यह देखकर मुझको प्रसन्नता होगी। किसी तीर्थक्षेत्र में रहकर जीवन के बचे हुए दिन देवपूजा में लगाकर हम उनको सार्थक कर लेंगे।"

मामा बोले, "दादा साहब ! आपके इस प्रकार कहने से हमारा हृदय टूक-टूक हो जाता है। आपके रहने से हमें भी सहारा है। माधव अभी बालक है। उसपर स्नेह का हाथ रहना चाहिए। चाहें तो दो-चार वर्ष बाद—जब राज्य की गाड़ी व्यवस्थित ढंग से चलने लग जाये—जरूर भजन-पूजा के लिए चले जायें। आज्ञा देंगे तो मैं भी साथ चलूँगा !"

राघोबा बोले, "यह कहने में कोई सार नहीं है, मामा ! अब माधव
मन में हमारे लिए आदरभाव बिलकुल नहीं रहा है, यह हम जानते हैं !"

"दादा साहब, किसी ग़लत बात सोच रखी है आपने ? आपके पीछे आपका उल्लेख करते हुए वे आपको गंगाजल की उपमा देते हैं। कम से
उनके लिए तो आप ऐसी बात न कहें ! आप चाहें तो, मल्हारबा जब आयें उनसे पूछ लें ! परन्तु ठहरिए ! दादा साहब, मैं आपको इसका विश्वास दिलाये देता हूँ। आप थोड़ी देर रुकें यहीं।" इतना कहकर त्र्यम्ब
बाहर निकले।

जो कुछ घटित हुआ था उससे किंकर्तव्यविमूढ होकर सखाराम
आश्चर्यचकित दृष्टि से राघोबा की ओर देख रहे थे। वे जहाँ बैठे हुए
से उठने की शक्ति भी उनमें नहीं रही थी; परन्तु उनका मन इतना
नहीं था कि वे एक स्थान पर बैठे रहते।

बेचैन सखाराम बापू खड़े हो गये। थोड़ी देर तक कोई कुछ न

सखाराम बापू ने खिड़की के बाहर देखते हुए सामने के चौक से त्र्यम्बकराव मामा के पीछे-पीछे आते हुए माधवराव को देखा। खिड़की के दण्ड को पकड़े हुए उनकी मुट्ठी और अधिक कस गयी। जैसे ही माधवराव ने महल में प्रवेश किया, राघोबा बोले,

"मामा, इसको क्यों लिवाकर लाये? अभी हाल में वह बीमारी से उठा है....।"

माधवराव कुछ न बोलकर आगे बढ़े। मुजरा करके हाथ जोड़कर वे खड़े हो गये। भारी आवाज़ में वे बोले,

"काका, आप बड़े हैं। जैसी आज्ञा देंगे, उसी तरह रहूँगा। इसमें परिवर्तन नहीं होगा!"

माधवराव की मूर्ति की ओर देखकर राघोबा की आँखें तत्काल भर आयीं। माधवराव के जुड़े हुए हाथों को अपने हाथों से अलग करते हुए वे बोले,

"माधव, अरे मैं क्या इतना पराया हो गया?" और इतना कहकर उन्होंने माधवराव को अपने पास किया। उनकी पीठ पर हाथ फिराते हुए वे बोले,

"माधव, अब मेरे मन में कोई सन्देह नहीं है। तुम और मामा मिलकर राजकाज देखो। मुझको जैसा उचित लगा करेगा, तुमको बता दिया करूँगा। बाबा, नाना, सखाराम इनकी गड़बड़ी आपके राजकाज में नहीं होने दूँगा। मेरे आदमी मेरे साथ रहेंगे!"

माधवराव बोले, "परन्तु काका, आपके लोगों ने ही कुछ गड़बड़ी की तब?"

"तब? उसका परिणाम वे भुगतेंगे। इसमें कोई क्या करेगा?" राघोबा दादा बोले।

सखाराम बापू ने चौंककर राघोबा दादा की ओर देखा। तभी सेवक अन्दर आया और बोला, "होलकर सरकार आ रहे हैं!"

"अरे वाह! मल्हारबा ठीक समय पर आये। चलो, हम उनका स्वागत करें।"

बाहर के सभाभवन में मल्हारराव आये और अन्दर से बाहर आनेवाले राघोबा, माधवराव तथा मामा को देखकर उनके पैर जहाँ के तहाँ रुक गये। तीनों के ही चेहरों पर मुसकराहट थी। यह देखकर गंगोबा चकित हो गया था। मल्हारराव को देखते ही दादा बोले, "मल्हारबा, ग्रहण छूट गया। आज से माधव स्वामी, त्र्यम्बकराव कार्यकर्ता। हम सब लोग इनके विचारानुसार चलें!"

"बहुत अच्छा! दादा साहब, इसकी बराबर अच्छी बात मैंने बहुत दिनों से आज तक नहीं सुनी थी!"

गंगोबा तात्या यह सुनकर बेचैन हो गये। उनसे रहा नहीं गया, उन्होंने पूछा, "परन्तु ये दो पत्र हो गये इनका क्या ?"

राघोबा दादा बोले, "दो पत्र ? पागल हे ! मूर्खों की तरह ऊटपटांग बातें मत पूछो ! चलो, हम लोग भाभी साहिबा के पास चलें !"

चौक में होकर गोपिकाबाई के महल की ओर जानेवाले नाना, बापू, मामा, दादा और स्वयं श्रीमन्त—इन लोगों को देखकर सब आश्चर्यचकित हो गये थे। उनका हास्यविनोद सबका ध्यान आकर्षित कर रहा था। वर्षा की फुहार आयी, परन्तु किसी को उसका ध्यान नहीं रहा था....

दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व ही स्नान-सन्ध्या से निवृत्त होकर माधवराव सभागृह में आ गये थे। त्र्यम्बकराव पेठे, नाना फड़णीस, रामशास्त्री आदि लोग वहाँ थे। सभी के चेहरे प्रसन्न थे। माधवराव बोले,

"शास्त्रीजी, आपने सुन लिया न ?"

"जी, सुन लिया है ! बड़ा सन्तोष अनुभव किया। पेशवा महान् के पुण्य अभी समाप्त नहीं हुए हैं, यह इसका प्रमाण है।"

"क्या बताऊँ शास्त्रीजी ? क्षण-भर भी चैन नहीं पड़ता था—यह दशा हो गयी थी; परन्तु अन्त में परमेश्वर ने हमारी लाज रख ली !"

"परन्तु दादा साहब को इसका विचार करना चाहिए था !" शास्त्री-जी बोले।

"शास्त्रीजी, आप काका को जानते नहीं हैं। उन-जैसा स्नेही, वचनपूर्ण से ही कुम्हला जानेवाला प्राणी ऐसी राजनीति में मुश्किल से ही देखने को मिलेगा। परन्तु अभी तक मल्हारबा क्यों नहीं आये ?"

नाना फड़णीस बोले, "सूचना आ गयी है। सन्देश आया है कि वे प्रातःकाल न आकर दोपहर को ही आयेंगे।"

"ठीक है। हम सन्ध्या-समय दर्शन करने पर्वती पर जायेंगे। मल्हारबा भी आ जायेंगे। शास्त्रीजी, आप भी आइए !"

"जो आज्ञा।"

"चलो, हम लोग काका के दर्शन करें। नाना, देखो तो कि काका की देवपूजा हो गयी क्या ? उनको हमारी इच्छा बताना !"

जब नाना लौटकर आये तब उनके साथ सखाराम बापू भी थे। उनका मुजरा स्वीकार कर श्रीमन्त बोले,

"बापू, क्रोध अब भी है क्या ?"

"नहीं...नहीं....श्रीमन्त, हमारा कैसा क्रोध ?"

"बापू, हमको भी आपकी सलाह की जरूरत है। जो कुछ हुआ, वह हमने मन से निकाल दिया है। आपको हम अपना समझते हैं।"

"यह हमारा भाग्य है।" बापू बोले, "दादा साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"चलिए ! आ रहे हैं हम।" माधवराव उठे और सबके साथ वे राघोबा के महल की ओर जाने लगे।

दोपहर को वर्षा बन्द हो गयी थी। माधवराव पेशवा के महल के बाहर श्रीपति खड़ा था। तभी सामने के महल से बाहर जाती हुई मैना दिखाई दी। श्रीपति ने चुटकी बजायी। मैना पास आते ही बोली, "क्या है ?"

"अरे वाह ! बात करना भी मुश्किल हो गया ?"

"मुझको काम करने हैं !"

"और मैं क्या निठल्ला हूँ ? फिर क्यों आयी है यहाँ ?"

"तो फिर जाती हूँ मैं।"

"जा तो।"

मैना ने गौर से श्रीपति की ओर देखा। श्रीपति के चेहरे पर मुसकराहट थी। मैना चिढ़ गयी। उसने पूछा,

"सरकार सो गये ?"

"जाकर देख आ !"

"जाऊँगी ही ! पर तू भी तो बता ?"

"क्यों पूछ रही है ?"

"बाई साहिबा ने कहा था।"

"और फिर क्या महल का रास्ता भूल गयी थी ? तू तो आगे जा रही थी ?"

"अब बताता है कि नहीं ?"

"अब आ गयी न रास्ते पर ! नहीं सोये, जगे हुए ही हैं।"

"जाती हूँ मैं।"

"तू अब आयेगी नहीं क्या ?"

"किस लिए ? नहीं भई !" कहकर मैना हँसती हुई चली गयी।

रमाबाई ने जब महल में प्रवेश किया तब माधवराव बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। रमाबाई को देखते ही वे बोले,

"अच्छा हुआ आप आ गयीं ! मैं आपको बुलवाने ही वाला था।"

"परन्तु आप आज सोये क्यों नहीं ?"

"अब मैं बहुत अच्छा अनुभव कर रहा हूँ। हमारी सारी चिन्ता दूर हो गयी। आइए बैठिए न !"

माधवराव ने क़लमदान में क़लम रख दी और वे बोले,

"आज हम पर्वती को जा रहे हैं।"

"तो फिर मैं भी चलूँ ?"

"हम अकेले नहीं जा रहे हैं ! रामशास्त्री, नाना, मामा आदि लोग भी हैं। आपके साथ फिर कभी चलेंगे।"

"ठीक है।" रमाबाई उदास होकर बोलीं।

"और आज तो तुम चल भी नहीं सकतीं !"

"क्यों ?"

"आज रात प्रीतिभोज देने की बात हमारे मन में है। काका को हमने सूचना भिजवा दी है। शायद मल्हारबा भी आयें। पाकशाला में हमने सूचना भिजवा दी है। आप भी ध्यान रखें !"

"हाँ ! माताजी स्वयं सीधा निकालकर दे रही हैं।"

"तो फिर आप इस ओर किस लिए आयी ?"

"उन्होंने ही कहा था कि आप सो गये हैं क्या, यह देख आऊँ। जाती हूँ मैं।"

और यह कहते-कहते रमाबाई उठ पड़ीं। माधवराव कुछ कहें उससे पहले ही वे महल से बाहर चली गयीं।

सन्ध्या-समय शनिवार-भवन के खास सभागृह में बापू, नाना, गंगोबा, त्र्यम्बकराव आदि लोग खड़े हुए माधवराव की प्रतीक्षा कर रहे थे। बापू से नाना ने कहा,

"बापू, आप चलेंगे न ?"

"नहीं जी, नाना ! कल से तबीयत ठीक नहीं है। अतिसार हो गया है।"

"कल से !" शास्त्रीजी ने पूछा।

"हाँ !" उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए बापू बोले।

"फिर चूरन नहीं लिया ?"

"लिया, परन्तु लाभ नहीं हुआ।"

रामशास्त्री कुछ कहने जा रहे थे कि उसी समय माधवराव और मल्हारबा

हँसते हुए आते दिखाई दिये। सब सावधानी से खड़े हो गये।

जैसे ही माधवराव दिल्ली-दरवाजे से बाहर आये, पहरेदार सैनिकों ने मुजरा किया। सैनिकों के पीछे खड़े हुए मल्हारराव के पचास घुड़सवारों ने भी मुजरे किये। उनको स्वीकारते हुए माधवराव शास्त्रीजी से बोले,

"शास्त्रीजी, मल्हारराव का रुबाब जबरदस्त है। हमसे मिलने के लिए आयेंगे तब भी साथ घुड़दल होता है।"

"आपकी कृपा है श्रीमन्त, फिर उसमें कटौती क्यों की जाये?"

"सच है!" शास्त्रीजी बोले, "राज्य की शान सेवकों के मान-सम्मान पर ही अवलम्बित होती है!"

"मल्हारबा! हम तो बिलकुल ही भूल गये। आज आप पर्वती से सीधे वानवडी को नहीं जा पायेंगे!"

"क्यों श्रीमन्त?"

"आज आपका मुकाम यहाँ है! आज आपके साथ प्रीतिभोज का अवसर मिलना चाहिए!"

"जी!"

"परन्तु यदि छावनी पर मुकाम के लिए गया होता तो अच्छा रहता, गंगोबाऽऽ!"

"जी" गंगोबा दौड़ा।

"आप सवारों को लेकर छावनी पहुँचिए। वहीं रहिए। सर्वत्र देखरेख करते रहना। प्रातःकाल सवार भेज देना। हम कल छावनी पर आयेंगे!"

"क्यों? सवारों को क्यों भेज रहे हैं?" माधवराव ने पूछा, "कल उनको लौटना ही है! फिर उनको यहीं रहने दो न! पचास सवारों के भोजन की और ठहरने की व्यवस्था करने में शनिवार-भवन को कठिनाई होगी, अभी ऐसी बात नहीं है!"

सभी मुक्तमन से हँस पड़े। मल्हारबा बोले,

"जो आज्ञा! गंगोबा, आप अकेले ही जाइए। सवारों को यहीं रहने दीजिए!"

"जैसी आज्ञा!" कहकर गंगोबा पीछे हट गये।

घोड़े लाये गये। सब आरूढ़ हो गये। बापू को खड़े हुए देखते ही माधवराव ने पूछा,

"क्यों बापू, चल नहीं रहे हैं?"

"नहीं श्रीमन्त, आज्ञा हो तो रहना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"स्वास्थ्य ठीक नहीं है इनका।" शास्त्रीजी बोले।

"फिर औषध ली या नहीं?" माधवराव ने पूछा।

"नहीं।"

"इतने बड़े वैद्य हैं हमारे। बीमारी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। औषध लीजिए। हम जाकर आते हैं।"

माधवराव ने एड़ लगायी। घोड़े चलने लगे। घोड़े ओझल होते ही गंगोबा और बापू पीछे लौटे।

अपने महल में राघोबा पान लगा रहे थे कि गंगोबा अन्दर गये। उनको देखते ही राघोबा बोले,

"गंगोबा, आओ। पान लगाओ। आज हम लोग शतरंज खेलेंगे।"

"रहने दें श्रीमन्त! सरकार पर्वती को गये हैं।"

"और आप नहीं गये?"

"छावनी पर हाजिर रहने का आदेश मिला है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कुछ। सरकार भी आज यहीं रहेंगे।"

"हाँ, आज माधवराव का प्रीतिभोज है। उसने आग्रह किया होगा।"

"यही बात है। परन्तु..."

"परन्तु क्या?"

"सवार भी रोक लिये हैं।"

राघोबा ने जो पान लगाया था, वह हाथ में ही लगा रह गया। गंगोबा मुजरा करते हुए बोले,

"जाता हूँ श्रीमन्त! सरकार का सख्त आदेश है कि छावनी छोड़कर कहीं न जाऊँ।"

गंगोबा मुजरा करके बाहर चले गये। उसको स्वीकार करने का ध्यान भी राघोबा को नहीं रहा। जब उनको चेत हुआ तब उन्होंने देखा कि बीड़ा ज्यों का त्यों हाथ में लगा हुआ है। उन्होंने बीड़ा मुख में डाला और तकिये के सहारे लेटकर वे विचार करने लगे।

स्वरूपा अन्दर आयी। उसकी ओर देखकर राघोबा ने पूछा,

"स्वरूपा क्या लायी है?"

"शतरंज।"

"किसने कहा? जा फेंक आ उसको घूरे पर। छिपकर सुनने की अ
तुम लोगों को भी पड़ गयी है क्या?"

राघोबा का यह रौद्ररूप देखकर स्वरूपा काँप गयी। वह मुड़ी। रा
गरजे,

हँसते हुए आते दिखाई दिये। सब सावधानी से खड़े हो गये।

जैसे ही माधवराव दिल्ली-दरवाजे से बाहर आये, पहरेदार सैनिकों ने मुजरा किया। सैनिकों के पीछे खड़े हुए मल्हारराव के पचास घुड़सवारों ने भी मुजरे किये। उनको स्वीकारते हुए माधवराव शास्त्रीजी से बोले,

"शास्त्रीजी, मल्हारराव का रुवाब जबरदस्त है। हमसे मिलने के लिए आयेंगे तब भी साथ घुड़दल होता है।"

"आपकी कृपा है श्रीमन्त, फिर उसमें कटौती क्यों की जाये?"

"सच है!" शास्त्रीजी बोले, "राज्य की शान सेवकों के मान-सम्मान पर ही अवलम्बित होती है!"

"मल्हारबा! हम तो बिलकुल ही भूल गये। आज आप पर्वती से सीधे वानवडी को नहीं जा पायेंगे!"

"क्यों श्रीमन्त?"

"आज आपका मुकाम यहाँ है! आज आपके साथ प्रीतिभोज का अवसर मिलना चाहिए!"

"जी!"

"परन्तु यदि छावनी पर मुकाम के लिए गया होता तो अच्छा रहता, गंगोबाऽऽ!"

"जी" गंगोबा दौड़ा।

"आप सवारों को लेकर छावनी पहुँचिए। वहीं रहिए। सर्वत्र देखरेख करते रहना। प्रातःकाल सवार भेज देना। हम कल छावनी पर आयेंगे!"

"क्यों? सवारों को क्यों भेज रहे हैं?" माधवराव ने पूछा, "कल उनको लौटना ही है! फिर उनको यहीं रहने दो न! पचास सवारों के भोजन की और ठहरने की व्यवस्था करने में शनिवार-भवन को कठिनाई होगी, अभी ऐसी बात नहीं है!"

सभी मुक्तमन से हँस पड़े। मल्हारबा बोले,

"जो आज्ञा! गंगोबा, आप अकेले ही जाइए। सवारों को यहीं रहने दीजिए!"

"जैसी आज्ञा!" कहकर गंगोबा पीछे हट गये।

घोड़े लाये गये। सब आरूढ़ हो गये। बापू को खड़े हुए देखते ही माधवराव ने पूछा,

"क्यों बापू, चल नहीं रहे हैं?"

"नहीं श्रीमन्त, आज्ञा हो तो रहना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"बापू को भेज दे ! खबरदार जो ऐसा फिर हुआ !"

दीपक जलने का समय हो चुका था। बापू महल में आये।

"बापू, कहाँ थे ?"

"घर गया था !"

"अभी माधव नहीं आया ?"

"नहीं श्रीमन्त !"

"और आप क्यों नहीं गये ?"

"आज्ञा मिलती तो चला जाता। दादा साहब के चरणों में प्रार्थना करने आया हूँ।"

"कैसी प्रार्थना ?"

"आज पुणें छोड़कर जाना चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"आप आयेंगे जरा ?"

"कहाँ ?"

"छज्जे पर।"

बापू के पीछे-पीछे राघोबा छज्जे पर पहुँचे। दिल्ली-दरवाजे के सामने मल्हारबा के सैनिक खड़े थे। उस ओर उँगली से संकेत कर बापू ने कहा,

"देखिए !"

"तो इससे क्या हो गया ?" राघोबा ऊपरी लापरवाही दिखाते हुए बोले।

"सरकार, श्रीमन्त के साथ नाना, शास्त्री, मल्हारबा आदि लोग पर्वती पर गये हैं। श्रीमन्त अभी-अभी बीमारी से उठे हैं। वे क्यों गये हैं ? भवन के चारों ओर यह बढ़ती हुई घेराबन्दी ! मुझको ये लक्षण अच्छे नहीं दिखाई देते !"

"क्या कह रहे हैं बापू ? माधव हमको क़ैद करेगा, यह बात आपके मन में आ ही कैसे जाती है ?"

"मैं जानता था कि आप यही कहेंगे। इसीलिए मैं आपसे छुट्टी लेने आया हूँ।"

"आप हमको छोड़कर जायेंगे ?"

"सरकार, हम यहाँ रहकर क्या करेंगे ? यदि कुछ विपरीत हो ही गया तो आपके साथ हम भी जाल में फँस जायेंगे। मैं यदि बाहर रहा आया, तो बाहर से कुछ तो कर सकूँगा।"

सन्ताप से राघोबा की मुट्ठियाँ कस रही थीं। वे बोले,

"चलो, बापू। आकाश में स्वच्छन्द विहार करनेवाले इस राघो का जन्म पिंजड़े में बन्द होने के लिए नहीं हुआ है। चलो, नीचे चलें हम लोग।"

रंगमहल समइयों और झाड़ फ़ानूसों से आलोकित हो रहा था। प्रीतिभोज का ठाट निराला था। नवरंग-मिश्रित अल्पना बड़ी कुशलता से बनायी गयी थी। प्रत्येक के लिए रुपहले फूलों से अलंकृत शीशम के पटा बिछाये गये थे। चाँदी के थाल अपने ऊपर पड़े हुए प्रकाश को परावर्तित कर रहे थे। प्रत्येक थाली के पास चाँदी का जलपात्र तथा थाली में किनारे-किनारे पाँच-पाँच कटोरियाँ सजी हुई थीं। नमक, नीबू से लेकर बड़ियाँ, पापड़, अचार, साग, चटनी आदि पदार्थ पहले से ही परोसे हुए रखे थे।

विशेष ढंग से चौक पूरकर श्रीमन्तों की तीन थालियाँ सजायी गयी थीं। श्रीमन्त सबको दिखाई दें तथा सबसे बातें कर सकें—इस प्रकार उन थालियों की व्यवस्था की गयी थी।

पंगत के मध्यभाग में रखे हुए घुटने तक की ऊँचाई के अगरबत्ती के वृक्ष में लगी हुई सात-सात अगरबत्तियों का पुआँ बल खाता हुआ छत की ओर जा रहा था। उनकी मन्द मादक गन्ध सर्वत्र महक रही थी।

श्रीमन्त के आसन की दायीं ओर कुछ विशेष शास्त्री-पुरोहित बैठे हुए थे। वे सभी एक स्वर से प्रातःस्तवन के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। वह आवाज गूँज रही थी। धीरे-धीरे सरदार मण्डली इकट्ठी होने लगी और अपने-अपने पद के अनुसार स्थानापन्न होने लगी। भोज की व्यवस्था करनेवाले सेवक सादर उचित स्थान भूषित करने के लिए हाथ से उनको संकेत कर रहे थे। निमन्त्रित सरदारवर्ग के उपस्थित होने की सूचना जैसे ही अन्तःपुर में पहुँची वैसे ही नारायणराव के साथ श्रीमन्त ने प्रवेश किया। उसी समय ब्रह्मवृन्द के अतिरिक्त सभी सरदारों ने खड़े होकर उनका सम्मान किया। श्रीमन्त ने कुसुम्भी रंग की रेशमी धोती पहन रखी थी। अन्दर आते ही उन्होंने पूछा, "काका अभी तक नहीं आये?"

"नाना गये हैं बुलाने!" मामा ने कहा। उसी समय नाना ने प्रवेश किया। वे अकेले ही थे। माधवराव ने पूछा,

"और काका कहाँ हैं?"

"उनकी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए सो गये हैं वे। उन्होंने कहा है कि आप लोग भोजन कर लें।"

माधवराव विचारमग्न हो गये। मल्हारराव होलकर बोले,

"उनको भी बहुत मानसिक कष्ट हुआ था। उससे ही शायद थकावट आ गयी होगी।"

"सुबह चलेंगे हम लोग।" कहते हुए माधवराव बैठ गये। श्रीमन्त के बैठते ही सभी लोग बैठ गये। माधवराव को बायीं ओर नारायणराव बैठे। माधवराव की दायीं ओर का आसन रिक्त था। परोसी हुई थाली ज्यों की त्यों थी। सेवक जल्दी-जल्दी आगे बढ़ा। वह थाली उठाने ही वाला था कि श्रीमन्त ने संकेत किया। परोसी हुई थाली वैसी ही रखी रही।

पाकशाला के अधिकारी की तथा परोसनेवालों की दौड़धूप शुरू हो गयी। खसखस और चिक के परदों की हलचल यह घोषणा कर रही थी कि अन्दर राजपरिवार की तथा सरदारों की स्त्रियां उपस्थित हो चुकी हैं। उन परदों पर हलचल करती छायाओं से अन्दर परोसनेवालों का इधर-उधर आना-जाना दिखाई पड़ रहा था।

सेवक द्वारा आगे बढ़ाये हुए थाल में माधवराव ने हाथ धोकर वस्त्र से पोंछ लिये। पाकशाला के अधिकारी ने श्रीमन्त के ललाट पर केशर के तिलक की रेखा खींची। सबको तिलक लगने से पूर्व ही मन्त्रोच्चार समाप्त हो गया।

श्रीमन्त के हाथ से समन्त्रक उदक छुड़वाकर उपाध्याय के "मंगलमूर्ति मोरया" कहकर उपस्थित देवस्थान का उद्घोष करते ही सबने पानी डालकर चित्राहुति अर्पण की और हाथ में आचमन-जल लेकर वे सब श्रीमन्त की ओर देखने लगे। ब्रह्मवृन्द और श्रीमन्त के आचमन करते ही सबने आचमन किया। प्रसन्न वातावरण में प्रीतिभोज प्रारम्भ हुआ।

परन्तु भोजन के दौरान रह-रहकर माधवराव की दृष्टि पास के रिक्त आसन की ओर जा रही थी।

प्रातःकाल जब माधवराव स्नान-सन्ध्या से निवृत्त होकर महल में आये तब विठी अन्दर आयी।

"क्यों री विठी?"

"मां साहिबा ने बुलाया है।"

"अभी?"

"जी हां।"

"कौन है वहां पर?"

"काकी साहिबा महाराज।"

"मैं अभी आ रहा हूं।" कहते हुए माधवराव ने वस्त्र पहने और वे महल से बाहर निकले। जब वे गोपिकाबाई के महल में पहुंचे तब वहां का दृश्य देखकर, क्या कहा जाये, यही उनकी समझ में नहीं आया। वहां आनन्दीबाई

रो रही थीं। गोपिकाबाई उनको समझा रही थीं। पीछे रमाबाई खड़ी थीं।

"क्या हो गया ?" मुजरा करना भूलकर माधवराव ने पूछा।

आनन्दीबाई ने अपना अंचल ठीक किया। गोपिकाबाई ने माधवराव की ओर देखा। गोपिकाबाई बोलीं,

"माधव, भाग्य हमारा ! तेरे काका चले गये !"

"कहाँ ?"

"अलस सवेरे ही वे चले गये।"

"किसी को न बताते हुए ? इस तरह जाने का कारण क्या है ?"

आनन्दीबाई नाक सूँघती हुई बोलीं,

"माधव ! मेरा भाग्य फूट गया ! तू भी क्या कर सकता है ?"

"जायेंगे कहाँ ? आयेंगे काका !"

"नहीं रे ! बात इतनी सीधी नहीं है ! वे कह गये हैं कि अब इस शनिवार-भवन में क़दम नहीं रखूँगा !"

"परन्तु गये कहाँ हैं ?"

"वडगाँव को।"

"बापू साथ गये हैं ?"

"नहीं।"

"फिर कौन गया है ?"

"मैं नहीं जानती रे माधव ! अब तू ही मेरी लाज रख !"

"काकी, चिन्ता मत करो। मैं पता लगाता हूँ—क्या बात है।" माधवराव बाहर चले गये।

उनका भय सत्य सिद्ध हुआ। राघोबा दादा सचमुच वडगाँव को चले गये थे। आबा पुरन्दरे साथ थे। दो-चार दिन बाद बापू भी वडगाँव को चले गये। वडगाँव से आनेवाली वार्ताओं से माधवराव त्रस्त हो उठे। मल्हारराव, नाना, बापूजी नाईक, गोपालराव पटवर्धन आदि लोग वहाँ जाकर आये, परन्तु उनमें से कोई भी राघोबा को वापस नहीं ला सका। स्वयं माधवराव भी गये, परन्तु उनको भी राघोबा ने बहके-बहके उत्तर दिये। अन्तिम आशा गोपिकाबाई पर थी। राघोबा वडगाँव से पाषाण को चले गये—यह वार्ता लेकर वे लौट आयीं। माधवराव बोले,

"माँ साहिबा, काका के ये लक्षण अच्छे नहीं दिखाई पड़ते।"

"नहीं रे माधव ! तेरे काका ने तेरे पिताजी की शपथ लेकर कहा है कि पाषाण होकर पुणे लौट रहा हूँ।"

"परमेश्वर करें कि ऐसा ही हो।" इतना कहकर माधवराव महल से बाहर

चले गये।

परन्तु ऐसा होना नहीं था। अपने साथ के लोगों को वापस भेजकर अकेले एक घोड़ा लेकर राघोबा ने नर्मदा तट पर जाने के लिए पाषाण छोड़ दिया। साथ के लोग पुणे लौट आये। दिन बीतते जा रहे थे। प्रतिदिन राघोबा दादा की हलचलों की वार्ताएँ कान में पड़ रही थीं। महीपतराव चिटणीस, आबा पुरन्दरे-जैसे लोग दादा से जाकर मिल रहे थे। रामचन्द्रराव जाधव भी उनसे मिल गये हैं—यह वृत्तान्त माधवराव ने सुना। उस वृत्तान्त से आनन्दीबाई की स्थिति कठिन हो गयी थी। वे माधवराव से बोलीं,

"माधव, मैं जाती हूँ। देखती हूँ, मेरी बात ही मानते हैं क्या ?"

"रहने दें, काकी ! इसकी आवश्यकता अब नहीं रही। अकारण ही आपको यात्रा में कष्ट और होगा !"

"होने दो ! इस तरह जीने से तो मरना अच्छा। मैं जाती हूँ। मेरे जाने की व्यवस्था कर।"

राघोबा को लाने के लिए यद्यपि आनन्दीबाई गयी थीं, तथापि राघोबा लौट आयेंगे—यह आशा किसी को नहीं थी। आनन्दीबाई की ओर से भी जब कोई वृत्तान्त नहीं मिला, तब सब निराश हो गये। लड़ाई अनिवार्य है—यह सबको दिखाई दे गया। माधवराव ने त्र्यम्बकराव, गोपालराव, आनन्दराव रास्ते, मल्हारराव होलकर, पिराजी नाईक निम्बालकर इन सरदारों को बुलवाया। उनसे राजनिष्ठा की शपथ ग्रहण कराकर माधवराव ने सैन्य इकट्ठा करने का आदेश दिया। प्रतिदिन आनेवाले सरदारों से, उनके शिविरों से पुणे ने छावनी का स्वरूप धारण कर लिया। और इसी समय पुणे में यह वार्ता पहुँची कि राघोबा निज़ाम से मिलकर तथा मुरादखान और विट्ठल सुन्दर को लेकर पुणे पर आक्रमण करने के लिए चल दिये हैं। यह भी पता चला कि सेना के खर्च के लिए राघोबा दादा ने पैठण क्षेत्र लूट लिया है। सभी सरदार, सभासद व्याकुल थे। इस वार्ता से माधवराव का क्रोध भड़क उठा। वे बोले,

"अब तो काका ने हद कर दी। इस समय स्वजनों से लड़ने के लिए वे यवनों से समझौता करने में लगे हुए हैं। धर्म में भी आस्था नहीं रही। धन्य हैं वे ! गोपालराव !"

"क्या है श्रीमन्त ?" गोपालराव आगे आये।

"अभी आपकी फ़ौज नहीं आयी है। आपकी फौज को आदेश-पत्र भेजा गया है कि तैयार होकर जल्दी आ जाओ। फिर भी इतनी देर क्यों हो रही है ?"

"यह मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है।" गोपालराव बोले, "पिताजी

तरह झूठी हँसी हँसना सीख गयी हो। मुहीम के लिए बाहर जाने की बात जब भी आयी, हम कभी उदास नहीं हुए। बल्कि उत्साहित होते हैं। जिस दिल्ली-दरवाज़े से बड़े पेशवे अटक की मुहीम के लिए बाहर निकले, जिस दरवाज़े से भाऊसाहब दिल्ली का तख्त तोड़ने को बाहर निकले, जिस दरवाज़े से पानीपत की मुहीम बाहर निकली, उस दिग्विजयी दिल्ली-दरवाज़े से आज हम बाहर निकल रहे हैं। वह भी शत्रु से लड़ने के लिए नहीं! साक्षात् काका से! वह दरवाजा क्या कह रहा होगा? उसपर संन्यासी के तेज से फहरानेवाला मराठों का राष्ट्रीय ध्वज...."

बोलते-बोलते माधवराव रुक गये। क्रोध से उनकी मुट्ठियाँ कस गयी थीं। शरीर थरथरा रहा था। रमाबाई बोलीं,

"माँ साहिबा इन्तज़ार कर रही हैं।"

"क्या?" सावधान होकर माधवराव बोले।

"माँ साहिबा!"

"ठीक है। चलिए!"

माधवराव गोपिकाबाई के महल में गये। पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। काँपते हाथों से रमाबाई ने उनकी आरती उतारी। कोई कुछ भी नहीं बोल रहा था। माधवराव उठे। गोपिकाबाई के पास जाकर उन्होंने चरणों को स्पर्श किया। बड़ी कठिनाई से गोपिकाबाई बोलीं,

"माधव सँभालकर....?"

"मातुश्री चिन्ता न करें। आप आँखों में पानी न आने दें। जिस कृत्य से घराने को और मराठा राज्य को कलंक लगेगा, ऐसा कृत्य हमारे हाथों से कदापि नहीं होगा, इतना विश्वास रखें। यद्यपि हम महाभारत की अपेक्षा अधिक विकट परिस्थितियों में पड़ गये हैं तथापि आपके आशीर्वाद से तथा पिताजी के पुण्यों से हम सकुशल इनको पार कर लेंगे।"

"राघोबा दादा फ़ौज लेकर नगर की ओर से चढ़ते चले आ रहे हैं" यह मालूम पड़ते ही माधवराव अपनी सेना लेकर राघोबा को रोकने के लिए बाहर निकले। दादा साहब जब चारोली में ठहरे हुए थे तब माधवराव उनसे दस कोस दूर पहुँचे और वहाँ अपना डेरा जमा दिया। गोपालराव पटवर्धन, त्र्यम्बकराव पेठे, मल्हारराव होलकर आदि लोग अपनी-अपनी फ़ौज के साथ माधवराव के पीछे खड़े थे। माधवराव अपने डेरे में विचार विनिमय कर रहे थे। त्र्यम्बकराव पेठे बोले,

"श्रीमन्त, घोड़नदी ही अपना मुख्य आधार है। दादा साहब उसके इस ओर आयें इससे पहले ही अवसर ढूंढ़ लेना चाहिए।"

"हमारा भी यही विचार है।" माधवराव बोले।

मल्हारराव ने पूछा, "तो फिर कल आगे कूच करना है?"

"उसी के लिए हम लोग बाहर निकले हैं! जो होना है उसका एकदारगी फैसला हो जाने दो।" माधवराव ने कहा।

प्रातःकाल 'शृंग' बजा दिये गये तथा राघोबा को टक्कर देने के लिए माधवराव अपनी सेना लेकर बाहर निकले। घोड़नदी के तट पर दोनों फ़ौजों का सामना हुआ। दूसरे किनारे पर राघोबा मुग़ल सेना लेकर खड़े थे। नदी के उतार पर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर से बाणवर्षा होने लगी। नदी में पानी होते हुए भी घाट पर से माधवराव का अश्वारोही दल बेधड़क आगे बढ़ा। उसकी टक्कर से राघोबा को थोड़ा पीछे हटना पड़ा। दादा की तोपों को माधवराव की तोपें प्रत्युत्तर देने लगीं। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। फिर दोनों ओर की फ़ौजें पीछे हटीं और अपनी-अपनी छावनियों में दाखिल हुईं। दिवसावसान होने पर लड़ाई रुक गयी और लड़ाई का पहला दिन समाप्त हुआ। इस लड़ाई में दोनों पक्षों की हानि हुई। माधवराव के पक्ष के नीलकण्ठराव पटवर्धन जख़्मी हो गये। रात्रि में छावनी में बड़ी गड़बड़ी मच गयी थी। लड़ाई के अनुभव से छावनी बहक गयी थी। अपने-अपने डेरों में सरदार मण्डली इस परिस्थिति से छुटकारा पाने का विचार कर रही थी। परले किनारे पर राघोबा को खड़ा जब से देखा तब से माधवराव भी बेचैन हो गये थे। उन्होंने मल्हारराव को बुलवाया। वे बोले,

"मल्हारबा, आज भले ही हमारी विजय हो गयी हो, परन्तु अपने पक्ष पर मुझको विश्वास नहीं होता है। काका के विरुद्ध लड़ते हुए कैसी प्राणान्तक पीड़ा होती है, यह कैसे बताऊं?"

"हम क्या यह जानते नहीं हैं? परन्तु जो परिस्थिति सामने है उसका मुक़ाबला करने के अलावा और चारा ही नहीं है। श्रीमन्त की यदि आज्ञा हो तो आख़िरी बार प्रयत्न करके देखता हूं। कौन जाने, शायद दादा साहब पिघल हो जायें!"

माधवराव चक्कर काटते हुए बोले, "मल्हारबा, आपको प्रयत्न करके देखने में कोई हानि नहीं है; किन्तु जब आप काका से कहेंगे कि समझौते के लिए आया हूं, तब काका मनमानी शर्तें सामने रखने में आगा-पीछा नहीं देखेंगे। और उन शर्तों को यदि हमने स्वीकार कर लिया तो जिन्होंने हमपर विश्वास रखकर हमारा साथ दिया है, वे हमको क्या कहेंगे? उनका विश्वास रहेगा हमपर?"

"केवल काल्पनिक विपत्तियों का चिन्तन कर श्रीमन्त इस प्रकार सन्त्रस्त न हों। आपकी तबीयत ठीक नहीं है। हम-जैसे लाखों चले भी जायें, तो जब-तक आप खड़े हैं, तबतक दसों लाख फिर इकट्ठे हो जायेंगे। और बातें तभी करनी हैं, जब वे सम्मानपूर्वक होंगी। चाहे जो शर्तें कौन स्वीकार कर लेगा?"

माधवराव की छावनी में पहरेदार गश्त लगा रहे थे। पलीतों की ज्योति हवा से उत्तेजित होकर फरफरा रही थी। छावनी में पहरेदारों की गश्त को छोड़कर सारी छावनी शान्त थी। मेघाच्छादित गगन में चन्द्र क्षीण हँसी हँस रहा था। मध्यरात्रि बीत जाने पर मल्हारबा पेशवाओं के डेरे से बाहर निकलते हुए दिखाई दिये।

मल्हारराव दोनों छावनियों के चक्कर लगाने लगे। मल्हारराव की छावनी के लोगों ने चैन की साँस ली। एक दिन मल्हारबा सन्देश लेकर आये। "माधवराव छावनी पीछे हटा ले जायें, उसके बाद ही समझौते की बात शुरू करें।" सन्देश सुनकर गोपालराव बोले,

"श्रीमन्त, इस सलाह को आप स्वीकार न करें।"

"क्यों?"

"आपकी शक्ति का अन्दाज़ लगाने के लिए दादा साहब ने यह चाल चली है। इस प्रकार अपमानित होने से रणभूमि में मृत्यु को वरण कर लेना अच्छा है। सभी लोग आपके विरुद्ध भड़के हुए नहीं हैं। आपके पीछे हम लोग हैं। जो होना है वह होने दो।"

"यह करने से क्या होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मुग़लों की फ़ौज ने काका की शक्ति बढ़ा दी है। यह अविचार करने पर जो अकारण हत्याकाण्ड होगा उसका उत्तरदायी मैं रहूँगा। गोपालराव, छावनी हटाने की तैयारी कीजिए तथा आलेगांव के पास डेरा डाल दीजिए!"

"परन्तु श्रीमन्त...."

"गोपालराव, यह हमारी आज्ञा है!"

"जो आज्ञा।" मुजरा करके गोपालराव डेरे से बाहर निकले। घोड़नदी से छावनी हटाकर माधवराव की सेना ने आलेगांव के पास डेरा डाला।

आलेगांव की छावनी में माधवराव मल्हारराव के सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब समझौता लगभग निश्चित-सा था। छावनी पर नित्य कर्म सदैव की भाँति शुरू हो गये थे। घोड़े धूलने के लिए भीमानदी पर जा रहे थे। सैनिक नदी में स्नान कर लौट रहे थे। छोटे खेमे, डेरे, चँदोवा स्वच्छ किये जा

स्वामी

रहे थे। ठण्ड पड़नी शुरू हो गयी थी। डेरे में माधवराव धुन में खड़े थे। श्रीपति उनके पास अदब से खड़ा था। घोड़े की टापों की आवाज़ सुनकर माधवराव ने उस ओर देखा। पूरी शक्ति से एक अश्वारोही माधवराव के डेरे के ओर ही दौड़ता आ रहा था। पास आते ही माधवराव ने घुड़सवार को पहचाना। वे गोपालराव थे। घोड़ा रोककर वे नीचे कूदे। उनके हाथ में नंगी तलवार थी। वे दौड़ते हुए माधवराव के पास आये—

"सरकार, धोखा हो गया! मैंने जो कहा था उस पर आपने विश्वास नहीं किया...." हाँफते हुए गोपालराव बोले! उनका चेहरा पसीने से तर हो रहा था।

"क्या हुआ? बताइए न?"

"दादा साहब चढ़ाई करने आ रहे हैं!"

"क्या कह रहे हैं?"

"क्या कहूँ श्रीमन्त? अब समय नहीं है। गुप्तचर अभी यही वार्ता लाया है। किस समय दादा साहब छावनी पर चढ़ाई कर देंगे, इसका पता नहीं।"

माधवराव सन्न होकर जहाँ के तहाँ खड़े थे। उनके कन्धे पर हाथ रखकर उनको हिलाते हुए बोले,

"श्रीमन्त! आप रुकें नहीं। छावनी अव्यवस्थित है। उसको एकत्रित कर मुकाबला किया जाय—इतना समय नहीं है। आप श्रीपति को लेकर सुरक्षित स्थान पर चले जायें। मैं तब तक पूरी शक्ति से दादा साहब को रोकने का प्रयत्न करूँगा!"

माधवराव खिन्न होकर हँसे। गोपालराव के कन्धों पर हाथ रखकर उनकी आँखों से आँखें मिलाते हुए माधवराव बोले,

"गोपालराव! मैं भाग जाऊँ? आपको मौत के मुँह में डालकर? इतना मूल्यवान् नहीं रह गया है यह जीवन! तुम जाओ। छावनी को सावधान करो। तब तक मैं तैयार होता हूँ। जो होना है वह होने दो!"

"परन्तु श्रीमन्त!...."

"मैंने कहा न—जाइए! अब समय नहीं है!"

माधवराव डेरे की ओर लौटे। छावनी में बड़ी गड़बड़ी मच गयी थी। डंका बजने लगा। 'शृंग' की आवाज़ उठने लगी। डंके की आवाज़ सुनकर भीमा के तट पर स्नान के लिए गये हुए सैनिक छावनी की ओर दौड़ने लगे।

घोड़ों पर जीनें कसकर बाँधी जाने लगीं। पत्थर के चूल्हों पर चढ़े हुए बर्तनों को ज्यों का त्यों छोड़कर पाकशाला के लोग अपना सामान इकट्ठा कर अपने-अपने खेमे में प्राण बचाने के लिए दौड़ने लगे। सेना के साथ जो अन्य लोग थे, उनके तो होश ही उड़ गये। गोपालराव छावनी के चारों ओर से भागने का अवसर ढूँढ़नेवालों को रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे।

माधवराव अपने डेरे में कपड़े पहने तैयार खड़े थे। श्रीपति ने तलवार आगे बढ़ायी। उसको उन्होंने दुशाले में खोंस लिया। उसी समय घोड़ों की आवाज़ तथा "हर हर महादेव" की अस्पष्ट घोषणा उनके कानों में पड़ी। माधवराव ने सर्र से म्यान से तलवार निकाली और श्रीपति से बोले,

"चल श्रीपति!"

"डेरे के बाहर खड़े हुए घोड़े पर माधवराव आरूढ़ हुए। श्रीपति अपने घोड़े पर सवार हो गया। छावनी से माधवराव का दौड़ता हुआ घोड़ा देखते ही सैनिकों में जोश का संचार हुआ। देखते ही देखते माधवराव के पीछे-पीछे हज़ारों सवार दौड़ने लगे। गोपालराव पटवर्धन अपने दल के साथ माधवराव से आकर मिले; परन्तु उस समय तक दादासाहब छावनी पहुँच चुके थे। मानो समुद्र का ज्वार आ गया हो; इस तरह दादासाहब का घुड़दल निर्बन्ध होकर गर्जना करता हुआ छावनी पर टूट पड़ा। उस लहर ने पहले ही धक्के में आले-गाँव की छावनी को चारों ओर से घेरकर बेदम कर दिया। वक्षस्थल से वक्ष-स्थल भिड़ गये। तलवारों की कर्णकर्कश खनखनाटों में आर्त पुकारें वातावरण को कम्पित करने लगीं। घोड़ों की टापों के नीचे लोग कुचले गये। इस आघात से सँभलकर माधवराव अपनी टुकड़ी लेकर टूट पड़े। कौन, कहाँ और किससे लड़ रहा है, इसका पता नहीं लग रहा था। दिन के प्रथम प्रहर से सूर्यास्त होने तक युद्ध चलता रहा, किन्तु युद्ध समाप्त होने के लक्षण दिखाई न दिये। माधवराव का कोई वश नहीं चला। जितनी सम्भव हो सकी उतनी सेना लेकर वे भीमा के तटपर पहुँचे और रातोंरात भीमा पार कर जो छावनी पीछे रह गयी थी उसमें दाखिल हो गये। रात-भर सैनिक आते रहे। माधवराव घायलों की देखभाल कर रहे थे।

थकेमांदे माधवराव अपने तम्बू के सामने आकर बैठ गये। ओस पड़ रही थी। सारी छावनी को निराहार रहना पड़ा था। विशाल अँगीठी दहक रही थी। आकाश की ओर लपलपाती हुई उसकी लपटों को माधवराव उदास मन से देख रहे थे। सारे सरदार सिर झुकाये खड़े थे। गोपालराव आगे आये।

"श्रीमन्त!"

माधवराव ने सिर उठाया। माधवराव का चेहरा देखते ही गोपालराव अपने आँसुओं को न रोक सके। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर वे सिसक उठे। एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर माधवराव बोले,

"गोपालराव, आपने कोई कसर नहीं छोड़ी। यश-अपयश की छानबीन करना हमारे हाथ में नहीं है। हम पूरी परिस्थिति जानते हैं। अब अधिक विनाश करवाने में कल्याण नहीं है। हम कल काका को आत्मसमर्पण कर देंगे!"

"मैं भी चलूँगा आपके साथ!" पटवर्धन ने कहा।

"नहीं! मेरे साथ किसी की जरूरत नहीं। कल मैं अकेला ही जाऊँगा!"

माधवराव चुपचाप कपड़े पहन रहे थे। श्वेतशुभ्र कुर्ता उन्होंने पहन रखा था। पैरों में चूड़ीदार पायजामा था। सिरपर पगड़ी थी तथा उसपर मोतियों का शिरपेंच एवं लड़ियाँ थीं। एकबार शिरपेंच को अच्छी तरह देखकर उन्होंने पगड़ी को पहन लिया। कमर के चारों ओर कमखाब की पट्टी लपेट लेने पर, श्रीपति के द्वारा दी गयी तलवार पट्टी में न खोंसकर, उसको उन्होंने बायें हाथ में ले लिया। कटार पट्टी में खोंसकर तथा दुशाला को बायें हाथ पर डालकर माधवराव बोले,

"चलो!"

श्रीपति के पीछे-पीछे माधवराव डेरे से बाहर निकले। उनका चेहरा गम्भीर दिखाई पड़ रहा था। गरदन तनी हुई थी। चलने की शान में कोई कमी नहीं आयी थी। डेरे के बाहर दो सौ घुड़सवार सज्जित थे। सरदारगण इकट्ठे हो गये थे। बहुतों की आँखें भीगी हुई थीं। माधवराव के आते ही सबने मुजरे किये। उनको स्वीकार कर माधवराव ने श्वेत घोड़े को पकड़कर खड़े हुए साईस को संकेत किया। घोड़े पर लाल मखमल की जीन कसी हुई थी। उनके दायें पैर में चाँदी का आभूषण राजचिह्न की घोषणा कर रहा था। घोड़ा सामने आने पर माधवराव ने उसकी लगाम हाथ में ली। इतने में त्र्यम्बक मामा आगे आये। भारी आवाज में वे बोले, "श्रीमन्त, मैं चलता हूँ!"

"किसलिए? रहने दें! मामा, हम वार्तालाप करने नहीं जा रहे हैं। शरणागति स्वीकार करने जा रहे हैं। आप छावनी की देखभाल कीजिए! जो छावनी छोड़कर जाना चाहें, उनको जाने दें।"

इतना कहकर माधवराव घोड़े पर सवार हो गये। उनके पीछे-पीछे श्रीपति भी अपने घोड़े पर सवार हो गया और मन्द गति से घोड़े चलने लगे। पीछे-पीछे दो सौ घोड़े चले जा रहे थे। आकाश में दोपहर का सूर्य चमक रहा था।

पठार पर से श्रीमन्त माधवराव जब तक ओझल नहीं हो गये, तबतक सारे सरदार उन्हें देखते रहे। माधवराव के ओझल होते ही सिर झुकाये हुए सरदार मण्डली अपने-अपने डेरों में लौट गयी।

अपने डेरे में राघोबा मखमली मसनद के सहारे बैठे हुए थे। डेरा विशाल था। डेरे के बीच के चौक के चारों दरवाजों पर चिक के परदे पड़े हुए थे। बहुमूल्य मलवान की लाल झालर चौक के चारों किनारों पर लगायी गयी थी। रुई भरा हुआ भारी गलीचा बिछा हुआ था। श्रीमान् राघोबा बड़े प्रसन्न दिखायी पड़ रहे थे। पास में ही पुरन्दरे और बापू बैठे हुए थे। राघोबा बोले,

"क्यों बापू ? कल की योजना कैसी रही ?"

"कुछ मत पूछिए ! पुरन्दरे कह रहे थे कि सारी छावनी असावधान थी ! भागने को भी समय नहीं मिला !"

पुरन्दरे हँसते हुए बोले, "शुभ्र धोतियों के पीताम्बर बन गये। आप किस ध्यान में हैं ?"

उस व्यंग्य से दादासाहब इतने हँसे कि आँखों में पानी आ गया। जंघा पर मुट्ठी मारते हुए वे बोले,

"आज शाम तक राह देख रहा हूँ। नहीं तो फिर आखिरी रास्ता है ही !"

"छि ! अब क्या वे लड़ेंगे ? छावनी पर श्रीमन्त के साथ मामा, गोपालराव—ये लोग होंगे भी या नहीं, इसमें भी सन्देह है ! सैनिकों के अतिरिक्त जो बाजारू सेवक होते हैं, उनसे क्या ऐसी लड़ाई होती है ?" बापू बोले।

गंगोबा दौड़ते हुए शिविर में घुसे। राघोबा ने पूछा, "क्यों गंगोबा ? दौड़ते हुए क्यों आये ?"

"श्रीमन्त, यदि पंख होते तो उड़कर चला आता। श्रीमन्त माधवराव पेशवा स्वयं सशरीर विजयी रघुनाथराव पेशवा से मिलने के लिए सिर झुकाये चले आ रहे हैं !"

"कौन ! माधव आ रहा है ? इस ओर ? तुमने देखा ?"

"आप देखिए न ! सारी छावनी अपने मालिक का यश देख रही है !"

राघोबा जल्दी-जल्दी उठे और डेरे से बाहर आये। उन्होंने देखा—इस समय दायीं ओर के टीले से माधवराव आ रहे थे। दो सौ घोड़े साथ होते हुए भी उनकी टापों की आवाज जितनी आनी चाहिए उतनी नहीं आ रही थी। अत्यन्त मन्द गति से वे घोड़े उतरते चले आ रहे थे।

"बापू, देखो, एक झटके में ही मिजाज कैसा उतर गया है !"

स्वामी

"श्रीमन्त को अनुभव नहीं है! अवस्था छोटी है। वे शरण आ गये हैं, यह सचमुच उन्होंने बुद्धिमानी का काम किया है। दादासाहब इनको सँभाल लें।" बापू बोले।

माधवराव पेशवा छावनी में प्रविष्ट हो चुके थे। निर्भय होकर वे देख रहे थे। उनकी गर्दन तनी हुई थी। छावनी में होकर दादासाहब के डेरे की ओर जाते हुए छावनी के सैनिक आश्चर्य से और कौतूहल से माधवराव की ओर देख रहे थे तथा माधवराव का घोड़ा पास आते ही अपने आप मुजरे कर रहे थे। उन मुजरों को स्वीकार करते हुए माधवराव आगे बढ़ रहे थे। राघोबा का डेरा दिखाई देते ही माधवराव ने दाँया हाथ उठाकर इशारा किया। उसके साथ पीछे आते हुए घुड़सवार रुक गये। माधवराव घोड़े से उतरे। तलवार हाथ में पकड़कर दुशाला की घड़ी ठीक कर उन्होंने आसपास देखा। पास खड़े हुए सैनिक को उन्होंने संकेत किया। जैसे ही वह पास आया, घोड़ा उसके हाथ में देकर वे डेरे की ओर चलने लगे। चरमर चरमर करनेवाले पैरों के जूतों के अतिरिक्त सर्वत्र नीरवता छायी हुई थी। माधवराव को सामने से आते देखकर राघोबा मुड़कर अपने डेरे में घुस गये।

डेरे के बाहर गंगोबा सिर झुकाये खड़े थे। बापू पहले ही अलग हट गये थे। माधवराव ने गंगोबा की ओर देखा, किन्तु गंगोबा को सिर उठाकर देखने की हिम्मत नहीं पड़ी। माधवराव ने जूते उतारे और चिक का परदा हटाकर वे डेरे में घुसे। बाहर जूतों के पास श्रीपति पुतले की तरह खड़ा था।

राघोबा पीठ फेरकर खड़े थे। वे झटसे मुड़े। माधवराव ने मुजरा किया।

"कौन? श्रीमन्त माधवराव पेशवे? क्या आज्ञा है आपकी?"

"क्या? हम शरणागतिऽऽ" माधवराव से आगे न बोला गया।

"शरणागति! और आप?" राघोबा जोर से हँसे, "हमारा बन्दोबस्त करने के लिए तैयार फौज लेकर निकले हुए पेशवे हमारे आगे शरणागति लेने आते हैं? आश्चर्य!"

"काका!"

"यह सम्बोधन बन्द करो! जब आप हमारे सामने लड़ने के लिए खड़े हुए, तभी चाचा भतीजे का नाता समाप्त हो गया!"

'ऐसा आप समझते होंगे! मैं ऐसा नहीं समझता। काका, यदि आप पूणे से न आये होते तो ऐसा नहीं हुआ होता?"

"ठीक कह रहे हैं! कैसे होता? हम कारागार में पड़े होते न?"

"काका, मैं यदि कहूँगा तो आपको विश्वास नहीं होगा। यह समय भी उचित नहीं है।"

"यह हमारा भाग्य है कि बात आपके ध्यान में जल्दी आ गयी ! आप कौन सी शर्त लेकर आये हैं, जरा हम भी तो सुनें।"

"कोई शर्त नहीं है, काका ! शरण में जानेवाले को कैसी शर्त ? जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा, बस इससे अधिक कुछ नहीं !"

राघोबा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। माधवराव की ओर वे ध्यान से देख रहे थे, माधवराव के चेहरे की ओर देखते ही एक हूक सी उनके हृदय में उठी। वे व्याकुल हो उठे। कुछ दबी हुई आवाज़ में वे बोले, "क्या कह रहे हैं ? हमको सच नहीं लगता !"

माधवराव के होठ थरथराये। एक बार उन्होंने बिछी हुई बैठक की ओर देखा और दूसरे ही क्षण अपनी पगड़ी उतारकर हौले से उस गलीचे के मध्यभाग में रख दी। द्वार पर उतरे हुए राघोबा के जूते उठाकर छाती से लगाते हुए वे बोले,

"काका, यह पेशवाओं का सिरपेच है; इसका अपमान न हो इसलिए गलीचे पर रखा है, नहीं तो उसको आपके चरणों में रख देता, और आपके ये जूते हृदय से लगा लिये हैं !"

राघोबा चिल्लाये, "माधव ! यह क्या करता है ? वे जूते रख दे !"

"इसमें मुझको लज्जा नहीं आती है। आप मेरे काका हैं। पिताजी में और आप में मुझको कभी अन्तर नहीं मालूम पड़ा और पिताजी के जूते हृदय से लगा लिये या सिर पर रख लिये तो इसमें लज्जा की क्या बात है ? काका, आप जैसे चाहें वैसे इस सिरपेच की व्यवस्था करें। चाहें तो पेशवाई का शासन करें। जो चाहें वह दण्ड मुझको दें। परन्तु आपसी कलह के कारण निज़ाम जैसे जन्मजात शत्रु को घर में मत लाओ ! बस, यही एक प्रार्थना करने के लिए मैं आज आप के जूते हाथ में लेकर खड़ा हूँ। अब चाहे तारिये चाहे मारिये !"

अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाली, नंगे सिरवाली, हाथों में जूते लिये खड़ी हुई माधवराव की उस मूर्ति को देखकर राघोबा का हृदय भर आया। आवेश में वे आगे बढ़े। उन्होंने वे जूते छीनकर दूर फेंक दिये और माधवराव को अपनी बाँहों में भर लिया। राघोबा की आँखों से टपकनेवाले आँसू माधवराव के सिर पर पड़ रहे थे। राघोबा के आलिंगन से मुक्त होने पर माधवराव स्तब्ध रह गये। राघोबा बोले, "माधव ! अब कुछ भी मत कहो। इस समय छावनी पर लौट जाओ। हम सन्ध्या समय अपनी छावनी यहाँ से हटा देंगे और तेरी छावनी पर आयेंगे। वहाँ निश्चिन्त होकर बातें करेंगे। जा, अब कुछ मत कर !"

माधवराव मुजरा करके पीछे मुड़े। राघोबादादा बोले, "माधव, तू पगड़ी भूल गया है !"

"भूला नहीं हूँ, काका ! जानबूझकर रख दी है !"

माधवराव ने पैर उठाया, तभी कानों में शब्द पड़े, "ठहर !"

हाथ में पगड़ी लेकर राघोबा पास आये। माधवराव के सिर पर पगड़ी रखते-रखते उनका ध्यान माधवराव के कुर्ते की ओर गया। उनके श्वेतशुभ्र कुर्ते पर छाती के पास मिट्टी के दाग लग गये थे, उनको झाड़कर राघोबा बोले,

"देख, तेरे कुर्तेपर दाग पड़ गये !"

"रहने दीजिये काका ! वे दाग इतनी जल्दी नहीं मिटेंगे !"

और तत्क्षण मुड़कर माधवराव डेरे से बाहर निकले।

जो कुछ हुआ, उससे व्याकुल होकर राघोबादादा विचारमग्न थे कि बापू अन्दर आये। राघोबा भरे हुए गले से बोले, "बापू !"

"दादा साहब, मैं बाहर ही खड़ा था ! सारी बातें सुन ली हैं मैंने !"

"क्या करूँ मैं ! माधव को सामने देखते ही नाना की याद आ जाती है। हृदय भर आता है। सब कुछ भूलकर उसको बाँहों में भर लेने के बिना प्राणों को चैन ही नहीं पड़ता है !"

"आप का स्वभाव है प्रेमी; परन्तु राजनीति में यह नहीं चलता है। भावुकता के लिए राजनीति में कोई स्थान नहीं है, दादासाहब ! आप ही जब इस तरह आचरण करने लगते हैं तब हम जैसों की बड़ी विचित्र दशा हो जाती है। अकारण ही दोष के भागी हम बन जाते हैं !"

"मेरे स्थान पर यदि आप होते तो आप भी यही करते !"

"हाँ ! शायद ऐसा ही होता; किन्तु परिणाम कुछ और निकलता !"

"अर्थात् ?"

"श्रीमान् का इरादा पुणे पर चढ़ाई करने का था, उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, यही कहना चाहता हूँ।"

"अब रह ही क्या गया है ? माधव ने पेशवाई का सिरपेंच हमारे पैरों में रख दिया है। उसको हम कभी सिर पर धारण नहीं कर सकते हैं, यह समझते हैं क्या आप ?"

"नहीं जी, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु यदि ऐसा किया तो यह भयंकर भूल होगी !"

"क्यों ? कौन रोकेगा हमको ?"

"दादासाहब, काल आ भी गया हो तो समय अभी नहीं आया है। श्रीमन्त माधवराव के प्रति लोगों के मन में अभी आदर है। नाना साहब की याद अभी

भुलायी नहीं गयी है। होलकर और शिन्दे—इनकी सहायता अभी निश्चित होनी है तथा माधवराव के कृपापात्र सरदार अभी शक्तिशाली हैं।"

"तो फिर आप क्या करने के लिए कहते हैं ?" राघोबा बोले। उनको कुछ सूझ नहीं रहा था।

"माधवराव को पेशवा पद पर रहने दें और सारी सत्ता अपने हाथ में ले लें। अपने मार्ग को पहले निष्कंटक कर लीजिए। इसका दायित्व अपने आप माधवराव के ऊपर पड़ेगा। विजयी होकर भी माधवराव को पेशवा बना रहने दिया, इसीलिए प्रजा धन्यवाद करेगी। यह मेरी नेक सलाह है।"

राघोबा विचारमग्न हो गये। क्षणभर बाद हँसते हुए वे बोले, "बापू ! हम भी मनुष्य को परखना जानते हैं। आप जैसे लोगों को अपने पक्ष में हमने यों ही नहीं रखा है। छावनी को पारगांव ले जाने की व्यवस्था कीजिए !"

और दूसरे दिन पारगांव पर माधवराव और राघोबा दादा दोनों के सैनिकों की एक जगह छावनी पड़ी।

राघोबा के डेरे में विचारचर्चा शुरू हो गयी। माधवराव की पूर्ण शरणागति के कारण गोपालराव और त्र्यम्बक राव उद्विग्न होकर माधवराव की अनुमति लेकर पीछे लौटे। पारगांव की छावनी में माधवराव अकेले ही वर्तमान परिस्थितियों का सामना करने लगे।

राघोबा के डेरे में माधवराव उपस्थित हुए। बापू, गंगोबा, मल्हारबा, पुरन्दरे—ये लोग वहां बैठे हुए थे। मल्हारबा ने बात प्रारम्भ की, "दादा साहब, आगे क्या करना है ?"

"मल्हारबा, माधव से क्या हमारी शत्रुता है ? वह मुझको पुत्र से भी अधिक प्रिय है। उसकी अवस्था छोटी है। उसके हाथ से गलतियां होती हैं तो वे हमको ही सहन करनी चाहिए। उसको अनुभवी बनाकर, वह राजकाज अच्छी तरह देखने लग जाय, राज्य को सँभालने में समर्थ हो जाय कि हमारा कर्तव्य समाप्त ! फिर हम कहीं भी गंगा तट पर शेष जीवन बिता देंगे।"

"सच है !" बापू बोले, "श्रीमन्त की देखभाल करते हुए राजकाज चलाने में ही दादा साहब की शोभा है।"

"कैसी काम की बात कही है !" मल्हारबा बोले।

"इसलिए हमारा कहना यह है कि अब आगे माधव हमारी सलाह के अनुसार चले। सखाराम बापू राजकाज देखेंगे। माधव पर हमारा क्रोध नहीं है; परन्तु जिनके सिखाने से माधव इस फन्दे में पड़ा, उन कपटी लोगों पर हम किसी भी प्रकार की दया नहीं करेंगे ! हम साफ़-साफ़ कह रहे हैं !"

"परन्तु काका, मैंने किसी की कोई बात सुनकर ऽऽ"

"चुप माधव, तू शरणागत है, यह मत भूल। और शरणागत का कोई मत नहीं होता है।"

माधवराव ने चौंककर राघोबा दादा की ओर देखा। राघोबा कह रहे थे, "इन घरभेदियों की सलाह के कारण हमको घर से निकलकर निजाम से मित्रता करनी पड़ी। हमारे मामले में उन्होंने अपनी मित्रता को निभाया और हमारी सहायता के लिए दौड़े आये। हमको उन्हें समझाकर भेजना चाहिए। इसके लिए जिस प्रदेश का हमको त्याग करना पड़ेगा, उसका उत्तरदायित्व भी एक तरह से माधवराव पर होने से वह इस समझौते को मान्यता दे।"

कुछ क्षण रुककर माधवराव बोले, "जैसी आज्ञा!"

"बापू!" राघोबा बोले, "मुरादखान और विट्ठल सुन्दर दोनों महानुभावों के पास सूचना भिजवा दो कि हमारा समझौता हो गया है तथा दोनों को सम्मानपूर्वक छावनी में ले आइए। श्रीमन्त माधवराव पेशवे उनसे यहीं मिलेंगे।"

मल्हारबा बोले, "आपने सत्ता अपने हाथ में ले ली, यह ठीक किया। आपके हाथों में श्रीमन्त हैं, यह हम जानते हैं। अब आप दोनों आनन्द से पुणे जायें। हमको भी लौटने की आज्ञा दी जाये।"

"मल्हारबा, आप इस तरह नहीं जा सकते। हम ग्वालियरकर को पत्र भेजनेवाले हैं। राज्य की व्यवस्था ठीक करके ही हम पुणे जायेंगे। निजाम को समझौता करके वापस भेज दें उसके बाद आप चले जायें, आप इसी समय लौटने की बात कर रहे हैं?"

"जैसी आज्ञा! मुझको इस योजना का पता नहीं था।" मल्हारबा विचार-मग्न होते हुए बोले।

"बापू! कल मुरादखान आयेंगे। उनकी व्यवस्था उत्तम होनी चाहिए, यह ध्यान रहे!"

दूसरे दिन मुरादखान आये। विचार-विमर्श हुआ। उनके बाद ही निजाम आ गया। उदगीर की लड़ाई में जीता हुआ मुल्क और दौलताबाद का किला दादा साहब ने निजाम को दे दिया। इस सम्पूर्ण विचार-विमर्श के दौरान माधवराव को अत्यधिक मानसिक कष्ट हुआ। उनका ज्वर फिर लौट आया। वे अपने डेरे में ही पड़े रहने लगे।

एक दिन सन्ध्या समय माधवराव डेरे में बैठे हुए थे। समइयाँ जल रही थीं। चौकी पर लिखने का सामान रखा था। माधवराव चौकी के पास गये। लिखने का वह सामान देखकर उनको तीव्रता से गोपिकाबाई की याद आयी। अपनी माताजी को पत्र लिखने के लिए वे अनेक बार बैठे थे, परन्तु क्या लिखा जाय, यह समझ में न आने के कारण उन्होंने वे पत्र अधूरे ही छोड़ दिये थे।

मन में निश्चय कर वे चौकी के पास बैठे। उन्होंने कलम स्याही में डुबोयी और कागज सामने रखा। डेरे के द्वार पर श्रीपति खड़ा हुआ पहरा दे रहा था। माधवराव ने देह पर शाल डाल रखी थी। वे अपने घुमावदार अक्षरों में गोपिकाबाई को पत्र लिख रहे थे :

"गुरुजनों को पत्र द्वारा बालक की खबर-सुध लेते रहना चाहिए। इसके बाद इधर की बात। एक घटना हो गयी; इसलिए आपका हृदय उदास हो गया है, यह सुना है। समय सदा एक सा रहता है, यह बात नहीं है। जिस समय जो होनहार होता है, वह होकर ही रहता है, इसका उपाय क्या है? समय हमारे अनुकूल नहीं है। इसलिए जो अच्छा लगे, वही कीजिए। बुरा अनुभव मत कीजिए और न उदास रहिए। हमने भी समय पर दृष्टि रखकर उत्तम दिखाई देने की नीति अपना ली है। किसी भी घटना के प्रति आप उदासीनता न दिखायें और व्यवहार में जो बुरा न दिखाई दे वह करें। हमने सुना है कि आप किसी स्थान पर जाकर कुछ दिन रहना चाहती हैं, यह आप कम से कम न करें, ऐसा होना यहाँ की घटनाओं के अनुकूल नहीं होगा। सखाराम पन्त आबा जब आते हैं, हमसे भी अच्छी तरह बोलते हैं, किन्तु उलझे हुए हैं।"

माधवराव ने माथे से पसीना पोंछा। पुनः क़लम उठायी। उसी समय बाहर पदचाप सुनाई दी। उन्होंने सिर उठाकर देखा। श्रीपति जल्दी से दौड़कर अन्दर आया और बोला,

"सरकार!"

"क्या है?" माधवराव ने पूछा।

"सरकार धोखा हुआ! चारों ओर से गारदी[1] आ रहे हैं।"

"गारदी?" माधवराव ने देखा। श्रीपति हाथ में नंगी तलवार लेकर खड़ा था। वह बुरी तरह डर गया था। माधवराव हँसकर बोले, "श्रीपति पहले तलवार म्यान में कर और शान्तिपूर्वक द्वार में खड़ा रह! कुछ भी हो जाये, लेकिन अब तलवार फिर से म्यान से बाहर मत निकालना, यह मेरा तुझको सख्त आदेश है!"

श्रीपति ने हताश होकर तलवार म्यान में रख ली। घबड़ायी हुई दशा में वह दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया। माधवराव के डेरे के चारों ओर गारदीयों की चौकियाँ खड़ी की जा रही थीं। उनका शोर कानों में पड़ रहा था। माधवराव ने क़लम उठायी और अधूरा पत्र पूरा करने लगे :

"....प्रधानमन्त्री की कपटयुक्ति के कारण हमारे राज्य के बन्धन टूटते जा रहे हैं। पहले ही से सावधानी रखी होती तो सभी अपना-अपना काम करते

१. गारदी अर्थात् गारद के सिपाही, रक्षक सैनिक।

हुए अनुशासन में रहते। यह न होने के कारण सारा मुल्क डूब गया। लोग बहुत विश्वासघाती हो गये हैं। स्वामी का प्रभाव नहीं रहा। शत्रु बलवत्तर हो गये हैं। इतने पर भी, यदि पैसा होता तब भी सब बातें इसी तरह के दाव-पेचों से सँभाली जा सकती थीं। परन्तु पैसा नहीं है। फ़ौज कैसे रखी जाय? जब फ़ौज नहीं है तो राज्य ही कैसे रहेगा? इस तरह गहराई से देखा जाय तो सब कुछ मुश्किल लगता है। अब जो बातें हो गयी हैं, उन्हीं को दृष्टिपथ में रखिये। इनसे ही जो होना होगा, वह होगा। बिगड़ी हुई परिस्थिति में यदि कुछ और हो गया तो सर्वनाश हो जायेगा। इसलिए जो हुआ वह उत्तम है। एक विचार रहना चाहिए। वह है ही। परिणाम देनेवाला ईश्वर समर्थ है ही। पिताजी का पुण्य है।"

पत्र पूरा होते ही पत्र पर बालू डालकर उन्होंने उसको झटक दिया। पत्र को ढंग से गोल घड़ी की और उसको रख दिया। वे उठे। पलंग की ओर जाते हुए वे बोले,

"श्रीपति, अरे पागल, गारदियों का पहरा लग गया है इसलिए इतना डरता है? कितने हैं गारदी?"

श्रीपति बोला, "सरकार, बाहर आकर तो देखिए! डेरे के चारों ओर गारदियों की भीड़ लगी हुई है। आसानी से हजार से ज्यादा होंगे!"

"तो इससे इतनी चिन्ता करने का क्या कारण है? यह इस बात को प्रकट करता है कि हम साधारण नहीं हैं, हमारा बड़ा महत्त्व है।" देह पर चादर ओढ़ते हुए माधवराव बोले, "और श्रीपति, जहाँ सैकड़ों गारदियों का पहरा बैठा हुआ है वहाँ अकेला श्रीपति क्या कर सकेगा? हम सोते हैं। तू भी सो।"

रात बढ़ती जा रही थी। छावनी में केवल पहरेदार जग रहे थे। और सब सो रहे थे। किन्तु माधवराव की आँखों में नींद नहीं थी। मानसिक व्यथा के साथ-साथ देह में ज्वर चढ़ता जा रहा था।

आलेगांव अब रणांगन न रहकर राजनीति का अड्डा बन गया था। माधव-राव के साथी गोपालराव, त्र्यम्बकराव माधवराव का पराजय होते ही व्याकुल होकर वापस चले गये थे। छावनी में रह गये थे राघोबा से मिले हुए सरदार, निजाम के साथी लोग। माधवराव पर सख्त पहरा था। पेशवा के रूप में यद्यपि उनका गुड्डा आगे बढ़ाया जाता था, किन्तु पूरी सत्ता राघोबा के हाथ में थी, यह सब जानते थे। माधवराव ने बचे हुए नाना फड़नीस को नौ

गोपिकाबाई के पास भेज दिया था। वे पूरी तरह से अकेले रह गये थे।

दिन बीत रहे थे। निजाम और पेशवाओं की छावनियों का डेरा उठ नहीं रहा था। प्रतिदिन राघोबा और विट्ठल सुन्दर का मिलना-जुलना हो रहा था। होलकर, गायकवाड़, जानोजी भोसले मध्यस्थता कर रहे थे। दावतें हो रही थीं। राघोबा का विजयोत्सव दोनों छावनियों में मनाया जा रहा था।

एक दिन सन्ध्या-समय राघोबा दादा माधवराव के डेरे की ओर आये। राघोबादादा के आते हुए दिखाई देते ही पहरे पर खड़े गारदियों ने मुजरे किये। उनको स्वीकारते हुए राघोबादादा डेरे में आये। माधवराव आसन पर बैठे हुए थे। राघोबादादा अन्दर आते ही बोले,

"माधव, तबीयत कैसी है?"

"ठीक है, काका! पिछले चार दिनों से ज्वर नहीं है।"

"मेरा यही अन्दाज था। कल हम लोगों को शिकार पर चलना है।"

"शिकार?"

"हां! निजाम अली का खास निमन्त्रण है।"

"काका, यदि हम नहीं आयें तो काम नहीं चलेगा क्या?"

"जो कुछ मैं कहूं उसके ठीक उलटे चलने का निश्चय कर लिया है क्या? हमने निजाम अली को यह वचन दिया है कि तुम जरूर आओगे।"

"परन्तु काका—"

"माधव यह प्रार्थना नहीं, आज्ञा कर रहा हूं। कल प्रातःकाल तैयार रहो। निजाम की ओर से सूचना आने पर सन्देश भेजूंगा। समझ गये?"

"जी हां! काका!" माधवराव बोले।

राघोबा दादा चले गये। माधवराव विचारमग्न होकर इधर-उधर चहल-क़दमी कर रहे थे। छावनी पर ठण्ड उतर रही थी। श्रीपति के पुकारने पर माधवराव सावधान हुए। श्रीपति शाल लेकर खड़ा था। उस शाल को ओढ़ते माधवराव बोले,

"तूने सुन लिया न?"

"जी!"

"कल हमारी पोशाक तैयार रखना। देर नहीं होनी चाहिए। बिना कारण चार जनों में तमाशा न हो।"

"हथियार कौन-से लेने हैं?"

माधवराव ने हँसकर श्रीपति की ओर देखा और कहा, "जो दिखावटी हों बस वही। अब हथियार धारण करने का अधिकार हमको नहीं है।"

प्रातःकाल माधवराव शिकार के लिए खास पोशाक पहनकर तैयार थे।

स्वामी

इतने ही श्रम से माधवराव को पसीना आ गया था। उसको पोंछकर वे सामने देखने लगे। सर्वत्र शान्ति फैली हुई थी। कोसभर तक क्षेत्र बिलकुल निर्जन दिखाई दे रहा था।

धीरे-धीरे चारों ओर हलचल दिखाई देने लगी। माधवराव ने श्रीपति को संकेत किया। श्रीपति आगे आया। माधवराव बोले,

"श्रीपति, मेरी दुर्बीन दो।"

श्रीपति ने दुर्बीन की पेटी खोलकर दुर्बीन माधवराव के हाथ में दे दी। उसके शीशों को पोंछकर माधवराव ने वह आंखों पर लगा ली। दूर टीले पर हरी छतरी दिखाई पड़ रही थी। अन्य टीलों पर भी सवार दिखाई पड़ रहे थे। सारे प्रदेश का निरीक्षण करते हुए माधवराव ने दृष्टि चारों ओर घुमायी और फिर आंखों से दुर्बीन हटा ली। माधवराव ने सहज ही श्रीपति से पूछा,

"श्रीपति, शिकार की पूरी तैयारी हो गयी, देख! परन्तु शिकार कब शुरू होगी?"

"अब होने ही वाली है जी! वह नीचे प्रदेश दिखाई दे रहा है न, वह जाड़ों में पकनेवाली ज्वार है। वह रामवृक्षों का वन है। उसमें ही कहीं हिरन होंगे।"

श्रीपति का उपर्युक्त कथन समाप्त हुआ ही था कि चारों टीलों पर से एक के बाद एक शृंग बजने की आवाजें आयीं। माधवराव ने फिर दुर्बीन आंखों से लगायी। नलिका पूरी लम्बी कर देने पर मध्यभाग स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। उस आवाज के डर से भड़का हुआ हिरनों का झुण्ड छलांगें भरता हुआ पूरे वेग से दौड़ रहा था। ऊँचाई में कुछ कम किन्तु अत्यन्त आकर्षक दिखाई देनेवाले लाख के रंग के हिरनों को माधवराव देख रहे थे। हिरनों की गति के साथ दृष्टि घूम रही थी। आवाज के विरुद्ध दिशा में हिरन जा रहे थे। देखते ही देखते वे दूसरे छोर पर पहुँच गये। तब तक उनके सामने से आवाज उठने लगी। हिरन रुक गये। उन्होंने देखा कि सामने के टीले से चौकड़ी भरते हुए पच्चीस-तीस घोड़े उतर रहे थे। वह झुण्ड पीछे मुड़ा। उस झुण्ड में बड़ा बारहसिंगा नर सबका ध्यान खींच रहा था। धीरे-धीरे अन्य हिरनों ने रास्ता निकाल लिया। वे सटक गये। सारे मैदान पर अकेला वही नर रह गया। थका हुआ, डरा हुआ। हिरनों में बारहसिंगा वैसे भी बड़ा सुन्दर होता है। वह डरा हुआ उत्तम हिरन होशहवास खोकर चारों ओर देख रहा था। दौड़ रहा था। जिस ओर दौड़ता था, उसी ओर आते हुए लोग दिखाई दे रहे थे। जब अकेला हिरन दिखाई दिया तब शिकार प्रारम्भ हुआ। सबने अपने-अपने भाले ताने। बारहसिंगा हाँफता हुआ एक रामवृक्ष के पेड़ के नीचे खड़ा था। उसके

जा रहे हैं। कहना कि क्षमा करें।" और माधवराव ने घोड़ा मोड़ा।

रात में माधवराव बिस्तर पर बेचैन होकर लेटे हुए थे। राघोवा के डेरे से आनेवाली गाने की आवाज अस्पष्ट रूप में कानों में पड़ रही थी। रह-रहकर माधवराव को आंखों के आगे वह बारहसिंगा दिखाई दे रहा था....।

कड़ाके की ठण्ड आलेगांव की छावनी पर पड़ रही थी। प्रातःकाल का घना कोहरा बढ़ते हुए प्रकाश के साथ विरल होता जा रहा था। माधवराव पूजा समाप्त करके अपने डेरे से बाहर निकले। गारदियों का डेरे के चारों ओर कहीं-कहीं पहरा था। गारदियों की टोली में अभी जगार दिखाई नहीं दे रही थी। माधवराव डेरे के प्रवेश द्वार से बाहर आये। गारदी बारीकी से माधवराव का निरीक्षण कर रहा था, परन्तु माधवराव का ध्यान उसकी ओर नहीं था। कानटोपी ठीक करते हुए वे खड़े-खड़े छावनी पर दृष्टि घुमा रहे थे। जहां-जहां दृष्टि जा रही थी, वहां-वहां सरदारों की छावनियां, प्रत्येक के अलग-अलग निशान दिखाई दे रहे थे। दूर आसफशाही छावनी अस्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

शरणागति स्वीकार किये हुए आलेगांव पर लगभग छह महीने व्यतीत हो चुके थे। इस अवधि में अनेक परिवर्तन हो गये थे। सत्ता हाथ में आते ही राघोवा ने बदला लेना प्रारम्भ कर दिया। माधवराव की समस्त राजनीति को आमूलाग्र बदलने के लिए मानो उन्होंने बीड़ा ही उठा रखा था। भानुजी से परम्परागत फड़नवीसी लेकर वह चिन्तो विट्ठल को दे दी गयी। त्र्यम्बकराव से प्रधान का पद लेकर वह कार्यभार सखाराम बापू को सौंपा। गोपिकाबाई उस समय सिंहगढ़ पर थीं। माधवराव की प्रार्थना पर ध्यान न देकर राघोवा ने सिंहगढ़ का दुर्ग सखाराम बापू के अधिकार में दे दिया। पुरन्दर पेशवाओं का खास किला था, वह नीलकण्ठ आबाजी पुरन्दरे के हाथों में सौंप दिया, साथ ही पेशवाई का उपमन्त्री पद भी दिया। माधवराव के साथी भयभीत हो गये थे। त्र्यम्बकराव और गोपालराव अपने-अपने गांवों में जाकर परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार बैठे थे। परन्तु माधवराव को जो सबसे बड़ा दुःख था वह और ही था। निजाम के साथ मित्रता करने के फन्दे में राघोवा ने बड़ी सरलता से साथ लाख का प्रदेश और दौलताबाद का दुर्ग—जिनको बड़े पराक्रम से भाऊ साहब पेशवा ने प्राप्त किया था—निजाम के हाथों में दे दिया। इससे भी बुरी बात यह थी कि जिन छत्रपति से पेशवाओं की सामर्थ्य निःसृत होती, वह शक्ति अपने हाथ में रखने के उद्देश्य से राघोबा ने छत्रपति राजाराम को हटाकर उनके स्थान पर जानोजी भोसले को छत्रपति बनाने का अभियान जोर-शोर से प्रारम्भ

कर दिया। जानोजी का देवाजी पन्त, निजाम का विट्ठल सुन्दर और राघोबा का सखाराम बापू—ये तीनों मिलकर इस षड्यन्त्र को सफल करने का जाल बुन रहे थे। यह सब शान्तिपूर्वक देखने के अतिरिक्त और कुछ माधवराव कर ही नहीं सकते थे।

भावी राज्य की सारी योजना बनाकर राघोबा ने छह महीने से आलेगाँव पर पड़ी हुई छावनी उठवायी। माधवराव के दायें हाथ गोपालराव पटवर्धन के प्रति बदला लेने की भावना से सुलगते हुए राघोबा ने मिरज की ओर अपने क़दम मोड़ दिये।

दादा साहब मिरज की ओर आ रहे हैं, यह पता चलते ही गोपालराव और उनके पिता गोविन्द हरि ने अपने मिरज को अड्डा बनाना प्रारम्भ कर दिया। दादा साहब जब बारामती पर पहुँचेंगे, तब वहाँ उनसे लड़ने का निश्चय त्र्यम्बकराव मामा ने किया। राघोबा ने सबसे पहले सातारा जाकर भवानराव प्रतिनिधि को हटाकर वह पद अपने लड़के के नाम कराया और फिर मिरज की ओर कूच कर दिया। मिरज जीतना जितना सरल समझ रखा था, उतना सरल नहीं निकला। गोविन्दहरि ने दृढ़ता से मुकाबला किया। दो महीने की लड़ाई के बाद गोविन्द हरि ने शरणागति स्वीकार की। गोपालराव पटवर्धन अन्त में निजाम से जाकर मिल गये। राघोबा ने गोपालराव की जो दुर्दशा की उसको देखकर माधवराव के मानसिक कष्ट की सीमा न रही। जिन गोपालराव की मित्रता की खातिर, स्वयं अपने श्वसुर को पराजित कर माधवराव ने पटवर्धनजी को मिरज दिया था, उन गोपालराव को मिरज से भगाकर राघोबा ने निजाम का आश्रित बना दिया।

हाथ में आयी हुई सत्ता के नशे में तथा विजय के उन्माद में राघोबा ने माधवराव के प्रारम्भिक कार्यकाल के सभी लोगों के काँटों को दूर करने की शुरुआत की जरूर, परन्तु वह नशा और वह उन्माद अधिक देर तक नहीं टिक सके। जिस समय वे मिरज से कर्नाटक पर चढ़ाई करने की योजना बना रहे थे, उसी समय एक के बाद एक अनेक खबरें राघोबा के कानों में टकराने लगीं। निजाम ने जानोजी भोंसले के साथ साठ-चालीस के समझौते पर अपनी मुहर लगा दी। भोंसले ने छत्रपति-पद के लोभ में समझौता करते समय अच्छी तरह विचार नहीं किया। भोंसले ने भीमानदी के दक्षिण की छत्रपति के स्वराज्य की ही सीमाएँ केवल ध्यान में रखीं तथा उतने ही राज्य को मान्यता देकर शेष प्रदेश को एकदम छोड़कर वे मुक्त हो गये। निजाम की पैंतालीस हजार फ़ौज, भोंसले की तीस हजार फ़ौज, इसके अतिरिक्त डेढ़ सौ तोपें और दस हजार गारदी लेकर निजाम भोंसले के साथ भिवरा नदी के किनारे आ

पहुँचा था। इन सब वार्ताओं ने राघोबा दादा की नींद हराम कर दी थी।

अपने डेरे में राघोबा दादा धीरे-धीरे चहलक़दमी कर रहे थे। माधवराव चुपचाप मसनद के सहारे बैठे हुए थे। सखाराम बापू सिर झुकाये खड़े थे। निज़ाम ने राघोबा को खलीता भेज दिया था। उसमें वे सब क़िले लौटाने को कहा था जो निज़ाम से लिये गये थे। तथा यह शर्त भी लगायी थी कि आगे से सारा राजकार्य निज़ाम-भोंसले की सलाह के अनुसार किया जाये। उस पत्र को हाथ में नचाते हुए राघोबा क्रोध से थर-थर कांपते हुए बोले,

"बापू! चुप क्यों बैठे हैं? अब आप क्या करने के लिए कहते हैं?"

बापू कुछ नहीं बोले। इससे राघोबा का पारा और अधिक चढ़ गया। वे बोले, "इसी दावँपेच के लिए आपने हमको घर से बाहर निकाला था? अब निज़ाम का कैसे मुक़ाबला किया जाये, इसका सम्पूर्ण उत्तर चाहिए हमको? बोलो बापू! यदि इस परिस्थिति से हम बाहर नहीं निकल सके तो इसका सारा दोष आपके मत्थे मढ़ा जायेगा, यह ध्यान रखना!"

"निज़ाम की फ़ौज से लड़ने लायक़ अपनी तैयारी नहीं है। निज़ाम, भोंसले, गोपालराव, रामचन्द्रराव जाधव आदि लोगों के मिलने से उसकी ताक़त दसगुनी बढ़ गयी है। इसलिए ...." बापू हिचकिचाये।

"इसलिए! बोलिए, क्या कहना चाहते हैं आप?"

"इसलिए यदि समझौता कर लिया जाये तो..."

"समझौता! सुन माधव, यह हमारे कर्ताधर्ताओं की अक़्ल है! कहते हैं—समझौता कर लिया जाये!" राघोबा दादा धरती पर खलीता फेंकते हुए बोले।

कुछ क्षण शान्ति रही। राघोबा माधवराव की ओर मुड़कर बोले, "माधव, तेरा क्या विचार है?"

"मैं क्या कह सकता हूं काका? मेरे हाथ में है ही क्या?" माधवराव बोले।

"तुम्हें आनन्द हो रहा होगा न?" राघोबा ने पूछा।

"किस लिए?"

"निज़ाम अब हमको ठीक कर देगा इसलिए?"

"काका! राज्य पर संकट आये, राज्य डूब रहा हो, ऐसे समय में व्यक्तिगत शत्रुता निभायी जाये, यह विचार मेरे मन में आ ही कैसे सकता है? यह तो ऐसा ही है जैसे घर में खटमल होने पर घर में ही आग लगा दी जाये!"

"फिर तू बोलता क्यों नहीं है?"

"क्या कहूं, काका? मैं तो आपका क़ैदी हूं। आप जैसा कहेंगे, वैसे ही

पालने का वचन मैंने दिया है। आपने मुझसे पूछा, यही आपकी महत्ता है!"

"नहीं श्रीमन्त" बापू बोले, "दादा साहब सच्चे मन से पूछ रहे हैं। द्वार पर शत्रु खड़ा हो, ऐसे समय में आपका तटस्थ की तरह बोलना शोभा नहीं देता।"

"बापू, यह आप ही कह रहे हैं?" माधवराव बापू की ओर भेदक दृष्टि से देखते हुए बोले, "आनन्द के अवसर पर प्रीतिभोज का आयोजन किया जाने पर आपने काका को आसन से उठा दिया; जब तुम्हारे कथनानुसार आलेगाँव पर छावनी डाल दी थी तब तुमने काका को अकस्मात् हम लोगों पर टूट पड़ने को प्रेरित किया। राज्य का कार्य-भार भूल गये। सारी सत्ता हाथ में आ गयी है, यह जानकर तुम पहले के विश्वासपात्र निष्ठावान् लोगों से प्रतिशोध लेने के लिए हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गये। गोपालराव-जैसे परम्परागत निष्ठावान् सेवकों को तुमने निर्वासित कर मुगलों का आश्रय लेने को मजबूर कर दिया। आज निज़ाम बलवत्तर है। कल को यदि उसने विजय प्राप्त कर ली तो उसका सारा दोष काका के ऊपर आयेगा। तुमको कोई भी दोष नहीं देगा!"

"ऐसा ही होगा! माधव, बिलकुल ऐसा ही होगा!" राघोबा हताश होकर बोले।

"जो कुछ होना था, वह हो गया" माधवराव बोले, "जो होनेवाला है, वह अब भी हमारे हाथ में है।"

"क्या मतलब?"

"काका, आपको देखकर कौन विश्वास कर लेगा कि ये वे ही स्वच्छन्द विहारी राघोबा हैं जिनकी तलवार अटक तक पहुँची थी, जो निज़ाम के आक्रमण से इतने हताश हो गये? पेशवाई के समझदार लोगों में जिनकी गिनती होती है, वे बापू ये ही हैं क्या, जो आपको सुलह करने की सलाह दे रहे हैं? काका, ईर्ष्या के वशीभूत होकर तलवार चलाने में और व्यवस्थित ढंग से राज्य-कार्य चलाने में बहुत बड़ा अन्तर है; बहुत बड़ा अन्तर है!"

"जो बातें हो गयीं, वे क्या लौटायी जा सकती हैं?" राघोबा दाशा बोले, "अब क्या किया जाये यह बता?"

"बापू, होलकर को पत्र लिखो!"

"लिखे हैं। परन्तु गंगोबा तात्या की शर्तें बड़ी विकट हैं। निज़ाम की आहट पाते ही पत्र भेज दिये। मनाने के लिए भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं हम लोग!"

"मनाने के लिए? मल्हारबा को? बापू, इसमें उनका दोष नहीं है। घर के भेदिये होने से ही ये आत्मघाती आदतें पड़ी हैं। गद्दर पर दूसरे की सत्ता होने का अर्थ है कमाने का सुअवसर—यह सुविधावादक विचार हमारे श्रेष्ठ

सरदारों ने अपने मन में कर रखा है। उनको शीघ्र खलीता भेजिए। लिखिए कि हम यह मुहीम देख रहे हैं, हम एक हैं। वापू, अब मिरज को अविलम्ब छोड़ने का विचार कीजिए। एक जगह रहकर मुहीम का काम नहीं हो सकेगा।"

"निजाम पुणे पर चढ़ाई करनेवाला है। वह पुणे पहुँचे उससे पहले ही हम लोगों को पुणे चलना चाहिए!" राघोवा ने सलाह दी।

"यदि ऐसा किया तो निजाम को चाल सफल हो जायेगी। साथ ही हम भी कहीं के नहीं रहेंगे!" माधवराव बोले।

"श्रीमन्त सच कह रहे हैं! वर्तमान परिस्थितियों में निजाम के सामने जाने से काम नहीं चलेगा। फ़ौज वरक़रार रखी जाये इतना पैसा भी पास नहीं है।"

"उसकी चिन्ता मत करो! काका, हम लोग औरंगावाद पर चढ़ाई कर दें।"

"क्या कह रहा है माधव?" राघोवा आश्चर्यचकित होकर बोले।

"निजाम हमसे मिलने के लिए हर सम्भव प्रयत्न कर रहा है। उसके सामने पड़ना व्यर्थ है। यदि जाओगे तो अनर्थ हो जायेगा। इसलिए जैसा शिवाजी ने किया था, उसी नीति का आचरण करना है, हम लोग निजाम के प्रदेश को वेचिराग़ करते चले जायेंगे। तब तक मल्हारवा हमसे आकर मिल जायेंगे। गोपालराव भी हमारी प्रार्थना अस्वीकार करेंगे, ऐसा लगता नहीं है। जब तक हमारी फ़ौज इकट्ठी होगी तबतक हम निजाम को भुलावा देते रहेंगे। हमारे आगे जाने की बात जब उसके कानों तक पहुँचेगी, तब वे मुड़ेंगे। तबतक वह थक चुका होगा। छापामार युद्ध से हम लोग उसको सहज ही परास्त कर देंगे!"

"परन्तु खर्च का प्रबन्ध?" वापू ने पूछा।

"खर्च के लिए अब किसी अन्य प्रदेश पर आक्रमण करने का समय नहीं है। सरदारों पर आय का चौथा भाग देने का आदेश जारी कीजिए। उनकी दृष्टि में यह बात अच्छी तरह ले आइए कि यदि हम रहे तो वे भी रहेंगे। वापू! यह बातें करने का समय नहीं है। काम में लगिए!"

वापू जल्दी-जल्दी वाहर चले गये। राघोवा अपलक दृष्टि से माधवराव की ओर देख रहे थे। माधवराव ने पूछा,

"क्या देख रहे हैं काका?"

"कुछ नहीं!" राघोवा बोले, "उद्गीर के अवसर पर नानाजी ने इसी फुर्ती से योजनाएँ बनायी थीं। आज नानाजी की याद आ गयी। माधव! तू जा, विश्राम कर! कल से हम लोगों को क्षण-भर का भी विश्राम नहीं मिलेगा।"

माधवराव मुजरा करके अपने डेरे की ओर चले गये। बहुत दिनों के बाद उनके चेहरे पर मुसकराहट दिखाई दी थी।

दो दिन के अन्दर ही मिरज की छावनी उठ गयी और औरंगाबाद की ओर कूच कर दिया गया। निजाम के मुल्क को लूटते-जलाते हुए माधवराव औरंगाबाद पहुँचे। वहाँ मल्हारराव होलकर उनसे आ मिले। औरंगाबाद के आसपास का प्रदेश लूटकर पेशवाओं ने औरंगाबाद पर तोपें दाग दीं। निजाम की सारी कुमुक महाराष्ट्र की ओर केन्द्रित हो जाने से पेशवा के इस आक्रमण से सारी *निज़ामशाही थर्रा उठी।*

औरंगाबाद के बाहर पड़ी हुई छावनी में माधवराव अपने डेरे में बैठे हुए थे। मल्हारराव सन्तप्त होकर सामने खड़े थे। वे बोले,

"श्रीमन्त, आप छोटे हैं। आपपर संकट आने पर हम दौड़े आये; किन्तु उसका फल क्या मिला ? आपने ही हमसे चौथाई वसूल करने का आदेश दिया। इस आदेश में निश्चय ही कोई ग़लती है, हमें ऐसा लगता है।"

"मल्हारबा, आप वयोवृद्ध हैं; आपसे हम क्या कहें ? जैसे पटवर्धन मुग़लों से मिल गये, वैसे ही आप भी क्यों नहीं मिल जाते ? ऐसा करने से मराठाशाही समाप्त हो जायेगी; मुग़लशाही के आप सम्मानित सरदार बन जायेंगे। चौथाई आपको देना नहीं पड़ेगा।"

माधवराव का कथन मल्हारबा आश्चर्यचकित होकर सुन रहे थे। वे बोले, "क्या कह रहे हैं माधवराव ?"

माधवराव बोले, "ग़लत कुछ नहीं है। मल्हारबा, आप मराठाशाही के रक्षणकर्ता हैं। शिन्दे-होलकर का अर्थ है मराठाशाही—सारा मुल्क यही समझता है। राज्य की इस विषम परिस्थिति में आपने यदि चौथाई देकर फ़ौज का ख़र्च नहीं चलाया तो सभी लोग आपका अनुकरण करने लगेंगे। परन्तु मल्हारबा, मैं आपसे कहता हूँ कि मराठाशाही के टिकने का अर्थ भी आपका ही बना रहना है! मराठाशाही को छिन्न-भिन्न कर आपको यह सम्मान मिल जायेगा क्या ? मल्हारबा, जबतक मराठाशाही है, तबतक ही आप हैं। मराठाशाही के नष्ट होने पर आपका कुछ भी मूल्य नहीं रह जायेगा।"

"आपकी इतनी इच्छा है तो...."

"मल्हारबा, हमारी इच्छा से नहीं ! हमारी इच्छा यह है कि आप अपनी इच्छा से चौथाई दें। आप बड़े हैं। आपके बाद सभी आपका अनुकरण करेंगे। यह परम्परा आपको डालनी चाहिए।"

"जैसी आज्ञा !" मल्हारबा बोले।

"हमको भी आपसे यही आशा थी," माधवराव सन्तोष से बोले। उसी

समय बापू डेरे में आये। माधवराव ने पूछा, "क्यों बापू ! आज इतनी सुबह ?"

"श्रीमन्त ! बड़ी बुरी वार्ता है।" बापू बोले।

"क्या हुआ ?" घबड़ाकर माधवराव ने पूछा।

"अभी-अभी आनन्दवल्ली से सवार आया है। दादा साहब के चिरंजीव भास्करराव का दुर्घटना में निधन हो गया है, यह सूचना देने का दुर्भाग्य आज मेरे ऊपर आया है।"

"क्या कह रहे हैं ?" माधवराव विपण्ण होकर बोले।

भास्करराव राघोबा दादा का छोटा लड़का था। इसके नाम माधवराव ने प्रतिनिधि पद कर रखा था। यह वार्ता सुनकर मल्हारबा भी कुछ कह न सके। माधवराव ने पूछा,

"काका को खबर मालूम हो गयी ?"

"जी हाँ !"

"अरे-रे ! काका पर यह आघात होना नहीं चाहिए था। चलो मल्हारबा, काका के पास चलें।"

सिर झुकाये राघोबा दादा मसनद के सहारे बैठे थे। माधवराव के अन्दर आते ही उन्होंने सिर ऊपर उठाया। राघोबा की आँखों में पानी तैर रहा था। वे बोले,

"माधव, मेरा भास्कर चला गया रे ! मेरा सारा प्रकाश नष्ट हो गया !"

माधवराव तेजी से आगे बढ़े। राघोबा के दोनों कन्धे पकड़कर वे बोले, "काका ! जबतक मैं हूँ तबतक तो ऐसी बात न कहें ! आज आपका भास्कर नहीं गया है, माधव चला गया है, यह समझ लीजिए। आपका भास्कर आपके सामने खड़ा है। काका, आप आँखों में आँसू मत लाइए। मेरी शपथ है आपको !"

अपनी आँखें बन्द कर, माधवराव के कन्धे पर हाथ रखते हुए राघोबा बोले, "शपथ वापस ले ! नहीं रोता हूँ मैं। तुझ-जैसा लड़का जीवित होने पर मैं किस लिए रोऊँ ?"

"बापू ! आज औरंगाबाद पर मोर्चा मत लगाओ ! दो दिन बाद देखेंगे !" माधवराव ने बापू से कहा।

"यह किस लिए ? माधव, यह युद्धभूमि है। यहाँ सूतक पालने के लिए समय नहीं है। बापू, पूर्वयोजनानुसार मोर्चाबन्दी कीजिए। हम भी माधव के साथ थोड़ी देर में हाजिर हो रहे हैं। हर स्थिति में आज औरंगाबाद का पतन हो जाना चाहिए। माधव, तुम और मल्हारराव शीघ्र ही उत्तर की ओर के मोर्चों पर पहुँच जाओ। मैं पश्चिम की ओर देखता हूँ।"

राघोबा का यह आवेश अभूतपूर्व था। राघोबा का वह साहस देखकर माधवराव का वक्षस्थल भी अभिमान से उन्नत हो गया। राघोबा दादा के चरणों को स्पर्श करके वे निकले तथा डेरे से बाहर आकर मल्हारबा से बोले,

"मल्हारबा ! काका का यह रूप देखकर गंगास्नान करने का अनुभव होता है।"

सन्ध्याकाल का समय था। दूसरे दिन चढ़ाई करने की योजना बनाकर राघोबा दादा माधवराव के डेरे से बाहर निकले। सन्ध्याकाल का धूमिल प्रकाश सारी छावनी पर पड़ रहा था। दिन-भर ग्रीष्म ऋतु की बिलबिलाती धूप में तप्त वह छावनी सायंकाल के शीतल वातावरण में विश्राम कर रही थी। छावनी में निरन्तर आवाजें गूँज रही थीं। किसी छोटे खेमे में देहभान भूलकर ऊँचे स्वर में गाना चल रहा था। उसकी आवाज जब तब कानों में पड़ रही थी। राघोबा दादा चारों ओर दृष्टि डालते हुए अपने डेरे की ओर पैदल जा रहे थे। उनके पीछे हथियार लिये सैनिक चल रहे थे।

अचानक कोई दौड़ा। पलक झपते ही वह व्यक्ति दादा के सामने आया। उसके हाथ में लगी हुई नंगी तलवार क्षण-भर को उस धूसर प्रकाश में चमक उठी। दादा फुर्ती से एक ओर हटे, परन्तु उसी समय नीचे आती हुई तलवार दादा के कन्धे को काट गयी। दादा साहब सँभलते-सँभलते भी गिर पड़े। गड़बड़ी मच गयी। पीछे-पीछे आते हुए हथियारबन्द सैनिक दौड़े। घातक को भागने का अवसर नहीं मिला और वह पकड़ा गया। एक सैनिक ने अपनी तलवार उठायी, यह देखते ही सारी पीड़ा भूलकर दादा चिल्लाये,

"ठहर !"

ऊपर उठी हुई तलवार नीचे आयी। वह व्यक्ति थरथर काँपता हुआ खड़ा था। दो सैनिकों ने उसको दृढ़ता से पकड़ रखा था। राघोबा दादा उठे। उनका सारा कन्धा रक्तरंजित हो उठा था। अपने घातक को उन्होंने ध्यान से देखा। क्षणभर उसकी आँखों से आँखें मिलाते हुए दादा साहब खड़े रहे और फिर अपने सैनिकों की ओर मुड़कर वे बोले, "इसके प्राणों को किसी तरह हानि न पहुँचे। और इस घटना की खबर भी किसी को न लगे। कल सुबह मेरे सामने हाजिर करना।" यह कहकर सैनिकों का आधार लेकर दादा साहब अपने डेरे की ओर चलने लगे।

दादासाहब को घाव अधिक नहीं हुआ था। वैद्य दादा साहब का औषधोपचार कर रहे थे। अन्धकार बढ़ रहा था। छावनियों से उठनेवाला

शोर धीरे-धीरे कम हो रहा था। उसी समय सेवक अन्दर आया। पीछे-पीछे माधवराव अन्दर आये। वैद्य एक ओर हट गये। माधवराव सीधे दादा साहब के पास गये। दादा बोले,

"आ माधव !"

माधवराव ने दादा के बँधे हुए कन्धे की ओर देखा। कुछ न कहकर वे चुपचाप बैठे रहे। दादा भी चुपचाप लेटे हुए थे। बहुत देर बाद माधवराव बोले,

"काका, श्री गजानन की कृपा ! इसलिए कुछ विपरीत नहीं हुआ...।"

दादा साहब हँसे, "अरे पागल, गजानन आज तक रक्षा करते आये हैं, वह निश्चय ही ऐसे तुच्छ व्यक्ति के द्वारा मारे जाने के लिए नहीं ! उन्होंने बचाया है राज्य का भार उठाने के लिए। श्री के मन में हमारे हाथों से अपनी सेवा कराने की इच्छा है अभी....।"

"यह सच है काका !" कहते हुए माधवराव ने वैद्यों की ओर देखा। उनकी दृष्टि का तात्पर्य समझकर वैद्य बाहर चले गये। सेवक द्वार के बाहर खड़े हो गये। माधवराव ने दादा साहब की ओर देखा और पूछा,

"काका ! घातक की पहचान हो गयी ?"

"नहीं ! सुबह पूछताछ होगी।"

"काका ! ऐसी घटनाओं की खोजबीन तुरन्त हो जानी चाहिए। ऐसे समय में समय गँवाना ठीक नहीं है। उसको अभी तुरन्त बुलवा लें।"

"ठीक है।" दादा बोले।

श्रीमन्त ने आज्ञा दी। सेवक के जाते ही माधवराव ने पूछा, "काका, इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है ?"

"कुछ समझ में नहीं आता, माधव ! इस समय छल-कपट का ऐसा वातावरण बना हुआ है कि कौन कब उलट जायेगा इसका भरोसा नहीं।" दादा साहब जख्म पर धीरे-धीरे हाथ फिराते हुए बोले।

उसी समय सैनिक क़ैदी को अन्दर ले आये। माधवराव ने एक बार उसका निरीक्षण किया और अपनी कठोर दृष्टि उसकी दृष्टि से मिलायी। वह थर-थर कांप रहा था। माधवराव की दृष्टि से दृष्टि मिलाने की शक्ति उसमें नहीं रही थी। हाथ-पैरों की शक्ति प्रति-क्षण कम होती जा रही थी। माधवराव की कठोर दृष्टि उसको खड़े-खड़े जला रही थी। माधवराव न बोल रहे थे और न पलक मार रहे थे।

अचानक वह घातक माधवराव के सामने लोट लगाने लगा और जैसे-तैसे वह बोला,

"माफ़ी हुज़ूर !....मालिक का हुकुम माना है मैंने..."

"किनके गुट का है तू ?"

घातक कुछ नहीं बोला। माधवराव ने पुनः धमकाया,

"किनके गुट का है तू ?"

फिर भी घातक ने मुँह नहीं खोला। माधवराव का गौरवर्ण चेहरा क्रोध से लाल हो गया। वे चिल्लाये,

"ठहर जा ! देखता हूँ कब तक नहीं बोलेगा !"

माधवराव की उस क्रुद्ध दृष्टि को देखकर घातक चिल्लाया, "कहता हूँ हुज़ूर. बताता हूँ....जाधवों के गुट का हूँ मैं।"

"अच्छा !" कहते हुए माधवराव ने दादा साहब की ओर देखा। दादा का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। देखते-देखते उनके होंठ थरथराने लगे। आवेश से वे बोले, "माधव, राज्य में लगा हुआ घुन कभी समाप्त नहीं होगा क्या रे ? प्रभु मराठा राज्य पर क्यों इतना क्रुद्ध हैं, यही समझ में नहीं आता।"

"नहीं काका, श्री गजानन की कृपा है यह।"

"क्या मतलब ?" न समझकर दादा बोले।

"जो व्यक्ति राज्य का नाश करने चला था, वह इस प्रकार ऐन मौक़े पर पकड़ा गया, यह कृपा नहीं तो और क्या है ?"

"सच है माधव, और ऐसे महान् अपराध के बदले में क्या दण्ड भोगना पड़ेगा यह भी श्री ने बता दिया है।"

जब माधवराव दादा के डेरे से बाहर निकले तब उनका चेहरा कठोर हो गया था। पलीते के प्रकाश में उनके भाल पर सिकुड़नें स्पष्ट दिखाई पड़ रही थीं।

प्रातःकाल आकाश बादलों से घिरा हुआ था। सारी छावनी शान्त थी। अचानक शृंग फूँकने की आवाज़ आयी। क्षण-भर में सारी छावनी में गड़बड़ी फैल गयी। सैनिकों की दौड़-धूप और शोर से सारा वातावरण परिपूर्ण हो गया। पहले किसी की समझ में कुछ न आया....चारों ओर जिसे देखो वह अपनी तैयारी कर रहा था....चार-छह घड़ी में ही फ़ौज को आज्ञा मिल गयी और नारो शंकर तथा बापूजी नाईक की आज्ञा से सारी फ़ौज जाधवों की छावनी की ओर तूफ़ान की तरह रवाना हुई।

जाधवों को छावनी को अच्छी तरह विचार करने का भी अवसर नहीं मिला।

श्रीमन्त की फ़ौज ने जो पहला आघात किया उसी से जाधवों की फ़ौज के छक्के छूट गये। स्वयं जाधवों को भी तलवार उठाने तक का समय नहीं मिला।

नारो शंकर काल की तरह उनके सामने जाकर खड़ा हो गया और क्षण-भर में ही जाववों की मुसकें बांध दी गयीं...।

माधवराव दादा साहब के पास बैठे हुए सलाह-मशविरा कर रहे थे। वहां वार्ता पहुँची कि जाववों को मुसकें बांधकर ले आया गया है। इस खबर से श्रीमन्त के भाल पर सलवटें पड़ गयीं। राघोबा दादा छूटते ही बोले,

"नमकहराम आदमी का हम मुंह भी नहीं देखना चाहते हैं। सरदारों को हमारी आज्ञा बता दो। तत्काल मोगरे से उसका सिर कुचल दो और फेंक दो टीले पर!"

"जी" कहकर सेवक मुड़ा। उसी समय माधवराव बोले,

"ठहरो!"

दादा ने चौंककर माधवराव की ओर देखा। माधवराव बोले, "नारोबाजी से कहना कि जबतक हमारा आदेश न मिले तबतक जाधवजी को दौलताबाद के क़िले में नज़रबन्द कर दो!"

"माधव!" दादा चिल्लाये।

"काका, कुछ बातें सोचकर की जायें तो अच्छी रहती हैं। आखिर हैं तो वह भी मराठा रक्त ही। मुझको आशा है कि आज नहीं तो कल, मराठा राज्य को उनका सहारा अवश्य मिलेगा..."

राघोबा दादा ने कुछ न कहा। परन्तु उनके मस्तक पर सलवटें उनकी अनिच्छा प्रकट कर रही थीं। सामने सेवक जहां का तहां उलझन में पड़ा हुआ खड़ा था। वह कभी माधवराव की ओर और कभी दादा साहब की ओर देख रहा था। उसकी ओर ध्यान जाते ही माधवराव बोले,

"जाओ। हमारा आदेश बता दो...."

"जी" कहता हुआ वह बाहर निकला और उसी समय बापू अन्दर आये। श्रीमन्त को मुजरा करके वे चुपचाप खड़े हो गये। उनका चेहरा थका हुआ था। मुख पर खिन्नता थी। माधवराव ने पूछा,

"कोई खलीता है क्या?"

"कोई नहीं।"

"समझ गये हम। छत्रपति के राज्य में ऐसे कूपमण्डूक लोग जन्म लेते हैं, यह मराठा राज्य का दुर्भाग्य है। पुराने अनुभवी लोग केवल स्वार्थ के कारण यदि ऐसे समय में तलवारें म्यान में रखकर चुप बैठे रहेंगे तो फिर हम ही कितना करें? विचारों को साकार कैसे करें? और सफलता मिले भी तो कैसे?" कहते-कहते माधवराव की आवाज भारी हो गयी। क्षण-भर उन्होंने बोलना बन्द कर दिया। बापू सिर झुकाकर बोले,

"श्रीमन्त दस लाख की जागीर बाँटते हैं….!" [illegible]
"यही तो बात है !" माधव ने [illegible]
संकुचित वृत्ति कैसे छूटेगी ? अरे, यह लाख [illegible]
लिए लड़ते हैं हम ! राज्य की यह होलकर [illegible]
आत्मा क्या कह रही होगी ? परन्तु आज [illegible]
है । शत्रु द्वार पर खड़ा है …इसी तरह कुछ दिन [illegible]
काल भी वह अपने सिर पर बैठेगा….यदि जीवित रहे तो [illegible]
लड़ते-लड़ते मर गये तो स्वर्ग में जायेंगे…." फिर दादा [illegible] की ओर मुड़कर
वे बोले, "काका, अब अधिक प्रतीक्षा करना व्यर्थ है….!"

"यही मैं कहता हूँ, माधव ! [illegible] जो कोई लाभ नहीं
होगा…आखिर खून का असर कहाँ जायेगा ? परन्तु उनसे कहना कि ध्यान
रखें, हमने जो राज्य का भार उठाया है, वह उनकी तलवार के जोर पर
नहीं….। माधव, सरदारों को आज ही हुक्म जारी कर दो । मल्हारबा से कहना,
चुपचाप बैठे रहें….। एक दिन जरूर ऐसा आयेगा, जब लाचार होकर हमारे
सामने आना पड़ेगा, यह न भूलें, कह देना—"

"सच है काका ! परन्तु आज की स्थिति बड़ी नाजुक है । इसी [illegible]
फौज से आमने-सामने लड़ना ठीक नहीं है….।"

"फिर ?"

"छापामार युद्ध से महाराज शिवाजी ने औरंगजेब की नाक में [illegible]
दिया था । उसी का सहारा यहाँ लेना चाहिए । इसीलिए [illegible]
तीव्रता से महसूस हो रही है । और…"

"तो फिर पकड़ो उनके पैर !" दादा [illegible] बोले ।

"हाँ, बाबा ! कभी-कभी श्री नारायण पर [illegible]
हमपर आ गया तो खिन्न होने की क्या आवश्यकता है ?" [illegible]
बोले, "काका, हम थोड़ा घूमकर आते हैं ।" [illegible]
साहब के डेरे से बाहर निकले ।

दूसरे दिन माधवराव जब लौटकर [illegible]
वे सीधे दादा साहब के डेरे की ओर चले । [illegible]
बापूजी नाईक, बापूराव हरि, [illegible]
सबके आते ही माधवराव बोले,

"एक-दो दिन में होलकर [illegible]!"

सबके चेहरे प्रसन्नता से खिल गये । [illegible]

"सबसे पहले जानोजी की [illegible]

छत्रपति की गद्दी है। सत्ता के नशे में घूम रहा है। प्रातःकाल कूच करेंगे.... बीच में होलकर आकर मिल जायेंगे।"

उस रात अर्धरात्रि के बाद सारी फ़ौज में हलचल शुरू हो गयी। चढ़ाई की प्रतीति से घोड़े फुरफुरा रहे थे, हिनहिना रहे थे। फ़ौज के तीन भाग किये गये। एक दलपर दादा साहब और माधवराव तथा दूसरे दल का भार बापूजी नाईक, बाबूराव हरि और रामचन्द्र गणेश को सौंपा गया। तीसरे दल के अधिकार नारो शंकर को दिये गये थे। बीच में इसी दल में मल्हारराव आकर मिलेंगे, यह निश्चय हुआ...।

प्रत्यूषा के धुंधले प्रकाश में फ़ौजें वराड की दिशा में निकल पड़ीं। रास्ते के बीच के प्रदेशों को लूटती हुई फ़ौजें वायुवेग से दौड़ती जा रही थीं। निजाम के प्रदेश को ध्वस्त करके फ़ौजें वराड में घुसीं। बीच में मल्हारराव आकर मिल चुके थे। इस कारण सारी फ़ौज को निराला ही जोश चढ़ा हुआ था। छत्रपति की गद्दी पर दृष्टि रखनेवाले भोंसलों का वराड प्रान्त देखते-देखते लूट लिया गया। अपने प्रान्त की रक्षा करने के लिए भोंसले वराड की ओर आयेंगे—माधवराव का यह अनुमान सच निकला। भोंसले की फ़ौज वराड प्रान्त की ओर आने की वार्ता आयी। उसी समय श्रीमन्त की फ़ौज ने युद्ध की अफ़वाह फैला दी। निजाम की फ़ौज ने पूरी तैयारी के साथ वराड में प्रवेश किया। परन्तु श्रीमन्त की फ़ौजें वहाँ से पहले ही सटक गयी थीं। वराड की दुर्दशा आँखें फाड़-फाड़कर देखने के अतिरिक्त भोंसले और कुछ भी नहीं कर सकते थे। भोंसलों का वश चलता तो पेशवाओं की फ़ौज को वे कच्चा ही चबा जाते। पेशवाओं ने निजाम को ऐसा भुलावा दिया कि वे ठेठ दक्षिण में मुड़कर हैदराबाद में घुस गये। पीछे निजाम था। आगे-आगे पेशवाओं की फ़ौज निजाम को चकमा देती हुई वायुवेग से चली जा रही थी। पैठण, नलदुर्ग, उद्गीर, मेदक और पुनः हैदराबाद। मल्हारराव के दावपेच रंग ला रहे थे। पेशवाओं के उस भुलावे से निजाम और भोंसले बुरी तरह त्रस्त हो गये। उनकी प्रत्येक हलचल की वार्ता पेशवाओं के पास पहुँच रही थी। निजाम हैदराबाद में नहीं आ रहा है, यह पता लगते ही पेशवाओं की फ़ौज ने वहीं तम्बू गाड़ दिये।

एक दिन सन्ध्या समय माधवराव अपने डेरे में आगामी चढ़ाई की योजना बना रहे थे। पास ही राघोबा दादा बैठे हुए थे। होलकर भी अपनी योजना बता रहे थे। उसी समय महीपतराव चिटणीस अन्दर आये—

"आइए महीपतराव।"

महीपतराव ने मुजरा करके हाथ में लगा हुआ खलीता श्रीमन्त के आगे
बढ़ा दिया। माधवराव ने पूछा,

"क्या है ?"

"खलीता ! पुणे से आया है।"

"पढ़िए न !"

"आज्ञा !" यह कहकर महीपतराव ने खलीता खोला।

....निवेदन है कि—

आज निज़ाम की फ़ौज ने पुणे में बेहद उपद्रव मचाया। लोग तोपख़ाने में
घुसकर खोद-खादकर जो कुछ मिला, सब ले गये। वस्त्र-भाण्डागार की भी यही
दशा होगी। निज़ाम से मिले हुए लोग सही स्थानों का पता बता रहे हैं। बड़े
लोगों के घर भी खोदे जायँ, यह कह रहे हैं। आज या कल में ये लोग कूच कर
जायँ तो उत्तम है। रुपये देना क़बूल कर लेने पर भी नगर की इज़्ज़त नहीं
बची। पर्वती की मूर्ति, महादेव, विष्णु—सभी मूर्तियाँ तोड़ दी हैं। श्री देव-
देवेश्वर के मन्दिर का सुवर्णकलश तोड़ ले गये। पुणे में छोटा-बड़ा एक भी
देव नहीं रहा है। सरकार का भवन, धर्मशाला—इनको जला दिया है। सोमवार-
बाज़ार और मंगलवार-बाज़ारों में पाँच-छह हवेलियाँ जला दीं। फ़ौजों ने चारों
ओर लूट-मार कर ध्वस्त कर दिया है। सर्वनाश हो गया। आप भी क्या कर
सकते हैं? जितना सम्भव होता है, करते ही हैं। ईश्वर की इच्छा ही ऐसी है....

महीपतराव रुके। उन्होंने देखा—माधवराव का चेहरा एकदम लाल
गया था। तत्क्षण वे उठ खड़े हुए। पीछे-पीछे दादा भी उठे। उनका भी चेह
सन्तप्त हो रहा था। क्रोध से दादा चिल्लाये—

"इतनी हिम्मत! मल्हारपन्त, सारी फ़ौज पुणे की ओर मोड़ दीजि
देवताओं की मूर्तियों को नष्ट करनेवाले निज़ाम के हाथ कन्धे से उखाड़ डाले
हटिए—"

काका का यह रौद्र रूप देखकर क्षण-भर कोई कुछ न कह सका।
बाद माधवराव बोले,

"काका! यह निश्चय ही निज़ाम की चाल है। यदि हम पुणे
चल पड़े तो निश्चय ही उसके जाल में फँस जायँगे!"

"क्या मतलब? निज़ाम को ऐसे ही छोड़ दें? माधव, माऊ
उद्गीर के संग्राम में हमारे सामने धरती चूमनेवाला निज़ाम आज
होकर पुणे लूट रहा है! पर्वती की मूर्तियाँ ध्वस्त कर रहा है!
मार डाला था, उन्होंने यह सहन कैसे किया? नहीं माधव, माऊ
[illegible]..."

"काका, हँसेंगे यह सच है। परन्तु हमारे अविवेक पर! इतनी सरलता से हम निजाम की चाल में फँस गये इसलिए!"

"क्या मतलब?" दादा साहब न समझकर बोले।

"काका, आज निजाम पूरी शक्ति से पुणे उद्ध्वस्त करने में लगा हुआ है। वह केवल लूटमार नहीं करना चाहता है। हिन्दुत्व के प्रति द्वेष होने के कारण वह मूर्तियाँ तोड़ रहा हो, यह बात भी नहीं है। यह सब सोच-समझकर फैलाया हुआ जाल है। और यह भी निश्चित है यह काम वह अपनी बुद्धि से नहीं कर रहा है। विट्ठल सुन्दर और जानोजी-जैसे विद्वान् और सम्मान्य सरदार उसके सलाहकार हैं। पुणे में हमारे प्राण रहते हैं। पुणे को हाथ लगाने का अर्थ है हमारे कलेजे से हाथ लगाना—इस बात को ये प्रतिष्ठित लोग जानते हैं। यह दुःख हमारे लिये असह्य है—यह वे जानते हैं। हम यह सब छोड़कर पुणे की ओर दौड़ें—यह वे चाहते हैं। हमारी चाल को हमारे ही ऊपर उलटने के लिए निजाम घात लगाये बैठा है।"

"श्रीमन्त सत्य कह रहे हैं।" मल्हारबा बोले, "निजाम की पुणे पर चढ़ाई करने की हिम्मत कभी नहीं पड़ेगी। यह राजनीतिक चाल है। यदि हम उसकी इस चाल में फँस गये तो हमारा बड़ा नुक़सान होगा।"

"काका, हमको थोड़ा धैर्य रखना चाहिए। निजाम अपने-आप चंगुल में आयेगा, इसमें सन्देह नहीं!"

दादा साहब ने कुछ नहीं कहा। उनकी मुखमुद्रा बड़ी गम्भीर हो गयी थी। उनसे अनुमति लेकर माधवराव बाहर निकले। पीछे-पीछे मल्हारराव भी बाहर निकले। मशाल के उजाले में माधवराव और मल्हारराव चले जा रहे थे। छावनी में स्थान-स्थान पर मशालें प्रज्वलित थीं। गश्त लगानेवालों की मशालें इधर से उधर घूम रही थीं। गश्तवालों की आवाज़ सारी छावनी को सावधान कर रही थी। माधवराव यह सब देखते हुए जा रहे थे। पीछे-पीछे मल्हारराव चुपचाप चल रहे थे। डेरा पास आते ही मल्हारराव बोले,

"चलता हूँ श्रीमन्त!"

"रुकिए न! मुझे कुछ बातें करनी हैं।"

होलकर माधवराव के साथ अन्दर गये। अन्दर जाते ही माधवराव बोले,

"बैठिए।"

माधवराव मसनद के सहारे बैठ गये। मल्हारराव के बैठने पर माधवराव बोले, "मल्हारबा, आज बड़ी महत्त्वपूर्ण स्थिति हम लोगों के सामने आ पहुँची है। इस कठिन परीक्षा में हमें सफल होना है।"

"श्रीमन्त, इसकी चिन्ता आप क्यों करते हैं? हमें केवल आदेश दीजिए।

स्वामी

निजाम भी आजकल उनसे उपेक्षापूर्ण व्यवहार कर रहा था। पुणे को लूटने के बाद निजाम ने एक बार भी भोंसले से सलाह नहीं ली थी। इसका दुःख भोंसले अनुभव कर रहे थे। मल्हारराव के समझौते को मानने के अतिरिक्त और कोई चारा ही उनको न था। धीरे-धीरे निजाम अन्दर ही अन्दर खोखला होता जा रहा था। एक दिन भोंसले का खलीता श्रीमन्त के हाथ में आया। उस खलीते को देखते ही माधवराव सीधे दादा साहब के डेरे पर गये। मल्हारराव को बुलावा भेजा। मल्हारराव के आते ही माधवराव बोले,

"मल्हारबा, भोंसलों का खलीता आया है।"

"क्या कहते हैं?" मल्हारराव ने उत्सुक होकर पूछा।

"औरंगाबाद पहुँचने के इरादे से निजाम गोदावरी पार करने का विचार कर रहा है। भोंसलों ने अपना लश्कर निजाम से दस-बारह कोस दूर रखा है। अन्य सरदार भी टूट गये हैं। जिस दिन की हम राह देख रहे थे, वह दिन आ पहुँचा है। मल्हारबा, अब यदि हमने देर की तो इस बात के लिए जीवन-भर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। आपकी आज्ञानुसार भोंसले ने निजाम से विचार बदलवा लिया है। निजाम ने औरंगाबाद में डेरा डालने का निश्चय किया है।"

"नहीं, श्रीमन्त, अब एक क्षण की भी देर करने से काम नहीं चलेगा! अब हम एक क्षण भी नहीं गँवा सकते हैं। आज ही हमको अपने डेरे उखाड़ लेने चाहिए। जाता हूँ मैं।" कहते हुए मल्हारबा ने श्रीमन्त से अनुमति ली और वे बाहर निकले।

निजाम पूर्ण रूप से चंगुल में आ गया था, इस आनन्द में दादा साहब सभी काम जल्दी-जल्दी निबटा रहे थे। उनकी दौड़-धूप की सीमा नहीं थी। माधवराव ने सभी सरदारों को आज्ञा दी। दोपहर तक सभी सैनिक सज्जित हो गये। निजाम को पकड़ने के लिए लम्बी-लम्बी मंज़िलें तय करने का निश्चय किया गया। इतना होने पर भी उसको एकदम टक्कर देना पेशवाओं को कठिन लग रहा था। उसको घिरी हुई जगह में फँसाकर उसकी अक़्ल ठीक कर दी जाये—यह विचार पेशवा कर रहे थे।

मूसलाधार वर्षा की परवाह न करते हुए पेशवाओं की फ़ौज निजाम का पीछा कर रही थी। गोदावरी में अभूतपूर्व बाढ़ आयी हुई थी। निजाम को वहीं पकड़ने का पेशवाओं का विचार था। पेशवाओं को विश्वास था कि बाढ़ उतरने तक निजाम छावनी वहीं रखेगा।

पेशवाओं की छावनी मांही में पड़ी हुई थी। वहाँ पेशवाओं को निजाम की पूरी जानकारी मिल गयी। निजाम की फ़ौजें आगे जा रही थीं। गोदावरी की

र बाढ़ की परवाह न करते हुए निजाम गोदावरी को पार करने का प्रयत्न
रहा था। बड़ी-छोटी नौकाओं से निजाम दूसरे किनारे पर पहुँच रहा था।
ठुल सुन्दर इस किनारे पर था। आठ-दस हजार फ़ौज पीछे थी। सैनिक
मग्री और तोपें लेकर निजाम दूसरे किनारे पर जा चुका था। यदि समय गँवा
या तो बची हुई फ़ौज भी दूसरे किनारे पर पहुँच जायेगी, इसमें श्रीमन्त को
न्देह नहीं रहा। निजाम की आशाओं का केन्द्र विठ्ठल सुन्दर था। उस विठ्ठल
सुन्दर को घेरने का यह अच्छा अवसर था, यह जानकर पेशवाओं ने आषाढ़
कृष्णा अमावस्या को उस रात को ही मोहों से कूच कर दिया। उस अंधेरे में
फ़ौजें वेग से राक्षसभुवन के निकट पहुँचने लगीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीमन्त की फ़ौजें राक्षसभुवन पहुँच गयीं। उनकी
फ़ौज की आहट पाकर विठ्ठल सुन्दर क्षण-भर को घबड़ा गया। परन्तु बाद में,
आये हुए संकट का सामना करने के लिए, सारी फ़ौज लेकर तैयार हो गया।

आबा पुरन्दरे और विठ्ठल शिवदेव—ये पेशवाओं के आगे रहनेवाले सरदार
थे। विठ्ठल सुन्दर की तोपों की परवाह न करते हुए उसकी अग्रणी फ़ौज की
उन्होंने धज्जियाँ उड़ा दीं। पीछे-पीछे जोरदार मार करते हुए दादा साहब अन्दर
घुसे। उनका जोश अद्भुत था। मुख से 'पकड़ो-मारो' चिल्ला रहे थे।

माधवराव घोड़े पर बैठकर सारी युद्धस्थिति का निरीक्षण कर रहे थे।
घुसी हुई हजार-डेढ़ हजार फ़ौज पीछे रख छोड़ी थी। मुग़ल पीछे हट रहे थे;
परन्तु अचानक विठ्ठल सुन्दर स्वयं लड़ने के लिए खड़ा हो गया। जितनी फ़ौज
थी, उतनी सारी उसने रण में छोड़ दी। उस धड़ाके से श्रीमन्त की फ़ौज में
घबड़ाहट फैल गयी और वह पीछे हटने लगी। युद्ध का रंग बदलने लगा।
मुग़ल जीत जायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं रहा। मुग़ल फ़ौज ने बड़ी जोरदा
चढ़ाई कर दी थी। दादा जिस हाथी पर अम्बारी में थे, उस हाथी के चा
ओर मुग़ल फ़ौज ने घेरा बना लिया था। आस-पास श्रीमन्त की फ़ौज
दिखाई नहीं पड़ रही थी। शत्रु हाथी को मोड़कर अपने गुट की ओर ले
रहा था, तब भी दादा साहब का जोश कम नहीं हो रहा था....। परन्तु फौ
हाहाकार मच गया था, इससे पानीपत के-से रंग दिखाई देने लगे थे....औ
सब देखते हुए माधवराव क्षण-भर जहाँ के तहाँ घोड़ा रोककर देखते रहे,
दूसरे ही क्षण पीठ-पीछे खड़े सैनिकों की ओर मुड़कर वे जोश से चिल्लाये

"बोलो हरऽऽ हऽऽर मऽहाऽदेऽऽव !"

हजार-डेढ़ हजार घुड़सवारों की टोली एकदम उठ खड़ी हुई। नां
फ़ौज प्राणों की परवाह न करते हुए मुग़लों पर टूट पड़ी। पीछे हटनेव
को माधवराव चिल्लाकर उत्तेजित कर रहे थे।

काले मेघों से सूर्य की किरणें झाँक रही थीं। माधवराव का चेहरा पसीने से लथपथ था....चिल्लाते-चिल्लाते उनका गला सूख गया था; परन्तु फिर भी देहभान भूलकर वे आवेश से चिल्ला रहे थे....उसी समय उस भीड़ में रास्ता बनाते हुए मल्हारराव पास आये। उनके पीछे उनकी पराजित अस्थायी सेना थी। माधवराव ने प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। मल्हारराव बोले,

"बाल, पीछे लौटो, आज हमारे भाग्य में जय नहीं है।"

"और काका ?"

"आशा करने लायक़ कुछ होता तो क्या पीछे लौटकर आया होता ?"

माधवराव चकित होकर यह सुन रहे थे। सावधान होकर वे बोले,

"मल्हारबा, आज तक हमने यह सुन रखा था कि आप भाऊ साहब को इसी तरह पानीपत के रणांगण में छोड़ आये थे, किन्तु हमको इसपर विश्वास नहीं होता था। आज हमको विवश होकर उसपर विश्वास करना पड़ रहा है। आप छावनी पहुँचिए।"

"और आप ?"

"काका विट्ठल सुन्दर के चंगुल में फँसे हुए हों और हम पीछे लौट जायँ, तो हमको नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। आये तो काका के साथ आयेंगे, नहीं तो यही अपनी अन्तिम भेंट समझिए।"

माधवराव के वे शब्द होलकर को लग गये। जैसे-तैसे वे बोले, "नहीं श्रीमन्त! मुझको आपकी विजय की चिन्ता थी। हमारा क्या है, ढलते सूरज हैं। जैसे जिन्दे रहे, वैसे ही मरे! अपने मन की गाँठ दूर कर दीजिए। जीते बचे तो फिर मिलेंगे ही। चलिए। आज अपने मल्हारबा का ईमान देख लीजिए..." कहते हुए मल्हारबा ने अपना घोड़ा झट् से मोड़ दिया। उनके आवेश को देखकर पीछे सरकते हुए सैनिकों को धीरज बँधा। होलकर के पीछे-पीछे पीछे हटती हुई फ़ौज आगे घुसने लगी। सारे वातावरण में हर ऽ हर ऽ महादेव ऽ की आवाज़ गूँज उठी। मल्हारराव की चमकती हुई तलवार दादा के चारों ओर बने घेरे पर सपासप चल रही थी। घेरे को तोड़कर होलकर अन्दर घुस गये। पीछे से फ़ौज ऐसे अन्दर घुस गयी जैसे जल की प्रचण्ड लहर आ गयी हो! देखते-देखते हाथी के चारों ओर के मुग़लों की धज्जियाँ उड़ गयीं और दादा साहब का हाथी फिर लौटा।

विट्ठल सुन्दर की अम्बारी पर उनकी दृष्टि केन्द्रित थी। मुग़लों की सात अम्बारियों में से बीच की अम्बारी में विट्ठल सुन्दर था। प्राणों की परवाह न करते हुए वह लड़ रहा था। सैनिकों को धीरज बँधा रहा था। उस भीड़ में महादजी शिंदे अपना घोड़ा कुदाता हुआ माधवराव के पास आया। उसने

र श्रीमन्त को मुजरा किया और फुरफुराते हुए अपने घोड़े को रोकता हुआ
ोला,

"सरकार, विट्ठल सुन्दर की अम्बारी का अचूक वेध करता हूँ। जीता
ो तो इनाम देना।"

माधवराव केवल हँसे और उसी समय सिर झुकाकर उसने लगाम ढीली
ोड़ दी। अपने भाले को तोलते हुए उसने घोड़े को एड़ लगायी। उस
ीड़ में से वह तीर की तरह विट्ठल सुन्दर की अम्बारी की ओर चल दिया।
ीच में आते हुए मुगलों को भेदता हुआ महादजी तेज़ी से चला जा रहा था।
उसकी आँखों के आगे केवल विट्ठल सुन्दर की अम्बारी दिखाई दे रही थी।
अम्बारी में बैठकर तीर चलानेवाले विट्ठल सुन्दर पर उसकी दृष्टि लगी हुई
थी। कुछ क्षणों में ही वह अम्बारी के पास आ गया। और उसने भाले को
उछाला। उछाला हुआ भाला क्षण-भर में हवा को भेदता हुआ गया और दूसरे
ही क्षण विट्ठल सुन्दर के हाथ से तीर छूटकर गिर गया। दोनों हाथों से छाती
पकड़कर विट्ठल सुन्दर अम्बारी में गिर पड़ा। मुगल सैनिकों में हाहाकार मच
गया। सैनिक अनुशासन भूलकर अपनी-अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगे।
प्राणों को बचाने के लिए सब भागने लगे। परन्तु एक ओर गर्जना करती हुई
गोदावरी की विशाल जलराशि और दूसरी ओर सपासप चलती हुई तलवारें...
भयंकर मारकाट शुरू हो गयी। गोदावरी के गरजते हुए जल की चिन्ता न करके
कुछ जल में कूदकर प्राण बचा रहे थे...।

—और विट्ठल सुन्दर का सिर भाले की नोक पर सारे सैनिकों में घूम
रहा था।

माधवराव आर्द्र दृष्टि से यह सब देख रहे थे। अभिमान से उनका हृदय
भर आया। उसी समय महादजी सिंदे वहाँ आ गया। उसने श्रीमन्त को
मुजरा किया। उसके मुजरे को स्वीकार कर माधवराव बोले,

"महादजी, हम तुम्हारे पराक्रम से बहुत प्रसन्न हैं। आप-जैसे निडर छाती
वाले बहादुर सहायक होने पर मराठा राज्य की गिरी हुई इमारत खड़ी करने
में देर ही कितनी लगेगी? तुम्हारी तलवार उत्तरोत्तर मराठा राज्य के भार
उठाने के काम में आती रहे, यही हमारी इच्छा है। आज इसी क्षण
स्थान पर तुमको इनाम में मांजरी गाँव और सरदार का पद हम देते हैं...

महादजी ने मुजरा किया।

चारों ओर अन्धकार छा रहा था। पश्चिम से आनेवाली वायु

वर्षा की अविरल धारा आगे बढ़ती जा रही थी। गोदावरी का जल पुनः बढ़ रहा था। रणांगण पर पड़े हुए घायल सैनिकों के कराहने की आवाजें गोदावरी की गर्जन ध्वनि में मिल रही थीं। वर्षा तेज होती जा रही थी, परन्तु तेज होती हुई उस वर्षा की चिन्ता न करते हुए माधवराव भीगते हुए अविचल खड़े थे। उनकी दृष्टि परले किनारे पर लगी हुई थी....।

दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे मुड़े। उसी समय दादा जल्दी-जल्दी आते हुए दिखाई दिये। वहाँ आते ही बोले, "माधव कहाँ है? और वर्षा में भीग रहा है? अरे, सावधानी तो रखनी चाहिए या नहीं?"

"काका, सावधानी रखूँ? आपका आधार ही हमारी सावधानी है! आपको देखने के लिए प्राण हमारी आँखों में आ गये थे। आप आ गये। अब किसी में हिम्मत नहीं जो हमको भिगो दे।"

राघोबा दादा भर्रायी हुई आवाज में बोले, "माधव, तू था इसलिए आज बच गया। तेरी वीरता देखकर जीवन कृतार्थ हो गया। इतनी लड़ाइयाँ जीतीं देखीं; परन्तु आज की-सी धन्यता कभी नहीं लगी। आज तुमने पराक्रम की हद कर दी। नाना का नाम रोशन कर दिया। हम आज राज्य के उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये।"

दोनों वर्षा में भीग रहे थे। पीछे सैकड़ों सवार खड़े थे। वर्षा की धाराएँ पड़ रही थीं। माधवराव चेहरे से पानी पोंछते हुए बोले,

"काका, आज सारा राज्य भीग रहा है। नदी के उस पार निजाम है। मध्य में गोदावरी न होती....तो..." गद्गद होकर माधवराव बोले, "काका, आज गोदावरी ने निजाम की बड़ी सहायता की।"

"सच है माधव! परन्तु जो कुछ हो चुका है, इससे सिर उठाने में निजाम को कितना समय लगेगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। आज-कल में ही निजाम को घेरना चाहिए। आज कहीं वह मिल जाता तो जिन्दा नहीं बचता। चल, माधव, अन्धकार बढ़ रहा है तथा वर्षा में भीगना भी उचित नहीं है।"

माधवराव काका के पीछे-पीछे चलने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब माधवराव डेरे से बाहर निकले तब पहली बार उनकी दृष्टि गोदावरी के परले किनारे की ओर मुड़ गयी। उनको आश्चर्य का धक्का लगा। जहाँ निजाम की छावनी लगी हुई थी वह सारी जगह खाली दिखाई दे रही थी। माधवराव जल्दी-जल्दी डेरे में गये। अपनी दुर्बीन लेकर

वे बाहर आये। दुर्बीन से उन्होंने निजाम की छावनी की जगह का निरीक्षण किया। आसपास कहीं मनुष्यों का पता नहीं था। तोपें जरूर पन्द्रह-बीस दिखाई दे रही थीं। छावनी जल्दी-जल्दी उठायी गयी थी, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। छोटी-मोटी वस्तुएँ तो ज्यों की त्यों पड़ी थीं। माधवराव चुपचाप बड़ी देर तक उसको देखते रहे।

"क्या देख रहे हैं श्रीमन्त ?"

इस आवाज को सुनते ही माधवराव ने पीछे देखा। मल्हारराव होलकर खड़े थे। उनकी ओर देखते हुए माधवराव बोले,

"वह देखो मल्हारबा !"

होलकरजी ने देखा और उनके मुख से एकदम उद्‌गार बाहर निकले,

"अरे !"

"मल्हारबा ! स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि निजाम भाग गया !"

"परन्तु श्रीमन्त, कहीं यह चाल तो नहीं है ? हम परले किनारे पर उतरें और हमको असावधान देखकर हल्ला करने का इरादा तो नहीं होगा न ?"

"मल्हारबा, इतनी ताक़त अब उसमें नहीं रह गयी है। जब विट्ठल सुन्दर का पतन हुआ तभी उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। हमारी छावनी पर इस प्रकार छिपकर हल्ला करने का साहस उसमें नहीं रहा है।... हमको केवल भुलावे में डालता रहेगा वह। परन्तु अब अधिक दिनों तक रुकना भी व्यर्थ है। उसकी सैन्यशक्ति फिर से बढ़े इससे पहले ही उसको नष्ट कर देना चाहिए।"

"सच है श्रीमन्त ! परन्तु माता गोदावरी ने आज हमको बिलकुल ही रोक रखा है....नहीं तो निजाम कहीं भी छिपे....भले ही वह पाताल में चला जाये.... वहाँ से भी हम उसको बाहर खींच लायें; परन्तु यह जल जाने कब उतरेगा, भगवान् जानें !"

माधवराव की दृष्टि मल्हारराव पर स्थिर हो गयी। वे बोले,

"मल्हारबा ! गोदामाता जीवनदात्री है। वह रुकावट नहीं डालेगी। वह हमको केवल रास्ता बदलने को कहती है।"

कथन का तात्पर्य न समझकर मल्हारराव ने पूछा,

"अर्थात् पीछे लौटा जाये ?"

माधवराव मुक्तमन से हँसे। वे बोले,

"इस प्रकार विजय निकट होने पर क्या कोई पीछे लौटता है ? मैंने यह कहा कि रास्ता बदल देना चाहिए। यदि गोदावरी यहाँ रास्ता न दे रही हो तो जहाँ से रास्ता मिले वहाँ जाना चाहिए। छावनी उठाइए। मार्ग मिलेगा।"

उसी समय वहाँ बापू आ गये और वे बोले,

"श्रीमन्त, भोंसलों का सन्देश आया है।"

"क्या कहते हैं भोंसले ?"

"आपसे मिलना चाहते हैं।"

"ठीक है। उनको सूचित कर दीजिए कि उनसे मिलने के लिए हम सदैव उत्सुक रहेंगे।"

"जो आज्ञा।" बापू बोले।

बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव गोदावरी के गरजते पात्र की ओर उदास दृष्टि से देख रहे थे।

गोदावरी की बाढ़ उतरने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं दे रही थी। छावनी उठाने की लगभग पूर्ण तैयारी हो चुकी थी। सन्ध्या-समय माधवराव नदीतट पर खड़े थे। आकाश अब भी मेघाच्छादित था। सखाराम बापू बोले,

श्रीमन्त, छावनी कल उठेगी न ?"

"निश्चय ही।"

"पीछे-पीछे यदि आप औरंगाबाद जा धमकें तो निजाम के छक्के छूट जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।"

"हम यही चाहते हैं। आपको ऐसा नहीं लगता ?"

सखाराम बापू ने नजर मोड़ ली। माधवराव के चेहरे पर हँसी खिल उठी।

हवा ठण्डी चल रही थी। माधवराव छावनी की ओर मुड़े। उसी समय नदीतट से दौड़कर आते हुए सवार पर सबकी दृष्टि पड़ी। माधवराव के पास खड़े हुए रक्षक तलवार खींचकर आगे दौड़े। घुड़सवार पूरे वेग से दूरी तय कर रहा था। टापों की आवाज के साथ ही कानों में शब्द पड़े,

"हुजूरऽऽ अमानऽऽ अमान।"

थोड़ी दूरी पर आकर वह सवार घोड़े से उतरा। क्षण-भर में वह सवार माधवराव के रक्षकों द्वारा घेर लिया गया। उसको निःशस्त्र कर दिया गया। रक्षकों के साथ वह सवार माधवराव के पास आया। पास आते ही उस सवार ने माधवराव के सामने घुटने टेक दिये। माधवराव ने पूछा,

"कौन ?"

"हुजूर ! इस नाचीज को मीर मुसाखान कहते हैं। निजाम अली की फ़ौज का नाजिमे हरकार।"

निजाम के गुप्तचर विभाग के प्रमुख मीर मुसाखान को माधवराव ध्यान से देख रहे थे। अपने चेहरे के भाव में बिलकुल भी परिवर्तन न करते हुए माधवराव ने पूछा,

"हमारे पास आने का कारण ?"

"हुजूर ! जंग में सेना तबाह हो गयी। किसी का ठिकाना नहीं रहा। मैं नदी के इस पार रह गया। छिपा रहना कठिन हो गया। किसी वन्य के हाथों से मरने से तो अच्छा है कि हुजूर की आज्ञा से ही वह हो, इसलिए आया हूँ। अमान हुजूर अमानऽ"

"मीर मुगलखान उठिए ! हम अभय देते हैं।"

प्रसन्नता से भरे हुए मुगलखान ने श्रीमन्त के कुरते का चुम्बन किया और वह उठ खड़ा हुआ।

बापू धीरे से बोले, "परन्तु श्रीमन्त !"

मीर मुगलखान पर से अपनी दृष्टि न हटाते हुए श्रीमन्त बोले,

"बापू ! पुरानी निजामी के समय से, निजाम के जुल्मों से उकताकर पेशवाओं के आश्रय में आये हुए, शेरजंग अपनी छावनी में हैं। उनके पास ले जाओ इनको। यह व्यक्ति हमारे काम आयेगा, इसमें हमको सन्देह नहीं।"

मीर मुगलखान को रवाना कर दिया गया। बापू ने पूछा, "श्रीमन्त, आप इनको जानते हैं ?"

"उनकी कीर्ति को जानते हैं। यह व्यक्ति कर्तृत्ववान् है। निजाम के शासन से उकताया हुआ है।"

"क्यों ?"

"क्यों ? शेरजंग पेशवाओं के आश्रय में क्यों आये ? निजाम सुन्नी सम्प्रदाय का है। शेरजंग और मीर मुगलखान शिया सम्प्रदाय के हैं। ये कितना भी काम करें, इनकी सेवा का उचित सम्मान कभी नहीं होता।"

"इसका परिणाम ?"

माधवराव हँसे।

"बापू ! मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। देखेंगे।"

श्रीमन्त छावनी की ओर चल रहे थे। बापू पीछे-पीछे चल रहे थे।

अचानक सवेरे छावनी उठ गयी। नदी के किनारे-किनारे पैठन तक पहुँचे। वहाँ नदी पारकर माधवराव की फौजें औरंगाबाद से भिड़ गयीं। औरंगाबाद पेशवाओं के घेरे में आ गया। विट्ठल सुन्दर-जैसा राजनीति-धुरन्धर निजाम खो चुका था। राक्षसभुवन की लड़ाई में उसके हजारों सैनिक मारे गये थे। इस धक्के को सहन करते आये हुए निजाम को औरंगाबाद का घेरा असह्य होता जा रहा था।

श्रीमन्त निश्चिन्त मन से अपने डेरे में बैठे हुए थे। बापू, मल्हारराव पास खड़े थे। उसी समय उनका ध्यान आते हुए सेवक की ओर गया। सेवक पास आया और श्रीमन्त को मुजरा करके बोला,

"श्रीमन्त, भोंसलों का सन्देश आया है।"

"क्या कहते हैं भोंसले ?"

"आपसे मिलना चाहते हैं।"

"ठीक है। उनको सूचित कर दीजिए कि उनसे मिलने के लिए हम सदैव उत्सुक रहेंगे।"

"जो आज्ञा।" बापू बोले।

बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव गोदावरी के गरजते पात्र की ओर उदास दृष्टि से देख रहे थे।

गोदावरी की बाढ़ उतरने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं दे रही थी। छावनी उठाने की लगभग पूर्ण तैयारी हो चुकी थी। सन्ध्या-समय माधवराव नदीतट पर खड़े थे। आकाश अब भी मेघाच्छादित था। सखाराम बापू बोले,

श्रीमन्त, छावनी कल उठेगी न ?"

"निश्चय ही।"

"पीछे-पीछे यदि आप औरंगाबाद जा धमकें तो निज़ाम के छक्के छूट जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।"

"हम यही चाहते हैं। आपको ऐसा नहीं लगता ?"

सखाराम बापू ने नज़र मोड़ ली। माधवराव के चेहरे पर हँसी खिल उठी।

हवा ठण्डी चल रही थी। माधवराव छावनी की ओर मुड़े। उसी समय नदीतट से दौड़कर आते हुए सवार पर सबकी दृष्टि पड़ी। माधवराव के पास खड़े हुए रक्षक तलवार खींचकर आगे दौड़े। घुड़सवार पूरे वेग से दूरी तय कर रहा था। टापों की आवाज़ के साथ ही कानों में शब्द पड़े,

"हुज़ूरऽऽ अमानऽऽ अमान।"

थोड़ी दूरी पर आकर वह सवार घोड़े से उतरा। क्षण-भर में वह सवार माधवराव के रक्षकों द्वारा घेर लिया गया। उसको निःशस्त्र कर दिया गया। रक्षकों के साथ वह सवार माधवराव के पास आया। पास आते ही उस सवार ने माधवराव के सामने घुटने टेक दिये। माधवराव ने पूछा,

"कौन ?"

"हुज़ूर! इस नाचीज़ को मीर मुसाखान कहते हैं। निज़ाम अली की फ़ौज का नाज़िमे हरकार।"

निज़ाम के गुप्तचर विभाग के प्रमुख मीर मुसाखान को माधवराव ध्यान से देख रहे थे। अपने चेहरे के भाव में बिलकुल भी परिवर्तन न करते हुए माधवराव ने पूछा,

"हमारे पास आने का कारण ?"

"हुजूर ! जंग में सेना तबाह हो गयी। किसी का ठिकाना नहीं रहा। मैं नदी के इस पार रह गया। छिपा रहना कठिन हो गया। किसी अन्य के हाथों से मरने से तो अच्छा है कि हुजूर की आज्ञा से ही वह हो, इसलिए आया हूँ। अमान हुजूर अमानऽऽ"

"मीर मुसाखान उठिए ! हम अभय देते हैं।"

प्रसन्नता से भरे हुए मुसाखान ने श्रीमन्त के कुरते का चुम्बन किया और वह उठ खड़ा हुआ।

बापू धीरे से बोले, "परन्तु श्रीमन्त !"

मीर मुसाखान पर से अपनी दृष्टि न हटाते हुए श्रीमन्त बोले,

"बापू ! पूज्य पिताजी के समय के, निजाम के जुल्मों से उकताकर पेशवाओं के आश्रय में आये हुए, ज़ोरजंग अपनी छावनी में हैं। उनके पास ले जाओ इनको। यह व्यक्ति हमारे काम आयेगा, इसमें हमको सन्देह नहीं।"

मीर मुसाखान को रवाना कर दिया गया। बापू ने पूछा, "श्रीमन्त, आप इसको जानते हैं ?"

"उसकी कीर्ति को जानते हैं। यह व्यक्ति कर्तृत्ववान् है। निजाम के शासन से उकताया हुआ है।"

"क्यों ?"

"क्यों ? ज़ोरजंग पेशवाओं के आश्रय में क्यों आये ? निजाम सुन्नी सम्प्रदाय का है। ज़ोरजंग और मीर मुसाखान शिया सम्प्रदाय के हैं। ये कितना भी काम करें, इनकी सेवा का उचित सम्मान कभी नहीं होगा।"

"इसका परिणाम ?"

माधवराव हँसे।

"बापू ! मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। देखेंगे।"

श्रीमन्त छावनी की ओर चल रहे थे। बापू पीछे-पीछे चल रहे थे।

अलस्स सवेरे छावनी उठ गयी। नदी के किनारे-किनारे पैठण तक पहुँचे। वहाँ नदी पारकर माधवराव की फ़ौजें औरंगाबाद से भिड़ गयीं। औरंगाबाद पेशवाओं के घेरे में आ गया। विट्ठल सुन्दर-जैसा राजनीति-धुरन्धर निजाम खो चुका था। राक्षसभुवन की लड़ाई में उसके हज़ारों सैनिक मारे गये थे। इस धक्के को सहन करके आये हुए निजाम को औरंगाबाद का घेरा असह्य होता जा रहा था।

श्रीमन्त निश्चिन्त मन से अपने डेरे में बैठे हुए थे। बापू, मल्हारराव पास खड़े थे। उसी समय उनका ध्यान आते हुए सेवक की ओर गया। सेवक पास आया और श्रीमन्त को मुजरा करके बोला,

"दादा साहब सरकार ने बुलाया है !"

"किसको ? हमको ?" माधवराव सचेत होते हुए बोले ।

"जी !"

"और कौन है ?"

"जी, अकेले ही हैं !"

माधवराव उठे। पीछे-पीछे बापू चलने लगे । दादा के डेरे के पास आते ही वे क्षण-भर रुके । फिर द्वार पर खड़े सेवकों के मुजरे स्वीकार कर वे अन्दर प्रविष्ट हुए । दादा साहब की ओर देखते हुए वे बोले,

"काका, आपने बुलाया है ?"

"हाँ !" दादा बोले । उनका चेहरा क्रुद्ध दिखाई पड़ रहा था । माधवराव कुछ समझ नहीं पाये । दादा साहब के चेहरे की ओर वे चुपचाप देखते रहे ।

दादा साहब उनपर दृष्टि केन्द्रित कर बोले,

"जाधवों को आपने सरदार-पद बहाल कर दिया ?"

"हाँ !" माधवराव बोले, "परन्तु इसमें हमने कुछ अनुचित किया है, ऐसा नहीं लगता है हमें !"

"ठीक है, आपको तो अब ऐसा ही लगेगा । स्वर्ग तक हाथ पहुँच गये हैं न आपके । आपकी आँखें ऊपर लगी हुई हैं । पैरों के नीचे देखने का आपको ध्यान ही नहीं रहा । पैरों के नीचे विषधर सर्प रखे आप घूम रहे हैं । आप यदि इसी तरह बिना विचारे लड़कपन करते रहे तो आपकी सत्ता क्षण-भर में विलीन हो जायेगी । इतनी समझ आपमें होनी चाहिए !"

"परन्तु काका, इसमें अनुचित है ही क्या ?"

"फिर पूछिए मुझसे ! यही बात यदि पहले पूछी होती तो हमने जरूर बतायी होती । उदगीर की लड़ाई में जिन जाधवों ने भाऊ के विरुद्ध तलवार उठायी, जिस जाधव ने पंढरपुर-जैसा धर्मक्षेत्र लूटा, अपने इस कर्म से तो उन्होंने मुग़लों को भी लजा दिया, फिर भी आपने उसको माफ़ कर दिया । इतना करके ही वह नहीं रुका । औरंगाबाद में घातक से हमारे ऊपर हल्ला करवाकर हमारी हत्या कराने की कोशिश की...हमारी अवज्ञा करके आपने उसको क़ैद में रखा, वह केवल इसीलिए....मानो तुम्हारे पद को छीनने के लिए हम घात लगाये बैठे हैं...। माधव, हमारी सलाह भूल गये ! तुम्हारी इस लड़कपन की करतूत से हमारी दक्षिण की सत्ता का अब किसी भी समय अन्त हो सकता है, यह तुम विश्वास रखो !"

"काका, दक्षिण इतना दुर्बल नहीं रह गया है । जाधवराव का शौर्य हम देख चुके हैं । पहले आपने ही उनको निकट किया था, यह आप भूल रहे

स्वामी

है। घोड़नदी की लड़ाई में निज़ाम के छोटे भाई मीर मोगल को लेकर ये ही जाधवराव आपके पास आये थे। आज निज़ाम के सामने समझौता करने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं है। विट्ठल सुन्दर चला गया। रोकंग अपनी ओर हैं और अब मीर मुशालान के आने से अपना पक्ष बढ़ गया है। आपकों पर निज़ाम का विश्वास है। हमने जाधवराव को इसीलिए सरदार का पद दिया है। हमें एक ऐसा सरदार चाहिए जो सीमा पर स्थित निज़ाम पर नज़र रख सके। यह काम जाधवराव के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? ऐसा योग्य व्यक्ति कोई और हमको दिखाई नहीं दे रहा है। अपराध सभी से हो जाते हैं; परन्तु यदि समय रहते उनको सुधारा न जाये, तो फिर राज्य के रसातल जाने में देर नहीं लगती....यह बात हरेक को ध्यान में रखनी चाहिए।....आप भी इसके अपवाद नहीं हैं।"

माधवराव ने कहना बन्द किया। दादा साहब की सन्तप्त मुद्रा की ओर उन्होंने क्षण-भर देखा और फिर वे सीधे डेरे से बाहर चले गये।

राघोबा दादा माधवराव के शब्दों से सुन्न होकर उनके पृष्ठभाग की ओर देखते रहे।....

माधवराव की अपेक्षानुसार निज़ाम ने समझौते की वार्ता प्रारम्भ कर दी। इस खबर से सारी छावनी में विजय का आनन्द छा गया। विट्ठल सुन्दर की मृत्यु के बाद निज़ाम ने विट्ठल सुन्दर के दस वर्ष के नाती को प्रधान का पद दिया है—यह खबर भी श्रीमन्त को मिल चुकी थी। मल्हारराव बोले, "दस वर्ष के लड़के को प्रधान पद देनेवाला निज़ाम कितने समय तक टिक सकेगा?"

माधवराव की हँसी लुप्त हो गयी। वे तत्क्षण बोले,

"यह बात नहीं है! उल्टे निज़ाम पर आश्चर्य होता है। तारीफ़ करनी आती है। विट्ठल सुन्दर को गँवाकर जो दुःख निज़ाम को सहना पड़ा है, वह उसको निशानी है। वह दस वर्ष का बालक विट्ठल सुन्दर का स्मारक है।"

उस रात बड़ी देर तक माधवराव अपने डेरे में रोकंग और मीर मुशालान से बातें करते रहे थे।

समझौते की जो शर्तें माधवराव ने प्रस्तुत कीं उनसे निज़ाम बेचैन हो गया। उदगीर के समझौते में तय हुआ साठ लाख आमदनी का मुल्क माधवराव ने लौटा दिया। अपनी ओर जागीर देकर वैसा हुआ था, वह उसको वापस लौटाने की शर्त रखी थी। पेशवाओं की यह भी अपेक्षा थी कि आवश्यकता पड़ने पर निज़ाम पेशवाओं की सहायता करने आयें। ये बातें यदि नहीं मानी गयीं

तो निजाम को गद्दी से उतारकर सलावत जंग को गद्दी पर बैठाने की धमकी दी थी। निजाम पूर्ण रूप से चंगुल में आ गया था। उसने माधवराव की सभी शर्तें मान लीं। समझौता हो गया।

श्रीमन्त और निजाम मिले। समझौता पक्का हो गया। माधवराव ने निजाम से कहा, "हमारे समझौते की शर्तों का आप पालन करेंगे, यह हमें विश्वास है।"

"पण्डित पन्तप्रधान, हम कहकर मुकरनेवाले नहीं हैं।" निजामअली ने साक्षी दी।

"यह ठीक है। परन्तु हमारी एक और प्रार्थना है।"

"आज्ञा कीजिए!" निजाम ने विनयपूर्वक कहा।

"हमारी प्रार्थना है कि आपके जो नाजिमे हरकार मीर मुसाखान हैं, उनको आप मुख्य प्रधान बनायें। उनको मदारुलमहाम बनायें।"

निजाम झिझका। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह बोला,

"पण्डित पन्तप्रधान! हम किसको प्रधान नियुक्त करें, यह हमारा निजी मामला है। कृपा करके यह ध्यान रखें।"

माधवराव की कठोर दृष्टि निजाम पर स्थिर हो गयी। वे बोले,

"बन्दगाने आली आला हजरत जरा हालात पर ग़ौर करें। अब आगे मीर मुसाखान आपके प्रधान बनेंगे। हम चाहते हैं कि आप उनकी सलाह को कभी नजरअन्दाज न करें।"

निजाम ने थूक निगला। उसने मानवस्त्र मँगवाये और मीर मुसाखान निजाम का प्रधान मन्त्री बन गया। उसको रुक्नुदौला खिताब दिया गया।

निजाम से समझौता करके माधवराव ने औरंगाबाद छोड़ दिया। माधवराव ने पुणे की ओर अपनी छावनी अग्रसर की, परन्तु राघोबा दादा पुणे को जाने को तैयार नहीं हुए। वे सीधे आनन्दवल्ली को चले गये।

राक्षसभुवन को जीतकर विजयी माधवराव पुणे को आ रहे हैं, इस वार्ता से सारे पुणे में उत्साह का संचार हो गया था। उस एक वार्ता से पुणे के निवासी अपने सारे दुःख भूल गये थे। निजाम ने पुणे को लूटते समय एक भी मन्दिर नहीं छोड़ा था। लूट और आगजनी की थी, परन्तु उसका किसी को ध्यान भी नहीं रहा था।

शनिवार-भवन की सारी उदासी दूर हो गयी थी। वहाँ नया उत्साह संचरित हो गया था। आलेगांव में शरणागति स्वीकार करने के बाद माधवराव पहली

ही बार पुणे को आ रहे थे। इसी बीच अनेक छोटी-बड़ी दुर्घटनाएँ शनिवार-भवन में घट चुकी थीं। जब माधवराव राघोबा दादा की क़ैद में थे तब स्वयं राघोबा के हुक्म से शनिवार-भवन पर गारदियों का पहरा बैठ चुका था। निजाम के भय से रमाबाई और गोपिकाबाई को सिंहगढ़ पर भेज दिया गया था।

राक्षसभुवन से नाना फड़णीस फड़णीसों के वस्त्र और पेशवाओं के आगमन की वार्ता लेकर आये थे। सात मंजिलवाले शनिवार-भवन पर पुताई का कार्य चल रहा था। माधवराव जिस समय शहर में प्रवेश करें उस समय निजाम के आक्रमण का कोई चिह्न माधवराव की दृष्टि में न पड़े, इसके लिए सारा पुणे प्रयत्न कर रहा था। बाहर स्वागत की यह तैयारी हो रही थी और अन्दर रमाबाई तथा गोपिकाबाई—अल्पाहार-व्यवस्था में कोई कमी न रह जाये इसलिए प्रयत्नशील थीं।

पुणे के अनेक सरदारों की स्त्रियाँ, पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ इत्यादि अल्पाहार के लिए शनिवार-भवन में एकत्रित थीं। अनेक प्रकार की तैयारी थी। हजारा फ़व्वारे के चौक तक सभी चौकों में *नित्य पापड़ और बड़ियाँ सुखायी जा रही* थीं। पाकशाला से लेकर ऊपर के बरामदे तक—चालीस-पचास लोग प्रतिदिन अल्पाहार कर रहे थे। तलने के लिए कड़ाहियाँ खौल रही थीं, रसोइये पसीने से तर हो रहे थे। स्त्रियों के हास-परिहास से भवन गूँज रहा था। रमाबाई और गोपिकाबाई सारी व्यवस्था देखने में दिन-रात लगी हुई थीं।

दोपहर का भोजन समाप्त कर रमाबाई अपने महल में आयी थीं। उनके साथ आठ-दस सखियाँ थीं। पीछे-पीछे मैना पानदान लेकर अन्दर आयी। सभी जनी उस पानदान पर झपटीं। रास्ते की पुत्रवधू गोदावरीबाई वहाँ थी। उन्होंने पानदान से दो बीड़े उठाये और एक को रमाबाई के आगे रखती हुई वे बोलीं,

"तुम भी लो न!"

"नहीं भई!" रमाबाई बोलीं, "मैं पान नहीं खाती हूँ।"

"कभी नहीं खाती हैं?" आश्चर्य से गोदावरीबाई ने पूछा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं हैऽऽ" रमाबाई हिचकिचायीं।

दूसरी सखी आगे बढ़कर गोदावरीबाई के आगे हाथ नचाती हुई बोली, "वाह री तेरी अक़्ल! अरे, हमारी रमाबाई पान खाती हैं; परन्तु वह हमारे हाथ का नहीं।—"

"फिर?" दूसरी ने व्यंग्य से पूछा।

अब तक सभी पान चबाती हुई रमाबाई को घेरकर खड़ी हो गयी थीं।

"खाती हैं अपने 'उनके' हाथ का!" वह सखी बोली।

"सच?" गोदावरीबाई ने हनु से हाथ लगाया और सारा महल खिल-

खिलाहट से भर गया।

"जाओ, बेकार की बातें करती हो!" रमाबाई बनावटी क्रोध से बोलीं।

"मुझे बताओ न, क्यों नहीं खाती हो?" गोदावरीबाई ने पीछा न छोड़ा।

रमाबाई लज्जा से लाल हो गयी थीं। उनके घबड़ाये हुए चेहरे की ओर देखकर सभी ने हँसना बन्द कर दिया। उनकी मुखमुद्रा देखकर गोदावरीबाई भी शान्त हो गयीं। वे बोलीं, "जाने दो इस बात को! कहने लायक़ न हो तो मत कहो! मुझसे ही भूल हो गयी भई!"

"नहीं जी! ऐसी बात नहीं है!" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "परन्तु कैसे कहूँ?"

सभी जनी साँस रोककर सुनने लगीं। रमाबाई घबड़ायी हुई कह रही थीं, "लगभग एक वर्ष हो गया होगा। ये कर्नाटक की लड़ाई में गये हुए थे। उस दिन कोई त्योहार था। भोजन करने के बाद मुझ पगली को पान खाने की इच्छा हुई। पान समाप्त हो गये थे। मैंने नाना के पास पान लाने के लिए मैना को भेजा...."

"फिर!" रमाबाई को रुकते देखकर अधीर बनी हुई सखियों ने पूछा,

"और नाना ने सन्देश भेजा।" रमाबाई लम्बी साँस छोड़कर बोलीं।

"क्या सन्देश भेजा?" गोदावरीबाई ने पूछा।

"जब 'ये' लड़ाई पर गये हों, तब पान खाना उचित नहीं है—यह सन्देश नाना ने भेजा। मुझको लगा—धरती फट जाती तो मैं उसमें समा जाती। पान खाने की दुर्बुद्धि न जाने कहाँ से आयी मुझमें!"

"और पान खाना छोड़ दिया—यही न?" गोदावरीबाई ने हँसकर पूछा।

"छोड़ा नहीं है, परन्तु अकेले नहीं खाना है, यह निश्चय किया!" मैना हँसकर बोली और फिर हँसी की लहर आ गयी। रमाबाई क्षण-भर हँसीं और फिर कृत्रिम क्रोध से बोलीं,

"मैने! अब चतुराई बन्द कर! पाकशाला में जाकर देख, कढ़ाइयाँ तैयार हो गयी होंगी। माताजी वहाँ पहुँच गयी हों तो सूचना दे। आज चिरोटे[1] बनाने हैं।"

"जी" कहकर मैना बाहर चली गयी। गप्पें और हँसी की झड़ी फिर लग गयी। मैना आयी और रमाबाई से बोली,

"माँ साहिबा ने बुलाया है!"

"मुझको? कौन है वहाँ?"

"कोई नहीं। वहूँ काकी हैं...."

---

१. [illegible]

"क्यों ? नाना नहीं मिले ?"

"मिले।"

"फिर ? बोल न !" रमाबाई परेशान होकर बोलीं।

"वे बोले—लड़ाई से सरकार जबतक न आ जायें तबतक कलाबत्तू के वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।"

"क्या ? नाना ने यह कहा ?" उनका गौरवर्ण चेहरा क्रोध से तमतमा गया। कानों के निचले हिस्से और नासिका का अग्रभाग—ये एकदम लाल हो गये। वे बोलीं, "अभी जा, और नाना से कहना कि मैंने तुरन्त ही बुलाया है ! कहना—जैसे हों वैसे ही चले आवें।"

"जी" कहकर मैना गयी।

गोपिकाबाई उठीं और मसनद के सहारे बैठ गयीं; परन्तु रमाबाई का ध्यान उनकी ओर नहीं था। वे खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयीं। उनकी दृष्टि सामने चौक पर लगी हुई थी। जब चौक में मैना और उसके पीछे-पीछे नाना आते हुए दिखाई दिये तब रमाबाई मुड़ीं। कुछ क्षणों बाद महल के बाहर नाना के पैरों की आहट कानों में पड़ी। मैना के पीछे-पीछे नाना अन्दर आये। अदब से रमाबाई को और गोपिकाबाई को नमस्कार कर वे खड़े हो गये।

"नाना ! तुमको फडणीसी के वस्त्र मिल गये न ?"

"जी हां।"

"और तब भी आपने कलाबत्तू के वस्त्रों के बारे में सन्देश भेजा ?"

"जी हां !"

रमाबाई क्रोध से थरथर कांपती हुई बोलीं, "नाना, हम तुम्हारी मालकिन हैं। इस घर के शिष्टाचार तुमसे अधिक हम जानती हैं। पेशवाओं के घर के कुलाचार आपसे सीखने की नौबत अभी हमपर नहीं आयी है। स्वयं पेशवे यद्यपि लड़ाई पर गये हुए हैं, फिर भी यथावसर उनके घर आये हुए आकस्मिक अतिथि जन जब अपने घर जायेंगे, तब सम्मान सहित ही विदा किये जायेंगे। यह देखना हमारा कर्तव्य है। समझ गये ?"

"जी।"

"यह बात 'इनके' कानों तक पहुँचे, यह मैं नहीं चाहती। यह मेरी इच्छा नहीं है, परन्तु यदि ऐसा हो गया तो वे आपकी अच्छी तरह सराहना करेंगे, ऐसा लगता नहीं है। शीघ्र कलाबत्तू के वस्त्र भेज दीजिए और भविष्य में इस तरह का सन्देश भेजने का साहस मत कीजिए !"

नाना रमाबाई का उग्र रूप देखकर एकदम चकित हो गये थे। चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़की के उस कठोर भाषण से उन्हें पसीना आ गया था। होश

काम से पेशवाओं की मसनद बड़ी सुन्दर लग रही थी।

दोपहर के बाद सूर्य कुछ झुकने पर पर्वती के नीचे खड़ी की हुई तोपों ने सलामी दी और पेशवाओं की सवारी शनिवार-भवन की ओर आने की घोषणा पुणे में करवा दी गयी। साज-शृंगार किये हुए स्त्री-पुरुष मुख्य रास्ते पर इकट्ठे हो गये थे। घर-घर पर वन्दनवार सजाये गये थे। मुख्य रास्ते पर दीपस्तम्भ लगाये गये थे।

शनिवार-भवन में मैना रमाबाई के केश सँवार रही थी। तोपों की आवाज़ सुनते ही रमाबाई बोलीं,

"देख, सवारी चल दी। यहाँ अभी केश भी नहीं सँवरे हैं!"

"अरी दैया! कितनी जल्दी है?" मैना बोली, "चिन्ता न करें बीबी साहिबा! सवारी इतनी जल्दी भवन तक नहीं आ जायेगी। दिया जले तक सवारी भवन तक पहुँच पायेगी, आप देख लेना!"

"फिर तू क्यों अभी से बन-ठनकर बैठी है?" रमाबाई ने पूछा।

"अच्छा! अच्छा! आप देखें तो कि बाई साहिबा को मैं कैसी सजाती हूँ!"

मैना ने वेणी को विशेष सुन्दर आकार दिया। सुवर्णफूल लगाया। कानों में मोतियों के कुण्डल पहनाये। रमाबाई ने जरीजटित गुलाबी साड़ी पहन रखी थी। मैना ने रमाबाई की भुजाओं पर सुवर्ण के भुजबन्द बाँधे। गले में अचक-पचक हाथों से हीरों का हार डाला। पैरों में पाजेब पहनायी और फिर वह रमाबाई से बोली, "दर्पण में देखिए न, पहचान लेंगी क्या?"

दर्पण में अपने रूप को देखती हुई रमाबाई खड़ी थीं। सुन्दर नाकनक्शे-वाली गौरवर्ण की रमाबाई अपने बड़े-बड़े नेत्रों से अपना रूप निहार रही थीं। भाल पर लगी हुई चन्द्रकला तथा आँखों में अंजन को देखते-देखते रमाबाई के गुलाबी अधरों पर मुसकराहट छा गयी। यह देखकर मैना बोली, "अच्छा लगा!"

"चल! बेकार की बातें करती है! माताजी के महल में आरती का सामान रख दिया है न?"

"हाँ! बहुत पहले!"

"चल! हम लोग माताजी के पास चलें।" दोनों जल्दी-जल्दी गोपिकाबाई के महल की ओर गयीं।

जैसे-जैसे बन्दूक़ की आवाज़ें सुनाई देने लगीं, वैसे ही वैसे शनिवार-भवन में दौड़धूप बढ़ती गयी। रमाबाई नक्क़ारखाने की छत पर खड़ी हो गयीं। सज्जित राजमार्ग दिखाई दे रहा था। सारा नगर ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित हो रहा था। सारा मार्ग मनुष्यों से भरा हुआ था। मार्ग के लोग अब अधीर हो उठे थे।

रमाबाई अपनी सखियों के साथ चारों ओर देख रही थीं। भवन की दासियाँ दीपक रख रही थीं।

जल्दी ही रास्ते के छोर पर सबसे आगे आनेवाले साँडणीसवार दिखाई देने लगे। सभी जनी छज्जे की ओर दौड़ीं। तोपें छूट रही थीं, उनके धूम-धड़ाके में बाजों की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। अश्वारोही रास्ते पर आगे-पीछे दौड़ रहे थे। रास्ता साफ है—यह निश्चय वे कर रहे थे। साँडणीसवार जिस समय भवन के पास पहुँचे, उस समय मार्ग के छोर तक फैली हुई सवारियों में हाथी कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। अत्यन्त मन्दगति से सवारियाँ आगे बढ़ रही थीं। साँडणीसवारों के भालों पर लगे हुए गुच्छे ओझल हो गये। उनके पीछे-पीछे सज्जित साँडणीसवारों का लगभग पचास ऊँटों का पथक आया। तोपों की आवाज की अपेक्षा हजारों की संख्या में आते हुए श्रेष्ठ सवारों के घोड़ों की टापों की आवाज काफी बड़ी थी। टापों की अखण्ड ध्वनि वातावरण में गूँज रही थी। उसके पीछे-पीछे मराठों के भगवा झण्डा से युक्त हाथी शान से आगे चला आ रहा था। उस हाथी पर महावत के अतिरिक्त और कोई आरूढ़ नहीं था। पचास हाथी लवाजमा के ही थे। कोटपालों के घोड़े सुवर्ण-पट्टियों से युक्त कामदार झूलों से सजे हुए थे। इन वाहनों को देखकर पुणे के लोगों की आँखें तृप्त हो गयीं। श्रीमन्त का हाथी दिखाई देने पर तो लोगों का उत्साह उफन पड़ा। ऊँचे-ऊँचे भवनों से श्रीमन्त की अम्बारी पर पुष्प-वर्षा भी आ रही थी। श्रीमन्त की अम्बारी राजेन्द्र की पीठ पर कसी हुई थी। विशालकाय राजेन्द्र शान से झूमता हुआ आ रहा था। सोने-चाँदी और माणिक-मोतियों के अलंकारों से राजेन्द्र सिर से पैर तक सजा हुआ था। उसके दोनों दन्तों पर सोने की घुमावदार पत्ते चढ़ी हुई थी, जिनमें मोतियों के गुच्छे चमक रहे थे। उसके मस्तक पर लाल मखमल पर सोने का विशाल अर्धचन्द्र विराज-मान था। हाथी का किलावा रेशमी था। ग्रीवा पर दोनों ओर पैरों तक कला-बत्तू के गुच्छे लटके हुए थे। पीठ पर हरी मखमल की झूल थी, जिस पर जरी का काम हो रहा था। उसपर रुपहली अम्बारी अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमक रही थी। अम्बारी में माधवराव बैठे हुए थे। पीछे के भाग में गोपाल-राव पटवर्धन और त्र्यम्बकराव मामा चँवर डुला रहे थे। दोनों ओर नागरिक माधवराव का जय-जयकार करते हुए आ रहे थे। हाथी के आगे बाजे बजाने-वाले ढोल-ताशे बजा रहे थे। पिछले हाथी पर शाही नौबत बज रही थी।

श्रीमन्त का राजेन्द्र दिल्ली-दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया। छज्जे पर से माधवराव के ऊपर सोने-चाँदी के फूल बरसाये गये। माधवराव ने ऊपर देखा। शनिवार-भवन पर भगवा झण्डा बड़ी शान से फहरा रहा था।

छज्जे पर स्त्रियाँ खड़ी थीं। फूल बरसाये जा रहे थे। राजेन्द्र बैठ गया था। सीढ़ी लगायी जा रही थी।

श्रीमन्त माधवराव हाथी पर से उतरे। रामशास्त्री आगे बढ़े। उनका नमस्कार स्वीकार कर माधवराव दिल्ली-दरवाज़े की ओर मुड़े। उनके साथ नाना, त्र्यम्बकराव, रामशास्त्री, गोपालराव आदि मण्डली चल रही थी। शनिवार-भवन भी उनके तेज से प्रकाशित हो रहा था। दिल्ली-दरवाज़े के पास सिर पर जलकुम्भ रखे दासियाँ खड़ी थीं। जैसे ही श्रीमन्त दरवाज़े के पास पहुँचे, उनपर दही-भात की टोकरियाँ निछावर की गयीं। परिचारिकाएँ गागरें लेकर खड़ी थीं। उनको पुरस्कार देकर श्रीमन्त ने मन्दर प्रवेश किया। आगे वेत्रधारी चोबदार सुवर्ण-दण्ड लिये पुकारते जा रहे थे। जब माधवराव महल के द्वार पर आये तब शास्त्रीजी ने उनके हाथ पर पुष्पहार लपेटा। वहाँ से माधवराव दरबार में गये। सारा दरबार खड़ा हो गया। श्रीमन्त दोनों ओर से आदर स्वीकारते हुए मसनद की ओर जा रहे थे। तख्त के पास पहुँचकर मुजरा करके श्रीमन्त मसनद पर बैठ गये। चोबदारों ने फिर ललकारी दी। दरबार स्थानापन्न हो गया।

दरबार प्रारम्भ हुआ। त्र्यम्बकराव दुशाला सँभाले खड़े थे। बायीं ओर नाना फडणीस थे। नाना ने एक बार सारे दरबार पर दृष्टि डाली और फिर माधवराव की ओर मुड़कर उनके हाथ में खलीता देते हुए वे बोले, "सातारा से छत्रपतिजी का खलीता आया है। राक्षस-भुवन की विजय की वार्ता सुनकर छत्रपतिजी को आनन्द हुआ है और इसलिए उन्होंने अजेयतारे पर तोपें दगवायीं।"

माधवराव ने खलीता मस्तक से लगाया। दरबार की ओर मुड़कर वे बोले, "आज इस शुभ अवसर पर स्वामी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, यह हमारा सौभाग्य है! आज तक दरबार में प्रवेश करते समय शास्त्रीजी हमारे हाथ में पुष्पहार बाँधा करते थे, बस यही एक चिह्न था जो यह प्रदर्शित करता था कि हम सेवक हैं। हमारी विजय पर तोपें दगवाकर हमारा कौतुक करनेवाला कोई नहीं था। आज हमको तीव्रता से यह अनुभूति हो रही है कि हमारे स्वामी हैं और हम उनके सेवक हैं। आज हम सनाथ हो गये हैं। नाना, श्रीमन्त छत्रपतिजी की सेवा में हमारा दण्डवत् निवेदित कीजिए। हमारी भावनाएँ उन तक पहुँचने दीजिए।"

माधवराव ने रामशास्त्रीजी की ओर देखकर कहा, "शास्त्रीजी, इतने बड़े

स्वामी

पैमाने पर हमारा स्वागत होगा, यह आशा नहीं थी हमको।"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है, श्रीमन्त !" रामशास्त्री बोले, "आपका स्वागत नहीं होगा तो किसका होगा ?"

"हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं था। परन्तु निजाम ने पुणे में कितना आतंक मचाया है, यह क्या हम जानते नहीं हैं ? इतना होने पर भी यह स्वागत, यह क्या सामान्य बात है ? निजाम ने जो नुक़सान किया है, उसकी पूर्ति तो हम कर देंगे; परन्तु एक ऐसा नुक़सान हुआ है, जिसकी क्षतिपूर्ति हम नहीं कर पायेंगे। इसका बड़ा भारी दुःख है।"

सारा दरबार चकित हो गया। रामशास्त्री भी विस्मय में पड़ गये। उन्होंने पूछा, "वह क्या है श्रीमन्त ?"

"निजाम के भय से शनिवार-भवन के मराठाशाही के काग़ज़-पत्रादि जब सिंहगढ़ ले जाये जा रहे थे, तब वे शत्रु के हाथ में पड़ गये और शत्रु ने उनको जलाकर नष्ट कर दिया। इसका उपाय क्या है ? इस नुक़सान को हम कैसे पूरा करेंगे ? इसका दुःख बड़ा भारी है।"

दरबार समाप्त होने पर माधवराव सीधे गोपिकाबाई के महल में गये। जैसे ही उनको झुककर नमस्कार किया, वे बोलीं, "ऐसे ही विजयी रहो !" और उन्होंने आसन की ओर संकेत किया।

चाँदी के आसन पर माधवराव बैठ गये। रमाबाई उनकी आरती उतार रही थीं। माधवराव को देख रही थीं। माधवराव के मस्तक पर ज़री और रेशम को मिलाकर बुना हुआ साफ़ा था। देह पर कलीदार रेशमी कुरता था। साफ़े में कलग़ी सिरपेच और मोतियों की लड़ी सुशोभित हो रही थी। कानों में कुण्डल, गले में मोतियों का हार तथा हाथों में रत्नजटित कंकण थे। उनके मुख पर मुसकराहट थी। जैसे ही आरती समाप्त हुई, हाथ में दिये हुए बीड़े को थाल में रखते हुए हीरे की अँगूठी नीरांजन के प्रकाश में चमक उठी। उसी समय माधवराव ने रमाबाई की ओर देखा। क्षण-भर को दृष्टि से दृष्टि टकरा गयी और शायद हीरे से भी अधिक तेजस्वी नेत्रों से नेत्र न मिला सकने के कारण रमाबाई ने झटपट अपनी दृष्टि मोड़ ली। माधवराव धीरे से हँसे।

गोपिकाबाई बोलीं, "माधव, आज कितने दिनों बाद परमेश्वर ने सुख का दिन दिखाया !"

"सच है ! परन्तु आज हमारे साथ यदि काका भी आये होते तो इस आनन्द की सीमा न रहती। बहुत प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने वह स्वीकार नहीं की।"

माधवराव अपने महल की ओर चले। पीछे-पीछे रमाबाई चलीं। मैना उनके पीछे चल रही थी, उसने पुकारकर कहा, "दीदी साहिबा !"

"क्या है री ?"

"सरकार से पूछिए न ?"

"क्या पूछूं ?" रमाबाई बीच में ही रुक गयीं, उन्होंने मैना के चेहरे की ओर देखा। मैना रुआंसी हो रही थी। रमाबाई को आभास हुआ जैसे तत्क्षण उसकी आंखों में आंसू भर आये हों। मैना के कन्धे पकड़ते हुए उन्होंने पूछा,

"क्यों री, क्या हुआ ?"

"अभी सब नहीं आये हैं !"

"कौन नहीं आया ?" रमाबाई ने फिर पूछा।

"यह क्या करती हैं दीदी साहिबा ! नहीं चाहतीं तो मत पूछिए...."

एकदम रमाबाई के ध्यान में आया। वे हँसती हुई बोलीं, "श्रीपति नहीं आया है न ? पूछूंगी, अच्छा, पूछूंगी। चल !"

"मैं नहीं !"

"तू नहीं चलेगी तो मैं पूछूंगी नहीं !"

"यह क्या दीदी साहिबा ?"

"यह नहीं चलेगा। तू चल !"

माधवराव महल में कामदार साफ़ा उतारकर रख रहे थे। पीठ फेरकर खड़े होने के कारण उनके सिर पर चोटी के चारों ओर काले बालों का गोल घेरा और गरदन पर पड़ी हुई चोटी की गाँठ दिखाई दे रही थी। रमाबाई अन्दर गयीं। माधवराव ने मुड़कर देखा, "कौन, आप ? आइए।"

रमाबाई ने मुड़कर देखा तो मैना वहाँ नहीं थी। रमाबाई ने पुकारा;

"मैनाऽ मैनाऽ !"

"जी" कहती हुई मैना जैसे-तैसे अन्दर आयी। उसका सारा शरीर काँप रहा था। रमाबाई बोलीं,

"सुना आपने, हमारी मैना क्या कह रही है ?"

"क्या कहती है ?"

"यह कह रही है कि सब आ गये, परन्तु उसका श्रीपति कहाँ है ?"

माधवराव हँसे। वे बोले, "हमको यह ध्यान नहीं था कि तुम्हारी खास दासी का श्रीपति हमारे यहाँ है। नहीं तो हम उसको काका को पहुँचाने के लिए नासिक न भेजते; परन्तु अपनी दासी से कहिए कि उसका श्रीपति अब तक हाजिर हो जाना चाहिए। वह आज या कल में ज़रूर आ जायेगा। वह सुरक्षित है।"

"हो गया सन्तोष ?" रमाबाई बोलीं, "लगातार पीछे पड़ी हुई थी, पूछिए ! पूछिए ! पूछिए !"

"आप भी दीदी साहिबा ! बेकार...." कहती हुई मैना भाग गयी। यह देखकर रमाबाई और माधवराव एक साथ ही हँसने लगे। हँसते-हँसते माधवराव रुके। रमाबाई की ओर देखते हुए वे बोले, "आप कितनी सुन्दर दिखाई दे रही हैं! आपको देखकर चन्द्रकला की याद आ जाती है। चन्द्रकला में कब परिवर्तन हो जाता है, यह दिखाई नहीं देता है; परन्तु प्रतिदिन परिवर्तन निश्चय ही प्रतीत होता है!"

"क्यों नहीं? सामने होने पर इस तरह की बातें! और एक बार पीठ फिरी नहीं कि फिर कैसी याद!" रमाबाई बोलीं, "आपका मुकाम मिरज पर था। सब कह रहे थे—आप पुणे आयेंगे! परन्तु पुणे में है कौन आपका? आप सीधे औरंगाबाद पर चढ़ाई करने चले गये।"

"ऐसी बातें मत कहो, रमा! तुम छोटी हो। तुम समझ नहीं सकोगी। हमको क्या पुणे के प्रति आकर्षण नहीं था? परन्तु जिस शनिवार-भवन में गारदियों के पहरे बैठाये गये, हम नजरकैद में पड़े हुए—तो क्या मुँह लेकर तुम्हारे सामने आते? शनिवार-भवन में पैर रखने का भी साहस हुआ होता क्या? हमने मिरज पर ही गाँठ बाँध ली थी। हमने निश्चय कर लिया था कि हम तभी शनिवार-भवन में प्रवेश करेंगे, जब हमारा सिर अभिमान से ऊँचा होगा, उसे लज्जित नहीं होना पड़ेगा। पराजित पति का स्वागत करने में आपको भी भला क्या आनन्द होगा?"

"मैंने तो यों ही कहा था, यह बात आपके मन को इतनी लग गयी? इसके लिए, क्या माँगने पर भी, आपसे क्षमा नहीं मिलेगी?" कहते-कहते रमाबाई की आँखें आर्द्र हो गयीं। विस्मयचकित होकर माधवराव रमाबाई की ओर देख रहे थे।

"नाराज हो गये?" रमाबाई ने पूछा।

रमाबाई का चेहरा हाथ से सहलाते हुए माधवराव बोले, "नाराज होऊँ? और तुमसे? रमा मुझको बुरा इतना ही लगता है कि जिस अवस्था में तुमको खेलना चाहिए, निश्चिन्त होकर घूमना चाहिए, उस अवस्था में इस शनिवार-भवन ने और असमय ऊपर आये हुए उत्तरदायित्व ने तुमको कितना प्रौढ़ बना दिया है! हम लोगों के जीवन में तारुण्य कभी प्रवेश ही नहीं करेगा क्या?"

माधवराव के गम्भीर चेहरे की ओर रमाबाई देख रही थीं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसी समय द्वार पर खखारने की आवाज सुनाई दी। शीघ्रता से रमाबाई पीछे सरक गयीं। माधवराव ने सावधान होकर पीछे देखा। द्वार से रामजी आ रहा था।

"क्यों रामजी, कहाँ था?"

"क्या है री ?"

"सरकार से पूछिए न ?"

"क्या पूछूं ?" रमाबाई बीच में ही रुक गयीं, उन्होंने मैना के चेहरे की ओर देखा। मैना रुआंसी हो रही थी। रमाबाई को आभास हुआ जैसे तत्क्षण उसकी आँखों में आंसू भर आये हों। मैना के कन्धे पकड़ते हुए उन्होंने पूछा,

"क्यों री, क्या हुआ ?"

"अभी सब नहीं आये हैं !"

"कौन नहीं आया ?" रमाबाई ने फिर पूछा।

"यह क्या करती हैं दीदी साहिबा ! नहीं चाहतीं तो मत पूछिए...."

एकदम रमाबाई के ध्यान में आया। वे हँसती हुई बोलीं, "श्रीपति नहीं आया है न ? पूछूंगी, अच्छा, पूछूंगी। चल !"

"मैं नहीं !"

"तू नहीं चलेगी तो मैं पूछूंगी नहीं !"

"यह क्या दीदी साहिबा ?"

"यह नहीं चलेगा। तू चल !"

माधवराव महल में कामदार साफ़ा उतारकर रख रहे थे। पीठ फेरकर खड़े होने के कारण उनके सिर पर चोटी के चारों ओर काले बालों का गोल घेरा और गरदन पर पड़ी हुई चोटी की गांठ दिखाई दे रही थी। रमाबाई अन्दर गयीं। माधवराव ने मुड़कर देखा, "कौन, आप ? आइए।"

रमाबाई ने मुड़कर देखा तो मैना वहां नहीं थी। रमाबाई ने पुकारा,

"मैनाऽ मैनाऽ !"

"जी" कहती हुई मैना जैसे-तैसे अन्दर आयी। उसका सारा शरीर कांप रहा था। रमाबाई बोलीं,

"सुना आपने, हमारी मैना क्या कह रही है ?"

"क्या कहती है ?"

"वह कह रही है कि सब आ गये, परन्तु उसका श्रीपति कहां है ?"

माधवराव हँसे। वे बोले, "हमको यह ध्यान नहीं था कि तुम्हारी खास दासी का श्रीपति हमारे यहां है। नहीं तो हम उसको काका को पहुँचाने के लिए नासिक न भेजते; परन्तु अपनी दासी से कहिए कि उसका श्रीपति अब तक हाजिर हो जाना चाहिए। वह आज या कल में जरूर आ जायेगा। वह सुरक्षित है।"

"हो गया सन्तोष ?" रमाबाई बोलीं, "लगातार पीछे पड़ी हुई थी, पूछिए ! ; छिए ! पूछिए !"

"आप भी दीदी साहिबा ! बेकार...." कहती हुई मैना भाग गयी। यह देखकर रमाबाई और माधवराव एक साथ ही हँसने लगे। हँसते-हँसते माधवराव रुके। रमाबाई की ओर देखते हुए वे बोले, "आप कितनी सुन्दर दिखाई दे रही हैं! आपको देखकर चन्द्रकला की याद आ जाती है। चन्द्रकला में कब परिवर्तन हो जाता है, यह दिखाई नहीं देता है; परन्तु प्रतिदिन परिवर्तन निश्चय ही प्रतीत होता है!"

"क्यों नहीं? सामने होने पर इस तरह की बातें! और एक बार पीठ फिरी नहीं कि फिर कैसी याद!" रमाबाई बोलीं, "आपका मुकाम मिरज पर था। सब कह रहे थे—आप पुणे आयेंगे! परन्तु पुणे में है कौन आपका? आप सीधे औरंगाबाद पर चढ़ाई करने चले गये।"

"ऐसी बातें मत कहो, रमा! तुम छोटी हो। तुम समझ नहीं सकोगी। हमको क्या पुणे के प्रति आकर्षण नहीं था? परन्तु जिस शनिवार-भवन में गारदियों के पहरे बैठाये गये, हम नजरकैद में पड़े हुए—तो क्या मुँह लेकर तुम्हारे सामने आते? शनिवार-भवन में पैर रखने का भी साहस हुआ होता क्या? हमने मिरज पर ही गाँठ बाँध ली थी। हमने निश्चय कर लिया था कि हम तभी शनिवार-भवन में प्रवेश करेंगे, जब हमारा सिर अभिमान से ऊँचा होगा, उसे लज्जित नहीं होना पड़ेगा। पराजित पति का स्वागत करने में आपको भी भला क्या आनन्द होगा?"

"मैंने तो यों ही कहा था, यह बात आपके मन को इतनी लग गयी? इसके लिए, क्या माँगने पर भी, आपसे क्षमा नहीं मिलेगी?" कहते-कहते रमाबाई की आँखें आर्द्र हो गयीं। विस्मयचकित होकर माधवराव रमाबाई की ओर देख रहे थे।

"नाराज हो गये?" रमाबाई ने पूछा।

रमाबाई का चेहरा हाथ से सहलाते हुए माधवराव बोले, "नाराज होऊँ? और तुमसे? रमा मुझको बुरा इतना ही लगता है कि जिस अवस्था में तुमको खेलना चाहिए, निश्चिन्त होकर घूमना चाहिए, उस अवस्था मे इस शनिवार-भवन ने और असमय ऊपर आये हुए उत्तरदायित्व ने तुमको कितना प्रौढ़ बना दिया है! हम लोगों के जीवन में तारुण्य कभी प्रवेश ही नहीं करेगा क्या?"

माधवराव के गम्भीर चेहरे की ओर रमाबाई देख रही थीं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसी समय द्वार पर मठारने की आवाज सुनाई दी। शीघ्रता से रमाबाई पीछे सरक गयीं। माधवराव ने सावधान होकर पीछे देखा। द्वार से रामजी आ रहा था।

"क्यों रामजी, कहाँ था?"

रामजी आगे आया। माधवराव के पैरों पर सिर रखता हुआ वह बोला,

"पाकशाला की ओर था जी!"

रामजी जब उठा, उसकी सफ़ेद मूँछें थरथरा रही थीं। आँखों में आंसू थे। वह भरे हुए गले से बोला,

"मालिक! खूब सहन किया,...आप अच्छी तरह आ गये...सब कुछ मिल गया, सब कुछ मिल गया...।"

"चुप रामजी! तुम-जैसे लोगों के आशीर्वाद साथ होने पर हम इससे भी बड़े संकटों को पार कर लेंगे। इन आँखों को पोंछो..."

रामजी ने आँखें पोंछी और वह बोला,

"थालियाँ लग गयी हैं। माँ साहिबा ने बुलाया है।"

"अच्छा! तुम चलो पहले। हम अभी आये। कपड़े बदलकर हम अभी आ रहे हैं।"

रमाबाई बोलीं, "रामजी, श्रीपति के आने तक तुम यहीं रहो। पहले मैं जाती हूँ।" और रमाबाई महल से बाहर चली गयीं।

राक्षस-भुवन की विजय सम्पादित कर माधवराव पुणे आये। इसी बीच मन पर और शरीर पर पड़े हुए तनावों के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। जब-तब ज्वर आने लगा था। वैद्यों की औषधें चल रही थीं। धीरे-धीरे माधवराव की दशा सुधरने लगी। वे भवन के अन्दर घूमने-फिरने लगे। कार्यालय में जाकर हिसाब देखने लगे।

प्रातःकाल पूजा समाप्त कर माधवराव हिरकणी चौक में दूसरी मंजिल पर अपने महल में आकर आसन पर बैठे हुए थे। वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। रमाबाई सामने बैठी हुई थी। माधवराव चुपचाप रमाबाई की ओर देख रहे थे। उस दृष्टि से रमाबाई बेचैन हो रही थी। उसी समय हवा ने खिड़की के पट जोर से बन्द कर दिये। उनमें सिटकनी लगाने के बहाने रमाबाई उठी। उस खिड़की के पटों को खोलते समय उनकी दृष्टि नीचे चौक में गयी। उन्होंने एकदम कहा,

"बापू इतनी जल्दी-जल्दी कहाँ जा रहे हैं ?"

"कब आये बापू ?" कहते हुए माधवराव उठकर खिड़की के पास गये।

नीचे चौक में होकर बापू दिल्ली-दरवाजे की ओर जा रहे थे। उनके पीछे-पीछे जाते हुए नाना और मोरोबा दिखाई दिये। तीनों को दिल्ली-दरवाजे की ओर जाते हुए देखकर माधवराव ने आवाज दी,

"बाहर कौन है ?"

सेवक अन्दर आया। माधवराव ने पूछा,

"विनायक, दिल्ली-दरवाजे के बाहर क्या हो रहा है ?"

"जिस समय मैं आया था, लोग इकट्ठे हो गये थे।"

"कहाँ के लोग ?"

"जी, मुझे नहीं मालूम। मैं तो सीधा यहीं आ गया।"

"बापू को भेज दे जल्दी !"

सेवक चला गया। माधवराव बोले,

"क्या हो रहा है, कुछ पता ही नहीं चलने देते हैं !"

रमाबाई ने कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद बापू आकर बोले,

"आज्ञा ?"

"बापू ! दिल्ली-दरवाजे के बाहर क्या हो रहा है ?"

"कुछ नहीं श्रीमन्त ! लोग आशा लेकर आ रहे हैं ?"

"कहाँ के लोग ?"

"यहीं के ! निजाम के आक्रमण में पुणे को लूट लिया गया है न ? वे ही लोग आते हैं। कहते हैं कि आपसे मिलना है।"

"फिर ?"

"श्रीमन्त चिन्ता न करें। मैं उनसे कहता हूँ कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है। इसीलिए जा रहा था।"

"और लोग सुनते हैं ?" माधवराव ने आश्चर्य से पूछा।

"सुनेंगे क्यों नहीं ? हमारे कहने के बाद वे नहीं सुनेंगे ?" बापू हँसते हुए बोले।

"किन्तु इस तरह कहने के लिए आपसे किसने कहा था ?" माधवराव की आवाज कठोर हो गयी थी, दृष्टि तीक्ष्ण बन गयी थी। यह बात बापू समझ गये। एकदम सँभलकर वे बोले, "आपका स्वास्थ्य..."

"हमसे मिलने के लिए लोग आते हैं। यदि हम न मिलें तो वे क्या सोचेंगे ? हमारे सम्बन्ध में वे क्या धारणा बना लेंगे ? बेचारे प्रतिदिन आकर चले जाते होंगे ! आप क्या कहते होंगे, भगवान् जानें ! बिना घोर आवश्यकता के क्या वे दिल्ली-दरवाजे के सामने उपस्थित होने का साहस करते हैं ?"

"परन्तु..."

"बापू, नीचे जाइए ! उनसे कहिए कि हम अभी आ रहे हैं। जाइए आप ! सखाराम बापू जल्दी-जल्दी चले गये। माधवराव ने पगड़ी धारण की। कमर से दुपट्टा लपेटा और वे रमाबाई से बोले,

"हम जाकर आते हैं।"

"जायें। परन्तु धूप बढ़ रही है और तबीयत आपकी अभी इतनी अच्छी नहीं है।"

"हम सावधानी रखेंगे।" कहते हुए माधवराव महल से बाहर निकले।

नीचे उतरकर वे हिरकणी चौक पार करके बड़े चौक में आये और दिल्ली-दरवाजे के चौक की ओर चल दिये। दिल्ली-दरवाजे की अन्दर की मेहराब में ही बापू, नाना और मोरोबा सामने आये।

दिल्ली-दरवाजा पूर्ण रूप से खुला हुआ था। दरवाजे के दोनों ओर सशस्त्र गारदी खड़े थे। दरवाजे के बाहर से लोगों की आवाजें आ रही थीं। सामने मैदान में डेढ़-दो सौ लोग इतस्ततः खड़े थे। जैसे ही माधवराव दरवाजे में आकर खड़े हुए, सबकी दृष्टि उनकी ओर गयी। एकदम स्तब्धता छा गयी।

माधवराव दरवाजा पार कर आगे आये। पहली सीढ़ी पर आते ही दो-चार ब्राह्मण नंगे सिर दौड़ते हुए ऊपर आये तथा माधवराव के पैर [illegible] हुए बोले—

"श्रीमन्त! हमारा सर्वनाश हो गया, कहीं के नहीं रहे!"

माधवराव की दृष्टि पैरों की ओर नहीं थी। उनकी आँखें सामने [illegible] में खड़े लोगों पर घूम रही थीं। फटा पगड़ी बाँधे हुए, विशेष [illegible] के लिए रखे हुए कपड़े पहनकर आये हुए उन लोगों को माधवराव निरख रहे थे। [illegible] के पास स्त्रियों की तरह आक्रोश करनेवाले ब्राह्मणों की ओर माधवराव ने देखा और वे बोले,

"उठिए!"

यह सुनते ही रुदन बन्द हो गया। सब उठे। माधवराव बोले,

"हमसे मिलने के लिए आते समय सिर से बाँधने के लिए [illegible] नहीं बचा?"

"कुछ नहीं बचा श्रीमन्त...! कुछ...."

"ठीक है। हम पता लगायेंगे!" कहते हुए माधवराव [illegible] लगे। लोगों को आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। [illegible] नाना तथा रक्षक दौड़े। माधवराव लोगों के बीच [illegible] के पानी को निरख रहे थे। जो कुछ कह रहे थे, [illegible] लोगों की भीड़ पास आ रही थी। धीरे-धीरे लोग [illegible] इकट्ठे हो रहे थे। माधवराव को सिर पर पड़ती [illegible] समय उन लोगों से कुछ दूर खड़ी हुई एक स्त्री के [illegible] उठते देखकर वह वृद्धा धीरे-धीरे पैर रखती हुई [illegible]

माधवराव ने नाना से पूछा,

"नाना, ये कौन हैं?"

"मुझे ऐसा लगता है कि यह निबालकर [illegible]"

"घर का कौन है?"

"वृद्धा अकेली ही है। बुधवार पेठ में [illegible] बड़े श्रीमन्त के समय इसके पति दरदार [illegible] लड़ाई में काम आ गये।"

अब तक वृद्धा समीप आ चुकी थी। [illegible] वृद्धा तनकर चल रही थी। उसने नजदीक [illegible] नजर डालते हुए पूछा,

"माधवराव पेशवा कौन-सा है [illegible]?"

माधवराव हँसे। किसी प्रकार का राजचिह्न न होने से वृद्धा झमेले में पड़ गयी थी। माधवराव बोले,

"माँ, माधवराव मैं ही हूँ।"

"तुम?" लड़के-जैसे माधवराव को निरखती हुई वह वृद्धा बोली।

"हाँ! मैं ही हूँ!" माधवराव बोले।

"अच्छा हुआ मिल गये। नहीं तो, मैं तो उकताकर जा रही थी। तुमको पहचान नहीं पायी। कैसे पहचानती? कभी देखा है तुम्हें? घर छोड़कर कभी बाहर तो निकली नहीं।"

"कोई काम है माँ?"

"हाँ, है!" यह कहकर वृद्धा ने आँचल से ढँका हुआ हाथ बाहर निकाला और आगे बढ़ा दिया। सिकुड़नों से युक्त उस खुले हाथ में दायीं ओर सूँड़वाले गणपति की छोटी-सी पीली मूर्ति थी। गणपति को देखते ही माधवराव ने हाथ जोड़े और एकदम कहा,

"यह क्या है माँ?"

"यह हमारे घर का देव है! बेटे, घर के धनी थे तब की बात है। तुम्हारे बाबा के साथ उत्तर में गये थे; तब आते समय इसे ले आये थे। नहीं तो, देव-गृह में प्रतिमा के साथ यह कैसे बैठता? धनी गये। लड़के गये—तीनों ही लड़ाई में गये। भवन के सहारे दिन गिन रही थी, वह भवन भी लुट गया। फिर भी देख, आदत नहीं छूटती है। यह छिपा लिया। यही रह गया है। सोचा, तुम्हें दे डालूँ।"

माधवराव एकदम पीछे सरके। कातर स्वर में बोले, "ऐसी बात क्यों कहती हैं माँ?"

"अरे, यह क्या हमारा देव है? इसकी देखभाल नहीं होती हमसे। लो।"

"नहीं माँ, अपने पास ही रहने दो।"

"देखो, तुमने यदि नहीं लिया तो सीधा सामनेवाली नदी में फेंक दूँगी। इन देवों से उकता गयी मैं तो। जिसने कुंकुम न छोड़ा, बच्चों को नहीं रखा और वृद्धावस्था में इज्जत पर उतारू हो गया है यह—आज तक कभी पैदल बाहर नहीं निकली थी। तुमसे मिलने को भी मजबूर कर दिया इसने। इसको लेकर क्या करूँ?"

माधवराव तत्क्षण आगे बढ़े। उन्होंने वृद्धा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। बलात् गणपति को मुट्ठी में बन्द करते हुए गद्गद स्वर में वे बोले,

"माँ, हम-जैसे लड़कों के होते हुए आप ऐसी बात क्यों कहती हैं? देव पर

जिनका नुक़सान हो गया था, उसको माधवराव खड़े-खड़े स्वीकार कर रहे थे। वह क्षतिपूर्ति खज़ाने से शीघ्र ही कर देने का आदेश दे रहे थे। जिनके पास ज़मीन-जायदाद थी, उनको सहायता के लिए धनराशि स्वीकृत हो रही थी। माधवराव शान्तिपूर्वक पेठ में फिर रहे थे। बाहर के शहर को पूरा करके वे अब फिर लौट आये थे। सूर्यास्त हो गया था। मशालचियों का पथक आकर मिल गया था। माधवराव बिना थके वचन पूरा कर रहे थे। दोनों लिपिक स्थान-पर उतरकर क्षतिपूर्ति के आदेशों को लिख रहे थे। बापू से रहा नहीं गया। बुधवार-पेठ में प्रवेश करते समय बापू बोले,

"श्रीमन्त !"

"क्या है ?" माधवराव ने मुड़कर पूछा।

"जो नहीं होना चाहिए, वह नुक़सान हो गया है, यह सत्य है; परन्तु यदि समस्त क्षतिपूर्ति की गयी तो सम्पूर्ण खज़ाना भी पूरा नहीं पड़ेगा। इस ओर भी श्रीमन्त..."

"बापू, वह विचार हमने कर लिया है। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह हमारी ही भूल का प्रायश्चित्त है।"

"हमारी भूल ?"

"हाँ ! प्रजा राजा के बल पर निश्चिन्त रहती है। हमको पता होने पर भी निज़ाम के आक्रमण से हम पुणे को बचा नहीं सके। यह हमारी कमज़ोरी है। जो प्रजा की रक्षा न कर सके उसको राज्य का उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करना चाहिए। यदि आज हम ऐसा नहीं करेंगे तो इस प्रजा का कभी हम पर विश्वास नहीं जमेगा। हमने निज़ाम से जो धनराशि कर में वसूल की है, उसका उपयोग इसी काम में करना है। यदि उससे भी काम न चले तो हमारे जवाहर-खाने को इस काम में खर्च करो। ऐसी स्थिति में रत्नों की लड़ियाँ मस्तक पर झुलाने का हमको ज़रा भी शौक़ नहीं है। चलिए !"

जिऊबाई निम्बालकर के भवन के सामने लोगों की भीड़ लगी थी। आगे के सवार वहाँ रुक गये। माधवराव ने पूछा,

"यहाँ क्यों रुके ?"

"यही जिऊबाई का भवन है।"

"अच्छाऽ !" कहते हुए माधवराव घोड़े से उतरे। लोगों ने रास्ता छोड़ दिया। उस रास्ते से वे भवन की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। द्वार में ही जिऊबाई खड़ी थी। उसने सौभाग्यवन्तियों को संकेत किया। वे आगे बढ़ीं। माधवराव ने जूते उतारे। पैरों पर पानी डाला गया। दही-भात उतारा गया। इधर यह सब हो रहा था, उधर माधवराव भवन के दरवाज़े की ओर देख रहे थे। एक

दरवाजा पूरा उखाड़ दिया गया था। दूसरे दर [illegible]
रहे थे। माधवराव अन्दर गये। अन्दर सारी बैठक [illegible]
उँगली से संकेत करके जिजाबाई बोलीं,

"इसपर बैठिए।"

"नहीं माँ, बहुत देर हो रही है।" माधवराव बोले।

"कोई देर नहीं हो रही है। तुम द्वार पर [illegible]
मेरा मन दुःखी होगा। तुम हमारे यहाँ कुछ [illegible]
बैठ ही जाओ।"

माधवराव बैठकी पर बैठ गये। वे बोले,

"माँ, अपने कहे अनुसार आ गया हूँ। [illegible]
वह बता दो। उसको पूरा करने में हमें आनन्द [illegible]"

"मुझसे पूछकर कैसे समझोगे तुम? [illegible]
करने को कहनेवाला भी अपना ही है। [illegible]"

उस कथन से माधवराव को [illegible] वे बोले,

"मैं नहीं समझा कि कौन है [illegible]"

"मुसलमानों ने लूटा यह सब है, [illegible]"

"किसने?"

"पूछो अपने मामा से?"

"माँ, क्या कहती हो?" [illegible]

"ठहरो!" माधवराव [illegible]
घबड़ाओ मत! कौन मामा? [illegible]"

"हाँ बेटा, वे ही!"

"वे साथ थे?"

"हाँ! पूछ लो सबसे! [illegible]
उन्होंने ही दिखायी। ऐसे ही [illegible]
गया? यहीं पर डाली था?"

माधवराव तत्क्षण खड़े हो [illegible]

"माँ, आप चिन्ता न करें। [illegible]
पहले से भी अच्छा भवन [illegible]
चलते हैं अब!"

माधवराव बाहर निकले। [illegible]

"बापू! बचा हुआ [illegible]
रह गया होगा। अब भवन की ओर [illegible]"

गणेश-दरवाजे से भीतर जाते हुए माधवराव बोले, "नाना, सुबह मल्हार-राव रास्ते को हमारे सामने हाजिर करो...."

माधवराव राक्षस-भुवन के संग्राम के बाद जब से लौटे थे तब से इसी बीच राज्य की बिगड़ी हुई अन्तर्दशा को ठीक करने में व्यस्त हो गये। पुणे आते ही उन्होंने नये उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया। राक्षस-भुवन के संग्राम के बाद वहीं पर उन्होंने भवानराव प्रतिनिधि को वस्त्र लौटा दिये थे। ये वस्त्र दादा ने छीन लिये थे। नाना और मोरोबा को फडणीसी का काम, खास क़लमदान और रुमाल दिया था। उनके कार्य को अब पेशवा स्वयं देख रहे थे। निजाम के आक्रमण से पुणे का जो नुक़सान हुआ था, उसको माधवराव ने देखते-देखते पूरा कर दिया। सभी देवालयों में मूर्तियों की स्थापना हो गयी। अनेक बार तो प्रातःकाल का नगाड़ा बजने तक माधवराव कार्यालय में बैठे दिखाई देते। ऐसा स्वामी पाकर नागरिक सुख अनुभव कर रहे थे। परन्तु उसी समय माधवराव के कठोर अनुशासन में सेवक वर्ग दबा जा रहा था।

माधवराव के महल में नाना, त्र्यम्बकराव, बापू आदि लोग बैठे हुए थे। माधवराव बैठकी पर बैठे हुए थे। सभी चिन्तित दिखाई दे रहे थे। माधवराव ने मल्हारराव रास्ते को बुलावा भेजा था। मल्हारराव रास्ते गोपिकाबाई के भाई थे। स्वयं पेशवा के मामा।

श्रीपति अन्दर आकर बोला, "रास्ते साहब आ गये हैं।"

"आने दो, अन्दर भेज दो उनको।" माधवराव बोले।

रास्ते आकर अभिवादन करके खड़े हो गये। उनको देखते ही माधवराव बोले,

"आइए, रास्ते! आप पेशवाई के सरदार हैं। स्वयं पेशवाओं के निकट के सम्बन्धी हैं। हम राक्षस-भुवन के बाद आये। आप दरबार में हाजिर ही नहीं हुए। भवन में आकर भी नहीं मिले। सन्देश भेजने पर भी आने में कठिनाई अनुभव हो, ऐसा क्या अपराध हो गया हमसे?"

"यह बात नहीं श्रीमन्त! परन्तु तबीयत...."

"वह कैसे बिगड़ गयी? हमको तो ऐसा दिखाई नहीं देता।"

"ऐसी विशेष कुछ..."

"रास्ते! आप पेशवाओं के सामने बोल रहे हैं, यह मत भूल जाइए।" माधवराव गरज उठे। "हमने राक्षस-भुवन से आपके लिए पत्र भेजे; परन्तु आपने उनका उत्तर नहीं दिया। जो निर्देश आपको दिये गये उनका आपने

स्वामी

पालन नहीं किया। इतना ही नहीं, जब हम स्वयं पुणे में घूमने गये तब हमको यह पता चला कि जिन लोगों ने निज़ाम से मिलकर पुणे लूटने में, उसकी मदद की, उनमें एक आप भी थे! आप इनकार करते हैं इससे ?"

रास्ते कुछ नहीं बोले। वे खड़े-खड़े काँप रहे थे। माधवराव क्रोध से बोले,

"देखा नाना! ये घर के लोग हैं और ये इनके कर्म हैं! ऐसे लोगों को देखकर हमारा सिर शरम से झुक जाता है। हमारे घर में ही जब यह अनुशासन, यह राजनिष्ठा है, तो हम प्रजा को यह कैसे सिखायें ?"

रास्ते ने अंगोछे से पसीना पोंछा। वे काँपती हुई आवाज में बोले, "क़सूर माफ़ हो। क्षमा..."

"क्षमा और आपको ?" माधवराव सन्तप्त होकर बोले, "रास्ते, आपने जो अपराध किया है, वह इतना बड़ा है कि हम उसे क्षमा नहीं कर पायेंगे। जिस समय निज़ाम पुणे लूट रहा था, गाँव के मन्दिर भंग कर रहा था; उस समय पेशवाओं के निकट के सम्बन्धी स्वयं उसकी मदद कर रहे थे! हम यह सोच भी नहीं सकते। हम निज़ाम के कृत्य को एक बार भूल सकते हैं, क्योंकि वह हमारा शत्रु है; परन्तु आपको हम कभी नहीं भूल पायेंगे। मल्हारराव, यह आपका पहला ही अपराध है यह सोचकर हम तुमपर केवल पाँच हज़ार रुपये का जुर्माना कर रहे हैं। तीन दिन के अन्दर यदि आपने यह रक़म कार्यालय में जमा नहीं की तो आपकी स्थावर-जंगम सम्पत्ति ज़ब्त करके हमको यह पूर्ति करनी पड़ेगी। फ़ड़णीस, नाना! इस हुक्म की तामील देखना आपका काम है।"

माधवराव की यह आज्ञा सुनकर सब चकित हो गये। क्या कहा जाये, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। मल्हारराव रास्ते यह सुनकर खड़े-खड़े क्रोध से काँप रहे थे। रास्ते का मान बड़ा था, उनकी अवस्था बड़ी थी। इस अपमान को वे कैसे सहन करते? केवल मुजरा करके वे महल से बाहर निकले और सीधे गोपिकाबाई के महल की ओर चल दिये।

अचानक मल्हारराव रास्ते को आया हुआ देखते ही गोपिकाबाई को आश्चर्य हुआ। वे बोलीं,

"आश्चर्य है! आप और इतनी सुबह! फ़ुरसत भी कैसे मिल गयी ?"

"फ़ुरसत? फ़ुरसत भला कैसे न मिलती? हथकड़ी डालकर बुलवा लिया जाता हमको!"

"किसमें है इतनी हिम्मत, जो हथकड़ी डालकर आपको लाता? बेकार की बातें करते हैं!" गोपिकाबाई सँभलकर बोलीं।

"बेकार की बात नहीं कर रहा हूँ। आपके चिरंजीव ने—श्रीमन्त माधवराव ने—आज हमको अपराधी ठहराकर पाँच हज़ार का दण्ड दिया है!"

स्वामी

"माधव ने !"

"हाँ ! और यदि तीन दिन के अन्दर दण्ड जमा नहीं किया तो हमारी स्थावर-जंगम सम्पत्ति जब्त करने का हुक्म दे दिया गया है। इसीलिए आपसे अन्तिम बार मिलने आया हूँ। जहाँ इस प्रकार अपमान होता हो वहाँ जायें ही किस लिए ? सम्बन्धी तो हैं, किन्तु लाचार निश्चय ही नहीं हैं।"

"परन्तु आपने आखिर अपराध क्या किया है ?"

"अपराध ? अपराध यही है कि जब निजाम ने आक्रमण किया था तब पुणे का अधिक नुकसान न हो यह सोचकर, उसकी खुशामद की, हाथ-पैर पटके, और जितना पुणे बचाया जा सकता था, उतना बचाया; उसका अच्छा परिणाम भोग रहे हैं। चलते हैं हम !"

"थोड़ा ठहरिए ! माधव से कहती हूँ। मेरी बात वह टालेगा नहीं।"

"यह आप अपना देख लीजिए। परन्तु यदि यह दण्ड हमें देना पड़ा तो हम पुनः इस भवन में पैर नहीं रखेंगे। जाता हूँ मैं !"

रास्ते चले गये। गोपिकाबाई किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयीं। उन्होंने तुरन्त ही माधवराव के पास बुलावा भेजा।

माधवराव आये। उन्होंने नमस्कार किया, किन्तु उस ओर ध्यान न देकर गोपिकाबाई ने पूछा, "रावसाहब, मैं यह क्या सुन रही हूँ ?"

"आपने जो सुना है वह एकदम सत्य है।"

"आपने मल्हारराव को दण्डित किया है ?"

"हाँ !" माधवराव बोले।

"कारण ?" गोपिकाबाई ने पूछा।

"मामा ने नहीं बताया ?" माधवराव बोले।

"रावसाहब, मैंने आपसे पूछा है। मल्हारराव ने क्या कहा है और क्या नहीं, यह मुझे मत बताइए।"

गोपिकाबाई को इतना सन्तप्त माधवराव ने कभी नहीं देखा था। वे बोले, "आपको सुनना ही है तो सुनिए। निजाम ने जब पुणे पर आक्रमण किया तब मामा ने उससे समझौता किया। उसको लूट के स्थल दिखाये। यह सब खुले आम पुणे के रास्तों पर हो रहा था। क्या आप यह कहना चाहती हैं कि यह क्षम्य है ?"

"क्यों क्षम्य न हो ?" गोपिकाबाई ने पूछा, "गोपालराव पटवर्धन भी तो निजाम से मिले थे, उनको मिरज दिया न ? रामचन्द्र जाधव को किस स्वामि-निष्ठा के बल पर सरदारगी दी थी, जरा हमें बताइए तो ?"

"मन में विकल्प आने पर सत्य भी भिन्न दिखाई देने लगता है। आपसे

हम विनम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि गोपालराव और रामचन्द्रराव हमारे सरदार थे, सम्बन्धी नहीं थे। वे मुगलों से इसलिए मिले थे कि हमने उनके साथ अन्याय किया था। इसीलिए उनको सँभालना पड़ा। इसके विपरीत, आप सिंहगढ़ पर थीं, हम लड़ाई पर, हमारा विश्वास था मल्हारराव-जैसे सम्बन्धियों पर, परन्तु वे ही बेईमान हो गये। उनके मान को ध्यान में रखते हुए ही हमने कम से कम, सौम्य, दण्ड उनको दिया है। उनके स्थान पर कोई दूसरा होता तो...."

"तो क्या फाँसी पर लटका देते ?"

"वही करना पड़ा होता !" माधवराव शान्त स्वर में बोले।

उन शब्दों से गोपिकाबाई चकित हो गयीं। माधवराव से इस उत्तर की उनको बिलकुल अपेक्षा नहीं थी। माधवराव के हठी स्वभाव को वे अच्छी तरह जानती थीं। कुछ नरम स्वर में वे बोलीं,

"माधव, यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। यदि सचमुच ऐसा हो गया तो मैं मुँह भी नहीं दिखा सकूँगी।"

"यह करने में क्या हमें आनन्द हो रहा है ?" माधवराव बोले, "वे आपके भाई हैं तो क्या हमारे कोई नहीं हैं ?"

"तो फिर दण्ड माफ़ कर दोगे न ?"

"यदि मैं ऐसा कर पाता, तो मुझे भी आनन्द होता। परन्तु अब यह मेरे हाथ में नहीं है। जब हम आये थे तभी मल्हारराव को अपने [illegible] मिलना था। शायद उस समय कुछ करना सम्भव होता।"

"फिर अब इसका कोई और उपाय है ही नहीं ?" गोपिकाबाई ने पूछा।

"है ! आपकी आज्ञा हो तो कहिए। हम अपने व्यक्तिगत खर्च में से यह सरकार में जमा करवा देंगे !"

"इन बातों को मैं समझती हूँ ! रास्तों के घर की दशा अभी इतनी नहीं गिरी है। वे दण्ड जरूर देंगे ! इतने उदार आप न बनिए। परन्तु याद रखना माधव, यदि दण्ड वसूल हो गया तो फिर मैं पानी तक पीने के लिए इस भवन में नहीं रुकूँगी।"

माधवराव को वे शब्द ऐसे लगे जैसे देह पर बिजली गिर पड़ी हो। गोपिकाबाई के दृढ़निश्चयी स्वभाव को वे जानते थे। मातृवियोग की कल्पना से उनका अन्तःकरण काँप उठा। क्षण-भर में उनकी आँखें भर आयीं। अपने को सँभालते हुए वे बोले,

"दुर्भाग्य से यदि ऐसा हुआ, तो इसके बराबर बड़ा दुःख हमें नहीं होगा, यह आप जानती हैं। परन्तु हम भी बन्धनों से जकड़े हुए हैं। राजधर्म अपना

पर नहीं चलते हैं। वे कर्तव्य पर अधिष्ठित होते हैं। हम विवश हैं। आप गुरुजन हैं। आपको क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह कहने का अधिकार मुझको नहीं है। अपनी इच्छानुसार आप निर्णय कर लें। मैं उसमें रुकावट नहीं डालूँगा।"

माधवराव ने तत्क्षण मुजरा किया और महल से बाहर निकल गये। गोपिकाबाई सकते में पड़ी उनके पृष्ठभाग की ओर देखती रहीं।

नियमानुसार माधवराव स्नान से निवृत्त होते ही गोपिकाबाई के पास जाते थे, परन्तु गोपिकाबाई बहुत कम बातें करती थीं। माधवराव सब समझ रहे थे। तीसरे दिन, जब माधवराव अपने महल में थे, नाना फडणीस वहाँ आये।

"क्या बात है नाना?" माधवराव ने पूछा।

"आपके आदेशानुसार आज रास्तेजी का पाँच हजार दण्ड वसूल हो गया।"

"क्या जब्ती का आदेश दिया था?" माधवराव ने पूछा।

"नहीं, श्रीमन्त! उन्होंने ही जमा कर दिया।"

"ठीक!"

"वह रक़म कहाँ जमा की जाये यह पूछने के लिये आया था।"

"कहाँ का क्या मतलब? सरकारी खजाने में।" माधवराव बोले। नाना मुड़े, तभी उन्होंने पुनः पुकारा। नाना रुके। माधवराव उनसे बोले,

"ऐसा करो नाना, उस रक़म को धर्मखाते में डाल दो। देवालयों का निर्माण होनेवाला है, इस मद में उस रक़म को कहीं खर्च कर देना। यह रक़म हमको बहुत महँगी पड़नेवाली है!"

"महँगी? मैं नहीं समझा।" नाना बोले।

"जाइए आप। समय आने पर जान जायेंगे आप।" माधवराव बोले।

दूसरे दिन माधवराव जब स्नान-सन्ध्या सम्पन्न कर आये तब रमाबाई महल में खड़ी थीं। माधवराव ने बिना कुछ बोले कुरता पहना। उसको पहनते ही रमाबाई ने दूध का प्याला दिया, उसको उन्होंने होठों से लगा लिया। दूध भी पी लिया गया, फिर भी कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव ने पूछा,

"आप बोल क्यों नहीं रही हैं? आज हमसे बोलना नहीं है क्या?"

रमाबाई अंचल सँवारती हुई बोलीं, "सुना है कि आज माताजी जा रही हैं। सच है क्या?"

"हाँ!" माधवराव लम्बी साँस छोड़कर बोले।

रमाबाई की आँखें भर आयीं। वे बोलीं,

"उनका जाना क्या टल नहीं सकता?"

माधवराव खिन्नता से हँसे। वे बोले, "आपकी सास एक बार जो निश्चय कर लेती हैं, फिर उसमें परिवर्तन हो ही नहीं सकता। यह शक्ति न आपमें है न मुझमें। तुमसे अधिक मुझको दुःख हो रहा है। मैं क्या कह रहा हूँ, यह तुम शायद आज न समझ सको; किन्तु एक दिन ऐसा अवसर आयेगा, जब तुम यह जरूर समझ जाओगी कि माताजी जो कर रही हैं, इसमें न मेरी गलती है न उनकी। यह होना अवश्यंभावी था। अपनी आँखें पोंछ लो। चलो, हम लोग माताजी के दर्शनों को चलें।"

माधवराव के पीछे-पीछे आँखें पोंछती हुई रमाबाई [illegible] के महल की ओर चलने लगीं।

गोपिकाबाई की पूरी तैयारी हो चुकी थी। [illegible] और रमाबाई दोनों महल में आकर खड़े हो गये। कुछ [illegible] गोपिकाबाई ने बोलना आरम्भ किया। [illegible]

"राव साहब, हमारे जाने की पूरी तैयारी [illegible]"

"जी हाँ।" माधवराव बोले, "[illegible]"

"कहिए न!"

"आपके सिवाय हमें किसी का [illegible] रहें, किन्तु वहाँ से भी इसी तरह [illegible] की कमी अनुभव न करें। [illegible] आयेंगे।"

गोपिकाबाई ने माधवराव की [illegible] से वे क्षण-भर बेचैन-सी हो गयीं। [illegible] बोलीं,

"मैं आपसे गुस्सा होकर नहीं जा रही हूँ। [illegible] स्थान पर पार्वतीकाकू हैं। [illegible] हिसाब से वह काफी समझदार हैं। [illegible] हमारा आपके संसार में रहना उचित नहीं है।"

उन शब्दों से रमाबाई को [illegible] पास गयीं। गोपिकाबाई के आँचल में मुँह छिपाकर [illegible] उनकी पीठ पर हाथ फिराती हुई गोपिकाबाई [illegible]

"बेटी चुप हो! रो मत। तू मेरे पास [illegible] होना स्वाभाविक है। तेरा पीहर और [illegible] मिलेगा। पीहर का आकर्षण मन को कितना [illegible] सोच भी नहीं सकती। तू चिन्ता मत कर। [illegible]

उनके पास चली जाया करना! उनसे मैंने कह दिया है। अब सारा ध्यान अपने संसार में लगा दो। पति की चिन्ता करना। मेरी याद आये, मिलने की इच्छा हो, तो चाहे जब गंगापुर आ जाना। माधव, इसको सँभालना। चल लड़की, आँखों को पोंछ! जाने को देर होगी।"

गोपिकाबाई कहती जा रही थीं; परन्तु उनकी आँखों में कहीं अश्रु तरंगित नहीं हो रहा था, मन की व्याकुलता कहीं व्यक्त नहीं हो रही थी।

गोपिकाबाई के गंगापुर को चले जाने के बाद सारी व्यवस्था रमाबाई को ही देखनी पड़ती थी। प्रातःकाल उठने के बाद माधवराव की स्नान-सन्ध्या की व्यवस्था करने के बाद भोजनगृह की सामग्री की पूछ-ताछ, बड़े लोगों की पंगत में बैठनेवाले लोगों का अनुमान—इन सब बातों में उनका समय बीत जाता था। परन्तु सायंकाल वे जरूर थोड़ा विश्राम कर लेती थीं। कोई आ जाता था तो थोड़ा समय निकल जाता था। इसके बाद तो मैना के साथ बैठकर शतरंज खेलना ही समय बिताने का एकमात्र साधन बनता। दिनानुदिन माधव-राव पर कार्य-भार बढ़ता जा रहा था। प्रायः आधी-रात के बाद भी माधवराव कार्यालय में ही दिखाई देते। माधवराव की इन आदतों की भी रमाबाई आदी हो रही थीं।

दोपहर को भोजनोपरान्त थोड़ी देर बायीं करवट लेटकर माधवराव नियमानुसार अपने खास विचार-कक्ष में उपस्थित हो गये थे। सखाराम बापू, नाना, पेठे आदि लोग उपस्थित थे। माधवराव की मुखमुद्रा प्रसन्न दिखाई दे रही थी। कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। अन्त में बापू बोले,

"अपने शास्त्रीजी का नया पराक्रम तो सुन लिया ही होगा?"

"कैसा पराक्रम?"

"आपको मालूम नहीं?"

"नहीं!"

"कुछ फिरंगी शिकायत लेकर आये थे!"

"किस सम्बन्ध में?"

"विसाजी पन्त लेले ने जहाज लूट लिये हैं—यह फ़र्याद थी!"

"फिर?" उत्सुक होकर माधवराव ने पूछा।

"शास्त्रीजी ने विसाजी पन्तजी को न्यायासन के सामने बुलाया; परन्तु वे उपस्थित नहीं हुए।"

"फिर क्या फ़र्यादी को निकाल दिया?"

"नहीं जी ! यह मामला तो बहुत आगे बढ़ गया। शास्त्रीजी ने आदेश दिया कि जंजीरों से जकड़कर न्यायासन के सामने हाज़िर किया जाये। अब लेले क्या करते ? हाज़िर हो गये !"

"फिर ?"

"पन्तजी ने क्रोध में अपना सिर धुना, परन्तु शास्त्रीजी ने कुछ नहीं सुना। तीन दिन के अन्दर क्षति-पूर्ति कर दी जाये और न करने पर लेलेजी की सम्पत्ति जब्त करके क्षति-पूर्ति कर ली जाये—यह आदेश शास्त्रीजी कर चुके थे !"

नाना फड़णीस खकारकर बोले, "परन्तु सरकार ! जो कुछ हुआ, जरा अनुचित ही हुआ।"

"क्यों ? फिरंगियों के जहाज़ लूटे नहीं थे क्या ?"

"लूटे थे ! परन्तु विसाजी पन्त भी तो साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उन-जैसे व्यक्ति को न्यायासन के सम्मुख...."

"नाना ! यह आप कह रहे हैं हमसे ? आश्चर्य है। नाना, पूजनीया माताजी गंगापुर को क्यों गयी हैं, यह नहीं मालूम आपको ?"

"परन्तु यदि लेले-जैसे व्यक्तियों को न्यायालय में खड़ा किया जा सकता है, तो कदाचित् हम लोग भी...." बापू बोले।

"रुक क्यों गये बापू ? दुर्भाग्य से यदि ऐसा अवसर आ गया तो आपको ही नहीं, बल्कि हमको भी न्यायासन के सामने जाना पड़ेगा। ऐसा समय न आये, इसीलिए हम लोगों को सावधान रहना चाहिए।"

"परन्तु पन्त इतना सहन कैसे करेंगे ? अपने ही सरदारों का इस तरह दस जनों के बीच अपमान होगा, तो यह बात देखने में अच्छी नहीं लगेगी।"

"फिर आपकी क्या राय है, बापू ?"

"आपसे मिलने के लिए विसाजी पन्त नीचे आये हुए हैं। आप उन्हें समझायें, किन्तु इतना कठोर दण्ड उन्हें न मिलने दें।"

माधवराव हँसे। उनका हँसना बन्द होते ही बापू ने पूछा, "क्यों हँसे श्रीमन्त ?"

"बापू ! हम आपसे अवस्था और अनुभव में बहुत छोटे हैं। जब आपने लेलेजी की सिफ़ारिश की और नानाजी ने उसका समर्थन किया, तभी हम यह समझ गये थे कि विसाजी पन्त नीचे आ गये हैं !"

"तो फिर उनको आने दें ?"

"जरूर ! यदि उनमें हमारे सम्मुख आने का साहस हो तो जरूर आने दें। हम जरूर पूछताछ करेंगे।"

बापू लेलेजी को बुलाने चले गये और नारायणराव अन्दर आये।

"क्यों नारायण ! आज सोये नहीं तुम ?"

"नहीं दादा !"

"लगता है कि आज कोई विशेष काम निकाला है ?"

"भाभीजी ने पूछा है कि हम पर्वती पर आयें क्या ?"

"और कौन जा रहा है ?"

"पार्वती काकी हैं।"

"अरे वाह ! स्वयं देवर जब साथ जा रहे हैं, तब मना करने का प्रश्न ही नहीं है। ऐसा दिखाई देता है कि आज सब काम सिफ़ारिश के होंगे !"

सारे हँस पड़े। नारायणराव भी हँसते हुए बाहर निकल गये। बापू अन्दर आये। उनके साथ विसाजीपन्त लेले थे। उनके सिर पर गुलाबी पगड़ी और उसपर कलंगी तथा मोतियों की लड़ियां शोभा दे रही थीं। देह पर श्वेत रेशमी कुरता था। कमर में हरा दुशाला लपेटा हुआ था। पैरों में तंग मुहरी का पाजामा था। विसाजीपन्त की वह विशालकाय मूर्ति मुजरा करके माधवराव पर अपनी कंजी आँखों की तीक्ष्ण दृष्टि केन्द्रित कर खड़ी हो गयी।

"आइए लेले ! बैठिए न !"

"नहीं श्रीमन्त ! ऐसे ही ठीक हूं।" विसाजीपन्त खड़े-खड़े ही बोले।

"आपकी मर्जी !" माधवराव बोले।

"आप समझ ही गये होंगे कि हम क्यों आये हैं।"

"हां ! हमको बापू ने बताया है।"

"इस तरह यदि हमें अपमानित किया जायेगा तो सेवा करना कठिन हो जायेगा !"

"सच है !"

सबने सन्तोष की सांसें लीं।

"शास्त्रीजी ने हमारे सम्बन्ध में और ही धारणा बना ली !"

"अच्छाऽ !"

"आखिर कुछ तो मर्यादा होनी चाहिए ! न्यायासन के सामने आपकी भी बेइज्जती की।"

"हमारी बेइज्जती ? कारण ?" माधवराव ने पूछा।

"न्यायासन के सामने हमको खड़ा किया। मैंने अपना पद और आपकी चाकरी करता हूं यह बताया।"

"फिर ?"

"इस पर रामशास्त्री बोले, "पेशवे होंगे अपने घर के। उनकी सिफ़ारिश

यहाँ नहीं चलेगी !"

"यह कहा शास्त्रीजी ने ?"

"चाहें तो किसी से भी पूछ लें। सारी न्यायसभा ठसाठस भरी हुई थी।"

"इसका विचार जरूर होना चाहिए। यह कोई साधारण बात नहीं है !"

"हम भी यही कहते हैं !" लेले बोले।

"जरूर ! शास्त्री से इसका उत्तर हम जरूर पूछेंगे, परन्तु इससे तो आप निर्दोष सिद्ध नहीं होते !"

"एं ?"

"आप फिरंगियों की जहाज लूटते हैं न ?"

"कभी-कभी ऐसा करना पड़ता है !"

"ठीक है ! यह हम जानते हैं। तो फिर वह लूट सरकारी खजाने में जमा कर दी है ? नाना, आपको मालूम है ? बापू ऽऽ" माधवराव की आवाज कठोर हो गयी थी। लेले स्तब्ध खड़े थे। क्षण-भर में बदला हुआ माधवराव का वह रूप उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

"बोलिए लेले ! वह धन खजाने में जमा किया ?"

"नहीं !"

"नहीं ?" माधवराव गरज उठे, "और फिर भी आप हमारे सामने शास्त्रीजी के विरुद्ध शिकायत लेकर आये हैं ? आपने क्या समझा था—पेशवे अर्थात् लुटेरों के साथी ? हम भी लूट करते हैं, किन्तु वह निजी गड्ढा भरने के लिए नहीं होती !"

"श्रीमन्त !" लेले स्वयं को सँभालकर हाथ जोड़कर बोले, "हम भूल को अस्वीकार नहीं करते, परन्तु यदि आप निश्चय कर लें और शास्त्रीजी से कहें तो...."

"शास्त्रीजी ने आपको दोषी समझकर दण्ड दिया है न ?"

"हां ?"

"लेले ! फिर हम उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकते !"

यह सुनकर लेले हतबुद्धि हो गये, परन्तु दूसरे ही क्षण उनका अभिमान उफन पड़ा। वे बोले,

"श्रीमन्त, एक प्रश्न का उत्तर मिलेगा ?"

"जरूर ! पूछिए।"

"यहाँ राज्य किसका है ? आपका या रामशास्त्रीजी का ? एक बार यह समझ में आ जाये तो फिर यह निश्चय किया जा सकता है कि नौकरी किसकी करनी है।"

सब काँप उठे। बापू चिल्लाये, "पन्त ऽऽ!"

"ठहरो!" माधवराव शान्तभाव से बोले, "इन्होंने पूछा, इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। पन्त! ध्यान दीजिए, यहाँ सत्ता हमारी हो सकती है, परन्तु राज्य का न्यायासन हमारे अधीन नहीं है। वह हमसे ऊँचा है! वहाँ हमारा अधिकार नहीं चलता है।"

"फिर किसका चलता है?" लेलेजी ने पूछा।

"गजानन का!" माधवराव ने शान्त भाव से उत्तर दिया।

"तो फिर इस पुणे में हमारे घरबार जब्त किये जायेंगे?"

"आप शीघ्र ही फिरंगियों की क्षतिपूर्ति करके मुक्त हो जायें, यह हमारी सलाह है।"

"स्वामी का संरक्षण यदि यही हो तो फिर चाकरी ही किसलिये की जाये?"

"लेले! सीमा के बाहर जा रहे हैं! आप एक दण्ड के भागी सिद्ध हो चुके हैं, इसलिए इस अपमान पर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं। अपने हाथ अपराध में रँगे हुए होने पर आपने हमारा और हमारी सेवा का उल्लेख न्यायासन के सामने किया, यह भी आपका अपराध है। आज भले ही आपका यह व्यवहार क्षमा किया जा रहा हो, किन्तु भविष्य में हम इसे सहन नहीं कर सकेंगे। यह व्यवहार पुनः किये जाने पर आपके सारे अधिकार छीन लिये जायेंगे, यह ध्यान रखिए! जाइए आप, फिरंगियों की क्षतिपूर्ति किये बिना आप हमारे पास न आयें!"

लेले मुजरा करके चले गये। सबने चैन की साँसें लीं।

"नाना, बापू! हमारा व्यवहार ज्यादा कठोर हो गया, है न?" माधवराव ने पूछा।

"ऐसी बात नहीं, परन्तु जरा सँभाल लिया होता तो...." बापू बोले।

"बापू! आप राजनीति जानते हैं। नाना तो आपसे बहुत छोटे हैं, इस समय यहाँ काका भी नहीं हैं। हम जल्दी ही हैदर पर आक्रमण करने जानेवाले हैं। राज्य में यदि न्याय के प्रति निष्ठा नहीं रही, यह मनोवृत्ति यदि हम पैदा नहीं कर सके, तो हमारी पीठ फिरने पर राज्य की क्या दशा होगी? आप, नाना, मामा, शास्त्री—आप सब लोग इसी उद्देश्य से इकट्ठे किये हैं!"

"श्रीमन्त, आपकी नीति ठीक है", बापू सँभलकर बोले, "परन्तु लेले जब मेरे पास आये तब आपके सामने...."

"इसमें आपकी गलती नहीं है। यह नहीं कहा है हमने। नाना, अभी इसी समय शास्त्रीजी को बुलवाइए। उनसे मिले बिना हम आज दूसरा कोई काम नहीं करेंगे।"

नाना जल्दी-जल्दी बाहर चले गये। पीछे-पीछे बापू भी उठे। नीचे सभाकक्ष में आते हुए बापू ने पूछताछ की। लेले कब के जा चुके थे। पसीना पोंछते हुए वे नाना से बोले,

"नाना, कभी-कभी तो श्रीमन्त के सामने सचमुच ही पसीना आ जाता है ! कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती है।"

"बापू ! आप-जैसे अनुभवी व्यक्ति का यह हाल है तो हम-जैसे क्या करें ? श्री शंकर को प्रसन्न करना एक बार सरल है; परन्तु श्रीमन्त को प्रसन्न करना दुष्कर है। इसीलिए मैंने आपसे पहले ही कहा था...."

"परन्तु मुझे भी क्या मालूम था कि श्रीमन्त इतने बिगड़ेंगे ?"

शीघ्रता से एक सवार रामशास्त्री के पास भेज दिया गया। इसके बाद नाना और बापू सभाकक्ष की ओर मुड़े। बैठते-बैठते बापू बोले,

"शायद आज रामशास्त्रीजी की भी खबर ली जायेगी !"

"रावसाहब के मन में क्या है, यह तो भगवान् ही जाने !"

"वाह ! आपको मालूम नहीं !" बापू ने पूछा।

"बापू, सच कहूँ ? आप इतने दिनों से देख रहे हैं। इतनी गड़बड़ियाँ मचीं, इतनी उथल-पुथल हुई, परन्तु श्रीमन्त ने सलाह ली—कभी यह सुना ?"

"हाँ, बाबा, यही सच है ! परन्तु आज शास्त्रीजी का छुटकारा कठिन दिखाई देता है। न्यायसभा में जो उल्लेख हुआ है, उसकी छानबीन होगी ही।"

"शायद ऐसा हो !"

"देखते जाओ !" बापू बोले, "ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं ! अच्छा, दादा साहब की कोई खबर ?"

"कोई नहीं !" नाना बोले।

"कोई नहीं ? नाना, मुझको धोखा मत दो। ज्यादा कहना चाहो तो नहीं कह दो।"

"यह बात नहीं, बापू ! दो खलीते आये थे। उनकी माँग के अनुसार धन-राशि आनन्दवल्ली को भेज दी गयी। इससे अधिक कुछ नहीं। अब जो कुछ खबर मिलेगी, वह आपसे। आप दादा साहब के कृपापात्र हैं।"

"कैसी कृपा लिये बैठे हो, नाना ! अब तो सब कुछ बदल गया है। दादा साहब होम-हवन, अनुष्ठान, संकल्प आदि में रात-दिन मग्न हैं। सुनते हैं कि वे अग्निमन्त्र ले रहे हैं !"

"क्या कह रहे हैं ?" नाना आश्चर्य से बोले, "दादा साहब और अग्निमन्त्र लेंगे ?"

"इसमें आश्चर्य क्या है ? वैसे दादा साहब धुन के पक्के हैं।"

"हाँ ! हो सकता है।" नाना बोले।

दीया लगने पर रामशास्त्री के आने की सूचना सभाकक्ष में पहुँची। नाना और बापू उठे तथा दिल्ली-दरवाज़े की ओर गये। दिल्ली-दरवाज़े से आते हुए रामशास्त्री बापू को और नाना को देखते ही बोले,

"बापू ! आज तो बड़े ज़रूरी काम से बुलाया गया है !"

"कोई पता नहीं !" बापू बोले, "सभाकक्ष में आते ही आपको बुलाने का आदेश दिया।"

"इतना ज़रूरी काम क्या है भई ?" रामशास्त्री सोच में पड़ गये। "ठीक है। चलिए, देखें क्या आज्ञा देते हैं !"

सूचना भेजते ही ऊपर से बुलावा आ गया। नाना, बापू और शास्त्रीजी ऊपर गये। माधवराव बोले,

"आइए शास्त्रीजी ! हम आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"इतना आवश्यक बुलावा भेजा आपने ?" रामशास्त्री बताये हुए आसन पर बैठते हुए बोले।

"क्या करें ? आपने हमारे लेलेजी का अपमान कर दिया !"

"तो यह घटना आपके कानों तक भी पहुँच ही गयी !"

"हाँ ! इसीलिए बुलवाया है। कुछ भी किया हो लेकिन लेले हमारे सम्मानित सरदार हैं, नौदल उनके अधिकार में है। उनको दण्ड देने का अर्थ है..."

"तो फिर वह माफ़ किया जाये—यह है आपकी आज्ञा ?" रामशास्त्री बोले।

"आज्ञा नहीं, प्रार्थना।"

"फिर श्रीमन्त आज्ञा ही करें ! पेशवाओं को ऐसा करने का अधिकार भी है। परन्तु यदि ऐसा अवसर आया तो उस स्थान पर मैं नहीं रहूँगा। लेले दोषी हैं। उनको जो दण्ड दिया गया है, वह उचित है, यह मेरा प्रामाणिक मत है।"

"और सुनते हैं कि आपने हमारा भी अपमान किया !"

"आपका अपमान नहीं किया श्रीमन्त ! लेलेजी ने भरी न्यायसभा में आपके प्रभाव का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया, तब उनको समझ दी।"

"क्या समझ दी ? हम भी उसे सुनना चाहते हैं।"

"मैंने कहा, 'पेशवाओं पर आपका प्रभाव होगा। उसका उपयोग यहाँ करने का कोई कारण नहीं है। स्वयं उनकी सिफ़ारिश भी आपके दण्ड में कुछ कम-अधिक परिवर्तन नहीं कर सकेगी'।"

माधवराव की आँखें एकदम जल से भर आयीं। उनके मुख पर परमानन्द

रहा था। वे आनन्दातिरेक से बोले,

"वाह वाह! शास्त्रीजी, धन्य हैं आप। आपसे हमने यही अपेक्षा की थी। शास्त्रीजी, हम आपकी न्यायबुद्धि पर प्रसन्न हैं!"

यह कहकर अपने कण्ठ से माधवराव ने मोतियों की माला निकाली और उसको आगे बढ़ाते हुए बोले,

"शास्त्रीजी, यह पारितोषिक नहीं है। यह माला हमारी स्मृति के रूप में सदैव अपने कण्ठ में पड़ी रहने दें! उसको देखकर आपको और मुझको सदैव इस प्रसंग की याद बनी रहेगी!"

"श्रीमन्त!" माला हाथ में लेते हुए रामशास्त्री भाव-विवश होकर बोले।

"कुछ मत बोलिए! वह माला पहनिए!"

रामशास्त्रीजी ने वह माला गले में डाल ली। यह देखते हुए माधवराव बोले, "शास्त्रीजी, आपके न्यायमार्ग में हम कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे, इसपर विश्वास रखिए। यदि किसी प्रसंगवश स्वयं पेशवे भी अपराधी बनकर आपके सामने उपस्थित हों, तो उस समय भी अपने मन के न्याय-देवता का स्थान टलने मत दीजिए। उस अवसर पर भी आपकी जिह्वा कठोर न्याय करने में न हिचके, यह अपेक्षा हम आपसे करते हैं।"

"श्रीमन्त! आप-जैसे न्याय का सम्मान करनेवाले स्वामी मुश्किल से मिलेंगे। ऐसे स्वामी मिलने पर एक क्या पचास रामशास्त्री निर्माण हो जायेंगे।"

रामशास्त्री चले गये। नाना और बापू भी चले गये। त्र्यम्बकराव पेठे अन्दर आये।

"मामा, आप कहीं दिखाई नहीं दिये?" माधवराव ने पूछा।

"आपकी आज्ञानुसार पर्वती पर गया था।"

"पर्वती की सभी व्यवस्था पूर्ववत् है न?"

"जी हाँ।"

"आप विश्राम करें! हम भी जाते हैं।" यह कहते हुए माधवराव उठकर अपने महल में चले गये। वहाँ मंचक पर शतरंज बिछी हुई थी। मैना और रमाबाई खेल में मग्न थीं। माधवराव के अन्दर जाते ही मैना खड़ी हो गयी।

माधवराव को इतनी जल्दी आया हुआ देखकर रमाबाई आश्चर्यचकित हो गयीं। मैना जल्दी से बाहर चली गयी। माधवराव रमाबाई से बोले, "हमने जल्दी आकर आपके खेल में विघ्न तो नहीं डाला है?"

"छि:! आपके आने तक क्या किया जाये, यह सोचकर खेल रही थी।"

"रमा, शतरंज सखी के साथ खेलने में आनन्द नहीं है !"

"तो फिर ?"

"वह तो हमको ही खेलना चाहिए !"

"परन्तु आपको अवकाश कहाँ है...."

"अवकाश ? रमा आज हम शतरंज खेलेंगे। भोजन के बाद शतरंज का कार्यक्रम !"

"सच ?" आश्चर्य से रमाबाई ने पूछा।

रात्रि के भोजन के उपरान्त माधवराव यों ही नीचे के सभागृह में चले गये। कार्यालय में दीपक दिखाई दे रहे थे। माधवराव ने पूछताछ की। नाना फड़णीस आये।

"कौन नाना ? आप अभी तक दफ़्तर में हैं ?"

"सेना और उसकी रसद के खर्च का हिसाब हो रहा है। आप भी हैदर पर आक्रमण करने जल्दी ही जानेवाले हैं। इसलिए उससे पहले ही लश्कर का पक्का लेखा तैयार हो जाना चाहिए।"

"क्यों, कुछ गड़बड़ है क्या ?"

"हाँ ! सरकारी सामान की गड़बड़ी का पता नहीं चल पा रहा है। आप चढ़ाई पर जाने से पहले किसी समय हिसाब को देख लें तो बड़ा अच्छा हो।"

"किसी समय क्यों ? आपकी तैयारी हो तो हम आज ही चलें !"

"यदि ऐसा हो सके तो बहुत ही अच्छा हो ! अधिकतर काम समाप्त होने को है, आप एक बार देखकर स्वीकृति दे दें...."

"चलिए न !"

माधवराव कार्यालय में गये। अर्धरात्रि बीत जाने पर माधवराव को ध्यान आया। वे बोले, "नाना, समय कब चला गया यह भी पता नहीं चला। हम दिये हुए वचन का पालन नहीं कर सके। हम लोग कल फिर शेष हिसाब देखेंगे। जाते हैं हम।"

"अच्छा !"

माधवराव उठे। अन्धकार फैला हुआ था। महल में समइयाँ मन्द-मन्द जल रही थीं। माधवराव के महल के बाहर श्रीपति खड़ा था। माधवराव अन्दर गये और उनके पैर जहाँ के वहीं ठिठक गये। अन्दर समइयाँ जल रही थीं। मंचक पर शतरंज-पट बिछा हुआ था। ग़लीचे पर पैर सिकोड़कर रमाबाई सो रही थीं। उनके पैरों के पास उसी तरह मैना पड़ी हुई थी। माधवराव की आहट पाकर मैना जग गयी। हड़बड़ी में वह रमाबाई को जगाने के लिए आगे बढ़ी, परन्तु माधवराव ने संकेत से ही उसको बरज दिया। मैना

महल से बाहर चली गयीं। माधवराव कुछ क्षणों तक, गलीचे पर सिर के नीचे बाहु रखकर, पैर सिकोड़कर सोयी हुई रमाबाई के चेहरे की ओर देखते रहे। माधवराव ने अपनी देह पर से उतारकर चादर धीरे से रमाबाई के अंग पर डाल दी। रमाबाई ने थोड़ी-सी कुलबुल की और वे फिर सो गयीं। बिल्कुल भी आवाज़ न करते हुए अचक-पचक पैरों से माधवराव सोने के लिए अपने पलंग पर चले गये।

प्रातःकाल माधवराव जब जगे तब रमाबाई वहाँ नहीं थीं। नित्यानुसार व्यायाम, स्नान-सन्ध्या सम्पन्न करके माधवराव अपने महल में आये। रमाबाई वहाँ उपस्थित थीं। माधवराव ने कुरता पहना। उन्होंने दूध पीया। तब भी रमाबाई कुछ नहीं बोलीं।

माधवराव ने पूछा,

"क्यों? आज बोलना नहीं है क्या?"

"रात मुझको क्यों नहीं उठाया?"

"अब समझे हम! इसलिए है सारा गुस्सा!"

"गुस्सा नहीं है। परन्तु आप सदा ऐसा ही करते हैं। उठा देते तो क्या बिगड़ जाता?"

"परन्तु क्यों उठाया जाये? गहरी नींद में सो रही थीं। इससे कुछ बिगड़ नहीं गया!"

"बिगड़ कैसे नहीं गया! मैं तो शतरंज-पट बिछाकर प्रतीक्षा कर रही थी।"

"तो फिर आज खेलेंगे!"

"कब?" रमाबाई ने पूछा।

"आप देख ही लीजिए! मैनाऽऽ मैनाऽ"

"जी" कहकर मैना अन्दर आयी।

"शतरंज का पट बिछाओ।"

"जी" कहकर मैना चली गयी।

रमाबाई आश्चर्यचकित होकर बोलीं,

"अभी खेलना है? इस समय?"

"हाँ! हम जो कह देते हैं, उससे कभी नहीं मुकरते हैं और पत्नी को दिये हुए वचन से तो मुकरने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

श्रीपति ने चौकी लाकर बैठक पर रख दी। मैना शतरंज-पट बिछाने लगी। माधवराव बोले,

"श्रीपति! नानाजी को बुलाओ।"

शतरंज-पट सजा दिया गया और नाना फड़नीस अन्दर आये।

"नाना, आज कोई आये तो कहना कि हम काम में मग्न हैं। आज हम किसी से नहीं मिल सकेंगे।"

"आपकी तबीयत ?" नाना ने चिन्तित स्वर में पूछा।

"ठीक है।"

उसी समय नाना का ध्यान शतरंज-पट की ओर चला गया। अपनी हँसी को रोकते हुए नाना बाहर चले गये। महल में सिर्फ़ रमाबाई और माधव थे। माधवराव बोले,

"चलिए, आज हम शतरंज खेलकर देखें। कम से कम इसी में हमें सफलता मिलती है क्या ?"

रमाबाई मुक्तस्वर से हँस रही थीं। उनकी हँसी बन्द होते ही माधवराव ने पूछा, "किस लिए हँसीं ?"

"जिसको हर बार जीतने की आदत होती है, वह मनुष्य खेल में भी हार सहन नहीं करता !"

"यह बात आप आज नहीं समझ पायेंगी; फिर कभी जान सकेंगी। यदि शतरंज के खेल में हम जीत गये, तो हार जायेंगे और यदि हार गये तो जीत जायेंगे। इसी लिए तो यह खेल मुश्किल हो गया है। चलो, पहला दावँ चलकर शुरुआत करो।"

रमाबाई माधवराव के सामने आकर बैठ गयीं। उन्होंने शतरंज-पट की ओर एक बार देखा और विश्वास से मुहरे को हाथ लगाया।

शनिवार-भवन में उत्साह का संचार हो गया था। सरदार-मण्डली का आवागमन बढ़ गया था। राक्षस-भुवन के संग्राम के बाद राघोबा दादा जो आनन्दवल्ली को गये थे, वे उसके बाद लौटे नहीं थे। अब थोड़े दिनों के लिए ही सही, किन्तु राघोबा दादा पुणे में आ गये थे। विशेष देखरेख में माधवराव ने राघोबादादा का बादामी बँगला सजवाया था। चाचा-भतीजे मुक्तमन से गप्पागोष्ठी कर रहे थे, पर्वती-थेऊर की ओर चक्कर लगा रहे थे। इस आनन्द से सारा शनिवार-भवन उल्लसित हो रहा था। दादा साहब के आने से अनेक नये-पुराने सरदार, सम्मान्य लोग दादा साहब के दर्शनों के लिए भवन में आ रहे थे। राजनीति की बातें, गप्पें, फलाहार, भोजन-पंक्तियों की बाढ़ आयी हुई थी। प्रातःकाल का नगाड़ा बजने तक भवन से हँसने-खिलखिलाने की आवाज़ें कानों में पड़ती थीं।

सन्ध्या-समय माधवराव सभाकक्ष में बैठे हुए थे। चिंचूरकर, पटवर्धन,

त्र्यम्बक मामा, नाना फड़नीस आदि लोग आसपास बैठे थे। पर्वती पर आने के लिए दादा साहब की ओर से सन्देश की वे प्रतीक्षा कर रहे थे।

"अभी तक काका का सन्देश क्यों नहीं आया ?" माधवराव ने पूछा।

"आते ही वाला है। हो सकता है कोई आ गया हो।"

"हाँ, हाँ, ऐसा हो सकता है।"

सखाराम बापू को अन्दर आते देखते ही सबकी नज़रें उनकी ओर मुड़ गयीं। उनके पीछे-पीछे हीरों के कुण्डल पहने हुए, सिर पर रूमाल बाँधे हुए, बगल में मखमली वस्त्र में लपेटा हुआ पोथी-जैसा कुछ दबाये हुए एक आदमी आया। वहाँ आते ही उसने माधवराव को मुजरा किया। उसको स्वीकार करके माधवराव ने बापू से पूछा,

"ये कौन हैं ?"

"श्रीमन्त, दादा साहब ने इनको आपके पास पहुँचाने के लिए कहा है। ये दक्षिण के मोतियों के बड़े व्यापारी हैं। दादा साहब की इच्छा है कि श्रीमन्त मोतियों पर एक दृष्टि डाल लें। ये सज्जन उनके विश्वासपात्र हैं—यह कहा है उन्होंने।"

माधवराव क्षण-भर को विचारमग्न हो गये। वह व्यापारी कोख से मोतियों की पेटियाँ निकाल रहा था। पेटियों को निकालते ही एक पेटी उसने खोलकर माधवराव के सामने रख दी। नीली मखमल पर चमकनेवाले छोटे-बड़े मोतियों को वे बहुत देर तक देखते रहे।

उन्होंने वह नाना के हाथ में दे दी। तीनों पेटियाँ माधवराव के दृष्टिपथ से गुज़रीं; परन्तु माधवराव ने एक भी मोती नहीं उठाया। वह व्यापारी उस दृष्टि से अप्रसन्न हो रहा था। बड़ी आशा से उसने अपनी बण्डी से एक छोटी मखमली पेटी निकाली और वह बोला,

"सरकार, आप रत्न पहचानते हैं। उनका उपयोग करते ही रहते हैं, परन्तु इस समय मैं जो वस्तु दिखा रहा हूँ, ऐसी आपने पहले नहीं देखी होगी, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। आपके दरबार के संग्रहालय में यह चीज़ ज़रूर होनी चाहिए।"

यह कहकर उसने वह छोटी मखमली पेटी खोली। उसमें अत्यन्त तेजस्वी, बेर के आकार के बड़े-बड़े मोतियों की जोड़ी थी। उन मोतियों के तेज को देखते ही सभी नज़रें उनपर स्थिर हो गयीं। वह पेटी माधवराव के हाथ में देता हुआ वह बोला,

"सरकार, यह असली है। इससे अधिक तेजस्वी मोती मुश्किल से मिलेगा।"

माधवराव उन मोतियों को देख रहे थे। खिड़कियों से आये हुए प्रकाश को वे मोती परावर्तित कर रहे थे। उन बड़े-बड़े मोतियों को देखते समय माधवराव को व्यापारी का कथन सुनाई नहीं दे रहा था। उनकी मुखाकृति गम्भीर हो गयी थी। एक अज्ञात वेदना की सूक्ष्म छटा उनके मुख पर झलक रही थी। उस व्याकुलता को सब जान गये। माधवराव की आँखें भर आयीं। हँसने का प्रयत्न करते हुए वे बोले,

"मोतिये! ये मोती सुन्दर हैं, यह निर्विवाद है। परन्तु इनसे अधिक तेजस्वी मोती हमने देखे नहीं होंगे, यह सत्य नहीं है। इनसे भी अधिक अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त पानीदार, अनमोल दो पानीदार मोती हमारे शनिवार-भवन के संग्रहालय में थे।"

"फिर कहाँ हैं वे?"

तत्क्षण दो अश्रुबिन्दु माधवराव के नेत्रों से टपक पड़े। गद्गद स्वर में वे बोले,

"काम में आ गये! उन मोतियों को हमने धारण किया था, उनकी हमको याद है, उनके सामने ये कुछ नहीं हैं। पानीपत पर हमको बेहिसाब खर्च करना पड़ा। उस समय जो सरकारी खजाना रिक्त हुआ, उसकी पूर्ति ऐसे मोतियों से नहीं हो सकती..."

जौहरी कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। माधवराव ने मोतियों की पेटी बन्द करके लौटा दी। आँखें पोंछकर स्वयं सँभालते हुए वे बोले, "हम कुछ खरीद नहीं सके इसलिए आप नाराज मत होइए।"

"जी नहीं। यह आपकी इच्छा का प्रश्न है। दादा साहब सरकार ने कहा था, इसलिए आया था मैं।"

"आपके आने से हमें खुशी हुई। काका ने कुछ खरीद की?"

"जी! थोड़ी-बहुत की। आपने ही कुछ नहीं खरीदा!"

माधवराव नाना की ओर मुड़कर बोले, "नाना, इनका पता लिख लीजिए। जब मोतियों की आवश्यकता पड़ेगी, तब हम इनको जरूर बुलवा लेंगे। नाना, जब कभी आवश्यकता पड़े, हमारे दिये हुए वचन को याद रखना।"

"सरकार, एक प्रार्थना करूँ?" जौहरी माधवराव के मधुर भाषण से ललचाकर बोला।

"कहिए न!"

"आपने मोती नहीं लिये। परन्तु अन्दर कुछ खरीद...."

माधवराव ने जौहरी की ओर क्षण-भर ध्यान से देखा, फिर उन्होंने त्र्यम्बक मामा से कहा, "कदाचित् यह सम्भव हो। मामा, आप इन मोतियों को लेकर

अन्दर जाइए। इनको कुछ खरीदना हो तो पूछ लीजिए।"

थाल में मोती रखकर त्र्यम्बक मामा महल में गये। द्योपति बाहर खड़ा था। उसने सूचना दी। तुरन्त मैना बाहर आयी।

"मैना, बाई साहिबा से कहो कि मैं मोती लेकर आया हूँ।"

"मोती? आइए न, अन्दर आइए...दीदी साहिबाऽऽ" थाल में रखे मोतियों को देखकर मैना अन्दर गयी। पीछे-पीछे त्र्यम्बक मामा अन्दर गये। रमाबाई अंचल सँवारकर खड़ी थीं। उनकी ओर देखते हुए त्र्यम्बक मामा बोले,

"श्रीमन्त ने मोती भेजे हैं। आपको आवश्यकता हो तो मोती पसन्द कर लीजिए—यह कहा है श्रीमन्त ने।"

गुलाबी आच्छादन से ढके हुए थाल को मामा ने आगे बढ़ाया। उस थाल को लेने के लिए मैना अधीर होकर आगे बढ़ी। उसी समय रमाबाई ने पूछा,

"इन्होंने दरबार में खरीदा है क्या कुछ?"

"नहीं" मामा बोले। मैना रमाबाई की ओर देख रही थी। रमाबाई बोलीं, "आप मोती ले जाइए। इस समय हमको मोतियों की आवश्यकता नहीं है, यह बता दीजिए।"

क्या कहा जाय, यह त्र्यम्बक मामा की समझ में नहीं आया। कुछ क्षणों तक वे उसी स्थिति में खड़े रहे फिर नमस्कार करके चले गये।

सभागृह में त्र्यम्बक मामा आये। उन्होंने थाल में से पेटियाँ बन्द करके जौहरी के हाथों में दे दीं। माधवराव ने पूछा,

"मोतियों को पसन्द कर लिया?"

"नहीं। बाई साहिबा बोलीं कि इस समय मोतियों की आवश्यकता नहीं है।"

माधवराव के मुख पर सन्तोष दिखाई पड़ रहा था। जौहरी मुजरा करके चला गया। राघोबा दादा ने सभागृह में प्रवेश किया। माधवराव सहित सभी उठकर खड़े हो गये। राघोबा दादा बोले,

"माधव, तुमने मोती नहीं लिये?"

"नहीं, काका!"

"अरे, मेरा विश्वासपात्र जौहरी था। मोती थे भी कीमती। उनकी कीमत सुनकर मैं अपने को रोक नहीं सका। वैसे मुझको मोतियों का शौक नहीं है, परन्तु देवीजी के लिए थोड़े-से मोती ले डाले।"

"कितने मोती लिये, काका?"

"अधिक नहीं। आठ हजार के लिये। बापू से कह दिया है कि खजाने से खर्च मेरे नाम डाल दें।"

"ठीक है।" माधवराव बोले।

"तो चलें न ?" दादा ने पूछा, "परन्तु माधव, अब पर्वती जाकर लौट नहीं सकेंगे। इससे तो चलो तुलसीबाग में जाकर दर्शन कर लें !"

"जो आज्ञा !" माधवराव बोले।

भोजन प्रारम्भ हुआ और उसके साथ ही गप्पों का रंग चढ़ने लगा। राघोबा दादा माधवराव के दायें हाथ पर बैठे थे। वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। वे एकदम बोले, "माधव, तुम कर्नाटक में कब जाओगे ?"

भरी पंगत में पूछा हुआ यह प्रश्न माधवराव को अच्छा नहीं लगा। वे बोले, "काका, हम क्या आपको बिना लिये जायेंगे ?"

"नहीं माधव, अब हमसे यह नहीं होगा। राज्य के इस रक्षण में हमारी दशा जटायु की-सी हो गयी है। अब राज्य का सारा भार तुम्हारे ऊपर ! सुना था कि तुम जा रहे हो, इसलिए पूछा।"

—और वह विषय वहीं समाप्त हो गया।

माधवराव सबसे आग्रह कर रहे थे। आनन्दपूर्वक भोजन चल रहा था। हास-परिहास हो रहा था। दादा साहब दावत के उस कार्यक्रम से खुश होकर बोले,

"माधव, आज नाना साहब के समय की दावतों की याद आ गयी। उनकी दावतें भी सदैव ऐसी ही शानदार होती थीं।"

"काका, आपका आशीर्वाद होने पर हमें किस बात की कमी होगी ?"

दादाजी ने हँसकर माधवराव की ओर देखा और वे बोले, "हाँ माधव ! परन्तु तुम्हारे दरबार में एक कमी है।"

"कैसी ?" माधवराव ने पूछा।

"अरे ! हमने पूछताछ की है। निजाम पर इतनी बड़ी विजय प्राप्त की। कर्नाटक की मुहीम हो गयी, परन्तु पेशवाओं के दरबार में, भवन में एक बार भी नृत्यगायन की बैठक नहीं हुई।"

माधवराव का कौर हाथ में ही लगा रह गया। राघोबा दादा हँसकर बोले, "अरे, देखता क्या है ? चाहो तो सबसे पूछ लो ! नानाजी के समय जो दरबार लगते थे, उनकी याद है क्या, पूछो। अरे, जब देखो तब राजनीति ! इससे लोग ऊब जाते हैं। उनको कुछ मनोरंजन चाहिए कि नहीं ! थके-हारे प्राणों को सहारा चाहिए। वह मनोरंजन पेशवाओं के दरबार में न मिला तो कहाँ मिलेगा ? साधारण मनुष्य क्या गाने-बजाने का बोझ उठा सकता है ? क्यों बापू ?"

"सच है श्रीमन्त! शनिवार-भवन की वह शान नहीं रही। क्या विचार है मामा?"

त्र्यम्बक मामा को ठसका लगा। पानी पीकर बोले,

"हाँ! यह कमी तो हमारे दरबार में है!"

"दादा, सच बताऊँ? माधवराव बोले, "इस ओर हमारा ध्यान नहीं था। गाने-बजाने के मामले में हम कुछ नहीं जानते हैं।"

"अरे, तो फिर हमसे कहो। हम देख लेंगे सब!"

माधवराव हँसे। उन्होंने पूछा,

"काका, गुस्सा न हो तो एक बात पूछूँ?"

"पूछो न!"

"मालूम होता है गुलाबराव आ रहे हैं!"

यह सुनते ही राघोबा प्रसन्न होकर ज़ोर से हँस पड़े। हँसी रुकने पर वे बोले, "माधव! अरे, स्वभाव को औषध नहीं है। यह तो स्वभाव है हमारा। गुलाबराव के बिना हमें चैन कैसे पड़ सकता है?"

सब हँस पड़े। राघोबा दादा ने पूछा,

"तो क्यों माधव, कल कार्यक्रम रखा जाये?"

"कल? इतनी जल्दी प्रबन्ध हो जायेगा?"

"कहा न, यह मुझपर छोड़ दो?"

"ठीक है!"

दूसरे दिन प्रातःकाल से ही राघोबा दादा नृत्य की व्यवस्था करने में लगे हुए थे। दो दिन पहले ही गुलाबराव ने यह सूचना दी थी कि निज़ाम के दरबार की एक नर्तकी पूने में आयी है। राघोबा ने गुलाबराव से कहा—

"गुलाब, वह औरत सचमुच ही बढ़िया है क्या?"

"सरकार, आप चाहें तो उसको बुलाऊँ? वही नर्तकी यदि आप दरबार में गाने बैठ गयी तो किसी की भी नज़र हिल न सकेगी। गाने-बजाने में, नृत्य में, हाव-भावों के प्रदर्शन में उसका हाथ पकड़नेवाला मुझे तो कोई दिखाई नहीं देता!"

"यदि यह बात है तो उसका हाथ हम पकड़ लेंगे!" अपनी उक्ति-पर खुश होकर राघोबा दादा हँसने लगे। गुलाबराव ने भी साथ दिया। राघोबाजी ने पूछा,

"पारिश्रमिक क्या है?"

"पांच सौ मिलते हैं उसको।"

"देंगे हम।" राघोबा बोले।

"गुलाब, पूरी तैयारी रखो। बाई ऐसी आनी चाहिए, नाच ऐसा होना चाहिए कि सारा दरबार चकित रह जाय। यदि इसमें कोई कमी रह गयी तो तुम्हें भी उस बाई के पीछे-पीछे जाना पड़ेगा। समझ गये?"

"जी।"

"जाओ तुम। और बापू, नाना लेखा-कार्यालय में होंगे, उनको भेज देना।"

बापू और नाना के आते ही राघोबा दादा बोले, "बापू, सारी तैयारी हो गयी?"

"वही कर रहे हैं। नृत्य-महल की सजावट करवा ली है।"

"और निमन्त्रण?"

"आप कार्यालय में जाकर एक बार देख लें तो बड़ा अच्छा हो। वैसे किसी के छूट जाने की सम्भावना नहीं है। सारे सरदार और सम्मान्य जन ले लिये हैं।"

"ठीक है। चलो देखें।"

राघोबा दादा, नाना, बापू—सभी कार्यालय में गये। निमन्त्रितों की सूची का अवलोकन कर वे नृत्य-महल की ओर गये। वहाँ सेवक बैठकें लगाने में लगे हुए थे। बाहर के चौक में पन्द्रह-बीस सेवक-दासियाँ चिराग़दान और शमादान साफ़ कर रहे थे। बैठक की व्यवस्था कैसी करनी है—यह राघोबाजी ने बापू को समझाया और वे अपने महल की ओर चले।

सायं-समय दिया जले पर माधवराव अपने महल की खिड़की के पास खड़े होकर नृत्य-महल की ओर जलाये जाते हुए दिये तथा उनके प्रकाश में सेवकों की हलचलें देख रहे थे। रमाबाई अन्दर आयीं। मयूरपंखी रेशमी साड़ी और गुलाबी चोली पहने हुई रमाबाई को देखते ही वे बोले,

"आइए। हम आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे।"

रमाबाई ने बातों की ओर ध्यान न देकर पूछा, "यह क्या? अभी आप तैयार नहीं हुए?"

माधवराव हँसकर बोले, "आप महल में आयीं, तभी हम जान गये थे; परन्तु चन्द्रोदय इतनी जल्दी होगा, यह नहीं जानते थे हम।"

"जाइए! आप तो बस...." रमाबाई लज्जा से लाल होकर बोलीं, "थोड़ी देर पहले काकाजी ने कहा था, वह झूठ नहीं था...."

"क्या कहा था?"

"मैं पाकशाला की ओर जा रही थी, तब काकाजी मिले। बोले...." रमाबाई हिचकिचायीं।

"अजी, बताइए तो सही कि उन्होंने क्या कहा ?"

"...बोले...'तुम तैयार हो गयीं; परन्तु तुम्हारे पतिदेव बैठे-बैठे सोच-विचार कर रहे होंगे। उनको इस बात की याद ही नहीं रही होगी'...!" अपना झुका हुआ सिर ऊपर उठाकर वे बोलीं, "मुझको उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ था, किन्तु यहाँ आकर देखती हूँ तो...।"

माधवराव हँस पड़े और रमाबाई कहते-कहते रुक गयीं।

"अच्छा" माधवराव बोले, "आप ही बताइए आज हम कौन-से कपड़े पहनें।"

रमाबाई हँसकर बोलीं, "बताने की क्या जरूरत है ? आपने देखा होता तब भी यह मालूम गया होता। मैंने आपके सभी कपड़े निकालकर पलंग पर रख दिये थे, उसके बाद ही मैं नीचे गयी थी...।"

माधवराव ने पलंग की ओर देखा। सचमुच पलंग पर कपड़े निकालकर रख दिये गये थे। रमाबाई बोलीं,

"आप कपड़े पहनें तब तक मैं पाकशाला की ओर चक्कर लगाकर आती हूँ।" यह कहकर वे मुड़ीं। माधवराव ने पुकारा, परन्तु वे जा चुकी थीं....।

"श्रीपति !"

श्रीपति सकुचाता अन्दर आया। उसके सिर पर गुलाबी साफ़ा था। देह पर सफ़ेद कुरता और पैरों में तंग मोहरी का पाजामा उसने पहन रखा था। माधवराव बोले,

"अरे, सचमुच तुम सब तैयार हो गये हो। मैं ही रह गया हूँ। चल, श्रीपति ! कपड़े दे।"

रमाबाई जब महल में आयीं, तब तक माधवराव कपड़े पहनकर तैयार हो चुके थे। देह पर जरी-बूटों का कुरता था। पैरों में तंग मोहरीवाला पाजामा था। कानों में बड़े-बड़े मोतियों के कुण्डल शोभा दे रहे थे। गले में हार और सोने का गोफ पहन रखा था। रमाबाई नजदीक आयीं और उन्होंने इत्र की पेटी आगे रखी। माधवराव ने उस पेटी की शीशियों की ओर देखा और कहा,

"फाया आप ही दीजिए न ?"

रमाबाई ने पूछा, "कौन-सा इत्र दूँ ?"

"कोई दीजिए।"

"गुलाब दूँ ?"

"नहीं। गुलाब सदैव हमारे पास रहता है।"

रमाबाई अपनी हँसी रोकती हुई नीचे बैठ गयीं। फाया तैयार होते ही उन्होंने एक शीशी खोली। उसमें फाया डुबोकर वह माधवराव के हाथ में

दिया। माधवराव बोले,

"हिना मालूम पड़ता है।"

"हाँ!" रमाबाई बोलीं।

हिना की मधुर गन्ध वातावरण में महक रही थी। माधवराव ने फाया कान में लगा लिया और इत्र की उँगली बायीं मुट्ठी के ऊपर लगाकर रगड़ ली। गन्ध एकदम महक उठी। माधवराव बोले,

"इत्र भी जबतक रगड़ा न जाये तबतक महकता नहीं है...."

रमाबाई लज्जा से लाल हो गयीं। माधवराव रमाबाई के लज्जारक्त मुख की ओर देख रहे थे तभी मठारने की आवाज़ आयी। श्रीपति अन्दर आकर बोला,

"दादा साहब महाराज..."

—और पीछे-पीछे दादा साहब उपस्थित हो गये।

रमाबाई जल्दी-जल्दी पीछे हटीं। दोनों को देखकर राघोबा हँसते हुए बोले, "अब एक ही इच्छा रह गयी है।"

"कौन-सी ?" न जानकर माधवराव ने पूछा।

"नाती को देख लें तो जीवन कृतार्थ हो जाये।"

माधवराव और राघोबा दादा हँस पड़े। रमाबाई लजाकर महल से बाहर चली गयीं। हँसी थमने पर दादा साहब बोले,

"माधव, देखो आज बैठक की ऐसी व्यवस्था की है कि इसके आगे दिल्ली-दरबार भी फीका पड़ेगा। अब भोजन होने के बाद ही बैठक प्रारम्भ कर देंगे। उससे पहले तुम एक बार सारी व्यवस्था पर दृष्टि डाल लो, तो अच्छा हो।"

"नहीं काका, आप देख लेंगे तो उसमें कोई कमी रह ही नहीं सकती। इसका विश्वास है हमें।"

दादा साहब ने जो कुछ कहा था, उसमें कोई झूठ नहीं था। दिल्ली-दरवाज़े से नाचघर तक का रास्ता जगह-जगह लगाये हुए दीपक-पलीते और शमादानों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था। नाचघर के दरवाज़े से अन्दर जाते ही बैठक का ठाट आँखों में भर जाता था। रुई भरे हुए गद्दे सारे महल में बिछे हुए थे। प्रवेश-द्वार के दूसरे छोर पर दीवाल के पास विशेष निमन्त्रितों के लिए कलावन्तू की बैठकें सजायी गयी थीं। बायीं ओर चिक के परदों से अलग किया हुआ दालान था। दीवाल की तरफ़ दोनों ओर बिछे हुए ग़लीचों पर मसनदें और तकिये रखे हुए थे। प्रत्येक बैठक के पास विशेष प्रकार के बीड़ों से भरे हुए थाल रखे थे। स्थान-स्थान पर अगरबत्तियों के वृक्ष खड़े थे। प्रवेश-द्वार से विशेष निमन्त्रितों की बैठकों तक मखमल के पाँवड़े बिछे हुए थे। बैठकों के दोनों

और चाँदी के कामदार मुरादाबादी पीकदान रखे हुए थे। महल के मध्यभाग में गायिका की बैठक बिछी हुई थी। विशेष निमन्त्रितों का भोजन हो जाने के बाद गायिका बैठक पर आकर बैठ गयी। साजिन्दे आये। सारंगी-तबले, पाव ठीक किये जाने लगे। गुलाबराव ने जो वर्णन किया था, उसमें कहीं कोई कमी नहीं थी। चन्द्री गणिका का लावण्य लाखों में भी अलग दिखाई देने योग्य था। उसने जिरजिरे जरी के जो वस्त्र धारण कर रखे थे, उनमें उसका शरीर-सौष्ठव जगह-जगह प्रकट हो रहा था। इधर गायिका बैठक पर उपस्थित हुई उधर भवन के चौक में खड़ी हुई आमन्त्रित सरदार मण्डली नृत्यमहल में प्रवेश करने लगी। बापू और नाना उनको स्थान दिखाने लगे। छत में लगे हुए झाड़-फानूसों के प्रकाश में नृत्यमहल जगमगा रहा था। सारी बैठक भर गयी। राघोबा दादा बैठकी पर आये, सारी बैठक खड़ी हो गयी और पुनः स्थानापन्न हो गयी। राघोबा दादा गैठरी पर बैठकर नर्तकी के सौन्दर्य को निरख रहे थे। उसी समय चिक के परदे के पीछे सरसर हुई। बैठक की कानाफूसी रुक गयी और प्रवेश-द्वार के भालदार-चोबदारों की ललकारी गूँज उठी। प्रवेश-द्वार पर खड़े हुए सेवक द्वारा आगे बढ़ाये गये गजरों के थाल की ओर न देखते हुए माधवराव सीधे बैठकी की ओर बढ़ने लगे।

राघोबा दादा ने समीप स्थान की ओर संकेत किया। माधवराव वहाँ बैठ गये। खड़ी हुई बैठक फिर अपने-अपने स्थान पर बैठ गयी। माधवराव ने चारों ओर दृष्टि डाली। रंग-बिरंगे साफ़े और पगड़ियों से सुशोभित सरदार मण्डली दिखाई दे रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे पेशवाई का समस्त ऐश्वर्य वहाँ एकत्रित हो गया हो। राघोबा दादा माधवराव की ओर मुड़कर बोले, "बैठक को शुरू होने दो न?"

माधवराव ने गणिका की ओर देखा। उसकी तीक्ष्ण मादक दृष्टि माधवराव पर लगी हुई थी। माधवराव की नज़र से नज़र मिलते ही उसने हँसकर अपना सिर झुकाया। क्षण-भर में माधवराव का चेहरा शर्मिन्दा हो गया। तत्क्षण उनकी नज़र झुक गयी। दादा बोले, "आज्ञा दे ना?"

जैसे-तैसे माधवराव बोले, "आप ही दीजिए न?"

राघोबा दादा हँसे। उन्होंने हाथ से ही गायिका को इशारा किया। सारंगी के सुर निकले। अकारण तबला में घुमक उठी और साथ ही गायिका का मधुरालाप कानों में पड़ने लगा। कोकिल स्वर में गायिका गा रही थी। अनेक प्रकार के इत्रों की मिश्रित गन्ध से महकते हुए उस महल में गायिका के स्वर गूँज रहे थे। वह गा रही थी—

"सैंया बिन नाहीं पड़त मोहे चैन"

अभिनय करके गाती हुई उस गायिका के सुरों का प्रभाव बैठक पर पड़ रहा था। धीरे-धीरे पेशवाओं की उपस्थिति का लोगों को ध्यान न रहा। सभी सरदारों की पगड़ियों की लड़ियाँ हिलती हुई गरदन के साथ डोल रही थीं। राघोबा दादा बायें हाथ में पकड़े हुए फूलों की गन्ध सूँघते हुए स्थिर दृष्टि से देह-ध्यान भूलकर नर्तकी की ओर देख रहे थे। उसके अभिनय का अर्थ समझ रहे थे और इन दोनों के बीच माधवराव चलायमान चित्त से बैठे हुए थे।

गाना समाप्त हो गया। राघोबा दादा ने बीड़ा उठाया। माधवराव बोले,

"काका, तबीयत कुछ ठीक नहीं है, मैं चला जाऊँ तो कोई बात तो नहीं? आप तो हैं ही।"

राघोबा दादा बोले, "माधव, तुमको ज्यादा परिश्रम करना ही नहीं चाहिए। तुम जाओ। मैं सब देख लूँगा।"

किसी का ध्यान जाये इससे पहले ही माधवराव उठे और देखते ही देखते महल से बाहर निकल गये। नर्तकी चकित होकर राघोबा दादा की ओर देख रही थी। सारी बैठक चलायमान होकर देख रही थी। उसी समय राघोबाजी ने गाना प्रारम्भ करने के लिए इशारा किया।

माधवराव सीधे अपने महल में गये। महल में समइयाँ जल रही थीं। महल की खिड़की से चन्द्रमा की किरणें अन्दर आ गयी थीं। उस खिड़की के पास मंचक पर माधवराव ने बैठकी के गलतकिये डाले और उनपर टिककर खिड़की से दिखाई देनेवाले चन्द्रमा की ओर वे देखने लगे। द्वार के पास सरसराहट सुनकर उनकी तन्द्रा टूटी। "कौन?" कहते हुए उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। द्वार पर रमाबाई खड़ी थीं।

"कौन, आप? आइए।" कहते हुए माधवराव तत्क्षण उठे और रमाबाई का हाथ पकड़कर मंचक के पास ले आये। रमाबाई के हाथ में जो कम्प होने लगा था, उसको माधवराव जान रहे थे। माधवराव ने पूछा,

"गाना अच्छा नहीं लगा?"

"लगा न!"

"फिर भी चली आयीं?" माधवराव ने पूछा।

"आप आये तो...." और कुछ न कहते हुए रमाबाई ने सफ़ेद फूलों का गजरा, जो अपने साथ लायी थीं, माधवराव के बायें हाथ में बाँध दिया। बैठक में गाने की आवाज आ रही थी। रमाबाई ने पूछा,

"आप गाने में नहीं जायेंगे?"

माधवराव ने तत्क्षण आगे बढ़कर रमाबाई का मुख अपनी दोनों अंजलियों में ले लिया और उसको देखते हुए रमाबाई की आँखों में झाँककर बोले,

"साक्षात् मूर्तिमान् गाना जब हमारे हाथों में है तब उस गाने को सुनने कौन जायेगा ? हम क्या इतने अरसिक हैं ?"

यह सुनकर रमाबाई में इतनी शक्ति न रही कि उनकी नजर से नजर मिला सकें। उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।....

आकाश में चन्द्र चढ़ रहा था। उसकी किरणें महल में प्रवेश कर रही थीं। नृत्यमहल में गाना हो रहा था, उसकी आवाज शनिवार-भवन में गूँज रही थी....

शनिवार-भवन में भीड़ बढ़ती जा रही थी। माधवराव और राघोबा दादा—ये दोनों ही भवन में ठहरे होने के कारण दोनों से मिलने के लिए आनेवाले लोगों की संख्या बढ़ रही थी। कार्यालय के चौक में प्रमुख लोगों की भीड़ लगी रहती थी। माधवराव हैदर पर चढ़ाई करने की योजना बना रहे थे। उस योजना का रूप निश्चित किया जा रहा था। सरदारों को खलीते भेजे जा रहे थे। कार्यालय में चढ़ाई के खर्च के अन्दाज का हिसाब लगाया जा रहा था। माधवराव आनेवाले सरदार लोगों से रसद के साथ सेना की पूछताछ कर आज्ञा दे रहे थे। उसी समय शनिवार-भवन में बादामी बँगले में राघोबा दादा हँसी-मज़ाक़ में मग्न हो रहे थे।

प्रातःकाल राघोबाजी के महल में चिन्तो विट्ठल, आबाजी महादेव, सदाशिव रामचन्द्र आदि उनके कृपापात्र इकट्ठे हो गये थे। राघोबा दादा ने आबाजी महादेव से कहा,

"आबाजी, पुणे में आने पर ऐसा लगता है जैसे घर आ गये हों।"

"श्रीमन्त, आपका घर पुणे ही है। सत्ता का, मान का। आनन्दवल्ली उसकी समता कैसे कर सकती है ? आपके बिना भवन अनाथ-सा लगता है।" चिन्तो विट्ठल ने कहा।

"इसका क्या हमको शौक है ? ऐसा वातावरण हमको अच्छा नहीं लगता है।" राघोबा दादा बोले।

"कैसे लगेगा ? नहीं ! नहीं !! कैसे लगेगा ?" चिन्तो विट्ठल ने पूछा।

कोने में बैठा हुआ गंगोबा तात्या बोला, "अजी, सोने के पिंजड़े में रखा है, इसलिए क्या वनराज कभी चैन से बैठेगा ?"

इस कथन से राघोबा दादा खुश हुए। उसी समय राघोबाजी का रसोइया विष्णु मोतीचूर के लड्डुओं का थाल लेकर अन्दर आया। सभी की निगाहें उस थाल पर लग गयीं। बैठकी के मध्यभाग में थाल रखते ही राघोबा ने पूछा,

"अरे विष्णु ! तू ! और मेरी पूजा-पाठ का पानी कौन भर रहा है ?"

"मैं ही सरकार ! पानी लेकर आया ही था कि माँ साहिबा ने यह थाल दे दिया। वापस जाऊँगा तब नहाकर ही पानी लाऊँगा।"

"ठीक।"

विष्णु चला गया। राघोबा बोले, "लड़का बड़ा होशियार है। मेरे सब काम यही करता है। अकेला विष्णु होने पर मेरा कोई काम नहीं रुकता है। लीजिए !"

सब इस आज्ञा का ही इन्तजार कर रहे थे। सभी के हाथ लड्डुओं पर पड़े। आगे सरकता हुआ गंगोबा बोला,

"श्रीमन्त, सुनते हैं, रावसाहब ने हैदर पर चढ़ाई की योजना बनायी है।"

"हमने भी सुना है", राघोबा नजर टालते हुए बोले।

"आपको मालूम नहीं है ?" गंगोबा ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"हमको मालूम होने का कारण ही क्या ?" राघोबा ने पूछा, "हमको चढ़ाई पर नहीं जाना है।"

"आश्चर्य !"

"आश्चर्य नहीं है। अब हमारी अवस्था नहीं है। यह झंझट सहन नहीं होगा। और फिर हमपर किसी का विश्वास भी नहीं है। जाना हो तो सम्मान के साथ, नहीं तो घर आराम से बैठो।"

"यही ठीक है।" सदाशिव रामचन्द्र बोला, "किन्तु हम ऐसा कैसे कर सकते हैं ?" हम तो हुक्म के बन्दे हैं।"

"तुम जाओ न। तुमसे कौन मना करता है ?" राघोबा बोले।

थोड़ी देर बाद सदाशिव रामचन्द्र बोला, "श्रीमन्त, अब आज्ञा हो। राव-साहब पर्वती पर गये हुए थे इसलिए इतनी देर यहाँ बैठ लिया। कार्यालय में सभी इकट्ठे हो गये होंगे।"

"जाइए आप। मेरे कारण आपपर लाञ्छन न लगे।"

तीनों उठे। आज्ञा पाकर चले गये। गंगोबा तात्या ने शतरंज का पट बिछाया और प्यादों को लगाने लगे।

विष्णु पानी की गागर लेकर बादामी-भवन से बाहर निकला। विष्णु राघोबाजी का विश्वस्त कहार था। बड़ी ऐंठ में वह जा रहा था। गौरी के भवन के सामने चौक में शामा खड़ी हुई फूल तोड़ रही थी। उसकी ओर ध्यान जाते ही विष्णु उसके पास गया। विष्णु को देखते ही शामा बोली,

"क्या है रे ?"

"क्यों रामा, आज तुम क्यों फूल तोड़ रही हो ?"

"बाई साहिबा को जरूरत है ।"

"अरे रे... !"

"क्या हुआ ?" रामा ने गुस्से से पूछा ।

"सरकार की कृपा अब नहीं रही, मालूम पड़ता है; तभी तुम्हारी रवानगी बाई साहिबा के पास हो गयी है । रुतबा चढ़ गया, रामा गिर गयी ।"

"अरे, मुँह में हाड़ है कि नहीं ? कहूँ सरकार से !" रामा फुफकारकर बोली ।

"यह अच्छा न्याय है ! एक का गुस्सा दूसरे पर उतारा जाये ! परन्तु सच कहूँ ? जब तू आयी थी तब चेहरे पर हड्डियाँ भी ढंग से नहीं थीं, अब हड्डी दिखाई तक नहीं देती ।"

"बेशरम मरा ! जा पानी को !"

पानी की याद आते ही विष्णु ने पैर उठाये । वह गणेश-दरवाजे के पास आया ही था कि घोड़ों के टापों की आवाज उसके कानों में पड़ी । उसने देखा कि सामने के गणेश-दरवाजे से स्वयं माधवराव आ रहे थे । पैरों में जड़ाऊ जूतियाँ, तंग मोहरी का पाजामा, देह पर रेशमी कुरता और मस्तक पर पगड़ी धारण किये अश्वारूढ़ माधवराव की मूर्ति को विष्णु निहार रहा था । माधवराव के मस्तक पर पगड़ी के हीरे के शिरपेच पर उसका ध्यान गया । विष्णु पर एक कटाक्ष डालकर माधवराव ने घोड़े की लगाम खींची । सेवकों ने आगे बढ़कर घोड़ा पकड़ा और माधवराव सुन्दर चौपल्ली इमारत के सामने ही उतर पड़े । वे भवन में जाने के लिए मुड़े ही थे कि कानों में शब्द आये,

"सरकार ।"

माधवराव मुड़े । विष्णु नजदीक आकर बोला, "सरकार !"

माधवराव ने हँसकर उसकी ओर देखा और पूछा, "क्या है विष्णु ?"

"सरकार आपका शिरपेच...."

"क्या हुआ ?" शिरपेच टटोलते हुए माधवराव ने पूछा ।

"शिरपेच थोड़ा झुक गया है सरकार ।"

क्षण-भर को माधवराव ने विष्णु पर नजर स्थिर कर दी । तत्क्षण उनकी हँसी लुप्त हो गयी । उन्होंने पूछा, "विष्णु, प्रतिदिन कितना पानी भरता है ?"

"बीस गागर सरकार ।" विष्णु बोला ।

माधवराव ने सुन्दर चौपल्ली इमारत के पास खड़े सेवक को इशारा किया । वह दौड़ता हुआ आया । मुजरा करके खड़ा हो गया ।

"तुम किस काम पर हो?"

"सरकार, यहाँ के पहरे पर हूँ।" वह बोला।

विष्णु की ओर नजर घुमाकर माधवराव बोले,

"विष्णु, आज से आठ दिन तक प्रतिदिन चालीस गागर पानी लाया करना।" सेवक की ओर देखकर वे बोले, "और यह चालीस गागर पानी लाता है, यह देखना तुम्हारा काम है। सूर्यास्त तक यदि चालीस गागरें न भरी जायें, तो जितनी गागरें कम भरी जायें, उतने ही कोड़े प्रतिदिन इसको लगाते जाना और इसकी सूचना प्रतिदिन कार्यालय में दिया करना।"

"जी सरकार।" सेवक बोला और विष्णु कुछ समझ पाये इससे पहले ही माधवराव दर्पण-महल की ओर चलने लगे।

विष्णु को जब होश आया तो वह पीछे लौटा। शामा ने उसको लौटते हुए देखकर पूछा, "क्यों रे, बीच में से ही लौट आया?"

"तुझे क्या मतलब? अपना काम कर!"

गागर नीचे रखकर विष्णु झटपट जीना चढ़ गया। राघोबा दादा और गंगोबा तात्या शतरंज खेलने में मग्न थे। विष्णु सीधा अन्दर गया। उसको देखकर राघोबा बोले, "क्या है रे विष्णु?"

यह सुनते ही विष्णु फूट-फूटकर रोने लगा। उसने राघोबाजी के पैर पकड़ लिये। राघोबाजी ने खेल रोककर पूछा,

"अरे, रोता क्यों है? क्या हुआ, बतायेगा या नहीं?"

अपनी रोना रोकता हुआ विष्णु बोला, "श्रीमन्त ने आज से चालीस गागर पानी भरने का हुक्म दिया है।"

"किसने? माधव ने?"

"हाँ। और जितनी गागर रह जायेंगी उतने ही कोड़े लगाने का हुक्म दिया है।"

"लेकिन क्यों? क्या किया है तूने?"

"मैंने कुछ नहीं किया।" नाक सूँतता हुआ विष्णु बोला, "मैं बाहर जा रहा था, उसी समय श्रीमन्त गणेश-दरवाज़े से अन्दर आये। श्रीमन्त का शिर-पेच झुक गया था, इसलिए यह मैंने कह दिया। बस इतना ही।"

"यह क्या कम हुआ? तुम कहार से किसने कहा था कि पेशवाओं के शिर-पेच को सीधा करने की चिन्ता कर? तेरे पास खूब खाली समय है, यह माधव जान गया और उसने यह दण्ड तुझको दे दिया होगा।"

"परन्तु सरकार, चालीस गागर...."

"नहीं विष्णु ! यह तू मुझसे मत कह। माधव ने आज्ञा दी है। उसमें अब हेर-बदल नहीं की जा सकती। चालीस गागर भरने का प्रयत्न कर। नहीं तो फिर कोड़े खा, जा!"

उसके बाद आठ दिन तक प्रतिदिन सूर्योदय के बाद गणेश-दरवाजे की ड्योढ़ी के सामने कोड़ों की आवाज सुनाई देती रही।

दोपहर के समय अचानक गोरी-महल से बादामी-महल की ओर आते हुए माधवराव को देखकर बादामी-महल में भगदड़ मच गयी। राघोबाजी को जब सूचना मिली तब उनको बैठकी से उठने का भी समय नहीं मिला। माधवराव दरवाजे का परदा सरकाकर अन्दर आ रहे थे। राघोबा दादा अकेले ही थे। माधवराव के मुजरे को स्वीकार कर राघोबा बोले,

"माधव, इस समय आना पड़ा?"

"काका, कई बार आने का विचार किया, किन्तु अवकाश ही नहीं मिलता है। आज निश्चय किया। भोजन होते ही सीधा यहाँ आया हूँ।"

"इतना जरूरी क्या काम निकल आया?"

माधवराव खड़े-खड़े ही बोले, "काका, हैदर पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी हो चुकी है। आप कब चलेंगे?"

"कौन मैं?" राघोबा दादा हँसे, "नहीं माधव, यही बात मत कहो। अब ये झंझट सहन नहीं होते।"

"काका, आप होते तो...."

"मैं क्या इच्छा से कह रहा हूँ? लेकिन यदि वैसा समय आये, तो जरूर सूचना देना। मैं जहाँ भी हूँगा, वहीं से दौड़ता आऊँगा। परन्तु वह समय नहीं आयेगा। इस बार तुम लोग हैदर का पराजय करोगे, इसका विश्वास है मुझे।"

"आपका आशीर्वाद मिल गया यही क्या कम है?" माधवराव बोले, "मैं बराबर सभी वृत्तान्त सूचित करता रहूँगा।"

"स्वास्थ्य का ध्यान रखना, सीमा के बाहर मत जाना। किसी के [illegible] के लोभ में मत फिसलना।"

"हाँ काका!" मुजरा करके माधवराव मुड़े।

"माधव!" राघोबाजी ने पुकारा, "हम भी जल्दी ही [illegible] करेंगे, [illegible] की व्यवस्था कर देना।"

रमा

"जो आज्ञा।" माधवराव यह कहकर महल से बाहर निकले।

हैदर पर चढ़ाई करने के लिए माधवराव बाहर निकले; सातारा पहुँचकर सातारा के छत्रपति और शम्भूमहादेव के दर्शन करके वे कोल्हापुर पहुँचे। कोल्हापुर में पूज्या माता जिजाबाई के आदेश से चिकोडी-मनोली ये दो जगहें जीतकर उनको जिजाबाई के हवाले किया। पेशवाओं की छावनी कोल्हापुर के बाहर लगी हुई थी। गोपालराव पटवर्धन, मुरारराव घोरपडे, विंचूरकर, नारो शंकर आदि श्रेष्ठ सरदारों की छावनियाँ पेशवाओं की छावनी के आसपास लगी हुई थीं। चिकोडी-मनोली-जैसे तुच्छ स्थानों को जीतना, कर वसूल करना—इन छोटे-छोटे कामों को करने के अतिरिक्त कोई बड़ा कार्य अभी तक छावनी पर नहीं पड़ा था, इसलिए छावनी में आनन्द और उत्साह छाया हुआ था।

प्रातःकाल था। माधवराव तैयार होकर डेरे के बाहर खड़े थे। खास सरकारी फ़ौज के पचास घुड़सवार खड़े थे। समीप खड़े हुए बापू से माधवराव बोले,

"अभी तक माँ साहिबा का सन्देश कैसे नहीं आया? अब तक पटवर्धन आ जाने चाहिए थे।"

और बापू बोले, "पटवर्धन की सौ वर्ष की आयु है।"

माधवराव ने सामने देखा। गोपालराव पटवर्धन चुने हुए सवारों के साथ मन्द गति से सामने से आ रहे थे। गोपालराव आये और मुजरा करके बोले,

"माँ साहिबा महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"चलिए। हम भी इसी सन्देश की राह देख रहे थे।" बापू की ओर मुड़कर वे बोले, "बापू, नारायणराव कहाँ हैं? उनको सूचना दीजिए।"

थोड़ी ही देर में नारायणराव उपस्थित हो गये। माधवराव और नारायणराव घोड़े पर सवार हो गये। घोड़े चलने लगे। पीछे-पीछे पटवर्धन, बापू खास सरकारी फ़ौज के सवारों के साथ आ रहे थे। छत्रपतिजी के महल के सामने माधवराव पेशवे घोड़े से नीचे उतरे। महल की सीढ़ियाँ नारायणराव के साथ चढ़ते-चढ़ते जिजाबाईजी का सन्देश आया—सभागृह पर न रुकते हुए माधवराव सीधे जिजाबाईजी की बैठकी के महल की ओर मुड़ गये। बैठकी के महल में जिजाबाई बैठकी पर बैठी हुई थीं। उनके पास ही घोरपडे, डफ़ळे अदब से खड़े थे। जैसे ही माधवराव भीतर गये, उन्होंने झुककर त्रिवार मुजरा किया। माधवराव ने नारायणराव की ओर देखा। उस संकेत के साथ ही नारायणराव आगे बढ़े और जिजाबाई के चरणों को स्पर्श किया। माधवराव बोले,

"ये हमारे छोटे भाई नारायणराव।"

जिजाबाई बोलीं, "बैठें।"

माधवराव और नारायणराव बैठ गये। जिजाबाई ने अपनी कठोर दृष्टि माधवराव पर स्थिर करते हुए कहा,

"क्यों? इतने ही समय में पेशवा हमारे कोल्हापुर से उकता गये? पटवर्धन कह रहे थे कि आप छावनी उठा रहे हैं!"

"स्वामी से उकताकर सेवक कहाँ जायेगा? परन्तु दक्षिण में हैदर की हलचलें बढ़ रही हैं। ऐसे शत्रु का समय रहते इन्तजाम नहीं किया तो वह खतरनाक सिद्ध होगा। इसीलिए हम जल्दी कर रहे हैं, नहीं तो आपकी आज्ञा होने तक...."

"यह बात नहीं।" जिजाबाई जल्दी से बोलीं, "हमने तो यों ही परिहास में कहा था। आप चढ़ाई के बाद लौटते हुए फिर मिलने आयेंगे ही।"

"जी!"

"तो जाते हुए फिर सातारा में रुकेंगे?" जिजाबाई ने चुभते स्वर में पूछा।

उस प्रश्न का ढंग देखते ही माधवराव सावधान हो गये। वे बोले,

"कोल्हापुर और सातारा एक ही स्वामी के दो स्थान हैं—हम यही समझते हैं।"

"हाँ। परन्तु सातारा पुणे से अधिक पास है।"

"माँ साहिबा! महाराष्ट्र के दो कुलदैवत हैं। एक शम्भूमहादेव और दूसरी भवानी। उनका हमको सदैव स्मरण रहता है और इसीलिए हम सातारा को जाते हैं, शम्भूमहादेव के दर्शन करते हैं तथा आपके दर्शनों के लिए उपस्थित होते हैं।"

माधवराव के उस उत्तर से जिजाबाई क्षण-भर कुछ कह न सकीं। वे बोलीं, "आपको हमारे राज्य की परिस्थिति मालूम है। सातारकर हमसे कितना द्वेष करते हैं, यह भी आप जानते हैं। आप सातारकर की जो सहायता कर रहे हैं, उसके लिए हमें कुछ नहीं कहना है; परन्तु कई बार उसको देखकर हमको अपने राज्य की चिन्ता होने लगी है।"

माधवराव अविचलित चित्त से शान्तिपूर्वक बोले, "माँ साहिबा! आपके मन में कौन-सी शंकाएँ आती हैं, यह हम जानते हैं; क्यों आती हैं, यह भी जानते हैं। हम यही कहना चाहते हैं कि पहले जो कुछ हुआ है, उसको आप भूल जायें। ताराबाईजी के समय में जो घटनाएँ हुईं, उनकी जिम्मेवारी जितनी आपपर नहीं है, उतनी ही हमपर भी नहीं है। आपकी आज्ञानुसार चावण्ड, चिकोडी और मनोली आपके अधीन करने के लिए हम वचनबद्ध हैं; परन्तु सातारा के

सम्बन्ध में आप जो कुछ कह रहे हैं, उस सम्बन्ध में हमारी भावनाएँ क्या हैं, यह प्रकट करने की अनुमति यदि आप दें तो—"

जिजाबाई हँसकर बोलीं, "कहिए न। औपचारिक वार्तालाप की अपेक्षा यदि राजनीति में खुले मन से वार्तालाप हो सके तो वह अधिक अच्छा है।"

माधवराव अकारण खाँसे। क्षण-भर उन्होंने विचार किया फिर बोले,

"माँ साहिबा! सातारा के प्रति हमारे मन में जो प्रेम है, वह आपको खटकता है, यह हम जानते हैं। हमारे मन में आपकी गद्दी के प्रति भी उतना ही आदर है। छत्रपतिजी की इस गद्दी का वह वटवृक्ष यदि लहलहाता है, विस्तृत होता है, अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त होता है, दक्षिण प्रदेश को उससे छाया मिलती है; तो उस वटवृक्ष की जटाएँ जीर्ण हैं, तना कमज़ोर है, बेडौल है, खोखला हो गया है, यह सोचकर हँसना नहीं चाहिए। जब तक वह तना खड़ा है, तभी तक जटा-शाखाओं की शोभा का मूल्य है। यदि दुर्भाग्य से वह तना ही धराशायी हो गया, तो वे जटा-शाखाएँ ही नहीं, उस वृक्ष के आश्रय में रहनेवाले हम-जैसे पक्षी भी बेघर हो जायेंगे। छत्रपति ही जब चले जायेंगे, तब महाराष्ट्र कैसे टिकेगा? उस गद्दी को सुरक्षित रखने का भार जैसे हमारे ऊपर है वैसे ही आपके भी ऊपर है।...."

स्वयं को सँभालती हुई जिजाबाई बोलीं, "हम कब इनकार करते हैं! परन्तु सभी जब हमारे विरुद्ध बोलने लगते हैं, तब भी राज्य की रक्षा की चिन्ता हमें न घेरे, यह कैसे हो सकता है?"

"सच है," माधवराव बोले, "परन्तु कह रहा हूँ, इस साहस को क्षमा करें। यह वैमनस्य किसने रखा था? ताराबाई माँ साहिबा ने ही सातारकर छत्रपतिजी को क़ैद में डाला था न? उसका कारण बता सकेंगी? दैवयोग से हम बलवत्तर और बुद्धि से सही-सलामत रहे तो अपना निभाव हो सकता है, ऐसी परिस्थिति है। कोल्हापुरकर और सातारकर इन छत्रपतियों की मसनदें आज निस्तेज हो रही हैं। इधर नागपुरकर भोंसले दोनों गादियों को समाप्त कर स्वयं छत्रपति होने के लिए निजाम से समझौता कर बैठे हैं। आपस में आपमें ही एकता नहीं होगी, तो मैं अकेला आखिर इन संकटों का सामना करूँ भी तो कैसे?"

"हमारा आपपर विश्वास है।"

"जबतक हमारी ओर से ऐसा कोई व्यवहार नहीं होता है, जिससे कि आपके विश्वास को ठेस पहुँचे, तबतक तो आप सन्देह न करें, यही प्रार्थना है।" माधवराव बोले।

"यदि ऐसा होता है तो हमें आनन्द होगा।" जिजाबाई सन्तोष से बोलीं।

"आपकी आज्ञा यदि हो तो हमारा कोई वकील आपके दरबार में रखा जाये। यदि कभी आवश्यकता पड़ी तो उसको जानकारी हमको शीघ्र ही हो सकेगी। हमारी ओर से विलम्ब न होगा...."

क्षण-भर जिजाबाई ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से माधवराव को निरखा और दूसरे ही क्षण वे बोली, "श्रीमन्त, आप पेशवा हैं। छत्रपतिजी के प्रधान। आपके दरबार में हमारा कोई वकील शोभा देगा; परन्तु आपका वकील छत्रपतिजी के दरबार में नहीं टिक सकता..."

माधवराव उठते हुए बोले, "चलता हूँ माँ साहिबा! आपके मन में दुराव हो तो हमारा आग्रह नहीं है। आधी रात आज्ञा दें। हम आपकी सेवा के लिए सदैव तत्पर हैं, यह विश्वास करें। चलते हैं हम..."

इत्रगुलाब लेकर माधवराव महल से बाहर निकले। सूर्यदेव सिर पर आ गये थे। पूरे वेग से उन्होंने छावनी तक दौड़ की। छावनी उठाने का आदेश दिया गया। छावनी में एकदम गड़बड़ मच गयी। धूप थोड़ी कम होते ही छावनी चल दी। विंचूरकर ने अपनी फ़ौज के साथ कागल को कूच किया। चिकोड़ी, मनोली और हुबली—इन जगहों को हस्तगत करने के लिए गोपालराव रवाना हुए। स्वयं पेशवे छावनी के इरादे से जत को गये। गोपालराव और विंचूरकर की प्रतीक्षा करती हुई पेशवाओं की छावनी जत पर पड़ी हुई थी। गोपालराव और विंचूरकर के आते ही वहाँ से अड्डा उखड़ा और फ़ौजें धारवाड़ की दिशा में चल दीं। पेशवाओं का विचार था कि फ़िलहाल धारवाड़ और उसके आसपास का प्रदेश जीतकर तीस-चालीस लाख कर वसूल कर लिया जाये और फिर विजयादशमी के बाद चढ़ाई की जाये।

माधवराव का लश्कर मंज़िलें तय करता हुआ आगे आ रहा था। लगभग साठ हज़ार की फ़ौज माधवराव के साथ कर्नाटक में घुसी थी। सभी सरदारों की छावनियों को नित्य के आदेश दिये जा रहे थे। माधवराव के साथ साथ सरकारी फ़ौज पन्द्रह हज़ार थी। इसके अतिरिक्त डेढ़ हज़ार गारदी और बीस तोपें थीं। अरब और मावळे सैनिकों की संख्या कई हज़ार थी। माधवराव सहायता करने आये हैं, यह पता लगते ही सावनूरकर नवाब और मुरारराव घोरपड़े अपनी फ़ौजों के साथ आकर मिल गये। हैदर का पूर्ण पराभव करके ही लौटना है—यह निश्चय माधवराव कर चुके थे।

मराठों की फ़ौज अपने ऊपर आक्रमण करने आ रही है, यह देखते ही हैदर ने भी जंगी तैयारी कर ली। मुहीम पर माधवराव का ध्यान केन्द्रित न होने

पाये, इसलिए वह जितनी रुकावटें डाल सकता था, डालने लगा। माधवराव ने सावनूर के नवाब की तरह ही सोंवे के देसाई को अभय दिया था। हैदर ने अपना सरदार मीर फ़ैजुल्ला सोंधा जीतने के लिए भेजा। हैदर की सेना ने शिवेश्वर, सदाशिवगढ़, अंकोला जीत लिया। माधवराव ने हैदर की चाल समझकर अपनी नौसेना को आदेश दिया। सयाजीराव घुलप ने तदनुसार तीन सौ पालवाले छोटे-छोटे जहाज़ लेकर होनावर किला, बन्दरगाह तथा उसके समीपवर्ती स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया। देखते-देखते उस प्रदेश में से हैदर की सत्ता उठा दी गयी और मीर फ़ैजुल्ला पीछे हटकर सावनूर पहुँचा।

माधवराव अब रुक नहीं रहे हैं—यह हैदर जान गया। धारवाड़—जो हैदर के अधिकार में था—बड़ा सुरक्षित स्थान था। उसपर समय न बरबाद करते हुए माधवराव ने हुबली पर अधिकार कर लिया और कुन्दगोल, गदग, नवलगुन्द, बिहट्टी, मुलगुन्द, जालिहाल—इन स्थानों को जीत लिया। माधवराव ने सावनूर पर अड्डा जमा दिया।

हैदर रट्टेहल्ली पर छावनी डाले बैठा था। माधवराव ने उससे भिड़ने का निश्चय किया। गोपालराव पटवर्धन को लेकर माधवराव ने रट्टेहल्ली पर आक्रमण कर दिया। आगे भेजी हुई पटवर्धन और विंचूरकर की फ़ौजों को देखकर हैदर को जोश आ गया। उस फ़ौज को नेस्तनाबूद करने की तैयारी हैदर ने की। माधवराव की भी यही अपेक्षा थी। रट्टेहल्ली का अड्डा छोड़कर उस बहाने हैदर बाहर पठार पर आयेगा और उस समय अपने चंगुल में फँस जायेगा—माधवराव की यह अटकल सही निकली। हैदर अड्डा छोड़कर बाहर आया, किन्तु जब उसने चारों ओर मराठों के सैनिक फैले हुए देखे तो चक्कर में पड़ गया। वह हिम्मत हार गया और अपनी छावनी के रास्ते चल दिया। हैदर भाग रहा है, यह देखते ही माधवराव ने उसे रोका। दायीं ओर पटवर्धन, बायीं ओर नारोशंकर, पीछे विंचूरकर और सामने स्वयं माधवराव थे। सूर्य तेजी से अस्ताचल की ओर जा रहा था। रात हो गयी तो सारी योजना बेकार हो जायेगी, इस भय से माधवराव ने हल्ला करने का आदेश दिया। खास फ़ौज के सैनिक और पटवर्धन हैदर पर टूट पड़े। पवन का वेग बढ़ता जा रहा था। देखते ही देखते उसने उग्र रूप धारण कर लिया। धूल के बादल उड़ाते हुए उसने रणभूमि पर ऊधम मचाना शुरु कर दिया। किसी को कुछ भी दिखाई नहीं देता था। सेना में भयंकर गड़बड़ी मच गयी। माधवराव चकित खड़े निसर्ग ताण्डव देख रहे थे और उनकी आँखों के सामने हैदर निसर्ग का सहारा लेकर हाथ से सटका जा रहा था। व्याकुल हृदय से माधवराव अड्डे पर लौटे।

दूसरे दिन माधवराव छावनी में घूमकर आये। रट्टेहल्ली की लड़ाई में

नुकसान ज्यादा नहीं हुआ था। परन्तु हैदर अच्छी तरह सावधान हो गया था। वह मराठों से भयभीत हो गया। रट्टेहल्ली की छावनी उठाकर वह तत्काल धनवडी की जंगल के आश्रम में चला गया। माधवराव छावनी में घूमकर अपने डेरे के सामने आये। नारायणराव वहीं थे। माधवराव के साथ-साथ उन्होंने डेरे में प्रवेश किया। माधवराव चुपचाप मंचक पर लेट गये। नारायणराव ने माधवराव की ओर देखते हुए कहा—

"दादा, हैदर की दुर्दशा हो गयी न?"

"हाँ नारायण! दैव अनुकूल होता तो आज वह बचता नहीं!"

"दादा, खूब मजेदार बातें कहूँगा मैं।"

"कैसी मजेदार बातें?"

"यही न। युद्ध की।"

"किसे?"

"भाभीजी से! खूब हँसेंगी वे हमारी बातें सुनकर। सब बातें बताऊँगा उनको। जब से हम पुणे से चले हैं, तब से लेकर अब तक की। हुबली का संग्राम, सावनूर का नवाब, नवाब ने जो दावत दी वह, और इस रट्टेहल्ली में हैदर की जो दुर्दशा हुई वह—इन बातों को सुनकर भाभीजी खूब खुश होंगी। और ऐसी मजेदार बातें बतायेंगे तभी हम अगली बार चढ़ाई पर जा सकेंगे...." और कहते-कहते नारायणराव ने माधवराव की ओर देखा। माधवराव की आँखें बन्द थीं। यह देखकर नारायणराव ने पुकारा,

"दादा!"

"हाँ!" कहकर माधवराव ने नारायणराव की ओर देखा।

"हमने समझा कि आप सो गये।"

"नहीं।"

"दादा—"

"कहो।"

"कब लौटना है?"

नारायणराव के उस प्रश्न से माधवराव उठकर बैठ गये। नारायणराव की ओर ध्यान से देखने लगे। नारायणराव ने अपनी दृष्टि हटा ली। माधवराव बोले,

"इधर देखिए!"

इन शब्दों में अद्भुत तेजी थी। नारायणराव घबड़ा गये। माधवराव दृष्टि उसी तरह रखते हुए बोले,

"नारायण! हमने राज्य का भार उठाया है। पर तू इस तरह घर में घूम रहा

हो, उस समय घर लौटने की बातें करना हमें शोभा नहीं देता, यह बात तुम्हें मालूम होनी चाहिए—"

"नहीं दादा !" नारायणराव जैसे-तैसे बोले, "भाभीजी को जल्दी से जल्दी कब बता पाऊँगा, यह इच्छा थी—"

इस कथन से माधवराव एकदम चुप हो गये। मंचक से उठकर वे नारायण-राव के पास आये। उनकी पीठ पर हाथ फिराते हुए वे बोले,

"चलो, सो जाओ। बहुत देर हो गयी।"

प्रातःकाल नित्य-कर्म से निवृत्त होकर माधवराव बैठे हुए थे। बापू को बुलावा भेजा था। माधवराव उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी ही देर में बापू आ गये।

"आइए बापू !" माधवराव बोले।

बापू बैठ गये। माधवराव बोले,

"बापू, कल हैदर बच निकला। आज खबर मिली है कि वह पुनः झाड़ियों में प्रवेश कर गया है। हम नहीं समझते कि अब वह आसानी से बाहर आ जायेगा..."

"फिर ?" बापू ने पूछा, "श्रीमन्त, आप कितने दिनों तक प्रतीक्षा करने-वाले हैं ? वर्षा नजदीक है। पास में साठ हज़ार फ़ौज। उसपर यह महँगाई। पशुओं की दुर्दशा। श्रीमन्त, इससे तो समझौता करके छुट्टी पा लें तो...?"

"पागल हो गये हो बापू ! घायल सर्प को यों ही छोड़कर जाने का मतलब मराठा राज्य पर स्वयं ही कुल्हाड़ी चलाना है ! हैदर के साथ आज तक क्या कम समझौते हुए हैं ? पूज्य नाना ने समझौता किया था। पिछली लड़ाई में हमने समझौता करके छोड़ा था। परन्तु दिये हुए वचन का पालन करनेवाली यह औलाद नहीं है बापू ! यह विश्वास यदि होता तो हम कब के समझौता करके छुटकारा पा गये होते।"

"तो फिर ?" बापू ने पूछा।

"हम चाहते हैं कि भयंकर लड़ाई लड़ी जाये। हैदर को नष्ट कर दिया जाये; श्री की कृपा से हम इससे तर जायेंगे। परन्तु समय आने पर यह बरसात यहाँ रहकर ही बितानी पड़ेगी। वर्षा निकट होने पर लौट जाते हैं, आज तक ऐसा होता आया है....हैदर यह जान गया है....। वर्षा होने तक वह हमपर दबाव डालेगा, इसमें सन्देह नहीं। तब तक वह हमारे सामने कदापि नहीं आयेगा—यह विश्वास है हमें। यह जंगल हमारे लिए अपरिचित है, किन्तु वह इसके चप्पे-चप्पे से परिचित है। हमको वह चाहे जैसे नचा सकता है। कल ही मुरारराव घोरपडे हमसे मिले हैं। उनसे क़रार किया है। उन-जैसे

लोग साथ होने पर हमको चिन्ता करने की जरूरत नहीं है...."

"फिर छोटे श्रीमन्त ?"

"उनको पुणे भेज देना है।"

नारायणराव अब तक चुप बैठे हुए थे। माधवराव का उपर्युक्त कथन सुनते ही एकदम बोले, "हम नहीं जायेंगे। दादाजी के साथ ही हम पुणे में पैर रखेंगे—"

माधवराव ने अभिमान से नारायणराव की ओर देखा। परन्तु दिखाने के लिए बोले, "नारायण, कदाचित् तुम्हें यहाँ अच्छा न लगे। इस बरसात में यदि यहाँ छावनी लगानी पड़ी तो एक-दो महीनों में ऊब जाओगे। फिर बड़ा संकट खड़ा हो जायेगा।"

"नहीं, बिलकुल नहीं। आप हैं ही—"

"ठीक है।" माधवराव बापू से बोले, "दोपहर को सारे सरदारों को हमारी आज्ञा बता देना। सायंसमय दरबार भरेगा यह सूचित कर देना।"

"जी।"

सायंसमय माधवराव के डेरे के पास सभी सरदार इकट्ठे होने लगे। मोरो शंकर, नरसिंह राव घायगुडे, आनन्दराव गोपाल, रास्ते, रामचन्द्र गणेश कानडे, घोरपडे, दाहाजी भापकर आदि सरदार आ गये। माधवराव बैठकी पर मसनद के सहारे बैठे थे। समीप ही नारायणराव थे, बापू थे। सभी की दृष्टि श्रीमन्त पर लगी हुई थी। श्रीमन्त की नजर बार-बार दरवाजे की ओर जा रही थी। उनकी नजर का मतलब समझकर बापू बोले,

"अभी तक कैसे नहीं आये गोपालराव ?"

"आयेंगे! बिना किसी काम के वे रुकनेवाले नहीं हैं।"

उसी समय बाहर घोड़े के हिनहिनाने की आवाज आयी। सभी की नजरें दरवाजे पर लग गयीं। थोड़ी ही देर बाद गोपालराव की इकहरे बदन की मूर्ति दरवाजे में खड़ी दिखाई दी। श्रीमन्त को झुककर मुजरा करके गोपालराव अन्दर आये। माधवराव बोले,

"आइए गोपालराव। आपके लिए ही हम अब तक रुके हुए थे। निश्चित समय पर न आना आपको शोभा नहीं देता...."

"श्रीमन्त, अपराध क्षमा हो। जैसे ही रवाना हुआ वैसे ही पुरन्दर से खबर आ गयी।"

"कोई विशेष बात ?"

"जी! आबा पुरन्दरे के विरुद्ध वहाँ के लोगों ने विद्रोह कर दिया है।"

"विद्रोह ?"

"जी हां !"

"कारण ?"

"पुरन्दरेजी ने पुराने कोलियों को कम करके नयी भरती की है। पुराने लोग क्या करें ? उनके जीवन-मरण का प्रश्न है! इसीलिए हमने पहले ही कहा था...."

"गोपालराव, जो कुछ हो गया उसको दोष देने की अपेक्षा, उसको सुधारा कैसे जायेगा, यह सोचना ठीक रहेगा।"

"जी !" गोपालराव सिर झुकाकर बोले।

"आक्रमण के लिए आये आज तीन महीने हो गये। किन्तु अभी तक अपनी इच्छा पूर्ण नहीं हुई।"

सभी सरदारों की निगाहें झुक गयीं। माधवराव सबपर दृष्टि घुमाकर बोले,

"इसमें आपका दोष नहीं है। यदि हैदर सामने आया होता तो अब तक उसका खात्मा हो गया होता। आप लोग प्राण-पण से लड़नेवाले हैं। परन्तु ईश्वर ने खैर की। दोष किसको दिया जाये ? शत्रु का विश्वास शत्रु को करना चाहिए...."

"श्रीमन्त...." रास्ते बोले, "थोड़ी-सी फ़ौज लेकर हैदर का पीछा किया जाये तो ?"

"ये ठीक कह रहे हैं श्रीमन्त ! ऐसा होने पर हैदर के मुँह में पानी भर आयेगा और वह निश्चय ही मैदान में आ जायेगा।"

सुनते हुए मुरारराव तनकर बैठ गये। उनकी आँखों में अजीब-सी चमक आ गयी। वे माधवराव की ओर देखते हुए बोले,

"श्रीमन्त ! हमारी फ़ौज हैदर का पीछा करेगी। हमको देखकर हैदर हमारी फ़ौज का अन्दाज़ लगा लेगा। वह निश्चय ही बाहर निकल आयेगा। उसको पठार पर लाने का काम हमारा···आपकी आज्ञा हो !"

"ठीक है, मुरारराव !" माधवराव बोले, "हैदर इस समय हमको नष्ट करने का विचार करता हुआ मैसूर की इन झाड़ियों में घात लगाये बैठा है, इस बात को भूल मत जाना..."

डेरे में समइयां जला दी गयीं। सभी श्रीमन्त से विदा लेकर बाहर निकले। माधवराव सरदारों के साथ बाहर आये। सरदारों के घोड़े अपनी-अपनी छावनियों की ओर दौड़ने लगे···।

"श्रीमन्त, आपकी आज्ञा मिले।"

"जाइए" बापू को विदा करते हुए माधवराव बोले।

बापू के चले जाने के बाद माधवराव मुड़े। पीछे नारायणराव को खड़े

देखकर माधवराव हँसकर बोले, "चलो, नारायणराव !"

नारायणराव को लेकर माधवराव अन्दर आये। चौकी पर रखी हुई पोथियों को उलटा-पुलटा और नारायणराव को पास बुलाकर बैठा लिया। नारायणराव पोथी पढ़ने लगे। उसी समय श्रीपति अन्दर आया और मुजरा करके उसने खलीता सामने रख दिया। माधवराव खलीता पढ़ने लगे। खलीता पढ़ते-पढ़ते उनके माथे पर सलवटें पड़ रही थीं। नारायणराव उनके बदलते चेहरे की ओर देख रहे थे। खलीता पूरा पढ़कर उन्होंने श्रीपति को आवाज लगायी।

"जी" कहता हुआ श्रीपति अन्दर आया।

"जल्दी से जल्दी बापू को बुलवाओ।"

"जी" कहकर श्रीपति मुड़ा।

थोड़ी ही देर में बापू आ गये। बापू के आते ही माधवराव बोले,

"बापू, सावनूरकरजी के यहाँ से खलीता आया है।"

"क्या लिखा है ?"

"नवाब को कष्ट हो रहा है। हैदर के सरदारों ने सावनूर को तहस-नहस करना शुरू कर दिया है।"

बापू क्षण-भर चुप रहकर बोले,

"श्रीमन्त, जबतक हैदर का इन्तजाम पूरा नहीं होगा तबतक उसका नशा नहीं उतरेगा।"

"यह तो सच है, बापू ! किन्तु जहाँ दैव ही रुकावट डाले, वहाँ हम-जैसे तुच्छ जीव क्या कर सकते हैं ? जितनी कोशिश हम कर सकते हैं, उतनी कर ही रहे हैं। नवाब की जिम्मेवारी हमने ली है। उसको निभाना हमारा कर्तव्य है। यदि उसको कष्ट पहुँचता है तो उसके जिम्मेवार हम हैं। हमेशा के लिए हम दोषी बन जायेंगे। इसलिए जल्दी से जल्दी नवाब की रक्षा का उपाय हमको करना चाहिए। हमने मुद्गल प्रान्त में जाने का विचार किया था, परन्तु यह खबर आज ही मालूम पड़ी। इसका प्रबन्ध किये बिना यहाँ से हटने का मतलब होगा—हैदर को मनमानी करने की छूट दे देना !"

"सच है, और यह उचित नहीं है।"

"हाँ, इसीलिए आपकी सलाह की आवश्यकता है।"

"श्रीमन्त, अपनी फौज में सिर्फ एक ही व्यक्ति इस योग्य है जो दावे के साथ नवाब की रक्षा कर सकता है।"

"कहो बापू, यदि हमें ठीक लगा तो हम आज्ञा देंगे।"

"गोपालराव पटवर्धन हम लोगों में से ही है। बड़े से बड़ा संकट सामने क्यों न हो, निडर होकर इस विकट जिम्मेवारी को उठानेवाला एक यही सरदार

मुझको दिखाई देता है....."

"परन्तु हमारा विचार था—"

"श्रीमन्त, अब विचार करने के लिए समय ही कहाँ है ? चाहें तो, जबतक गोपालराव वहाँ से इन्तज़ाम करके नहीं आते तबतक छावनी यहीं लगी रहने दें। परन्तु इतनी बड़ी ज़िम्मेवारी उनके बिना किसी और पर न डालें। दूसरा कोई उठा भी न सकेगा।"

"ठीक है। हम विचार करेंगे।"

दूसरे दिन प्रातःकाल माधवराव के डेरे से गोपालराव जब बाहर निकले तब उनका चेहरा आनन्द से खिला हुआ था। इतने सरदारों में यह ज़िम्मेवारी उनपर डाली गयी—इसका अभिमान उनके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

सन्ध्यासमय जब बापू आये तब उनको यह पता चला कि गोपालराव साव-नूर की ओर रवाना हो गये हैं। बापू हँसकर बोले,

"सचमुच ! गोपालराव अजीब व्यक्ति हैं ! आँखें मूँदकर चाहे जब उनपर ज़िम्मेवारी सौंप दीजिए और निश्चिन्त हो जाइए..."

"हाँ बापू, जिनका परम्परागत घराना मराठी राज्य के प्रति अत्यन्त निष्ठा-वान् है, उसी घराने के गोपालराव हैं। बहुत-से घरानों पर ईश्वर का वरदहस्त होता है।"

"अकेले ही रवाना हुए हैं ?" बापू ने पूछा।

"नहीं। साथ में नीलकण्ठराव, नारायणराव, कन्हेरराव, परशुराम भाऊ भी गये हैं।"

"परन्तु यदि इधर जाने का निश्चय किया तो ?"

"नहीं, हमने वह योजना रद्द कर दी है। पन्द्रह दिन तक गोपालराव साव-नूर की रक्षा करें—यह हमारी आज्ञा है, इसके बाद दूसरी फ़ौज रवाना होगी। इसके बाद फिर आगे की योजना।"

"परन्तु बरसात सिर पर आ गयी है और इस तरह दिन व्यर्थ बिता दिये तो अनुचित नहीं होगा क्या ?"

"उचित और अनुचित ! बापू, भूलते हैं आप यह कि कितने शक्तिशाली का गोपालराव को सामना करना है। यदि कदाचित् गोपालराव को कम-ज़्यादा सहायता की आवश्यकता पड़े तो उसकी तुरन्त व्यवस्था होनी चाहिए।"

"सच है।" बापू बोले।

माधवराव सावनूर की खबर की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु इच्छित खबर आ नहीं रही थी। हैदर का शक्तिशाली सरदार गोपालराव को

टिकने नहीं दे रहा था, अपने चंगुल में पकड़ना चाहता था। गोपालराव इसमें पार जायेंगे, यह माधवराव को विश्वास था।

माधवराव अपने डेरे में बैठे थे। नारायणराव पोथी पढ़ रहे थे। परन्तु माधवराव का मन पोथी में नहीं रम रहा था। मुहीम के दिन बढ़ते जा रहे थे। अब भी हैदर का पराभव नहीं हो रहा था। गोपालराव गाजनूर में उलझे हुए थे। बढ़ते हुए प्रबन्ध के साथ परिस्थिति विकट होती जा रही थी। यह विचार चल रहा था कि बापू अन्दर आये।

"क्या है बापू?"

"दो बहुत जरूरी खलीते आये हैं।"

"क्या खबर है?"

"उत्तर में भाऊजी का रूप धारण करनेवाला बहुरूपिया पैदा हो गया है। छत्र-चामर डुलवाता हुआ सेना लेकर वह दक्षिण की ओर चल दिया है—इस आशय का दिल्ली का खलीता आया है।"

"और दूसरा?"

"नाना का है। उन्होंने सूचना दी है कि दादा साहब नासिक में गारदार मण्डली से मिल-जुल रहे हैं। मैं नहीं जानता था कि खलीते इतने व्यक्तिगत होंगे, इसीलिए आपसे पहले खोलने का साहस कर बैठा। कृपा कर क्षमा करें।"

"भूल से यदि ऐसा हो गया हो तो हमें कोई क्रोध नहीं है। परन्तु इस गलती को दुबारा न होने दें।"

"जो आज्ञा," बापू लज्जित होकर बोले।

माधवराव उन दोनों खबरों से बेचैन हो गये। क्षण-भर विचार करके वे बोले,

"बापू, बहुरूपिया की घटना सुनकर मैं कर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ।"

"श्रीमन्त, बहुरूपिया अपना प्रभाव बढ़ा पाये उससे पहले ही उसका इन्त-ज़ाम कर देना चाहिए। बस! इसमें चिन्ता का क्या कारण है?"

"बापू! यदि वह बहुरूपिया न हो, तो इससे बढ़कर आनन्ददायी बात हमारे लिए दूसरी नहीं हो सकती; परन्तु उधर बहुरूपिया आ रहा है, इधर हम कर्नाटक में उलझे हुए हैं, यह है चिन्ता का कारण! बहुरूपिया की सविस्तर जानकारी हमें मिले—यह व्यवस्था कीजिए। इस आशय के खलीते होलकर और शिन्दों को भेज दीजिए। बहुरूपिया की अच्छी तरह जाँच कर लो और यदि वे भाऊ हों तो सम्मानसहित उनको ले आइए। यदि ऐसा न हो तो उसको

हथकड़ी-बेड़ी लगाकर कारागार में रखिए—यह उन्हें सूचित करिए। बहुरुपिया की ओर से लापरवाही न बरतें।"

"जो आज्ञा!"

"काकाजी के सम्बन्ध में मैं स्वयं पत्र लिख रहा हूँ।"

"जो आज्ञा।"

"बापू, गोपालराव की कोई खबर नहीं मिली। संकट आते हैं तब चारों ओर से आते हैं। हमारा मन अनेक कुशंकाओं से भर गया है।"

उसी समय महादेव शिवराम अन्दर आये। उन्होंने माधवराव के हाथ में खलीता दिया। माधवराव ने पूछा, "क्या है?"

"गोपालराव का जासूस आया है। वह कहता है—हैदर का पराभव कर गोपालराव विजयी हुए हैं।"

"सच?" माधवराव आनन्द से बोले।

यह सुनकर बापू का चेहरा फ़क़ पड़ गया। गोपालराव को सावनूरकर की रक्षा के लिए भेजने में बापू की चाल थी। यदि हैदर अकेले पड़े हुए गोपालराव का पराभव कर देता, तो गोपालराव का माधवराव पर जो प्रभाव था, वह खत्म हो जाता और वे माधवराव [illegible] मन से निकल जाते—यह बापू [illegible] रहे थे। माधवराव खलीता पढ़ रहे [illegible] जो सन्तोष मिल रहा था वह उनके चेहरे पर प्रकट हो रहा था। [illegible] ए वे बोले, "बापू, ज़ोर से पढ़ो।"

[illegible]

सवार हमारे गये। पौन कोस पर जाकर खड़े हो गये। उन्होंने खींच-कर ले जाने का बहुत प्रयत्न किया; परन्तु इन्होंने जगह न छोड़ी। हमारी फ़ौज नियमानुसार जब नाला पार करने लगे तब हम लोगों को जीवित पकड़ लिया जाये—यह उसकी योजना थी। परन्तु हमको पहले ही पता चल गया। हम इस ओर झांके तक नहीं। हैदर ने दिन-भर प्रतीक्षा की। उसकी योजना सफल नहीं हुई। इसलिए हमपर उसका भयंकर क्रोध। उस दिन हैदर किसी से नहीं बोला। दूसरे दिन तीसरे प्रहर तक बंकापुरी में ही था। असली फ़ौज आ गयी। इसलिए सावनूरकरजी को परेशानी नहीं होगी...।"

सावनूर के नवाब को हमने जो वचन दिया था, उसका पालन हो गया, यह सोचकर माधवराव आनन्दित हुए। हैदर-जैसे शक्तिशाली शत्रु के दांवपेचों को पहचानकर उसको पानी पिलानेवाले सरदार अपने पास हैं—यह सोचकर उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। जब बापू आये तब माधवराव बोले,

"बापू, अब आगे की योजना बना लेनी चाहिए और खर्च का भी कुछ न कुछ इन्तज़ाम करना चाहिए।"

"हाँ, करना ही चाहिए।"

"गोपालराव को सीधे धारवाड़ की ओर ही बुलवा लें...."

"और सावनूर की रक्षा के लिए?"

"रास्ते चले जायेंगे।"

"यह ठीक है।" बापू बोले।

फ़ौज को धारवाड़ की दिशा में कूच करने का आदेश मिला। एक-एक छावनी उठने लगी। पैदलों की टुकड़ियाँ आगे रवाना हो गयीं। पेशवाओं की छावनी उठी। निशान धारण किये हुए हाथी आगे चलने लगा। नारायणराव और माधवराव अम्बारी में बैठे थे। नारायणराव अम्बारी से उस प्रचण्ड फ़ौज को देख रहे थे। उनको बड़ा आनन्द आ रहा था।

"दादा, आज कहाँ मुकाम?"

"पन्द्रह-बीस मील पर।"

"फिर?"

"धारवाड़ की ओर।"

नारायणराव के प्रश्न का उत्तर देते हुए माधवराव आसपास के प्रदेश का निरीक्षण कर रहे थे। दूर तक दृष्टिपथ में आनेवाला समतल प्रदेश माधवराव तन्मय होकर देख रहे थे। बीच-बीच में बबूल के वृक्ष दिखाई दे रहे थे। उनके पीले-पीले फूल तीखी धूप में शोभित हो रहे थे। आसपास के सूने वीरान टीलों

हथकड़ी-बेड़ी लगाकर कारागार में रखिए—यह उन्हें सूचित करिए। बहुरुपिया की ओर से लापरवाही न बरतें।"

"जो आज्ञा !"

"काकाजी के सम्बन्ध में मैं स्वयं पत्र लिख रहा हूँ।"

"जो आज्ञा।"

"बापू, गोपालराव की कोई खबर नहीं मिली। संकट आते हैं तब चारों ओर से आते हैं। हमारा मन अनेक कुशंकाओं से भर गया है।"

उसी समय महादेव शिवराम अन्दर आये। उन्होंने माधवराव के हाथ में खलीता दिया। माधवराव ने पूछा, "क्या है ?"

"गोपालराव का जासूस आया है। वह कहता है—हैदर का पराभव कर गोपालराव विजयी हुए हैं।"

"सच ?" माधवराव आनन्द से बोले।

यह सुनकर बापू का चेहरा फ़क़ पड़ गया। गोपालराव को सावनूरकर की रक्षा के लिए भेजने में बापू की चाल थी। यदि हैदर अकेले पड़े हुए गोपालराव का पराभव कर देता, तो गोपालराव का माधवराव पर जो प्रभाव था, वह खत्म हो जाता और वे माधवराव के मन से निकल जाते—यह बापू सोच रहे थे। माधवराव खलीता पढ़ रहे थे। उनको जो सन्तोष मिल रहा था वह उनके चेहरे पर प्रकट हो रहा था। बापू के हाथ में खलीता देते हुए वे बोले, "बापू, ज़ोर से पढ़ो।"

बापू पढ़ने लगे—

> "...हमने इकट्ठे होकर चौकी पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। बड़ी सफलता मिली। समीप था बंकापुर-जैसा क़िला। सामान भारी। फिर भी हम उसकी बिलकुल परवाह न करते हुए चढ़ाई कर बैठे। उसमें उसकी हार हुई। ईश्वर ने हमको सफलता दी। उसकी ओर के पांच-सात घोड़े मारे गये। तीन-चार आदमी काम आये। हमारा एक घोड़ा मारा गया। दस-पन्द्रह आदमी घायल। हमारे घुड़सवार नित्य आसपास घूमने लगे, तब उसने हैदर नायक को दुःखड़ा लिख भेजा। फिर वह कूच करके हनगल को आया। यह खबर हमें मिली। हमने सौ-डेढ़ सौ सवार नाला पार कराकर बाहर भेजे। उनको सावधान किया कि तुम लोग उनके गले मत पड़ना। नाला पार कर मत जाना। हम प्रातःकाल ही भोजन से निपटकर तैयार हो गये। लोगों की जगह-जगह चौकियां स्थापित कर दीं। 'फ़तहहैदर' तोप बुरज पर है। वहां जाकर बैठ गये।

सवार हमारे मरे। पीछे कोस पर जाकर खड़े हो गये। उन्होंने खींच-कर ले जाने का बहुत प्रयत्न किया; परन्तु इन्होंने जगह न छोड़ी। हमारी फौज नियमानुसार जब नाला पार करने लगे तब हम लोगों को जीवित पकड़ लिया जाये—यह उसकी योजना थी। परन्तु हमको पहले ही पता चल गया। हम इस ओर नाले तक नहीं। हैदर ने दिन-भर प्रतीक्षा की। उसकी योजना सफल नहीं हुई। इसलिए हमपर उसका भयंकर क्रोध। उस दिन हैदर दिनों से नहीं सोया। दूसरे दिन तीसरे प्रहर तक बंगलुरी में ही था। अपनी फौज आ गयी। इसलिए सावनूरकरजी को परेशानी नहीं होगी...।"

सावनूर के नवाब को हमने जो वचन दिया था, उसका पालन हो गया, यह सोचकर माधवराव आनन्दित हुए। हैदर-जैसे शक्तिशाली शत्रु के दाँतों को उखाड़कर उसको पानी पिलानेवाले सरदार अपने पास हैं—यह सोचकर उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। जब बापू आये तब माधवराव बोले,

"बापू, अब आगे की योजना बना लेनी चाहिए और खर्च का भी कुछ न कुछ इन्तजाम करना चाहिए।"

"हाँ, करना ही चाहिए।"

"दौलतराव को सीधे धारवाड़ की ओर ही भेजना मैं...."

"और सावनूर की रक्षा के लिए?"

"हम तो चले आयेंगे!"

"यह ठीक है।" बापू बोले।

फौज को धारवाड़ की दिशा से कूच करने का आदेश मिला। एक-एक करके डेरे उठने लगे। पैदलों की टुकड़ियाँ आगे रवाना हो गयीं। [illegible] पीछे चलीं। निशान धारण किये हुए हाथी आगे चलने लगे। नारायणराव और माधवराव अम्बारी में बैठे थे। नारायणराव अम्बारी से इस प्रकार फौज को देख रहे थे। उनको बड़ा आनन्द आ रहा था।

"दादा, अब कहाँ मुकाम?"

"[illegible] पर।"

"फिर?"

"धारवाड़ की ओर।"

नारायणराव के प्रश्न का उत्तर देते हुए माधवराव [illegible] के [illegible] देख रहे थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

को देखते हुए माधवराव नारायणराव के कथन को हुंकार दे रहे थे। अचानक नारायणराव बोले—

"वह क्या ?"

"हिरनों का झुण्ड।"

"कितना बड़ा है, नहीं ?"

"इससे भी बड़े-बड़े होते हैं।"

"कितने दौड़ते हैं, हैं न ?"

"हाँ !" माधवराव छलांगें भरते हुए झुण्ड की ओर देखते हुए बोले। वह झुण्ड पास की पहाड़ी की ओर भागा जा रहा था। देखते ही देखते वह झुण्ड अदृश्य हो गया। परन्तु नारायणराव बहुत देर तक जिस दिशा में झुण्ड गया था, उस ओर देखते रहे...।

माधवराव के मन में विचारों का तूफ़ान मचल रहा था। मुकाम का स्थान आने पर भी उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। व्याकुल हृदय से वे देख रहे थे। छोटे-छोटे खेमे खड़े किये जा रहे थे। सैनिकों में शोरगुल हो रहा था। आसपास का प्रदेश धूल से भर गया था। माधवराव ने समीप खड़े हुए बापू से कहा,

"बापू, क्या किया जाये, कुछ समझ में नहीं आता..."

"क्या ?" बापू कुछ न समझकर बोले।

"नासिक से आज ही खबर आयी है कि काका हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं।"

बापू कुछ नहीं बोले। वे माधवराव की ओर देखते रहे।

"बापू, हमारा विचार है कि काका को यहाँ लड़ाई पर बुलवा लें।"

"जी, बुलवाने में क्या नुक़सान है ?"

"परन्तु यदि वे आये नहीं तो ?"

"क्यों नहीं आयेंगे ? उनके साथ ज़रा सँभलकर बरताव किया जायेगा तो ज़रूर आयेंगे।"

"यह सच है, बापू। राज्य अभी हाल में ही समृद्धि की ओर बढ़ना शुरू हुआ है...."

"श्रीमन्त, दादासाहब निजाम से दोस्ती करें और राज्य प्राप्त करने के लिए दिन-रात एक करें....इससे तो अच्छा है कि घर की लड़ाई घर में ही मिटा ली जाये। राज्य दादासाहब के पास रहे या आपके पास रहे—एक ही बात नहीं है क्या ? आज दादासाहब निजाम से दोस्ती करेंगे। कल हैदर से करेंगे और इस तरह समस्त मराठा राज्य परकीयों के हाथ में चला जायेगा। इससे तो पहले से

हाँ इस लड़के को रोक लेना अच्छा। दादासाहब बात पर गुस्सा हो गये होंगे। उनका स्वभाव ही ऐसा है। पुरन्दर के विषय में दादासाहब बड़ी गलतफहमी में पड़ गये। बात पर दोषारोपण किया...."

"हाँ! जब दैव ही विपरीत हो तब काका नहीं बोलेंगे तो कौन बोलेगा?" माधवराव ने दीर्घ श्वास छोड़ा।

उनके मन में विचारों की भीड़ लगी हुई थी। अनेक प्रश्न उनको परेशान कर रहे थे। काकाजी के कर्मों का भविष्य उनकी आँखों के आगे स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दादासाहब को यदि और कुछ समय तक ऐसे ही [illegible] रहने दिया तो जिस निज़ाम को राक्षस-भुवन पर पानी पिलाया था, वही निज़ाम तलवार उठाने का साहस कर दिखायेगा, इसमें सन्देह नहीं था। दादासाहब को आँखों के सामने रखना आवश्यक था....परन्तु एक सन्देह बार-बार सिर उठा रहा था....कौन जाने, दादाजी ने हृदय से मित्रता कर ली हो?...माधवराव का सिर भिन्ना रहा था। विक्षिप्त दृष्टि से वे फ़ौज की ओर देख रहे थे....उसी समय नारायणराव वहाँ आये और माधवराव से बोले,

"दादा, एक बात पूछूँ?"

"हाँ, हाँ, पूछो न!"

"महाभारत की सेना इतनी थी?"

"अजी भाई साहब, इससे तो कई गुनी बड़ी थी..."

"इससे भी बड़ी?" नारायणराव की आँखें फटी रह गयीं, "तो फिर अभिमन्यु अकेला घुसा था उसमें?"

"हाँ!"

"किसी की भी मदद लिये बिना?"

"कुछ समय तक उसके काका ने मदद की थी।"

"फिर?"

"शत्रुओं ने चक्रव्यूह के रास्ते रोक लिये। काका को रोक लिया उन्होंने।"

"काका आ गये होते तो—"

"तो?" माधवराव असमंजस में पड़कर बोले।

"तो निश्चय ही अभिमन्यु की जीत हो जाती। नहीं?"

माधवराव को कोई उत्तर नहीं सूझा। वे नारायणराव की ओर केवल देखते रहे। बहुत देर तक माधवराव ने कोई उत्तर नहीं दिया तो नारायणराव ने पुनः पूछा, "दादा, बताइए न। हो जाती न?"

माधवराव बोले, "हाँ! हो जाती नारायण! हो जाती!!" और यह कहकर माधवराव ने डेरे में प्रवेश किया...

वर्धा नदी के इस ओर मराठों की छावनी लगी हुई थी। नदी के उस ओर हैदर की छावनी थी। हैदर की पूर्ण पराजय करने का निश्चय करके माधवराव ने उसका पीछा किया था। कितने ही संकट आयें, किन्तु उसका मुक़ाबला करना ही है, यह दृढ़ निश्चय माधवराव कर चुके थे। पूरी बरसात उन्होंने हैदर को पीछे हटाने में बिता दी थी। हैदर ने सोचा होगा कि वर्षा निकट आने पर मराठे लौट जायेंगे, किन्तु इस विचार को माधवराव ने जोर का धक्का दिया। हावेरी का अड्डा हस्तगत करते समय अनेक प्राणों का मोल चुकाना पड़ा था। धारवाड़ का क़िला जीतकर हैदर की शक्ति क्षीण कर दी थी। तुंगभद्रा के इस ओर हैदर ने जो अड्डे अपने अधिकार में कर लिये थे, उनको जीता। अब प्रश्न शेष रह गया था केवल बंकापुर का। मिश्रकोटि पर जब मुकाम था तब हैदर ने समझौता वार्ता करनी चाही थी; परन्तु श्रीमन्त ने वह स्वीकार नहीं किया था। माधवराव का विचार था कि पहले बंकापुर को जीत लिया जाये उसके बाद ही आगे की योजना बनायी जाये; परन्तु शिन्दे और मुरारराव ने सुझाव दिया कि एकदम हैदर पर प्रहार कर देना चाहिए। हैदर का अड्डा अनवडी में था। हैदर का अनुसरण करती हुई मराठा फ़ौज अनवडी को आयी और वर्धा नदी से लगभग डेढ़ कोस की दूरी पर छावनी लगा दी।

माधवराव एक ऊँची ढलान पर बैठकर सामने देख रहे थे। आँखों के सामने दिखाई देनेवाले घोर घने जंगल की ओर देखते हुए माधवराव के मन में विचारों का वात्याचक्र चल रहा था। नदी के चमकते हुए जल की पट्टी उनकी आँखों से ओझल नहीं हो रही थी।

यह सब देखते हुए माधवराव को झुकते हुए सूर्य का ध्यान नहीं रहा था।

"श्रीमन्त ऽऽ!"

सावधान होकर माधवराव ने पीछे देखा। बापू खड़े थे।

"लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"चलिए!" कहते हुए उच्छ्वास छोड़कर माधवराव उठे और बापू के साथ चलने लगे। पटवर्धन, विंचूरकर, नारो शंकर, रास्ते, भोंसले—सब डेरे के बाहर खड़े थे। माधवराव के आते ही सबने उनको मुजरा किया। श्रीपति माधवराव का घोड़ा ले आया। माधवराव घोड़े पर सवार हो गये। सभी सरदार अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गये। देखते ही देखते सभी घोड़े वर्धानदी की ओर वेग से दौड़ने लगे। सारी फ़ौज विस्मय से देख रही थी। कोई कुछ भी नहीं समझ पा रहा था।

एक टीले की जड़ में आकर पटवर्धन तत्क्षण घोड़े से नीचे उतरे। शेष सरदार भी ठहर गये। जैसे ही माधवराव घोड़े से नीचे उतरे, वैसे ही अन्य सरदार भी टीले पर चढ़ने लगे। टीले पर पहुँचकर माधवराव ने सामने दृष्टि डाली। हैदर की छावनी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। छावनी पर से नजर हटाकर बापू की ओर देखते हुए माधवराव बोले,

"बापू, यह जगह कैसी ?"

"जी हाँ!" बापू बोले, "हैदर-जैसे शत्रु से लड़ने के लिए यही ऐसी जगह है जहाँ से उचित मार की जा सकती है। परन्तु साथ ही श्रीमन्त यह भी ध्यान रखें कि...."

"कहिए!"

"हैदर की फ़ौज घने जंगल के मुँह पर है।"

"हाँ। यह हमारी दृष्टि से छिपा नहीं है। हमारा यह विचार है कि यहीं से मार शुरू करने से पहले हजार-डेढ़ हजार फ़ौज लेकर किसी को जंगल के मुख पर तैनात कर दिया जाये और हैदर को घेर लिया जाये।"

"श्रीमन्त, किसी को भी आज्ञा दीजिए।" रास्ते बोले।

"चलिए" माधवराव हँसकर बोले, "कल प्रातःकाल हैदर की फ़ौज की आँख तोपों की आवाज से ही खुलनी चाहिए।"

सब हँस पड़े और लौट पड़े।

सन्ध्यासमय छावनी में बड़ा कोलाहल मच गया। टीले पर तोपें चढ़ाई जा रही थीं। दूर, दूर का निशाना लगानेवाली, तोपों को देखते हुए माधवराव सन्तोष की साँस ले रहे थे। मार के लिए उत्तम जगह तलाश करने में सरदार लोग लगे हुए थे। मुरारराव, पटवर्धन, विंचूरकर—ये अग्रगामी सरदार अपने श्रेष्ठ सवारों का चयन करने लगे। रात तक सभी तैयारी पूर्ण हो गयी। उस रात माधवराव बड़ी देर तक जगते रहे थे।

सुबह के अन्धेरे में सभी हर तरह से तैयार खड़े थे। मुरारराव और रास्ते अपने चुने हुए सवारों को लेकर झाड़ियों में घुस गये और हैदर की ओर बढ़ने लगे।

टीले पर माधवराव घूम रहे थे। सूचना दे रहे थे। सुबह का अन्धेरा दूर हो रहा था। पूर्व दिशा प्रकाशित हो गयी। हैदर की छावनी धुँधली दिखाई पड़ने लगी। देखते ही देखते पूर्व क्षितिज पर लालिमा छा गयी। उसके बाद ही तीर-जैसी किरणें धरती पर अवतरित हुईं और माधवराव ने इ—— किया।

तोप दाग दी गयी। कानों के परदे फाड़ देनेवाली आवाज गूँज उ

उसकी प्रतिध्वनि पास के जंगल से उठी। उसके बाद ही अन्य तोपों का दागना शुरू हो गया। हैदर की छावनी में ज़ोर की भगदड़ मच गयी। सब अपनी-अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगे। जिसको देखो वही जंगल की ओर भागा जा रहा था। पीछे से गरजती हुई तोपों के गोले उनका पीछा कर रहे थे। स्वयं हैदर अपने चुने हुए सवारों को पीछे लेकर चार-पाँच तोपों के साथ जंगल में घुसने लगा और थोड़ी ही देर में मराठों के सामने प्रकट हो गया। उसकी तोपों ने मुरारराव पर गोले दागना शुरू कर दिया। अचानक सामने से हैदर की तोपों की मार से मुरारराव के सैनिक बिदक गये और पीछे हटने लगे। मुरारराव उनको धैर्य बँधा रहे थे। प्रयत्न की पराकाष्ठा कर रहे थे.... परन्तु फ़ौज की छाती फूट चुकी थी। पीछे पड़ा हुआ पैर आगे नहीं बढ़ रहा था और उसी समय विंचूरकर और पटवर्धन काल की तरह दौड़ते हुए वहाँ आ गये...।

जैसे ही माधवराव को यह खबर लगी, उन्होंने सर्र से म्यान से तलवार निकाल ली। ध्वजधारी हाथी आगे बढ़ा। माधवराव ने घोड़े को एड़ लगायी। और यह देखते ही पीछे के सवार आवेश से आगे बढ़े। ह ऽ र ऽ ह ऽ र ऽ म ऽ हा ऽ दे ऽ व ऽ ऽ की घोषणाओं की प्रतिध्वनियाँ सारे जंगल में गूँज उठीं। हैदर की तोपों की परवाह न करते हुए माधवराव ने हैदर के गारदियों को पकड़ा और वे व्यूह में घुस गये। तलवारों की खनखनाहट और सैनिकों की चीख-पुकारों से सारा वातावरण भर गया...

सूर्य बहुत ऊपर आ गया था। तलवारों की खनखनाहट रुक गयी थी। शेष बच रहा था केवल घायलों का कराहना। सारे सरदार एक के बाद एक आ रहे थे। सबसे अन्त में मुरारराव अपना घोड़ा दौड़ाते हुए आये। झुककर उन्होंने श्रीमन्त को मुजरा किया और वे बोले,

"श्रीमन्त! यदि थोड़ा-सा भी मैदान होता तो हैदर आज बचकर न जाने पाता।"

माधवराव कुछ कहने जा रहे थे कि उनकी दृष्टि मुरारराव के कन्धे पर पड़ी। उनका कन्धा रक्तरंजित हो रहा था। उससे रक्त टपक रहा था। माधवराव मेरे कन्धे की ओर देख रहे हैं, यह ध्यान आते ही मुरारराव ने अपने कन्ध की ओर देखा और हँसकर बोले,

"श्रीमन्त, यह निशानी है। आज हैदर भाग गया—यह पीड़ा इससे भी अधिक भयंकर है। श्रीमन्त इस ओर ध्यान न दें...."

माधवराव ने अपनी कमर से रेशमी फेंटा खोला और मुरारराव के विरोध को न मानते हुए उनके रक्तरंजित कन्धे पर उसको लपेटते हुए वे बोले,

"मुरारराव, इसका दुःख मुझको नहीं हो रहा है। आप-जैसे निष्ठावान् सरदार जबतक हमारे पास हैं तबतक एक क्या, ऐसे दस हैदरों का मुकाबला कर सकते हैं। वैद्यराज से शीघ्र ही औषध-पट्टी बँधवा लीजिए...आप विश्राम कीजिए...।"

दिन-भर घायल लोगों का उपचार होता रहा। जो लूट मिली थी वह इकट्ठी की जा रही थी। सन्ध्यासमय ठण्डी हवा बहने लगी थी। थकी हुई फ़ौज डेरे-तम्बुओं में विश्राम कर रही थी। माधवराव अपने डेरे में बैठे हुए विचार कर रहे थे। पिछले कई वर्षों से हैदर को ऐसा आघात नहीं लगा था। वह उनके रास्ते में नहीं आयेगा, यह बात वे जानते थे। परन्तु साथ ही, आज नहीं तो कल, वह फिर उन्हीं बातों को दुहरायेगा इसमें सन्देह नहीं था। आगे की योजना क्या बनायी जाये, यह सोचने में माधवराव तल्लीन थे। उसी समय बापू अन्दर आये।

"आइए बापू।"

बापू बैठ गये। माधवराव बोले,

"बापू, क़लम लो।"

"जी" कहकर बापू ने क़लम और दावात उठा ली। दावात में क़लम डुबोते हुए पूछा,

"पूजनीया माताजी को लिखना है?"

"नहीं।" माधवराव ने शान्तिपूर्वक कहा।

"शास्त्रीजी को?"

"निज़ाम को।" माधवराव तनकर बैठते हुए बोले और बापू माधवराव की ओर ही देखते रहे। माधवराव बोले,

"बापू, निज़ाम को आज की घटनाओं की जानकारी दो..."

"जो आज्ञा" कहते हुए बापू सिर झुकाकर लिखने लगे।

प्रतिदिन रात में देर तक माधवराव के डेरे में सारे सरदार सलाह-मशविरे में डूबे हुए दिखाई देते थे। आज तक अनेक बार हैदर मराठों को परेशान कर चुका था। चढ़ाई के लिए बाहर निकले हुए एक वर्ष होने जा रहा था। फ़ौज घर जाने के लिए उत्सुक थी। ज़्यादा समय तक खींचतान करना व्यर्थ है—यह सभी समझ रहे थे। परन्तु हैदर को चंगुल में कैसे पकड़ा जाये, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। सलाह-मशविरे में रात की रात निकल जाती थी। दिन भी पूरे नहीं पड़ते थे, किन्तु कोई फल नहीं निकल रहा था। माधवराव के

उसकी प्रतिध्वनि पास के जंगल से उठी। उसके बाद ही अन्य तोपों का दागना शुरू हो गया। हैदर की छावनी में जोर की भगदड़ मच गयी। सब अपनी-अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगे। जिसको देखो वही जंगल की ओर भागा जा रहा था। पीछे से गरजती हुई तोपों के गोले उनका पीछा कर रहे थे। स्वयं हैदर अपने चुने हुए सवारों को पीछे लेकर चार-पांच तोपों के साथ जंगल में घुसने लगा और थोड़ी ही देर में मराठों के सामने प्रकट हो गया। उसकी तोपों ने मुरारराव पर गोले दागना शुरू कर दिया। अचानक सामने से हैदर की तोपों की मार से मुरारराव के सैनिक बिदक गये और पीछे हटने लगे। मुरारराव उनको धैर्य बँधा रहे थे। प्रयत्न की पराकाष्ठा कर रहे थे.... परन्तु फ़ौज की छाती फूट चुकी थी। पीछे पड़ा हुआ पैर आगे नहीं बढ़ रहा था और उसी समय विंचूरकर और पटवर्धन काल की तरह दौड़ते हुए वहाँ आ गये...।

जैसे ही माधवराव को यह खबर लगी, उन्होंने सर्र से म्यान से तलवार निकाल ली। ध्वजधारी हाथी आगे बढ़ा। माधवराव ने घोड़े को एड़ लगायी। और यह देखते ही पीछे के सवार आवेश से आगे बढ़े। ह ऽ र ऽ ह ऽ र ऽ म ऽ हा ऽ दे ऽ व ऽ ऽ की घोषणाओं की प्रतिध्वनियाँ सारे जंगल में गूँज उठीं। हैदर की तोपों की परवाह न करते हुए माधवराव ने हैदर के गारदियों को पकड़ा और वे व्यूह में घुस गये। तलवारों की खनखनाहट और सैनिकों की चीख-पुकारों से सारा वातावरण भर गया...

सूर्य बहुत ऊपर आ गया था। तलवारों की खनखनाहट रुक गयी थी। शेष बच रहा था केवल घायलों का कराहना। सारे सरदार एक के बाद एक आ रहे थे। सबसे अन्त में मुरारराव अपना घोड़ा दौड़ाते हुए आये। झुककर उन्होंने श्रीमन्त को मुजरा किया और वे बोले,

"श्रीमन्त! यदि थोड़ा-सा भी मैदान होता तो हैदर आज बचकर न जाने पाता।"

माधवराव कुछ कहने जा रहे थे कि उनकी दृष्टि मुरारराव के कन्धे पर पड़ी। उनका कन्धा रक्तरंजित हो रहा था। उससे रक्त टपक रहा था। माधवराव मेरे कन्धे की ओर देख रहे हैं, यह ध्यान आते ही मुरारराव ने अपने कन्धे की ओर देखा और हँसकर बोले,

"श्रीमन्त, यह निशानी है। आज हैदर भाग गया—यह पीड़ा इससे भी अधिक भयंकर है। श्रीमन्त इस ओर ध्यान न दें...."

माधवराव ने अपनी कमर से रेशमी फेंटा खोला और मुरारराव के विरोध को न मानते हुए उनके रक्तरंजित कन्धे पर उसको लपेटते हुए वे बोले,

"मुरारराव, इसका दुःख मुझको नहीं हो रहा है। आप-जैसे निष्ठावान् सरदार जबतक हमारे पास हैं तबतक एक क्या, ऐसे दस हैदरों का मुकाबला कर सकते हैं। वैद्यराज से शीघ्र ही औषध-पट्टी बँधवा लीजिए...आप विश्राम कीजिए...।"

दिन-भर घायल लोगों का उपचार होता रहा। जो लूट मिली थी वह इकट्ठी की जा रही थी। सन्ध्यासमय ठण्डी हवा बहने लगी थी। थकी हुई फ़ौज डेरे-तम्बुओं में विश्राम कर रही थी। माधवराव अपने डेरे में बैठे हुए विचार कर रहे थे। पिछले कई वर्षों से हैदर को ऐसा आघात नहीं लगा था। वह उनके रास्ते में नहीं आयेगा, यह बात वे जानते थे। परन्तु साथ ही, आज नहीं तो कल, वह फिर उन्हीं बातों को दुहरायेगा इसमें सन्देह नहीं था। आगे की योजना क्या बनायी जाये, यह सोचने में माधवराव तल्लीन थे। उसी समय बापू अन्दर आये।

"आइए बापू।"

बापू बैठ गये। माधवराव बोले,

"बापू, क़लम लो।"

"जी" कहकर बापू ने क़लम और दावात उठा ली। दावात में क़लम डुबोते हुए पूछा,

"पूजनीया माताजी को लिखना है?"

"नहीं।" माधवराव ने शान्तिपूर्वक कहा।

"शास्त्रीजी को?"

"निज़ाम को।" माधवराव तनकर बैठते हुए बोले और बापू माधवराव की ओर ही देखते रहे। माधवराव बोले,

"बापू, निज़ाम को आज की घटनाओं की जानकारी दो..."

"जो आज्ञा" कहते हुए बापू सिर झुकाकर लिखने लगे।

प्रतिदिन रात में देर तक माधवराव के डेरे में सारे सरदार सलाह-मशविरे में डूबे हुए दिखाई देते थे। आज तक अनेक बार हैदर मराठों को परेशान कर चुका था। चढ़ाई के लिए बाहर निकले हुए एक वर्ष होने जा रहा था। फ़ौज घर जाने के लिए उत्सुक थी। ज़्यादा समय तक खींचतान करना व्यर्थ है—यह सभी समझ रहे थे। परन्तु हैदर को चंगुल में कैसे पकड़ा जाये, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। सलाह-मशविरे में रात की रात निकल जाती थी। दिन भी पूरे नहीं पड़ते थे, किन्तु कोई फल नहीं निकल रहा था। माधवराव के

विचारों की सीमा नहीं थी। रात-दिन उनको आँखों के आगे हैदर दिखाई दे रहा था। उनकी नींद हराम हो चुकी थी। कई बार उनका ज्वर बढ़ जाता था; परन्तु उस ओर ध्यान देने की उनको फ़ुरसत नहीं थी। नारायणराव को हर समय शनिवार-भवन दिखाई दे रहा था। परन्तु माधवराव के सम्मुख कुछ कहने का साहस नहीं होता था।

रात बहुत हो चुकी थी। माधवराव के डेरे में समई जल रही थी। दरवाज़े में श्रीपति अलसाया खड़ा था। अन्दर की अस्पष्ट बातें उसे सुनाई दे रही थीं। वह बेचैन हो गया था।

"श्रीमन्त !" पटवर्धन बोले, "हैदर को बिदनूर से आनेवाली रसद यदि बन्द कर दी तो ?"

माधवराव ने पटवर्धन की ओर देखा। तभी मुरारराव बोले,

"परन्तु यह सरल नहीं है, पटवर्धन ! चारों ओर कितना बड़ा जंगल फैला है। कहाँ से और कैसे रास्ते रोके जायें, यह भी समझ में नहीं आयेगा।"

"क्यों नहीं होगा ? इसके लिए थोड़े-बहुत कष्ट उठाने पड़ेंगे। कदाचित् प्राणों की बाज़ी लगानी पड़े।"

"हाँ, लगानी पड़ेगी।" विंचूरकर बोले, "सब कुछ हो जायेगा, किन्तु बिल्ली के गले में घण्टी कौन बांधेगा ?"

"खामोश !" माधवराव चिल्लाये, "आप क्या कह रहे हैं, यह सोच-समझकर बोलिए। प्राणों को हथेली पर रखकर आये हुए ये लोग पीछे लौटने के लिए नहीं आये हैं।"

"क्षमा करें !" विंचूरकर जैसे-तैसे सिर झुकाकर बोले।

"भावना के आवेग में ग़लती सबसे ही हो जाती है, किन्तु इससे बहुत-से लोगों के मनों को चोट पहुँचती है। ये घाव हमेशा के लिए रह जाते हैं।"

"नहीं, मैं यह नहीं कहना चाहता था।" विंचूरकर बोले।

क्षण-भर शान्ति छायी रही। क्या कहा जाये, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। सब एक दूसरे के मुँह की ओर देख रहे थे। माधवराव सबपर दृष्टि घुमा रहे थे। वे बोले,

"पटवर्धन, आपने जो कल्पना रखी है, वह विचारने योग्य है। बिल के मुख पर प्रहार करने से बिल में घुसे हुए सर्प का कुछ न बिगड़ेगा। बल्कि प्रहार करनेवाले की शक्ति क्षीण होगी, साँप को बाहर निकाले बिना चारा नहीं है। उसको निकालना चाहिए। कष्ट होगा, परन्तु उसकी परवाह नहीं। परन्तु यदि वह एक बार चंगुल में आ गया तो सारे श्रम सार्थक हो जायेंगे !"

"श्रीमन्त, नाक दबाये बिना मुँह नहीं खुलेगा। एक-दो महीने भी इसमें

लग आयें तो कोई बात नहीं।" मुरारराव बोले, "तब तक दादा साहब आकर मिल जायेंगे। नये दम की फ़ौज आने पर हैदर को नामशेष करने में समय नहीं लगेगा।"

कनाड के घने जंगलों में छिपा हुआ हैदर मराठा फ़ौजों के द्वारा घेर लिया गया। चारों ओर से बाहर के रास्ते बन्द करने में फ़ौज के दिन बीतने लगे। जंगल में अहर्निश वृक्षों के कटने की आवाज़ें गूँजने लगीं। बिदनूर से आनेवाली रसद बन्द हो गयी थी। जंगल में हैदर अच्छी तरह फँस गया था। सभी रास्ते मराठों ने रोक दिये थे। हाल ही में जो युद्ध हुआ था, उसमें हैदर मराठों से भयभीत हो गया था। पचास-पचपन की टोली पर टूट पड़ने की भी उसकी हिम्मत नहीं होती थी। एक रात हैदर के सारदियों ने मराठों के घेरे को तोड़कर जाने का प्रयत्न किया। किन्तु सफल नहीं हुए। अन्धाधुन्ध मार खाकर उनको विवश होकर फिर जंगल में भाग जाना पड़ा। उसके बाद आठ-दस दिन तक कुछ नहीं हुआ।

एक दिन रात में अचानक बिदनूर की ओर गड़बड़ी हुई। भगदड़ मची। आसपास की मराठा फ़ौज देखते ही देखते वहाँ इकट्ठी हो गयी। परन्तु घोर अन्धकार का फ़ायदा उठाकर हैदर वहाँ से सटक गया था। इतने दिन से जो प्रयत्न कर रहे थे, उसके इस प्रकार विफल होने से सारे सरदार उदास हो गये। किसी की समझ में कुछ नहीं आया...पीछा करने से कोई लाभ नहीं हुआ। हैदर ने बिदनूरकरजी का आश्रय लिया था। जाल में फँसा हुआ हैदर हमारी लापरवाही से हाथ से निकल गया—यह पीड़ा सबको कसकती रही। उस रात किसी को नींद नहीं आयी....

दो दिन बाद अचानक फ़ौज में खबर फैली कि बिदनूर पर ज़ोर का आक्रमण करना है। फ़ौज में ऐसी बातों का ज्वार आ रहा था। परन्तु तीन-चार दिन बीत जाने पर भी फ़ौज को आदेश नहीं मिला। एक दिन अचानक खबर आयी कि राघोबा दादा अपनी फ़ौज के साथ आये हैं। उस खबर से फ़ौज में नया जोश आ गया।

और एक दिन आठ-दस घोड़े दौड़ते हुए माधवराव की छावनी में घुसे। सारी फ़ौज का ध्यान उनकी ओर लगा रहा। उनमें गोविन्द शिवराम दिखाई दे रहा था। गोविन्द शिवराम का घोड़ा माधवराव के डेरे की ओर धीरे-धीरे आ रहा था। डेरे के पास आते ही घोड़े रुके। माधवराव बाहर आये। गोविन्द शिवराम ने मुजरा किया, उसको स्वीकारते हुए माधवराव बोले,

"आइए गोविन्दराव!"

माधवराव के पीछे-पीछे गोविन्द शिवराम डेरे में घुसे। माधवराव बोले,

"बैठो।"

गोविन्द शिवराम बैठ गये। माधवराव ने पूछा, "काका नहीं आये ?"

"जी। आये हैं।"

"आये हैं ? कहाँ हैं ?"

"पिछले अड्डे पर छावनी लगायी है।"

"कारण ?"

"खलीता देकर मुझे आपके पास भेजा है।"

"खलीता ?"

"जी !" कहकर गोविन्द शिवराम ने खलीता निकालकर माधवराव के सामने रख दिया।

माधवराव ने खलीता खोला। उसको पढ़ते समय माधवराव के भाल पर बनी हुई सूक्ष्म सिकुड़नें गोविन्द शिवराम की दृष्टि से छिपी न रह सकीं। खलीता पढ़कर समाप्त होते ही माधवराव ने गोविन्द शिवराम की ओर देखा और कहा,

"काका को अब भी हमपर विश्वास नहीं हो रहा है।"

"जी !" घबड़ाकर गोविन्द शिवराम बोले, "क्या मतलब ?"

"गोविन्दराव, यहाँ आकर काका अधिकारपूर्वक हमसे चाहे जो कुछ ले सकते थे। परन्तु अब भी काका बेगानों-जैसा व्यवहार कर रहे हैं। शर्तें लगाकर हमको पराया समझ रहे हैं, अपने हाथ में युद्ध के सारे सूत्र लेना चाहते हैं! हमारे सामने कहते तो क्या हम इनकार थोड़े ही कर सकते थे...."

"जी ऐसी कोई बात नहीं है।"

"कुछ भी हो, आखिर काका मेरे लिए पितातुल्य हैं। छोटे-बड़ों के हाथों से ग़लतियाँ होती ही रहती हैं; परन्तु यदि समय रहते उनको न सुधारा जाये, तो फिर उनसे अनर्थ हो जाता है। गोविन्दराव, जाइए आप। काका को बताना, कहना—यह सब तुम्हारा है। सत्ता तुम्हारी है...राज्य तुम्हारा है....मन में बिलकुल भी सन्देह मत रखो।"

"जी।"

गोविन्द शिवराम जैसे आये वैसे ही चले गये। उसी दिन रात में सारे सरदार माधवराव के डेरे से बाहर निकले और दूसरे ही दिन सारी फ़ौज को तैयार रहने का आदेश दिया गया।

लगभग सन्ध्याकाल होने पर दादा की फ़ौज आकर मिल गयी। दादा-माधवराव मिले। दादा बोले,

"माधव, मुझको आकर मिलना चाहिए था। परन्तु, न जाने क्यों, मन में

मध्यान्तर सन्देह उठ खड़ा होता है। मन बेचैन हो जाता है। कोई कहता है, फिर भी विश्वास नहीं होता। मन के अनुसार बातें जबतक नहीं हो जातीं, तबतक मन को शान्ति नहीं मिलती।"

युद्ध के सारे सूत्र दादा के हाथ में आ गये। दादा साहब की आज्ञा से बिदनूर पर हमला करने का निश्चय किया गया। दादा ने माधवराव से कहा—

"माधव, तुमने अभी तक अपने चाचा की करामाती तलवार नहीं देखी है। कल के संग्राम में तुमको विश्वास हो जायेगा। जो तुम लोग एक वर्ष में नहीं कर पाये, वह तुम्हारे चाचा की तलवार एक दिन में करके दिखा देगी, यह हिम्मत है उसमें!"

माधवराव हँसकर बोले,

"काका! यदि ऐसा हो गया तो आपके नाना की आत्मा को शान्ति मिलेगी।"

नानाजी की स्मृति से राघोबा दादा पुलकित हो गये। वे बोले,

"माधव, यदि आज नाना होते तो अब तक सारा दक्षिण उनके आधिपत्य में आ गया होता। परन्तु देवता के चक्र तो विचित्र फिरते हैं! चलो, रात बहुत हो गयी। अब सो जाओ। प्रातःकाल जल्दी उठना है..." माधवराव ने सन्तोष की निःश्वास छोड़ी। दादा माधवराव के साथ डेरे से बाहर निकले।

राघोबा दादा अपने डेरे के पास पहुँचे भी न थे कि सामने से बापू आ गये। उन्होंने दादा साहब को मुजरा किया। दादा हँसकर बोले,

"कौन? बापू? इतनी रात में?"

"दादा साहब! सेवक के लिए रात और दिन एक-से हैं!"

"सच है।" दादा हँसकर बोले, "चलो।"

राघोबा दादा के पीछे-पीछे बापू अन्दर आये। दरवाजे पर पहरेदार को आदेश दिया गया कि किसी को भी अन्दर न आने दे। बैठते हुए बापू बोले,

"क्या निश्चय हुआ?"

"निश्चय क्या होगा?" राघोबा दादा बोले, "बस हैदर का पूर्ण पराभव करना है, जिससे वह फिर कभी सिर न उठा सके...."

"नासिक में प्रबन्ध अच्छा हो गया है न?"

"है न! आपके कहने का मतलब?"

"इस युद्ध का निर्णय हो जाने पर आपके और हमारे नसीब में नासिक है। इसलिए पूछा। हमारी भी व्यवस्था हो जायेगी न वहाँ?"

आज हैदर की अधीनता तुम्हें स्वीकार करनी पड़े तो कौन-सा मुँह लेकर तुम पुणे में प्रवेश करोगे ? हैदर राक्षसभुवन का निजाम नहीं है, यह बात तुम्हारी समझ में आ जानी चाहिए थी। यह मुझको कहनी पड़ रही है, इसको मैं राज्य का दुर्भाग्य समझता हूँ!...माधव, मैं आखिरी बार कह रहा हूँ, मेरी आज्ञा तुमको माननी पड़ेगी...."

"काका!" असह्य भावना से माधवराव चिल्लाये।

"इसपर भी यदि तुम्हें कुछ कहना हो तो मैं अपने सारे अधिकार आप श्रीमन्त के चरणों में रखकर, सत्ताधीश पेशवा को अन्तिम मुजरा करके, जिस रास्ते आया हूँ उसी रास्ते वापस जाता हूँ।....हमको रणांगण पर बुलवाकर हमारा अपमान किया जा रहा है—यह यदि हमें पहले मालूम पड़ जाता तो हम आने का साहस ही नहीं कर सके होते। हम ठहरे सरल मार्ग से जानेवाले, लोग उससे फ़ायदा उठाते हैं—"

"काका!" अपने अश्रु छिपाते हुए माधवराव बोले।

"बोलो, श्रीमन्त, बोलो!"

"काका, अधिक कहकर हमें लज्जित मत कीजिए। जब सारे सूत्र हमने आपके हाथ में दिये थे तभी आपके पीछे-पीछे चलने की हमने प्रतिज्ञा कर ली थी। परन्तु हमने जो ठीक समझा, वह कह दिया है।" और यह कहते-कहते माधवराव अपने अश्रु छिपा न सके। माधवराव की आँखों में आँसू देखते ही दादा साहब ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोले,

"माधव! अरे, यह सब मैं किसके लिए कर रहा हूँ ? मैं पका पत्ता। आज हूँ कल नहीं। राज्य व्यवस्था ठीक किये बिना मुझको कैसे चैन पड़ जायेगा ? तुम नाना के लड़के हो, यह मैं कभी नहीं भूल सकता, माधव! यदि मैंने अपनी जिम्मेवारी नहीं निभायी, तो मैं सुख-सन्तोष से जी नहीं सकूँगा। स्वर्ग में नाना के सामने क्या मुँह लेकर जाऊँगा ? आज नहीं तो कल, हैदर का पराभव कर सकेंगे। परन्तु यदि यहाँ से विफलता का सेहरा बाँधकर हम लौटे, तो किस बल पर तुम उत्तर आक्रान्त करोगे ? हैदर आज हमारा लिया हुआ सारा मुल्क खुशी से देने को राजी है। ऊपर से तीस लाख कर दे रहा है। मुरारराव घोरपडे और सावनूरकरजी के प्रदेश वापस कर रहा है। फिर बिगड़ क्या रहा है ? और यदि तुम्हारे मन में यह भी सन्देह हो कि हैदर इन शर्तों को तोड़ देगा.... तो उसी क्षण तेरे काका की तलवार उसकी गरदन पर होगी....यह तुम विश्वास रखो! आज नाना की शपथ लेकर मैं कहता हूँ कि...."

"नहीं, काका, रहने दें। हैदर से कहिए,....हम स्वीकार करते हैं...." और माधवराव उठे।

दादा बोले, "माधव, डर न !"

"नहीं काका, सारी देह जल रही है..."

"वही तो माधव ! कितनी बार तुमसे कहा है कि अधिक श्रम मत किया करो। परन्तु भावनाओं के वशीभूत होकर स्वयं परेशान होते हो ! जाओ, आराम करो। ये ठण्ड के दिन अच्छे नहीं हैं।...."

माधवराव बाहर निकले।

दो-चार दिन में सभी सरदार विदा हो गये। माधवराव और दादा साहब ने छावनी उठायी। हैदर से जो समझौता हुआ था, उससे माधवराव इतने क्षीण हो गये थे कि चार क़दम चलने की भी शक्ति उनमें नहीं रही थी। वे किसी से अधिक बातें नहीं करते थे। छावनियाँ लग रही थीं।....कर दस्टा करती हुई फ़ौज पूने की ओर चली जा रही थी।

पंचमहल से छावनी उठने ही वाली थी कि इतने ही में आकाश काले बादलों से आच्छादित हो गया। पवन वेग से चलने लगा। देखते ही देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी। बिजली की गड़गड़ाहट से कानों के पर्दे फटने लगे। सारे प्रदेश में पानी ही पानी हो गया। छावनी उठाना मुश्किल हो गया।

दूसरे दिन नारायणराव जब डेरे से बाहर निकले, उस समय एक बहेलिया वहीं खड़ा था। वह श्रीपति से बातें कर रहा था और श्रीपति उसको टरका देना चाहता था। उस बहेलिया की दोनों काँखों में हिरनों के दो बच्चे थे। करुण दृष्टि से वे बच्चे देख रहे थे। उनको देखते ही नारायणराव थम गये और श्रीपति से उन्होंने पूछा,

"क्या है रे श्रीपति ?"

"बच्चे देने को कह रहा है।"

"देखूँ" नारायणराव ने बहेलिये की ओर देखकर कहा।

बहेलिये ने दोनों बच्चे नीचे छोड़ दिये और बोला,

"बहुत सुन्दर हैं, सरकार ! देखिए तो।"

वे दोनों बच्चे शरीर सिकोड़कर खड़े थे। भागने की कोशिश कर रहे थे। बहेलिया उनकी गरदन में हाथ डालकर बलपूर्वक खींच रहा था। नारायणराव जल्दी से बोले, "ठहरो ज़रा, दादाजी को दिखा आऊँ।"

"सरकार !" नारायणराव ने पीछे देखा।

बहेलिया बोला, "सरकार, अन्दर दिखा आइए।"

नारायणराव ने दोनों बच्चे उठा लिये। यह देखकर श्रीपति आगे बढ़ा।

"मैं ले जाता हूँ अन्दर। आप छोड़ दें श्रीमन्त !"

"रहने दो। मैं ले जा सकता हूँ।" कहते हुए वे दोनों बच्चों को अन्दर

ले गये। माधवराव मंचक पर सो रहे थे।

"दादा !" नारायणराव ने पुकारा।

माधवराव ने देखा।

"दादा, मैं इनको ले लूं ?"

माधवराव नारायणराव की ओर देखते हुए बोले,

"क्या जरूरत है इनकी ? अभी तुम्हारा बचपना गया नहीं है।"

सिर झुकाकर नारायणराव बोले,

"अपने लिए नहीं। भाभीजी के लिए ले रहा था मैं...."

माधवराव के भाल पर सिकुड़नें क्षण-भर में लुप्त हो गयीं। आँखें बन्द करते हुए वे बोले, "जाओ ले लो।"

"जी" कहकर नारायणराव मुड़े। तभी माधवराव बोले,

"इनकी क़ीमत पूछो और उसको दे दो।"

"जी" कहते हुए नारायणराव बाहर चले गये।

नारायणराव को अब उन बच्चों के सिवाय कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

दूसरे दिन आकाश में चमचमाते तारों को और पवन को देखकर छावनी उठा दी गयी। पुणे पास आ रहा था। माधवराव व्याकुल होकर अम्बारी में बैठे थे। पास ही नारायणराव मृगछौनों को सहला रहे थे। उन काले-काले चमकते हुए नयनों की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। छौने निकलने का प्रयत्न कर रहे थे।....हाथी के चलने से अम्बारी हिल रही थी। वे बच्चे बेचैन हो गये थे। सामने रखी हुई घास को मुँह भी नहीं लगा रहे थे...भयभीत दृष्टि से चारों ओर देख रहे थे।

हाथी धीमी गति से चल रहा था।....पीछे से आनेवाले सवार घर के आकर्षण से आगे खिंचे जा रहे थे।

लगभग एक वर्ष की हैदर की मुहीम समाप्त करके माधवराव पुणे में आये। परन्तु पुणे में आते ही उनको शान्ति नहीं मिली। मुहीम के खर्च का हिसाब-किताब देखने में उनके दिन बीत रहे थे। इसी बीच पुरन्दर के मछुआरों का झगड़ा उनको मिटाना पड़ा। परन्तु इससे भी अधिक कष्टदायक सदाशिवराव भाऊ के बहुरुपिया की घटना थी। बहुरुपिया पकड़ लिया गया था। उसकी जांच अनेक सरदारों के द्वारा माधवराव करवा रहे थे। इस बहुरुपिया की घटना से राजनीति में जो तूफ़ान उठ खड़ा हुआ था, वह शनिवार-भवन को तो नहीं स्पर्श कर रहा है, इस ओर वे स्वयं ध्यान दे रहे थे। इससे शनिवार-भवन

का वातावरण बदल गया था।

जब से बहुरूपिया पूने में लाया गया था, नाना, बापू, मोरोबा, रामशास्त्री जैसे राजनीतिज्ञ माधवराव के साथ विचार विनिमय कर रहे थे। बहुरूपिया के सम्बन्ध में निर्णय कैसे लिया जाय, उसकी सर्वसम्मत पहचान कैसे की जाय—यह विकट प्रश्न सबके सामने था। माधवराव के गणेश महल में ये सब लोग चिन्तातुर बैठे हुए थे। माधवराव ने बापू से कहा—

"बापू, आप बहुरूपिया से मिल चुके हैं न?"

"जी हाँ!"

"आपकी राय क्या बनी?"

"वह बहुरूपिया है, इस सम्बन्ध में हम सबको पक्का विश्वास है। जिन्होंने स्वयं भाऊ को देखा था, उन लोगों ने भी यही निर्णय दिया है। आप ही इस बहुरूपिया की इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं, यही मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

माधवराव खिन्नता से हँसकर बोले, "तो आपकी राय क्या है?"

"तत्काल इसको बहुरूपिया घोषित करके दण्ड दिया जाय और फिर इस प्रकरण पर हमेशा के लिए परदा डाल दिया जाय। इसमें देर होने के कारण वातावरण अधिक दूषित और सन्देहशील बन रहा है।"

"बापू, यह बात इतनी सरल होती तो इतना समय हम किसलिए लगाते? महादजीबा अनुबाई ने बहुरूपिया को प्रत्यक्ष देखकर उसका निर्णय किया है। हमने स्वयं नानीराम त्रिवेदी जैसे जिम्मेदार व्यक्ति से स्वर्गीय भाऊ साहब की शरीर का विवरण मँगवा लिया है। हमको बहुरूपिया के बारे में सन्देह नहीं है। तथापि..."

माधवराव को रुकते देखकर रामशास्त्रीजी ने पूछा, "तथापि क्या श्रीमन्त?"

"शास्त्रीजी, इस प्रकरण का निर्णय हम नहीं कर सकते। हम ठहरे राज्य-कर्त्ता! राज्य के लोभ से हमने यह निर्णय लिया है—यह कलंक लगेगा। हमारा मन निष्कपट होने पर, लोग क्या कहेंगे, इसकी भी हमको परवाह नहीं; परन्तु हमारे ही घर यदि किसी को ऐसा सन्देह हो गया, तो वह हमसे सहन नहीं होगा। और इसीलिए हमने जानकोजी तथा भाऊ साहब के बहुरूपियों को प्रश्रय देना ठीक नहीं है।"

"श्रीमन्त, आपका विचार क्या है?" नाना ने पूछा।

माधवराव दृढ़ स्वर में बोले,

"पूने में थोड़े विचारशील लोगों के सामने भाऊ साहब के बहुरूपिया को

खड़ा करो। पुणे में अनेक वयोवृद्ध लोग हैं, जिन्होंने भाऊसाहब को देखा है। वे खुलेआम बहुरुपिया को देखें। प्रजा के द्वारा ही बहुरुपिया के इस प्रश्न का निर्णय होने दो!"

"परन्तु श्रीमन्त, ऐसा करने से आपको कितना मनस्ताप होगा इसका—"

"पूरा विचार कर लिया है। हम उसको सहन करेंगे। नाना, कल बहुरुपियों को लोगों के सामने उपस्थित करो। शास्त्रीजी, आप हाजिर रहें। लोकनिर्णय के बाद ही हम इसका निर्णय करेंगे।"

पूरे शहर में दौंड़ी पिटवा दी गयी। पुणे में घर-घर बहुरुपिया की चर्चा चल रही थी। दूसरे दिन बहुरुपिया को प्रातःकाल बुधवार पेठ के अखाड़े के पास खड़ा किया गया। कठोर प्रबन्ध में बहुरुपिया नागरिकों के सामने खड़ा था। लोगों के झुण्ड के झुण्ड उसको देखने को उमड़ रहे थे। सदाशिवराव भाऊ को जिन्होंने देखा था, वे लोग बहुरुपिया को देख रहे थे। निराश होकर लौट रहे थे।

शनिवार-भवन में माधवराव अकेले अपने महल में बैठे हुए थे। कार्यालय में जाकर बैठने का भी साहस उनमें नहीं रहा था। रमाबाई को उन्होंने पहले ही पार्वती काकी के महल में भेज दिया था। वे बेचैन बैठे हुए थे कि श्रीपति अन्दर आया। सन्ध्यासमय होता आ रहा था। श्रीपतिकी ओर मुड़कर माधवराव ने पूछा, "श्रीपति?"

"जी, कुछ नहीं। कपड़े निकालकर रखने के लिए आया था।"

"कपड़ों की कोई जरूरत नहीं है। मैं सभागृह में नहीं जाऊँगा।"

"जी" कहकर श्रीपति मुड़ा और उसी समय महल में पार्वती काकी आयीं। दरवाजे के पास खड़ी हुई पार्वतीबाई को देखते ही माधवराव झटपट खड़े हो गये। पार्वती काकी को नमस्कार करते हुए वे बोले, "आइए न!"

पार्वती काकी अन्दर आयीं। कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव बोले,

"आज्ञा की होती तो हम आपके दर्शनों के लिए पहुँच गये होते।"

"आज्ञा!" पार्वती काकी बोलीं, "पेशवाओं को हम क्या आज्ञा देंगी?"

"काकी!" माधवराव चकित होकर बोले।

"हमने सच ही कहा है। नहीं तो उनकी पहचान आप बुधवार-चौक में न करते। रावसाहब, यह प्राणलेवा खेल खेलकर हमारी इज्जत को चौराहे पर मत बिखेरो; बस यही भीख माँगने मैं आज तुम्हारे द्वार पर आयी हूँ।"

माधवराव को कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। पार्वती काकी का शरीर काँप रहा था। आँखों में आँसू थे। असह्य दृष्टि से वे माधवराव की ओर

देख रही थीं। पार्वती काकी की दशा देखकर माधवराव के प्राण घुटने लगे। स्वयं को सँभालते हुए वे बोले,

"काकी, ऐसी बात मत कहिए। सबकी दृष्टि में मैं रावसाहब या पेशवा भले ही होऊँ, परन्तु आपका माधव ही हूँ। गलती हुई हो तो दण्ड दीजिए, उसको मैं आनन्द से स्वीकारूँगा, परन्तु इस तरह मत बोलिए।"

यह सुनकर पार्वतीबाई का सन्ताप कुछ कम हुआ। वे कुछ धीमी आवाज में बोलीं,

"तो फिर माधव! हमने क्या सुना है! उनके वास्तविक होने की पूछताछ शनिवार-चौक में शुरू की है, यह क्या गलत है?"

"नहीं, यह सच है। जब यह पक्का निश्चय हो गया कि वह भाऊ का बहुरूपिया है, तभी हमने उसको जनता के सामने खड़ा किया है।"

"उसको बहुरूपिया किसने सिद्ध किया?"

"स्वयं उसकी बुआजी ने—पूजनीया अनुसूयाबाई घोरपड़े ने।"

"और उसको आपने सच मान लिया? माधव, भास्करभट्ट पटे और निरराम दीक्षित ने उनके सच्चे होने के सम्बन्ध में हमको पत्र भेजकर जो विश्वास दिलाया है वह क्या झूठा है?"

"बिल्कुल झूठा। इस सम्बन्ध में वे दोनों शपथपूर्वक कहने को तैयार नहीं हैं। काकी, यदि काका हमें मिल जायें, तो हम उन्हें चाहेंगे नहीं क्या? आपके बराबर ही मुझको आनन्द होगा। आपके मन में सन्देह न रहे इसीलिए आज तक मैंने भाऊ के बहुरूपिया का मुख तक नहीं देखा। निरपेक्षता से मैं जाँच कर रहा हूँ।"

"माधव, इस घर के मामले को इस तरह चौराहे पर मत ले जाओ। जो तुम्हें करना हो वह तुम करो, परन्तु इस पूछताछ को जल्दी ही बन्द करो। अब यह मुझसे सहन नहीं होता।" आगे पार्वतीबाई से बोला नहीं गया। उनके मुँह से सिसकी निकल गयी। आँचल मुख से लगाकर वे खड़ी-खड़ी रोने लगीं।

माधवराव भरे गले से बोले, "जैसी आज्ञा! इसी समय पूछताछ बन्द करवाता हूँ। कल मैं स्वयं जाँच करूँगा।"

पार्वती काकी मुड़ीं और महल से बाहर चली गयीं। माधवराव दीर्घ निःश्वास छोड़कर खिड़की से बाहर देखने लगे। उसी समय रमाबाई अन्दर आयीं। माधवराव बोले,

"कहाँ थीं आप? आपसे काकी के पास रहने के लिए कहा था न?"

उस कठोर आवाज से रमाबाई चकित हो गयीं। वे बोलीं, "जरा सुनिए तो..."

खड़ा करो। पुणे में अनेक वयोवृद्ध लोग हैं, जिन्होंने भाऊसाहब को देखा है। वे खुलेआम बहुरुपिया को देखें। प्रजा के द्वारा ही बहुरुपिया के इस प्रश्न का निर्णय होने दो!"

"परन्तु श्रीमन्त, ऐसा करने से आपको कितना मनस्ताप होगा इसका—"

"पूरा विचार कर लिया है। हम उसको सहन करेंगे। नाना, कल बहुरुपियों को लोगों के सामने उपस्थित करो। शास्त्रीजी, आप हाजिर रहें। लोकनिर्णय के बाद ही हम इसका निर्णय करेंगे।"

पूरे शहर में दौंड़ी पिटवा दी गयी। पुणे में घर-घर बहुरुपिया की चर्चा चल रही थी। दूसरे दिन बहुरुपिया को प्रातःकाल बुधवार पेठ के अखाड़े के पास खड़ा किया गया। कठोर प्रबन्ध में बहुरुपिया नागरिकों के सामने खड़ा था। लोगों के झुण्ड के झुण्ड उसको देखने को उमड़ रहे थे। सदाशिवराव भाऊ को जिन्होंने देखा था, वे लोग बहुरुपिया को देख रहे थे। निराश होकर लौट रहे थे।

शनिवार-भवन में माधवराव अकेले अपने महल में बैठे हुए थे। कार्यालय में जाकर बैठने का भी साहस उनमें नहीं रहा था। रमाबाई को उन्होंने पहले ही पार्वती काकी के महल में भेज दिया था। वे बेचैन बैठे हुए थे कि श्रीपति अन्दर आया। सन्ध्यासमय होता आ रहा था। श्रीपतिकी ओर मुड़कर माधवराव ने पूछा, "श्रीपति ?"

"जी, कुछ नहीं। कपड़े निकालकर रखने के लिए आया था।"

"कपड़ों की कोई जरूरत नहीं है। मैं सभागृह में नहीं जाऊँगा।"

"जी" कहकर श्रीपति मुड़ा और उसी समय महल में पार्वती काकी आयीं। दरवाज़े के पास खड़ी हुई पार्वतीबाई को देखते ही माधवराव झटपट खड़े हो गये। पार्वती काकी को नमस्कार करते हुए वे बोले, "आइए न!"

पार्वती काकी अन्दर आयीं। कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला। माधवराव बोले,

"आज्ञा की होती तो हम आपके दर्शनों के लिए पहुँच गये होते।"

"आज्ञा!" पार्वती काकी बोलीं, "पेशवाओं को हम क्या आज्ञा देंगी?"

"काकी!" माधवराव चकित होकर बोले।

"हमने सच ही कहा है। नहीं तो उनकी पहचान आप बुधवार-चौक में न करते। रावसाहब, यह प्राणलेवा खेल खेलकर हमारी इज्जत को चौराहे पर मत बिखेरो; बस यही भीख माँगने मैं आज तुम्हारे द्वार पर आयी हूँ।"

माधवराव को कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। पार्वती काकी का शरीर काँप रहा था। आँखों में आँसू थे। असह्य दृष्टि से वे माधवराव की ओ

उत्तर दे रहा था। भाऊ साहब के चेहरे से तो उसकी समता थी ही, किन्तु वह शान्त भाव देखकर माधवराव दंग रह गये। बहुरूपिया को विचार करने का अवसर न देकर एक के बाद एक प्रश्न किये जा रहे थे। बहुरूपिया उनके उत्तर दे रहा था। थोड़ा-सा भी तनाव उसके चेहरे पर दिखाई नहीं पड़ रहा था। वह बड़ी सहजता से उत्तर दे रहा था। एक शास्त्रीजी ने पूछा,

"जब आप शनिवार-भवन में रहते थे, उस समय आपका निवास-स्थान कहाँ था?"

बहुरूपिया हँसा। वह बोला, "हजारी फव्वारे के पासवाले महल में। दूसरी मंजिल पर।"

"वह इमारत कितनी मंजिल की है?"

"पाँच।"

"फिर आप नीचे की मंजिल से दूसरी मंजिल पर कैसे जाते थे?"

"जीने से।"

"अनेक बार आप उस जीने से गये होंगे, उतरे होंगे, तो फिर उस जीने में कितनी सीढ़ियाँ हैं यह बता सकेंगे आप?"

बहुरूपिया चुप रहा। शास्त्री को जोश आ गया। उसने पूछा, "बोलिए न! क्या बता नहीं सकते?"

बहुरूपिया ने एक बार प्रश्न करनेवाले शास्त्री को देखा। उसने हँसते हुए पूछा, "शास्त्रीजी, आपके गले में स्फटिक की माला है। इस माला में कितने मनके हैं, यह बता सकेंगे आप?"

शास्त्रीजी का हाथ तत्काल गले के पास गया। उनका चेहरा उतर गया। वे अपने आसन पर बैठ गये।

पूछताछ के काम में दोपहर बीता जा रहा था। निर्णय नहीं हो पा रहा था। कुछ उत्तर बिलकुल सही थे, कुछ गलत थे। परन्तु उनको प्रमाण नहीं माना जा सकता था। रामशास्त्री उठे। शान्तिपूर्वक उन्होंने पूछा,

"आप सदाशिवराव भाऊ अपने को कहलवा रहे हैं, तो जब आप प्रकट हुए तब सीधे पुणे में क्यों नहीं आये?"

बहुरूपिया हँसकर बोला, "आज मेरा जो स्वागत हो रहा है, वह नहीं चाहता था।"

"यदि इसको सच मान भी लें, तब भी एक बात आपके ध्यान में आ गयी होगी कि जिस दुर्ग में आप पड़े हुए, जिस प्रदेश में घूमे, वहाँ का एक भी व्यक्ति आपको पहचाननेवाला नहीं मिला। एक भी व्यक्ति आपको नहीं पहचान पाया?"

"क्या ?"

"मैं सारे दिन काकीजी के पास ही रही हूँ। जब वे यहाँ आने लगीं तब उन्होंने ही कहा कि तू मत आ। इसलिए मैं नीचे चौक में खड़ी थी।"

माधवराव बोले, "सच, बेचारी काकी! परन्तु रमा, यदि यह घटना मेरे जीवन में न आयी होती, तो बहुत अच्छा हुआ होता! कल हम पर्वती पर बहुरुपिया की जाँच करेंगे।"

"यह काकीजी को मालूम है ?"

"उन्होंने ही यह आज्ञा दी है। श्रीपति ऽऽ"

श्रीपति अन्दर आया। माधवराव बोले, "नाना और मोरोबा में से कोई हों तो उनको हमारे पास भेज दो।"

श्रीपति चला गया। रमाबाई जाने के लिये मुड़ीं। माधवराव उनसे बोले, "कल का दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आप काकी को पल-भर को भी छोड़कर मत जाना!"

पुणे शहर की बेचैनी बढ़ गयी थी। घर-घर बहुरुपिया की चर्चा हो रही थी। पर्वती पर क्या होगा—इस सम्बन्ध में लोग तर्क-वितर्क कर रहे थे। ठण्ड के दिन होने पर भी लोग रखे हुए कपड़े पहनकर पर्वती को जा रहे थे। पुणे से पर्वती तक का रास्ता लोगों से भर गया था। सूर्योदय होते ही लोगों ने पर्वती पर, छत की मुंडेरों पर, चबूतरों पर तथा पेड़ों के नीचे जगहें घेर रखी थीं। पूछताछ करने का समय होने तक मन्दिर के दीपस्तम्भ और मैदान तक लोगों से भर गये थे।

पर्वती के मन्दिर में अन्य लोगों का प्रवेश वर्जित था। मन्दिर के चारों ओर उत्तम प्रबन्ध था। जानकोजी और सदाशिवराव भाऊ के बहुरुपिये ठीक देव के सामने आसन पर बैठाये गये थे। बहुरुपियों के दोनों ओर सभा-मण्डप में बैठक बिछी हुई थी, जिस पर मसनद-तकिये रखे हुए थे। विशेष बैठकी पर श्रीमन्त माधवराव बैठे हुए थे। उनके समीप नाना फडणीस, विसाजी कृष्ण बिनीवाले, मोरोबा, खाजगीवाले आदि लोग बैठे हुए थे। बहुरुपियों की दूसरी ओर रामशास्त्री, अय्या शास्त्री आदि विद्वान् पण्डित परीक्षा लेने के लिए बैठे थे। रामशास्त्रीजी ने माधवराव से आज्ञा माँगी। माधवराव ने सिर हिला-कर आज्ञा दी।

पूछताछ शुरू होने का ढिंढोरा पीटा गया और सर्वत्र एकदम शान्ति छा गयी। शास्त्री-पण्डित बहुरुपिया से प्रश्न कर रहे थे। बहुरुपिया शान्तिपूर्वक

उत्तर दे रहा था। भाऊ साहब के चेहरे से तो उसकी समता थी ही, किन्तु यह शान्त भाव देखकर माधवराव दंग रह गये। बहुरूपिया को विचार करने का अवसर न देकर एक के बाद एक प्रश्न किये जा रहे थे। बहुरूपिया उनके उत्तर दे रहा था। थोड़ा-सा भी भय उसके चेहरे पर दिखाई नहीं पड़ रहा था। वह बड़ी दृढ़ता से उत्तर दे रहा था। एक शास्त्रीजी ने पूछा,

"जब आप शनिवार-भवन में रहते थे, उस समय आपका निवास-स्थान कहाँ था?"

बहुरूपिया हँसा। वह बोला, "हजारा फव्वारे के पासवाले महल में। दूसरी मंजिल पर।"

"वह इमारत कितनी मंजिल की है?"

"पाँच।"

"फिर आप नीचे की मंजिल से दूसरी मंजिल पर कैसे जाते थे?"

"जीने से।"

"अनेक बार आप उस जीने से गये होंगे, उतरे होंगे, तो फिर उस जीने में कितनी सीढ़ियाँ हैं यह बता सकेंगे आप?"

बहुरूपिया चुप रहा। शास्त्री को जोश आ गया। उसने पूछा, "बोलिए न! या बता नहीं सकते?"

बहुरूपिया ने एक बार प्रश्न करनेवाले शास्त्री को देखा। उसने हँसते हुए पूछा, "शास्त्रीजी, आपके गले में स्फटिक की माला है। इस माला में कितने मनके हैं, यह बता सकेंगे आप?"

शास्त्रीजी का हाथ तत्क्षण गले के पास गया। उनका चेहरा उतर गया। वे अपने आसन पर बैठ गये।

पूछताछ के काम में दोपहर बीता जा रहा था। निर्णय नहीं हो पा रहा था। कुछ उत्तर बिलकुल सही थे, कुछ गलत थे। परन्तु उनको प्रमाण नहीं माना जा सकता था। रामशास्त्री उठे। शान्तिपूर्वक उन्होंने पूछा,

"आप सदाशिवराव भाऊ अपने को कहलवा रहे हैं, तो जब आप प्रकट हुए तब सीधे पुणे में क्यों नहीं आये?"

बहुरूपिया हँसकर बोला, "आज मेरा जो स्वागत हो रहा है, वह नहीं कराना था।"

"यदि इसको सच मान भी लें, तब भी एक बात आपके ध्यान में आ गयी होगी कि जिस पुणे में आप बड़े हुए, जिस प्रदेश में घूमे, वहाँ का एक भी व्यक्ति आपको पहचानने वाला नहीं मिला। एक भी व्यक्ति आपको नहीं पहचान पाया?"

"कैसे पहचाने ?" बहुरुपिया माधवराव पर नजर गड़ाता हुआ बोला, "कैसे पहचाने ? कौन साहस करेगा ? जहाँ राज्यकर्ता ही मेरे विरुद्ध है, वहाँ मेरी ओर से साक्ष देकर अपने घर का चौपटा कौन करवा लेगा ? जैसा राजा, वैसी प्रजा !"

माधवराव तत्क्षण उठकर खड़े हो गये। उनके सन्तप्त नेत्रों से आँखें मिलाने की भी हिम्मत बहुरुपिया की नहीं पड़ी। उसकी नजर झुक गयी। माधवराव बोले, "यदि हममें न्यायबुद्धि न होती तो जब तू मिला था, तभी तुझको हाथी के पैरों तले डलवा दिया होता। उसके लिए इतना समय और इतना कष्ट न उठाया होता। आज तक तूने अनेक झूठी शपथें ली हैं। आज भी हम उसी का प्रमाण रखनेवाले हैं। तू भाऊ तो हो ही नहीं सकता, यह हम जान गये हैं। तेरे सामने गंगाजली लाकर रख दी जायेगी। गंगाजली की शपथ लेकर तुझको जो कुछ कहना हो वह कह लेना।"

गंगाजली सामने रख दी गयी। सर्वत्र शान्ति थी। अब तक शान्त बैठा हुआ बहुरुपिया चलायमान हो गया। माधवराव अत्यन्त स्पष्ट आवाज में बोले,

"गंगाजली को हाथ लगाने से पहले यह जरूर विचार कर कि जो नाम तूने धारण किया है, उसका कुल क्या है, शील क्या है ? यह सब याद कर। केवल रूप से ही हम मनुष्य की परीक्षा लेने नहीं बैठे हैं। जब तुझे पहचानने के लिए कोई आगे नहीं आया, उसी समय वह आधार समाप्त हो गया। झूठी शपथ लेकर कदाचित् तू उस पराजय पर विजय भी प्राप्त कर ले और हम अपने कथनानुसार तुझको सदाशिवराव भाऊ के रूप में स्वीकार भी कर लें; परन्तु अभी तक तूने एक व्यक्ति का विचार नहीं किया है। पानीपत पर पति के निधन की वार्ता सुनकर भी एक स्त्री ने उसपर विश्वास नहीं रखा। अपने सौभाग्य-अलंकार न उतारकर जो साध्वी केवल पतिनिष्ठा पर अपना जीवन बिता रही है, उस स्त्री के सामने जब तू खड़ा होगा, तब तेरा यह ढोंग टिक पायेगा क्या ? इसका क्षण-भर विचार करके शपथ ले। उस साध्वी को धोखा देने के महापातक का विचार कर। उठा गंगाजली।"

ऊँचे स्वर में कहे गये उस अन्तिम वाक्य के साथ ही बहुरुपिया ने सिर उठाया। उसके माथे पर पसीने के बूँदें घनीभूत हो गयी थीं। उसको लग रहा था जैसे सारा देवालय घूम रहा हो। उसके होंठ सूख गये थे। असह्य पीड़ा से वह चिल्लाया—

"क्षमाऽ, श्रीमन्त क्षमा ! मैं सदाशिवराव भाऊ नहीं हूँ। मैं बहुरुपिया हूँ, बहुरुपिया।" और यह कहकर वह रोने लगा।

रामशास्त्री बोले, "फिर तेरा नाम क्या है ?"

बहुरुपिया ने हाथ जोड़ दिये। आँसू पोंछकर वह बोला, "मैं कन्नौजी ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम सुखलाल। बुन्देलखण्ड के सनोरा गाँव में रहता था मैं। बाप का नाम रामानन्द। माता का अन्नपूर्णा। घर के झगड़ों और दरिद्रता से ऊबकर मैं परदेश चला गया। गुसाईं के वेश में भटकते हुए मुझको लोगों ने सदाशिव बना दिया। नरवर के सूबेदार और गणेश सम्भाजी—इन्होंने, मेरे मना करने पर भी, मुझको सदाशिवराव भाऊ बना दिया। फ़ौज इकट्ठी की। मैं बार-बार कह रहा था, 'मैं योगाभ्यासी नागा हूँ। मैं भाऊ नहीं हूँ।' परन्तु मेरी किसी ने नहीं सुनी। मैं गुनहगार हूँ। क्षमा करना अथवा न करना आपके हाथों में है।"

रामशास्त्रीजी ने पूछा, "तुमने जो कुछ कहा है उसका प्रमाण ?"

"आप छानबीन करा लीजिए। मेरे घर के सभी लोग आपको विश्वास दिला देंगे।"

चारों ओर कानाफूसी होने लगी। एक बहुरुपिया का भेद खुलते ही जानकोजी के बहुरुपिया ने भी धीरज खो दिया। उसने भी अपना असली नाम-गाम बता दिया।

माधवराव उठकर खड़े हो गये। वे बोले, "शास्त्रीजी, यह पूछताछ हमारे सामने होने से इसका निर्णय भी हम ही दें, यह उचित है। दोनों बहुरुपियों ने अपने मुख से स्वीकार कर लिया है इसलिए वे अपराधी सिद्ध हो गये हैं। जिन महापुरुषों के नाम इन्होंने धारण किये, उनका रूप धारण करने के कारण ही अनेक प्राणियों को कष्ट पहुँचा है, राज्य में उपद्रव मचे हैं, इसलिए इन दोनों को...."

"क्षमा श्रीमन्त" सुखलाल चिल्लाया, "ब्राह्मण पर दया कीजिए..."

माधवराव कहने लगे, "इन दोनों को नगर के क़िले में कारागार में डाल दो। जन्म-भर अँधेरी कोठरी की यातनाएँ इनको भोगने दो।"

दीया जलने के समय माधवराव पार्वतीबाई के महल का जीना चढ़ रहे थे। वे अत्यन्त थके हुए दिखाई दे रहे थे। बड़े कष्ट से वे जीना चढ़ रहे थे। दासी ने अन्दर जाकर सूचना दी।

माधवराव ने महल में प्रवेश किया। सामने पार्वतीबाई खड़ी थीं। महल के चारों कोनों में जल रही समइयों के निश्चल प्रकाश में पार्वतीबाई की मूर्ति बड़ी सुन्दर लग रही थी। माधवराव ने नमस्कार किया। पार्वतीबाई बोलीं,

"बैठिए !"

परन्तु माधवराव बैठे नहीं। पार्वतीबाई ने पूछा, "क्या हुआ ? पहचान हुई ?"

नकारार्थी सिर हिलाते हुए माधवराव बोले, "दोनों बहुरुपियों ने स्वीकार कर लिया। वह कन्नोजी ब्राह्मण है। उसका नाम सुखलाल है।"

पार्वतीबाई ने दीवाल का सहारा लिया। माधवराव गम्भीर होकर कह रहे थे, "काकी, यदि यह निश्चय हो जाता कि वे भाऊ हैं, तो इससे बढ़कर आनन्ददायक बात मेरे लिए दूसरी कोई नहीं थी। यह बात आपसे कहते हुए मुझको कितना कष्ट हो रहा है, यह मैं किन शब्दों में कहूँ ? परन्तु काकू, आप निराश मत होइए। इससे धैर्य मत छोड़िए। यही प्रार्थना करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। मनुष्य की श्रद्धा से परमेश्वर भी झुकता है—यह पुराणों में कहा गया है। कौन जानें ! हो सकता है आपकी श्रद्धा एक दिन साकार हो जाये !"

पार्वतीबाई ने आँसू रोकते हुए पूछा, "क्या दण्ड दिया ?"

"जिस पवित्र नाम का अपमान कर उन्होंने यह व्यवहार किया, वह भयंकर अपराध है; परन्तु साथ ही जो नाम उन्होंने धारण किया, जिस नाम पर छत्र-चँवर डुलवाये, उस नाम के कारण ही हम दण्ड नहीं दे पाये। नगर के क़िले में हथकड़ी-बेड़ी डालकर क़ैद रखने के सिवाय हम कुछ नहीं कर सके।"

कातर स्वर में पार्वतीबाई ने पूछा, "माधव, सचमुच क्या वह..."

माधवराव बोले, "काकी, मैं सब कुछ करूँगा, किन्तु आपसे छल करने का साहस नहीं कर सकूँगा।" उनकी स्वीकारोक्ति के अतिरिक्त ऐसा कोई प्रमाण मेरे पास नहीं है, जिसको आपके सामने रखूँ।" माधवराव आगे बढ़े और आले में रखी गजानन की मूर्ति को छूते हुए वे बोले,

"काकी, इस गजानन की शपथ लेकर मैं कहता हूँ कि वे बहुरुपिया हैं, इसमें मुझको तिल-भर भी सन्देह नहीं है। आपकी इच्छा हो तो इसके बाद आप स्वयं बहुरुपिया की परीक्षा ले सकती हैं।"

"नहीं माधव, तुमको शपथ लेने की कोई जरूरत नहीं है। मेरा तुमपर विश्वास है। मेरा भाग्य ही खोटा है, इसके लिए तुम क्या करोगे ? मुझको परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। जिसने इनका नाम धारण कर इनके नाम का मज़ाक़ उड़ाया है, उसका मैं मुँह भी नहीं देखना चाहती। माधव, तुमपर विश्वास है मेरा।"

माधवराव की आँखों से तत्क्षण अश्रुधारा बह चली। वे बोले, "काकी, आपका यह माधव आज तक किसी का ऋणी बनने को तैयार नहीं था; परन्तु आज....आज वह आपका जन्मजन्मान्तरों तक ऋणी रहेगा। इससे उसको

आनन्द मिलेगा। जाता हूँ मैं।"

माधवराव ने आँखें पोंछीं और नमस्कार करके वे महल से बाहर निकले। माधवराव के महल से बाहर जाते ही पार्वतीबाई खड़ी-खड़ी धरती पर रखी बैठकी पर गिर पड़ीं और रोने लगीं।

"सरकार, बाहर बापू आये हैं।" श्रीपति महल में आकर बोला।

माधवराव ने सिर उठाकर कहा, "उनको अन्दर भेज दो।"

श्रीपति बाहर चला गया और थोड़ी ही देर में बापू अन्दर आये। बहुरुपिया के मामले में माधवराव को बड़ा मानसिक कष्ट उठाना पड़ा था। इसलिए वे सप्ताह-भर बिस्तर पर ही पड़े रहे। बापू के अन्दर आते ही पलंग से उठते हुए वे बोले,

"बापू, नाना कहाँ है ?"

"अभी आ रहे हैं।"

तब तक नाना भी अन्दर आ गये। माधवराव नाना से बोले, "बापू, नाना, हमको कर्नाटक की मुहीम से आये इतने दिन हो गये, लेकिन फिर भी अभी तक हिसाब-किताब पूरा नहीं हुआ, इसका क्या अर्थ है ?"

"इस बीच के मामले के कारण..." नाना बोले।

"चुप ! नाना, इस बीच के मामले का और सरकारी कार्यालय का क्या सम्बन्ध ? हमने मुहीम पर से खर्च की तजवीज के लिए जो पत्र भेजे थे वे और रकम का तालमेल—ये दोनों हम देखना चाहते हैं।"

"जैसी आज्ञा !" नाना बोले।

"आज से हम कार्यालय में जायेंगे। यदि हिसाब में गड़बड़ी नजर आयी तो किसी का भी मुलाहिज़ा नहीं किया जायेगा।"

बापू और नाना एक दूसरे की ओर देख रहे थे। कुछ कहने का साहस किसी में नहीं था। कुछ धीमी आवाज में माधवराव बोले,

"बापू, हमको क्षण-भर की फुरसत नहीं है। एक के बाद एक नयी मुहीमें हमपर आ रही हैं। उनके खर्च का तालमेल नहीं बैठेगा तो कैसे काम चलेगा ? इसीलिए तो हम इतने सावधान रहते हैं।"

"सच है श्रीमन्त, हिसाब सही नहीं होगा तो बहुत बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जायेगी। इसलिए काफी सजग रहना चाहिए।" बापू ने अवसर पाकर कहा।

बापू की ओर दृष्टि डालकर माधवराव ने एकदम पूछा, "बापू, नागपुरकर-जी के यहाँ से कोई खबर आयी ?"

सखाराम बापू उस प्रश्न से चकित हो गये। वे बोले, "नहीं, श्रीमन्त !"

"देखो अपनी सजगता ? उधर भोसले दरबार में हमारे वकील के सामने

"एक बार दो-दो हाथ हो जाने दो और फिर देखो हमारा तमाशा'—इस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, हमारे विरुद्ध शिन्दे और होलकरों को सहायता माँग रहे हैं। वे जयपुर के माधोसिंह को अपने पक्ष में कर ले रहे हैं और तब भी आप चुप बैठे हुए हैं ?"

बापू ने सिर झुका लिया। माधवराव बोले, "बापू, जानोजी भोंसले को हमारा पत्र भेजिए। उनको समझाइए। ये हलचलें तत्क्षण बन्द होनी चाहिए। अब भी हमारे मन में कोई बात नहीं, इसलिए जल्दी ही भोंसले आकर हमसे मिल लें तो अच्छा होगा। समझ गये ?"

"जी।"

"जाइए आप और पत्र का कच्चा मसौदा तैयार करके ले आइए। हमको वह अवश्य देखना होगा।"

बापू और नाना के महल से बाहर जाते ही उनके मुख से चैन की सांस निकली।

माधवराव के बुलाने पर भी जानोजी भोंसले नहीं आये। भोंसले की प्रत्येक हरक़त माधवराव का क्रोध बढ़ा रही थी। भोंसले के कामों से सन्तप्त बने हुए माधवराव ने भोंसले पर चढ़ाई कर दी। राक्षस-भुवन की लड़ाई में अधीनता स्वीकार करनेवाले निजाम को ससैन्य सहायता के लिए आने की आज्ञा माधवराव ने दी।

थोड़े ही समय में निजाम और पेशवाओं की फ़ौज को मिलकर आक्रमण करते देखकर भोंसले के होश उड़ गये। माधवराव ने पहले ही धक्के में वराड प्रान्त अधिकार में ले लिया। बालापुर और अकोला से कर वसूल किया और वे नागपुर की ओर चल दिये। भोंसले को अपने भविष्य का आभास मिल गया। वे सीधे राघोबा दादा की शरण में पहुँचे। समझौता कराने के लिए राघोबाजी ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। नागपुरकरजी पत्रों द्वारा क्षमा-याचना कर रहे थे। यह देखकर माधवराव को दया आ गयी और उन्होंने नागपुरकरजी के साथ समझौता कर लिया। अमरावती के पास समझौता हुआ। भोंसलों ने पेशवाओं को चौबीस लाख का मुल्क दिया। उसमें से माधवराव ने पन्द्रह लाख का मुल्क निजाम को देकर उससे मित्रता कर ली।

उत्तर में होलकर और शिन्दे उत्तर की समस्याओं से जूझ रहे थे। दिल्ली की बादशाहत पर अँगरेज़ दृष्टि रखे हुए थे। माधवराव ने उत्तर के प्रबन्ध के लिए राघोबाजी को फ़ौज देकर भेजा और वहीं से नागपुर की मुहीम पूरी करके

थे पीछे लौटे ।

नागपुरकर का पराभव करके माधवराव पीछे लौटे । उन्होंने राघोबाजी को कुमुक देकर उत्तर की ओर भेज दिया था । स्वास्थ्य के लिए उनको जल्दी से जल्दी पुणे पहुँचना था । नागपुरकर की मुहीम में निजाम और वे बहुत पास आ गये थे । परन्तु राघोबाजी की उपस्थिति के कारण मुक्तमन से मिल नहीं पाये थे । राघोबा उत्तर की ओर गये थे । सखाराम बापू भी वहाँ नहीं थे । निजाम ने भी मिलने की इच्छा प्रकट की थी । माधवराव ने इस अवसर से लाभ उठाया और उन्होंने निजामअली का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया । माधवराव की ओर से घोंडोराम वकील और कृष्णराव बल्लाल—ये विश्वासपात्र व्यक्ति बातें कर रहे थे । निजामअली की ओर से बेरजंग और स्वयं प्रधानमन्त्री रुक्नुद्दौला तन-मन से इस भेंट के लिए प्रयत्न कर रहे थे । भेंट का स्थान कुरुमखेड़ की ओर बनाया गया ।

जब पेशवे कुरुमखेड़ के पास पहुँचे तब उनको पता चला कि निजामअली ने भेंट के लिए विशाल पैमाने पर तैयारी की थी । प्रत्येक मुकाम पर निजामअली के सरदार आ रहे थे । माधवराव से पहले निजामअली कुरुमखेड़ के पास छावनी लगाये राह देख रहे थे ।

ठण्ड के दिन होने के कारण वातावरण प्रसन्न था । माधवराव निजाम से भेंटने के लिए बाहर निकले । घुड़सवारों का पथक आगे जा रहा था । निजाम और पेशवे—इन दोनों की छावनियों के बीच जगह में भेंट के लिए शामियाना लगाया गया था । शामियाने पर लहराता हुआ आसफजाही झण्डा जैसे ही दूर से दिखाई दिया, वैसे ही अग्रसर सवारों ने चाल धीमी कर दी । उनके उमदा घोड़े—जो भीमानदी के प्रदेश के थे—शिष्टाचार के संकेत के साथ ही बड़ी शान से क़दम रखते हुए चलने लगे । दूर से पण्डित प्रधानजी को स्वागत के लिए आता हुआ आसफजाही मुतालिकों का पथक अब स्पष्ट दिखाई देने लगा । स्वागत के लिए आते हुए उस पथक के डंके की धीमी-धीमी आवाज सुनाई दे रही थी । डंके के ऊँट बाण की मार की दूरी पर आते ही पेशवाओं के अग्रसर पथक रुक गये । अनुशासनबद्ध चलते हुए अग्रसर सवार दोनों ओर थोड़े-थोड़े हट गये । उन्होंने इतनी जगह छोड़ दी, जिसमें होकर दो घोड़े जा सकें । डंके के ऊँट पेशवाओं के अग्रसर पथक को अपनी दायीं ओर छोड़कर आगे बढ़ गये । उसी समय पेशवाओं के वकील, जो निजाम के दरबार में थे, अग्रसर पथक के आगे आये ।

पेशवाओं के घोंडोपन्त वकील तथा कृष्णराव बल्लाल जब थोड़ी दूर रह गये, तभी मुतालिकों का पथक रुक गया। उस पथक के अग्रभाग में पैर ढंकने-वाले पाजामों और कुरतों पर कलाबत्तू की जाकिटें पहने विशालकाय अरब और पठान सवार चमचमाती तेगें लिये चल रहे थे। जैसे ही पेशवाओं के वकील पास आये, वैसे ही अग्रभाग में खड़े हुए दो विशालकाय काले खोजों ने अपने हाथों के तेग छाती के सामने तिरछे रखकर, सिर झुकाकर उनको कुनिसात किया। आगे बढ़कर वकीलों के घोड़ों की रेशमी लगामें पकड़ लीं। उस इशारे को समझकर वकील घोड़ों से उतर पड़े। उनके साथ जो सवार थे, वे भी उतर पड़े। वकीलों के नीचे उतरते ही दूर पर दिखाई देनेवाला हरा आफ़ताबगीर धीरे-धीरे आगे सरकने लगा।

अरबसवार एक ओर हट जाने के कारण उस खाली जगह में बड़ी शान से आते हुए मुतालिक सवार वकीलों को दिखाई दे रहे थे। मुतालिक आ रहे थे। उनके पीछे सहस्र अरबों का पथक चल रहा था। उनके पीछे कत्थई रंग के एक श्रेष्ठ अरबी घोड़े पर बैठकर मुतालिक रुक्नुद्दौला आ रहे थे। हलके पैरोंवाले उन चपल जानवरों की डोरी दो विशालकाय खोजों ने पकड़ रखी थी। उन घोड़ों के मस्तक पर पट्टी पर चांदी का चांदतारा लगा हुआ था। गलों में मुहरों की मालाएँ थीं।

होंठों के कोनों पर घनी मूँछोंवाला, छोटी-सी कत्थई दाढ़ी और गठीले बदनवाला लम्बा-तड़ंगा रुक्नुद्दौला दायें हाथ में घोड़े की लगाम थामे आगे आ रहा था। बायें हाथ की मुट्ठी दुपट्टे पर रखी हुई थी। स्थिर दृष्टि से वह सामने से आनेवाले पेशवाओं के वकीलों की ओर देख रहा था। वकीलों के पास आते ही रुक्नुद्दौला उतर पड़े और आदरपूर्वक पास गये। दोनों मिले और पेशवाओं की सवारी की ओर चलने लगे। माधवराव दिखाई देते ही मुतालिक ने अपने दोनों हाथ कलाबत्तू के हरे रूमाल से बांधे। पेशवाओं के वकील ने माधवराव के घोड़े के पास आकर धीमी आवाज़ में कहा,

"श्रीमन्त, मीर मुसाखान बहादुर इहतिशान् जंग रुक्नुद्दौला!"

तत्क्षण मुतालिक ने झुककर कुनिसात किया और वे बोले, "अजीम पण्डित पन्तप्रधान! जिन्दगाने अलि आला हज़रत नवाब साहब बहादुर निजाम उल्मुल्क शामियाने में श्रीमन्त का इन्तज़ार कर रहे हैं, नाचीज़ की दरख्वास्त है कि आप चलने की कृपा करें।"

केवल सिर हिलाकर उनके कुनिसात को स्वीकार करके माधवराव ने वकीलों से कहा, "मुतालिकजी से कहिए—कि आप आगे चलकर सूचना दें, हम आ रहे हैं।"

तत्क्षण मुतालिक पेशवाओं को पीठ न दिखाते हुए दस क़दम पीछे गये और फिर अपने पथक के पास पहुँचे। घोड़े पर बैठते हुए उन्होंने दायाँ हाथ ऊपर उठाया। उस इशारे के साथ ही ऊँट पर डंके बजने लगे और पेशवाजी के अग्रसर सवारों को दायें करके मुतालिकों का पथक लौटने लगा; पेशवाजी का पथक पीछे-पीछे जा रहा था।

कुरुमसेट गाँव को अर्धचन्द्राकृति घेरा डालकर बहनेवाली कादेपूर्णा नदी के विस्तृत वालुकामय तट पर विशाल असफ़जाही छावनी फैली हुई थी। छोटे खेमे, बड़े खेमे, डेरे और श्वेत कनातें नदी पर से आनेवाले सन्ध्याकालीन पवन से फरफरा रही थीं। असफ़जाही और पेशवाई छावनियों के बीच में बाण की मार तक की जगह खाली छोड़ी थी और उस स्वच्छ जगह में शामियाना खड़ा किया गया था। लगभग तीन सौ हाथ की लम्बाई-चौड़ाईवाले उस शामियाने के पिछले भाग में डेरे सजे हुए थे तथा उनकी रंगबिरंगी कनातें पवन से फर-फरा रही थीं। शामियाने के प्रवेश-द्वार पर अन्दर के स्तम्भ का आधार लेकर मख़मली कपड़े की शुभ्र मेहराबें बनायी गयी थीं तथा उनपर क़ीमती चिकों के परदे लटकाये गये थे। उन परदों के ऊपरी भाग में लगे हुए मोतियों के तोरणों के पन्नों के लटकन परदों के किनारों पर झूल रहे थे। शामियाने के सभाकक्ष में ऐसा ईरानी ग़लीचा बिछा हुआ था कि उसपर पैर रखते ही वह उसमें धँस जाता था। एक विशेष ओर पन्द्रह हाथ चौड़ी और बीस हाथ लम्बी कमर तक ऊँचाई की मसनदों की बैठक लगी हुई थी। उस बैठक पर शुभ्र चादर बिछी हुई थी। बैठक के मध्य-भाग में कलाबत्तू का काम किया हुआ हरा ग़लीचा बिछा हुआ था। घुटने-भर ऊँचाई की सहारनपुरी जालीदार धूप-दानियों से सुगन्धित धुएँ के छल्ले सारे शामियाने में फैल रहे थे। बैठक के दोनों ओर तिपाइयों पर मुरादाबादी चाँदी के पीकदान रखे हुए थे। बहुमूल्य हुक़्क़ों पर मीनाकारी हो रही थी, उनकी नलियों पर कलाबत्तू का काम हो रहा था—वे चमचमा रहे थे। छत से लगे हुए बड़े-बड़े नक़्क़ाशीदार चिराग़दान हवा से हिल रहे थे। शामियाने के बाहर अरबों का ज़बरदस्त पहरा था। प्रवेश-द्वार पर रेशमी झालर लगे हुए सोने के गुर्ज हाथ में लिये गुर्ज़बरदार खड़े थे।

ऊँटनी पर बजते आनेवाले डंके की आवाज़ स्पष्टतर होती जा रही थी। उसी समय अलक़ाब की[1] पुकारें सुनाई देने लगी थीं। पेशवे शामियाने की सीमा में आ गये थे। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खड़े हुए अरब सिर हिलाकर पेशवों का मुजरा कर रहे थे। पेशवे मानसहित उनको स्वीकारते हुए आगे जा रहे थे।

---

१. दरबार में राजा के प्रवेश के साथ ही उच्चारित की जानेवाली बिरुदावलि।

पेशवाओं का श्वेत-शुभ्र भीमानदी से तट का घोड़ा खुरों की आवाज़ करता हुआ शान से छाती निकाले आ रहा था। शामियाने के सामने आते ही मुतालिक ने आगे बढ़कर घोड़े की लगाम पकड़ी और पेशवे उतर पड़े। शामियाने के प्रवेश-द्वार की ओर उनके पैर मुड़ गये।

प्रवेश-द्वार में बन्दगाने आली आला हज़रत नवाब बहादुर निजाम उल्मुल्क स्वयं पेशवाजी के स्वागत के लिए खड़े थे। माधवराव पेशवा उनके सामने आकर खड़े हो गये। दक्षिण के दो शक्तिशाली राज्यों के सार्थक प्रतीक ही मानो आमने-सामने खड़े थे। उस समय के दो सत्ताधीश पिछला पचास वर्ष का इतिहास भूलकर तथा निकटवर्ती सलाहकारों को एकदम अलग रखकर प्रेम-भाव से तथा विश्वास से एक-दूसरे के सामने खड़े थे।

पेशवाजी ने देह पर श्वेत-शुभ्र चुन्नटदार कुरता पहन रखा था। उनकी लाल पगड़ी पर पाचू का एकदम हरा पिप्पलपर्ण[1] बड़ा सुन्दर लग रहा था। निजाम के एकदम हरे किमोश पर हीरे के पानाकार पदक से लगा हुआ माणिक्यों का शिरोपा[2] बड़ा सुन्दर लग रहा था। देह पर ज़री-जटित अंजीरी जामा पहने हुए पूरी ऊँचाई का, साँवला सलोना तीसवर्षीय निजाम अपने से आठ-दस वर्ष छोटे कर्पूर गौर इकहरे बदन के तरुण पेशवा के सौन्दर्य पर प्रसन्न होकर अपनी कंजी बादामी आँखों से टकटकी लगाकर देख रहा था। निजाम का व्यक्तित्व देखकर मन ही मन आनन्दित हुए माधवराव ने चेहरे पर एक भी रेखा को बदलने न दिया और वे अथाह समुद्र की नीलिमा की छटा-वाले अपने गहरे पानीदार नेत्रों से उसकी ओर अपलक देख रहे थे। माधव-राव के नेत्रों में बुद्धिमत्ता और दबदबा का तेज क्रीड़ा कर रहा था तो निजाम की आँखों में सौम्य प्रसन्न छटा छायी हुई थी। माधवराव के भाल पर चन्दन का आड़ा तिलक लगा हुआ था तथा उसपर कस्तूरी का काला निशान लगाया गया था। कानों में कुण्डल थे। कुण्डलों के पानीदार मोतियों की गुलाबी आभा कपोलों पर पड़ रही थी। निजाम ने जो हीरों का हार पहन रखा था, वह अंजीरी जामे का रंग पीकर एक निराली छटा से जगमगा रहा था। पेशवाजी के गले में बड़े-बड़े मोतियों का एक ही हार था। कमर के चारों ओर जो कलाबत्तू का फेंटा बाँध रखा था उसमें खंजर, कटार और लम्बी तलवार—ये शस्त्र खुँसे हुए थे। निजाम ने दोनों हाथों पर सुनहले दस्त-बख्तावर चढ़ा रखे थे, उनपर अनेक प्रकार के रत्नों का नाजुक काम किया हुआ था। उसके कलाबत्तू के दुपट्टे में पेशकब्ज, कटार और लम्बी रत्नजटित म्यान में तलवार खुँसी हुई थी।

१. माथे पर बाँधने का एक पदक। २. एक शिरोभूषण।

दोनों के वकीलों ने तत्क्षण आगे बढ़कर एक-दूसरे का परिचय कराया, उसके बाद निजाम ने आगे बढ़कर दिल खोलकर हँसकर कहा, "पण्डित पन्त-प्रधान, आप हमारी अर्ज मंजूर कर यहाँ आये हैं, इसलिए हम आपके शुक्र-गुजार हैं। आपसे मिलकर हमें बहुत खुशी हुई है।"

"नवाब बहादुर! आपके दर्शनों से हमको बहुत आनन्द हुआ है।" माधव-राव ने सिर झुकाकर कहा।

निजाम ने आगे बढ़कर स्नेह से माधवराव का हाथ अपने हाथ में ले लिया तथा उनको लेकर शामियाने में प्रवेश किया।

निजाम अली ने बड़े सम्मान के साथ माधवराव को ले जाकर बैठकी पर बैठाया। समीप में निजाम अली बैठ गये। निजाम अली के पीछे दोर्जग और रुक्नुद्दौला खड़े थे। पेशवा के पीछे घोंडोराम वकील और कृष्णराव बल्लाल आदरपूर्वक खड़े थे। इनके अतिरिक्त दो दुभाषिये और थे तथा उनके अलावा और कोई नहीं था।

कुछ क्षणों तक शान्ति रही। कौन प्रारम्भ करे यह समझ में नहीं आ रहा था। भाषण का प्रारम्भ नवाब ने किया। वे बोले—

"पण्डित पन्तप्रधान, आपकी तबीयत ठीक है न?"

माधवराव तकिये के सहारे टिकते हुए बोले,

"आपकी शुभेच्छा से ठीक है। हम भी आपके आरोग्य की कामना करते हैं।"

"बातें बढ़ रही थीं। धीरे-धीरे औपचारिकता नष्ट हो रही थी। नवाब बोले, "सच पूछो तो, आप भोंसलों पर चढ़ाई कर देंगे, यह विश्वास हमें नहीं था।"

"क्यों? भोंसले स्वजातीय हैं इसलिए?" माधव ने पूछा।

"हाँ!"

"नवाब साहब, हम यह कह देना चाहते हैं कि जब क़रार होते हैं तब उनको निभाने के लिए हम कोई कसर नहीं छोड़ते।" माधवराव ने कहा।

"यह हम जानते हैं।"

"और हमारा विश्वास है कि आज जो मित्रता हुई है, वह स्थायी रहेगी।"

"इसमें सन्देह नहीं होना चाहिए।"

"स्पष्ट कहूँ तो कोई बात तो नहीं?" माधवराव ने पूछा।

"जरूर! साफ-साफ मनों से बोलने के लिए ही हम मिल रहे हैं।" नवाब साहब हँसकर बोले, "क्यूँ रुक्नुद्दौला, सच है न?"

"जी हुजूर ! बिलकुल सच !"

"आज तक अनेक समझौते हुए।" माधवराव बोले, "सूचियाँ बनीं, परन्तु उनका जो हश्र हुआ...."

नवाब साहब जोर से हँसकर बोले, "पण्डित पन्तप्रधान, अच्छी बात पूछी। आज तक जो समझौते हुए, वे दोनों पक्षों की ओर से मन में भय रखते हुए, हुए ! मन में सन्देह रखते हुए, हुए ! फिर वे चाहे पेशवाओं ने किये हों, चाहे हमने किये हों ! ऐसे समझौतों की तो यही गति होगी।"

"और अब ?"

"अब हम लोग मित्रता के नाते पास आ रहे हैं। हम दोस्ती में दुश्मनी नहीं डालते हैं। आप चाहेंगे तो आपकी इच्छानुसार समझौते की सूची भी बनवा लेंगे।"

प्रेमभाव से नवाब के हाथ दबाते हुए माधवराव बोले, "नहीं, समझौता और उसकी सूची की हमको जरूरत नहीं है। यह भेंट ऐसी होने दो कि भविष्य में हमको समझौतों के लिए इकट्ठे होने का अवसर ही न आये। भविष्य में मिलेंगे तो मित्रता के नाते !"

रुक्नुद्दौला ने ताली बजायी। अनुशासनबद्ध आठ सेवक हाथों में थाल लिये आये। माधवराव ने हाथ से स्पर्श कर नजराना स्वीकार किया। थालों पर से आच्छादन हटाये गये। पहले थाल में रत्नजटित गुलाब का स्वर्णपुष्प था। अन्य थालों में कलाबत्तू के कपड़े, इत्र, कलाकृतियुक्त सुवर्णपात्र आदि थे। माधवराव का ध्यान उस फूल की ओर लगा हुआ था। निजाम अली जल्दी से उठे। उस फूल को माधवराव के हाथ में देते हुए बोले,

"पण्डित पन्तप्रधान, यह हैदराबाद की असल कारीगरी का नमूना है।"

"सुन्दर !" माधवराव के मुख से निकला।

"आपको यदि यह इतना प्रिय लगता हो तो ऐसी खास वस्तुएँ तैयार करवाकर..."

"नवाब साहब, इसकी जरूरत नहीं है। हमारे कथन का और अर्थ लगा लिया है।"

"हम समझे नहीं।" निजाम अली बोले।

"जिस समय ऐसी भेंटे होती हैं, उस समय अधिकतर रत्नजटित तलवारें और कटारें ही नजर की जाती हैं। उनके बदले में गुलाब का फूल देकर जो गुणग्राहकता आपने व्यक्त की है उसकी सानी नहीं है।"

"वाह ! बहुत अच्छे ! वाहऽ ! पण्डित पन्तप्रधान, आपके रसिक मन की हम क़दर करते हैं।"

यह कहकर निजाम अली ने सिर झुकाया और कहा, "परन्तु यह रसिकता हमारी नहीं है। वह इस रुक्नुद्दौला की है।"

रुक्नुद्दौला की ओर कौतुक-भरी दृष्टि डालते हुए माधवराव बोले, "वाह रुक्नुद्दौला ! हम तुमपर प्रसन्न हैं। राजाओं की मित्रता उनके पास रहनेवाले सलाहकारों पर ही आश्रित होती है। आप-जैसे सच्चे मन से स्नेह करनेवाले लोग हमारे सलाहकार होंगे तो हमारी मित्रता निश्चय ही अक्षय रहेगी।"

यह कहते हुए माधवराव ने अपनी कलाई पर चमकता हुआ रत्नजटित कंकण उतारा और वे बोले,

"रुक्नुद्दौला, इसको इस अवसर की याद के रूप में रख लो।"

रुक्नुद्दौला ने नवाब की ओर देखा। नवाब साहब ने जैसे ही सिर हिलाकर सम्मति दी वैसे ही रुक्नुद्दौला आगे बढ़ा। उपहार लेकर उसने दोनों को त्रिवार मुजरा किया और तीन क़दम उसी स्थिति में पीछे जाकर वह नवाब साहब के पीछे खड़ा हो गया।

तदनन्तर माधवराव ने नवाब साहब को दूसरे दिन का निमन्त्रण देकर पहली भेंट समाप्त होने की सूचना दी। निजाम अली ने जैसे ही पीछे देखा, वैसे ही इत्रगुलाब दिया गया। श्रीमन्त उठे। निजाम अली पहुँचाने के लिए डेरे से बाहर आये। पहली भेंट में ही दोनों के मन एक दूसरे की ओर आकर्षित हो गये थे। माधवराव के ओझल होने तक निजाम अली उनके अश्वारूढ़ पृष्ठभाग की ओर देखते रहे।

इसके बाद प्रतिदिन मिलना-जुलना हो रहा था। कभी निजाम के डेरे में तो कभी माधवराव के डेरे में। कभी-कभी दोनों ही अपने-अपने पथकों के साथ दूर तक टहलने निकल जाते। दोनों की छावनियों का अलग-अलग अस्तित्व नहीं रहा था। दोनों ओर से बहुमूल्य उपहारों का आदान-प्रदान हो रहा था। भेंट का अन्तिम दिन आया। पन्द्रह दिन कैसे बीत गये यह किसी को पता भी नहीं चला। निजाम अली के शामियाने में दोनों मिल रहे थे। पहली भेंट यहीं हुई थी। दोनों पक्षों के दुभाषिये आशय बता रहे थे, किन्तु इतना भी अवकाश उनको नहीं मिल रहा था। बातें करते-करते माधवराव बोले,

"नवाब साहब ! हम कल जायेंगे। आपसे भेंट करते समय जाने-अनजाने कभी कुछ अप्रिय यदि हमारे मुख से निकल गया हो तो उसपर आप ध्यान...."

"हाँ-हाँ !" निजाम अली आगे झुककर माधवराव के हाथ प्रेम से अपने हाथों में लेते हुए बोले, "पण्डित पन्तप्रधान, दोस्ती में यह भाषा नहीं चलती है।"

माधवराव हँसे। निजाम अली शुद्ध उर्दू में बोले, "पन्द्रह दिनों से हम लोग रोज मिल रहे हैं। हमारी मित्रता बढ़ रही है; परन्तु मन को सन्तोष नहीं हो

रहा है।"

"क्यों ?" माधवराव ने पूछा।

"कारण यह है कि हमारे संकट के समय आप दौड़े आये। आप और हम सच्चे मित्र बन गये; परन्तु मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सका। आपको न शिकार का शौक़ है, न नाच-गाने का। मेजबानी तो दूर ही रही। बस, खुले मन से बातें कर ली हैं और लौट रहे हैं।"

माधवराव मुक्तमन से हँसे। वे बोले, "खुले मन से बातें कर ली हैं, यह सच है, लेकिन खुले मन से जा नहीं रहे हैं।"

जैसे ही दुभाषिये ने यह कहा, वैसे ही निजाम अली बोले, "वाह! बहुत खूब! यद्यपि यह सच है, फिर भी मेरी एक प्रार्थना है।"

"कहिए न!"

"मेरी इच्छा है कि आप अपनी एक तो इच्छा मुझको बतायें ही। यदि मैं उसको पूर्ण कर सका, तो मैं अपने को परम सौभाग्यशाली समझूँगा।"

माधवराव की आँखों में एक निराली ही चमक आकर चली गयी। वे बोले,

"आप यदि हठ ही कर रहे हैं तो एक इच्छा जरूर है।"

"कहिए। हम उसको सुनने को आतुर हैं।"

"जब हम नागपुर की मुहीम पर से आ रहे थे तब थोड़े फेर के रास्ते से वेरूल क्षेत्र में गये थे। अत्यन्त दुर्गम और जंगल में छिपा हुआ स्थान है यह। केवल धार्मिक भावना से मैं यह कह रहा हूँ, यह मत समझिए; परन्तु वहाँ का शिल्प इतना सुन्दर है कि उसको देखते ही मन कहीं खो जाता है। उसका वर्णन करने में वाणी समर्थ नहीं है। दोनों आँखों में उसको समाने में दृष्टि असमर्थ रहती है। आपका स्नेह स्थायी रहेगा, इसमें हमें सन्देह नहीं है, परन्तु यदि दुर्भाग्य से ऐसा न हो सके तो आपके द्वारा अथवा हमारे द्वारा उस शिल्प को धक्का न लगे, उसका सौन्दर्य नष्ट न हो....इतना वचन ही यदि आप दे देंगे तो हम समझेंगे कि हमारी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गयीं। हमारी यह भेंट चिरकाल तक सार्थक हो जायेगी।"

निजाम अली एकदम आगे सरके और अत्यन्त प्रेमभाव से माधवराव को बाँहों में भरते हुए बोले, "वाह! पण्डित प्रधान, वाह! हम स्वयं को रसिकों का राजा समझते थे; परन्तु आज वह अभिमान एकदम उतर गया है। आपकी रसिकता की सीमा नहीं है। आपकी इच्छा को आज्ञा समझकर निष्ठापूर्वक उसका पालन करेंगे। दोस्ती में, दुश्मनी में...."

राक्षस-भुवन की अपेक्षा एक भिन्न परिस्थिति में भिन्न नाते से दो सत्ताधीशों

की भेंट हुई थी। श्रीमन्त के स्नेह को निज़ाम ने जाना। उसका विश्वास बढ़ा। इत्रगुलाब दिया गया और निज़ाम-पेशवाओं की कुरुमखेड की अन्तिम भेंट समाप्त होने की घोषणा तोपों को दागकर की गयी।

निज़ाम से भेंटकर माधवराव कुरुमखेड से निकले तो ग्रहण के कारण टोंक में रुके। निज़ाम से भेंट करने का श्रेय मिला—यह सोचकर वे सन्तुष्ट थे। गोदावरी के किनारे बसे हुए टोंक में इसी प्रसन्नता में वे अपना समय यापन कर रहे थे। गोदावरी तट पर उनकी छावनी पड़ी हुई थी।

दोपहर के बाद माधवराव निद्रा से जग गये। ग्रीष्म के दिन होने के कारण ग्रीवा और चेहरा पसीने से तर हो गये थे। सिरहाने रखा हुआ अँगोछा लेकर उन्होंने पसीना पोंछा। दूसरा कोई नहीं था। डेरे की कनातें फड़फड़ा रही थीं। पवन छूटने का वह चिह्न था। माधवराव ने पुकारा,

"श्रीपति!"

श्रीपति अन्दर आया। उसने माधवराव के आगे तश्त रख दिया। शीतल जल से मुख धोकर माधवराव को चैन पड़ा। श्रीपति बोला,

"बापू आ गये हैं।"

"कब?"

"जी, दोपहर को ही!"

"कहाँ हैं?"

"छावनी में हैं जी।"

"अच्छा!" माधवराव बोले, "उनको बुलवाओ।"

बापू माधवराव के डेरे में आये। उस समय माधवराव बैठकी पर बैठे हुए थे। बापू को देखते ही हाथ में लगी मूँगों की जपमाला अलग रखकर माधवराव बोले,

"आइए बापू। कब आये?"

"अधिक देर नहीं हुई।"

"बैठिए।"

बापू आदर से बैठ गये। माधवराव ने पूछा, "पुणे की खबर क्या कहती है?"

"सब ठीक है।"

"तो फिर बीच में ही कैसे लौट आये?"

"दादा साहब फ़ौज लेकर उत्तर की ओर चले गये और दक्षिण में हैदर के

पुनः विद्रोह करने की खबरें आ रही हैं। इसलिए इन सब बातों को आपको बताने के लिए....''

"ठीक !" माधवराव बोले, "ये खबरें हमको नाना से प्राप्त हुईं। पुणे पहुँचते ही हम कर्नाटक की मुहीम की तैयारी करेंगे। अँगरेजों और हैदर में जो समझौता हुआ है, वह निश्चय ही दुर्लक्ष्य करने लायक नहीं है...।"

कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोला, अन्त में बड़े साहस से बापू ने पूछा, श्रीमन्त! कुरुमखेड में आपकी और निजाम अली की भेंट हुई है, ऐसा सुना है?"

"हुई है न! वापस लौटते हुए हमने पुनः निजाम अली से भेंट की।"

"तो फिर आपके साथ कौन था?"

"किसी की जरूरत ही क्या थी? निजाम अली की और हमारी भेंट होनी थी। भाषा की कठिनाई न आये इसलिए दुभाषिये थे।"

बापू कुछ नहीं बोले। माधवराव बड़े ध्यान से बापू पर प्रतिक्रिया को देख रहे थे। माधवराव के चेहरे पर रहस्यमयी हँसी खेल रही थी। वे बोले,

"क्यों बापू? आश्चर्य हुआ?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं। परन्तु इतनी महत्त्वपूर्ण भेंट अधिक सावधानी से होनी चाहिए थी। आज्ञा हो तो समझौते के बारे में कुछ पूछूँ?"

"जरूर! समझौता कुछ नहीं हुआ। उलटे हमने ही निजाम को थोड़ा-सा मुल्क दिया है, मित्रता की खातिर...."

"समझौता कुछ नहीं?"

"नहीं। खुले मन से बातें हुईं, इतना ही।"

बापू हँसे। माधवराव ने पूछा,

"क्यों हँसे बापू?"

"कोई खास बात नहीं।" बापू बोले।

"कहिए न!"

"श्रीमन्त! किसी को खबर भी न देते हुए आप रास्ता छोड़कर निजाम से क्यों मिले? अकेले?"

माधवराव जोर से हँसे। बोले, "बापू! यह आप नहीं जान सके? इतने वर्षों से आपका राजनीति से सम्बन्ध है। आप यह जान गये होंगे।"

बापू स्तब्ध थे। श्रीमन्त बोले,

"बोलिए न बापू!"

बापू ने थूक निगला और कहा, "श्रीमन्त! राज्य को निकट का खतरा कहाँ से है, यह आपने भाँप लिया और यह चाल चली!"

"मैं नहीं समझा।"

"साफ़-साफ़ कहा जाये तो खतरा तीन ओर से है। एक निजाम, दूसरे भोंसले और..."

"बोलो बापू ! हम सुनने के लिए उत्सुक हैं।"

"दादा साहब...." बापू कह गये।

माधवराव के चेहरे पर हँसी झलक उठी। वे बोले,

"फिर ?"

"फिर क्या ? आपको यह मालूम हो गया है कि भोंसले अथवा दादा साहब आक्रमण करेंगे तो निजाम की सहायता से ही करेंगे। अकेले आक्रमण करने की हिम्मत किसी की नहीं है। यह जानकर आप निजाम से मित्रता करके निश्चिन्त हो गये।"

"वाह ! बापू, आपकी बुद्धिमत्ता के प्रति हमें सदैव जो कुतूहल रहता है वह इसीलिए। आप जब हमसे मिलने के लिए आये, तभी हम यह जान गये। आपको यह समझौता अच्छा लगा न ?"

"श्रीमन्त ! आपकी स्तुति नहीं कर रहा हूँ, परन्तु आज तक आपके शासन-काल में ऐसी कूटनीतिक चाल नहीं चली गयी है, इसपर विश्वास रखिए।"

विषय बदलते हुए श्रीमन्त बोले, "बापू, हम पूना जायेंगे उस समय बातें करेंगे। कल आप पुणे लौट जाइए। सभी जागीरदारों को सेना और रसद इकट्ठी करने को कह दीजिए। हम पहुँचते ही पटवर्धनजी को सन्देश भेजेंगे। हम पुणे पहुँचें उससे पूर्व ही हमको फ़ौज की पूरी जानकारी मिल जाये—ऐसी व्यवस्था कीजिए। फ़ौज के खर्च का मैंने विचार कर लिया है। उसका विवरण मैं रात को दूँगा।"

टोंक में ग्रहण समाप्त कर माधवराव पुणे आये। शनिवार-भवन में चहल-पहल मच उठी। हैदर से युद्ध की तैयारी ज़ोर-शोर से शुरू हो गयी। प्रतिदिन खलीते बाहर जाने लगे। सरदार मण्डलियाँ शनिवार-भवन के चक्कर लगाने लगीं। मुहीमों की रूपरेखा तैयार की जा रही थी। राघोबा दादा के साथ शिन्दे, होल्कर, नारो शंकर, विट्ठल शिवदेव—इन लोगों के चले जाने से हैदर के विरुद्ध मुहीम का सारा भार पटवर्धनजी और घोरपडेजी पर था। पटवर्धनजी को पहले भेजकर माधवराव ने विजयादशमी के बाद चढ़ाई की तैयारी कर ली। प्रत्येक मुहीम से पहले पेशवे जागीरदारों से रसद सहित सेना इकट्ठी करते थे, परन्तु उस समय उन्होंने मुहीम के खर्च के लिए सैन्य के स्थान पर कर लेने की नीति रखी। तैयारी पूरी होते ही येऊर, सिद्धटेक, मोरेश्वर, करकुम्ब और

जेजुरी—इन पांच जगहों की यात्रा सम्पन्न कर पुणे का कार्यभार नाना फडणीस को सौंपकर पेशवे दक्षिण पर चढ़ाई करने निकले।

पेशवाओं की फ़ौजें चली जा रही थीं। सरदार पचास-साठ कोस की पट्टी में कर वसूल करते हुए जा रहे थे। स्वयं पेशवे विजापुर से निजाम की हद में रायचूर और मुद्गल से होकर गये। गोपालराव पटवर्धन वेलगांव से कित्तूर का कर वसूल करते हुए गये। जिस गति से माधवराव हैदर पर आक्रमण करने जा रहे थे, उस स्फूर्ति को देखकर उनके साथ के पटवर्धन, सखाराम वापू, कृष्णराव काले, हरिपन्त फडके, मोरोवा फडणीस आदि लोग भी उसी स्फूर्ति से आगे वढ़ रहे थे। पंचमहल में अधिकार स्थापित कर माधवराव श्रीरंगपट्टण की ओर मुड़े। हैदर पीछे हट रहा था। परन्तु पेशवा को भावी संकट की पूर्ण जानकारी थी। उन्होंने निजाम को बुलाया। निजाम अपने लड़के और फ़ौज के साथ मुहीम के लिए वाहर निकला।

शिरे को अधिकार में कर उसके सूवेदार मीर रिजा को माधवराव ने अपनी ओर मिलाया। मीर रिजा हैदर का साला था। उसको जागीर सौंपकर वे आगे वढ़े। चार महीने वीत चुके थे। वर्षा आने से पहले ही माधवराव हैदर को झुका देना चाहते थे। मदगिरि के क़िले में विदनूर की रानी और उसका लड़का—दोनों क़ैद थे। उनको छुड़ाकर कोलार तक के प्रदेश पर माधवराव ने मराठा आधिपत्य स्थापित किया। अव हैदर के अधिकार में केवल दो जगहें—श्रीरंगपट्टण और विदनूर—रह गयी थीं। उसी समय पेशवाओं की आज्ञा से निजाम चढ़ता चला आ रहा है—यह हैदर को पता चला। यह वार्ता सुनकर हैदर के होश उड़ गये। उसने अप्पाजी राम और करीमखान—इन वकीलों को मराठों के पास भेजा।

वर्षा निकट आ रही थी। पेशवे विचार कर रहे थे। एक दिन पटवर्धन आये। माधवराव ने पूछा,

"गोपालराव, क्या कहता है हैदर ?"

"श्रीमन्त ! आपकी सभी शर्तें हैदर स्वीकार कर लेगा। यदि आज्ञा मिले तो श्रीरंगपट्टण और विदनूर पर अधिकार कर हैदर को पराजित करना कठिन नहीं है।"

माधवराव हँसकर वोले, "हैदर को क्या इतना दुर्वल समझते हैं ? वह भले ही हमारा शत्रु हो, फिर भी उसके शौर्य को हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा। जितना लग रहा है, उतना सरल नहीं है विदनूर का पतन। वर्षा आ गयी है। हमको वर्षा में छावनियाँ यहाँ नहीं रखनी हैं। नाराज़ सैनिकों से विजय नहीं प्राप्त होती है।"

"समझौता करने की इच्छा है क्या ?"

उच्छ्वास छोड़कर माधवराव बोले, "हाँ! गोपालराव, हमने अपना प्रदेश अपने अधिकार में ले ही लिया है, कर और ले लेंगे!"

"परन्तु इतनी जल्दी करने का कारण ?"

"कारण ? पुणे से आये हुए खलीते! काका उत्तर की चढ़ाई से आ गये हैं। बहुत उलझनें पैदा हो गयी हैं। कोल्हापुरकर ने अँगरेज़ों से समझौता कर लिया है। काका का स्वभाव आपको मालूम ही है। सलाहकार बापू भी नहीं हैं। राज्य की दृष्टि से वहाँ रहना आवश्यक है। और हमारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है।"

यह सच था। जब-तब ज्वर सिर उठा रहा था। कभी-कभी साँस फूलने लगती थी। थकान महसूस होती थी। माधवराव ने सभी सरदारों को पास बुलाया। उनको अपने समझौते का विचार बताया। मुरारराव घोरपडे और पटवर्धन को छोड़कर सबने उस विचार का स्वागत किया। माधवराव बोले, "देखो, गोपालराव! आप, मैं और घोरपडे—इतने ही लोग हैदर को पराजित नहीं कर सकेंगे।"

माधवराव ने हैदर का समझौता स्वीकार कर लिया। हैदर ने मराठों का पहले का सारा प्रदेश दे दिया। तैंतीस लाख का 'कर' स्वीकार किया।

माधवराव के आदेश से सेना लेकर आये हुए निजाम को समझौता-वार्ता का पता चला। वह क्रुद्ध हो गया। उसने रुकनुद्दौला को माधवराव के पास भेजा। माधवराव ने पूछा,

"मीर मुसाखान, आपके नवाब बहादुर को राक्षस-भुवन की शायद याद नहीं रही। समझौता कब करना चाहिए, यह हम जानते हैं। निजाम को जो परेशानी हुई है, उसका हमको पता है। हम उनको हैदर से 'कर' दिलवायेंगे। वह मिल जाने पर आप लौट आइए।"

माधवराव के सन्देश की अवहेलना करने की शक्ति निजाम में नहीं थी। जो 'कर' प्राप्त हुआ, उसी को लेकर वह चुपचाप लौट गया। माधवराव भी पुणे की ओर लौटे। वर्षा के प्रारम्भ में ही वे पुणे में उपस्थित हो गये।

पुणे में आते ही माधवराव ने राजकाज की ओर ध्यान दिया। दादाजी के साथ उत्तर में गये हुए अनेक सरदार माधवराव से मिलने के लिए रुके हुए थे। राघोबाजी उत्तर से लाये थे पराजय और क़र्ज़। राघोबा मिलने के लिए आये, परन्तु पराजय का सारा उत्तरदायित्व उन्होंने माधवराव के ऊपर डाल दिया। वे बोले,

"माधव, हमने लिखा था कि कुमुक भेज देना, फिर भी तुमने कुमुक नहीं

भेजो ! अधूरी सेना से विजय कैसे मिलेगी ? तुम सेना भेजते और फिर देखते मेरी करामात !"

यह सुनकर माधवराव स्तब्ध रह गये। वे केवल हँसे। राघोबाजी ने पूछा, "हँसे क्यों ? क्या मैंने ग़लत कहा ?"

नकारार्थी सिर हिलाते हुए माधवराव बोले, "नहीं काका ! आप जो कह रहे हैं, वह सच है। राज्य की सत्तर प्रतिशत कुमुक आपको दी। बची हुई फ़ौज लेकर मैंने हैदर पर चढ़ाई की। अपना मुल्क वापस लिया। तीस लाख 'कर' वसूल किया और आप..."

"रुके क्यों ? पचीस लाख रुपये का क़र्ज़ हम ले आये, यही न ?"

"काका !"

"बस माधव ! अब और अधिक अक़ल तुमसे हम सीखना नहीं चाहते। हमारा क़र्ज़ तुम्हें बड़ा लगता है न ? तो फिर हमारा हिस्सा दो। अपना क़र्ज़ हम उतार देंगे।"

"कैसा हिस्सा ?" माधवराव ने राघोबाजी की आँखों से आँखें मिलाते हुए पूछा। उस दृष्टि से राघोबा भी व्याकुल हो गये। नज़र बचाते हुए वे बोले,

"राज्य का !"

"किसका राज्य !" माधवराव गरजे। क्षण-भर में उनका चेहरा लाल सुर्ख हो गया। वे बोले, "काका, किसका है यह राज्य ? आपका ? मेरा ? काका, छत्रपति के राज्य के दो टुकड़े होकर क्या हुआ यह मालूम नहीं है क्या ? वे स्वामी। उन्होंने राज्य के टुकड़े कर भी दिये तो वह क्षम्य है। परन्तु पेशवा तो राज्य के मालिक नहीं हैं। वे प्रधान हैं, यह भूल जाते हैं आप। चाहिए तो पेशवापद ले लीजिए। मैंने उसके लिए कभी मना नहीं किया है; परन्तु ऐसे विचार पुनः मन में न आने दीजिए।"

इतना ही कह पाये थे कि माधवराव को खाँसी आने लगी। उनके प्राण व्याकुल हो गये थे। राघोबा दौड़कर बढ़े। उनके हाथ को झिड़कारते हुए वे राघोबाजी के महल से बाहर निकले। राघोबा खिड़की के पास गये। माधवराव खाँसते हुए और झोंके खाते हुए नीचे के चौक से अपने महल की ओर जा रहे थे। बायाँ हाथ उन्होंने कसकर छाती पर रख रखा था। चौक के सेवक आश्चर्य से माधवराव की ओर देख रहे थे। माधवराव के ओझल होते ही राघोबा मुड़े। सामने गुलाबराव खड़ा था।

"गुलाब, तू कब आया ?"

"जी ! अभी-अभी आया हूँ।" गुलाबराव मुजरा करके बोला।

"और..."

"जयपुर की तीनों आ गयी हैं।"

"कहाँ हैं ?"

"जी ! सबको आनन्दवल्ली में रखकर सूचना देने के लिए आया हूँ।"

"शाबाश ! कल हम आनन्दवल्ली के लिए रवाना हो जायेंगे।"

माधवराव जग गये। दिन निकल आया था। उन्होंने मुख मोड़कर देखा। रमाबाई उनकी ओर देखती हुई खड़ी थीं। रमाबाई की ओर ध्यान जाते ही माधवराव के चेहरे पर हँसी खिल उठी। नित्य-नियमानुसार शाहू छत्रपति और गणेश की प्रतिमाओं को नमस्कार करके वे उठे। रमाबाई जल्दी से आगे बढ़ीं और उन्होंने तस्त उठा लिया। माधवराव बोले, "तस्त किस लिए ? आज तो मैं ठीक हूँ।" खिड़की के बाहर प्रकाश देखकर वे बोले, "नींद अच्छी आयी परन्तु उठने में देर हो गयी।"

रमाबाई बोलीं, "....परन्तु आज यहीं...."

"कहा न कि आज हमें बड़ा अच्छा लग रहा है ! हम स्नानगृह में चले जायेंगे; परन्तु आज आप जल्दी तैयार हो गयी हैं ?

"काकाजी जल्दी चले गये न ! आप सोये हुए थे !"

"कहाँ गये ?"

"आनन्दवल्ली को।"

"अच्छा !" माधवराव का आलस कहीं का कहीं चला गया। वे बोले, "यह देखो, तुम श्रीपति से जाकर कहो कि वह जल्दी से बापू को बुला लाये। हम स्नान करके अभी आते हैं।"

माधवराव जब स्नान-सन्ध्या करके आये तब वहाँ दूध व औषध लेकर रमाबाई खड़ी थीं। माधवराव बोले,

"आप यदि हमारे जीवन में न आयी होतीं तो प्रतिदिन यह लेना कठिन होता।"

"क्यों ?"

"क्यों ? इक्कीस वर्ष की अवस्था में प्रातः-सायं औषध लेना किसको अच्छा लगेगा ?"

"परन्तु यह क्या कोई अपनी इच्छा से लेता है ?"

"रमा, इच्छा इस शब्द का अर्थ हम कभी समझ पायेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है।" यह कहकर माधवराव ने दूध और औषध ले ली। रमाबाई को ओर से देख रहे थे। रमाबाई ने पूछा,

"क्या देख रहे हैं ?"

"तुमको देख रहा हूँ। तुमको देखकर कितना सन्तोष होता है। सारी चिन्ताएँ क्षण में दूर हो जाती हैं। इच्छा होती है कि तुम्हें छोड़कर कहीं न जायें।"

माधवराव के श्वेत-शुभ्र कुरते के बन्दों से उँगलियों से छेड़खानी करती हुई रमाबाई बोलीं, "तो फिर दूर जाने के लिए कहा किसने है ?"

"सच !" कहते हुए माधवराव ने अपने हाथ का घेरा रमाबाई की कटि में डाल दिया। क्षण-भर रमाबाई का मस्तक माधवराव के कन्धे पर टिक गया। दूसरे ही क्षण आलिंगन से दूर हटती हुई वे बोलीं,

"यह क्या ? कोई आ जायेगा न ?"

"कौन आ रहा है ?"

उसी समय श्रीपति अन्दर आया व सादर बोला, "सरकार, नाना-बापू ये लोग नीचे सभाघर में आ गये हैं। आज्ञा हो तो...."

"नहीं ! हम अभी आ रहे हैं।" माधवराव बोले। श्रीपति चला गया।

रमाबाई मुसकरा रही थीं। माधवराव ने पूछा,

"क्यों ? हँसीं क्यों ?"

"जा नहीं रहे थे न ?"

माधवराव एकदम गम्भीर हो गये। उनकी आँखों में जो हँसी थी वह लुप्त हो गयी। वे बोले,

"हमने कहा था न कि हम इच्छा शब्द को नहीं जानते हैं। जाने दो, हम नीचे जाकर आते हैं।"

"ठहरें" रमाबाई बोलीं।

"क्यों ?" कहते हुए माधवराव की दृष्टि रमाबाई की ओर गयी। रमाबाई का हाथ का पंजा मुँह पर था। आँखों में आश्चर्य था।

"क्या हो गया ?" माधवराव ने पूछा।

"थोड़ा ठहरें, इतने में मैं दूसरा कुरता लिये आती हूँ।"

"इस कुरते को क्या हो गया ?"

रमाबाई पास आयीं। माधवराव के कन्धे पर कुंकुम का धब्बा लग गया था। उसको झाड़ती हुई वे बोलीं, "कुंकुम लग गया है।"

माधवराव ने हँसकर उस धब्बे की ओर देखा, फिर वे बोले, "इतना ही है न ! तो इसलिए कुरता बदलने की क्या ज़रूरत है ?"

"रुकिए न" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "नीचे नाना-बापू आदि लोग होंगे, क्या कहेंगे वे ?"

"कुछ नहीं कहेंगे।" माधवराव बोले।

रमाबाई टकोर से उस धब्बे को झाड़ने का प्रयत्न कर रही थी। माधवराव बोले, "रहने दो रमा! जिन धब्बों की लज्जा होनी चाहिए, ऐसे धब्बे लगे होने पर भी हम उनको झाड़ नहीं सके। जिस धब्बे से आनन्द हो, ऐसा कम से कम एक धब्बा तो हमारी देह पर लगा रहने दो। अभी बड़े देवघर जाकर आना है। चलते हैं हम।"

कक्ष में नाना और बापू खड़े-खड़े माधवराव की प्रतीक्षा कर रहे थे। बापू ने पूछा, "नाना, आज सुबह ही सुबह बुलावा आ गया!"

"कुछ पता नहीं। जैसे ही मैं आया वैसे ही आपको बुलाने का सन्देश आया।"

"सुनते हैं, दादा साहब सुबह चले गये हैं।"

"हाँ! वह भी अकस्मात् हो हो गया।"

"शायद इसी सम्बन्ध में कुछ होगा।"

"श्रीमन्त आ रहे हैं।" नाना पगड़ी सँवारते हुए बोले।

दोनों आदर से खड़े थे। माधवराव आये। बैठकी पर बैठते हुए वे बोले,

"बापू, काका चले गये हैं, यह मालूम हो गया?"

"जी हाँ! अभी-अभी नाना यही बता रहे थे।"

"आपको यह मालूम नहीं था?"

"नहीं श्रीमन्त! जब से दादा साहब उत्तर से आये हैं, तब से ही मुझपर नाराज हैं। चाहें तो नाना से पूछ लें।"

"उसकी जरूरत नहीं है। आपके कहने पर हमारा विश्वास है। बापू, काका राज्य का बँटवारा चाहते हैं।"

नाना और बापू कुछ नहीं बोले। माधवराव बोले, "बापू, हम चाहते हैं कि आप आनन्दवल्ली को जायें और काका को समझाने का प्रयत्न करें। केवल इसीलिए आपको बुलाया है।"

"श्रीमन्त! मैं मजबूर हूँ, यह भार मुझपर मत डालिए।"

"क्यों?" माधवराव के माथे पर सलवटें पड़ गयीं।

"श्रीमन्त! आप मुझको दादा साहब का विश्वासपात्र समझते हैं। परन्तु जब से आपके पास आया हूँ, तब से दादा साहब का विश्वास पहले की तरह नहीं रहा है। जब दादा साहब उत्तर से आये, तब उनसे मिलने पर मैंने उनसे खूब कहकर देख लिया है। आपको उनका स्वभाव मालूम है। यह नाजुक काम है।

इस उम्र में अकारण ही कोई लांछन लगे, ऐसा काम करने को श्रीमन्त न कहें।"

"ठीक है। परन्तु बापू, काका की ग़लतफ़हमी फूले-फले इससे पहले ही उनको समझाना आवश्यक है। काका का अकस्मात् जाना ठीक नहीं है।"

"श्रीमन्त! मेरा विचार है कि गोविन्द शिवरामजी को आप आज्ञा दें। वे यह कर सकते हैं, दादा साहब का उनपर विश्वास है।"

"तो फिर बापू, उनको सूचित कीजिए कि हमने बुलाया है।"

बापू चले गये। नाना फडणीस बोले,

"श्रीमन्त, बाहर खण्डेराव दरेकर आये हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।"

"आज सुबह ही वे क्यों आये हैं?"

"रक़म के सम्बन्ध में आये हैं वे। अधिक समय देने को वे तैयार नहीं हैं।"

"अच्छा! भेजो उनको। आप भी आइए।"

खण्डेराव को कक्ष में आते देखते ही माधवराव बोले, "खण्डेराव, आज सवेरे ही खूब आये?"

मुजरा करते हुए खण्डेराव बोले, "श्रीमन्त से एकान्त में मिलना नहीं हो पाता है। इसलिए...."

"अच्छा किया! क्या काम है?"

खण्डेराव बोले, "रक़म के सम्बन्ध में आया था। बहुत दिन हो गये। रक़म भी बड़ी है। आजकल बड़ी कठिनाई में हूँ।"

"खण्डेराव, आप देख ही रहे हैं! इन मुहीमों के कारण बिलकुल भी अवकाश नहीं मिलता है। ज़रा अवकाश मिलने पर हम ब्याज सहित रक़म लौटा देंगे।"

माधवराव की नरमाई का खण्डेराव ने कुछ और ही अर्थ लगाया। वे बोले,

"श्रीमन्त, जब आप गद्दी पर बैठे थे, तब की बात है यह। अब अधिक ठहरना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

माधवराव उस वाक्य से चकित हो गये। नाना धरती की ओर देखते हुए खड़े थे। क्रोध रोकते हुए माधवराव बोले,

"ठीक है खण्डेराव, यथाशक्ति जल्दी ही हम आपकी रक़म दे देंगे। परन्तु इस समय सम्भव नहीं है। चार महीने में।"

"नहीं श्रीमन्त, बहुत वायदे हो गये। आप पेशवा हैं। हमको आपसे कहना नहीं चाहिए, परन्तु जो पेशवा नहीं कर सकते, वह हम कैसे कर सकते हैं?"

"मतलब?"

"मेरी रकम दे दीजिए। मैं चला जाऊँगा।" सण्डेराव बोला।

उसने सिर ऊपर उठाया। माधवराव के सन्तप्त चेहरे की ओर ध्यान जाते ही उसका गला सूख गया।

"कल आप काका से मिलने के लिए आये थे न ?"

सण्डेराव हिचकिचाये। सँभलकर वे बोले, "हाँ, जैसे आपके पास आया हूँ, वैसे ही उनसे मिलने गया था, परन्तु उसका इस क़र्ज़ से क्या सम्बन्ध ?"

माधवराव बोले, "कुछ नहीं। नाना, यह हमारी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। आज ही सण्डेराव की सारी रकम चुका दीजिए।"

"ब्याज सहित ?" सण्डेराव ने आशान्वित होकर पूछा।

"हाँ, ब्याज सहित। हम मन में निश्चय कर लें तो चार-पाँच लाख है क्या हमारे लिए ?"

"यही तो मैं कहता हूँ," सण्डेराव ने कहा।

"नाना, आज ही सण्डेराव की स्थावर जंगम सम्पत्ति, सैनिक साज-सामान ज़ब्त करके कोषागार में जमा कीजिए और उसी में से सण्डेराव का जो कुछ देय हो वह चुका दीजिए।"

सण्डेराव खड़ा-खड़ा काँपने लगा। माधवराव के पैर पकड़कर वह बोला, "श्रीमन्त !"

माधवराव बोले, "सण्डेराव उठिए। हम मज़ाक़ कर रहे थे।"

सण्डेराव उठा। उसको अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। माधवराव कह रहे थे,

"सण्डेराव, जिस समय हम कठिनाई में थे उस समय तुमने क़र्ज़ दिया, यह हम अस्वीकार नहीं करते। पास में पैसा होते हुए भी क़र्ज़ रखा जाये, यह नहीं सोचते हम। क़र्ज़ का क्या शौक़ है हमको ? हम हैं छत्रपति के पेशवा। राज्य-रक्षण के लिए ही हम ऋण लेते हैं। अपने ऐश-आराम के लिए नहीं लेते। राज्य की प्राप्ति लगभग पाँच करोड़ के आसपास है। उसमें से हम व्यक्तिगत ख़र्च अधिक से अधिक पाँच लाख करते हैं। शेष सारा पैसा राज्य के लिए ख़र्च होता है। नहीं तो पुणे की लूट की क्षतिपूर्ति करने के लिए हम अपने कोषागार को रिक्त न करते। यह बात आपके ध्यान में नहीं आती कि हम लोग हैं तो राज्य स्थिर है। इसीलिए आपके वतन, साहूकारी है। राज्य में अराजकता होती तो आप यहाँ रहे होते ? यदि आप अविचारपूर्वक हठ करेंगे तो उसी मार्ग से क़र्ज़ को विवश होकर चुकाने के सिवाय हम और कर ही क्या सकते हैं ?"

"श्रीमन्त, भूल हो गयी, क्षमा करें।" सण्डेराव मुक्ति की साँस लेता हुआ बोला।

"आपने क़र्ज़ दिया, यह क्या भूल है ? परन्तु ध्यान रखिए, हम ऋणग्रस्त रहकर मरना नहीं चाहते हैं। एक दिन हम स्वयं व्याज सहित आपका ऋण चुका देंगे। वह दिन जल्दी ही आयेगा। इसपर अविश्वास मत कीजिए। परन्तु क़र्ज़ दिया है, इसलिए अपने पद को भी भूल मत जाइए। चलते हैं हम।" कहते हुए माधवराव उठे।

आनन्दवल्ली में पहुँचते ही राघोवा दादा ने सरदारों को इकट्ठा करना शुरू कर दिया। माधवराव ने भी पटवर्धनजी को फ़ौज लेकर तुरन्त बुलवाया। आनन्दवल्ली और शनिवार-भवन—इन दोनों स्थानों पर संग्राम की तैयारी शुरू हो गयी।...यदि हो सकी तो सन्धि, नहीं तो फिर लड़ाई—इस तरह दोनों बातों के लिए तैयार होकर माधवराव सेना के साथ बाहर निकले। राहुरी में गोविन्द शिवराम तथा चिन्तो अनन्त—दादा साहब की ओर से भेंट का निमन्त्रण लेकर आये। माधवराव ने उसको स्वीकार किया। गोदावरी के तट पर बसे हुए कुरडगाँव में दोनों की भेंट हुई और माधवराव दादा साहब के साथ आनन्दवल्ली आये। दोनों ओर के राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गये थे।

आनन्दवल्ली में राघोबाजी के महल में दोपहर के समय सभी इकट्ठे हो गये थे। दादा साहब की ओर के विट्ठल शिवदेव, नारो शंकर आदि थे। उसी महल में बापू, गोपालराव आदि माधवराव के पक्ष के लोग थे। आनन्दवल्ली के पास ही दादा साहब की पाँच-सात हजार फ़ौज खड़ी थी। वहीं माधवराव की चौदह-पन्द्रह हजार सैनिकों की छावनी फैली हुई थी। आनन्दवल्ली में क्या होता है, इस ओर सबका ध्यान लगा हुआ था।

बैठक में राघोवा दादा उपस्थित हुए। सबके स्थानापन्न होते ही राघोवा दादा बोले, "माधव, फिर तुमने क्या निश्चय किया ?"

"काका, आपकी आज्ञा हमने कभी अमान्य नहीं की। घर की बात को और अधिक बढ़ाना नहीं चाहता।"

"हम कब कहते हैं कि बढ़ाओ ? हम ऋणग्रस्त हो गये हैं, इसलिए यह नौबत आयी।"

"आप कितना खर्च करें, यह कहनेवाले हम कौन होते हैं ?" माधवराव बोले।

"सुना बापू ! कुछ कहो तो यह होता है। इससे तो राज्य का बँटवारा अच्छा, जिससे किसी को शिकायत न रहे।"

"काका, मैं एक बार आपसे कह चुका हूँ। पेशवा होने के नाते मैं कहना

चाहता हूँ कि राज्य का बँटवारा होना असम्भव है। क्योंकि वह हमारा नहीं है। अब भी पूरे राज्य का कार्यभार सँभालना चाहते हों तो जरूर सँभालिए। अथवा जो जागीर आपको दी जाये उसको लेकर चुप बैठिए। दो में से एक चुनना पड़ेगा। हमेशा तुच्छ लोगों की बातों में आकर राज्य का बाँट माँगते हो, झगड़े पैदा करते हो, सरदारों की तोड़फोड़ करते हो। यह अब नहीं चल सकेगा। इस प्रश्न को हमेशा को मिटाने के लिए मैं आया हूँ। सीधे ढंग से आप इसके लिए तैयार हों तो ठीक..."

"नहीं तो क्या?" राघोबाजी ने पूछा।

"लाचार होकर इस प्रश्न का फ़ैसला रणभूमि पर करके ही मैं वापस जाऊँगा। राज्य की विकट परिस्थिति में घर के ईर्ष्या-द्वेषों से खेलते रहने का समय मेरे पास नहीं है। आपको सलाह देनेवाले आगा-पीछा सोचकर सलाह दें तो ज़्यादा अच्छा रहेगा।"

सभी थर-थर काँप रहे थे। राघोबाजी की बोलती बन्द थी। जैसे-तैसे वे बोले, "माधव, अरे इतना कठोर मत बन। इस क़र्ज़ की चिन्ता से मैं खोखला हो गया हूँ। इसकी हामी भर दे। मैं कोई शिकायत नहीं करूँगा।" आँखों में पानी भरकर राघोबा दादा बोले, "बस माधव, इतना कर्ज चुका दे। मैं अपनी शेष आयु जप-तप, स्नान-सन्ध्या करने में बिताऊँगा। मैं राज्य से ऊकता गया हूँ..."

और अन्त में माधवराव ने पचीस लाख चुकाना स्वीकार किया। राघोबाजी के लिए खर्च स्वीकार किया। राघोबाजी के क़िले उनसे ले लिये। "राजनीति में नहीं पड़ूँगा"—यह राघोबाजी से वचन लेकर माधवराव पुणे आये।

तीसरा प्रहर लगभग समाप्त होनेवाला था कि माधवराव अपने चौक-महल से बाहर निकले। महल के सामने हिरकणी चौक में पहुँचते ही उनका ध्यान हज़ारा फव्वारे की ओर गया। वहाँ सदा होनेवाली पानी की परिचित आवाज नहीं आ रही थी। हज़ारा फ़व्वारा शनिवार-भवन की शान थी—इतना प्रसिद्ध वह फ़व्वारा आज एकदम बन्द पड़ा था। क्षण-भर कुम्हलाये हुए कमल-दल की ओर माधवराव ने देखा, फिर वे बड़ा दीवानख़ाना पीछे छोड़कर मध्यभाग की ओर मुड़े। गद्दी की वह जगह आते ही माधवराव ने हाथ जोड़े और वे सीधे सरकारी कार्यालय के चौक से सभागृह में आये। कक्ष में नाना, ढेरे आदि लोग गप्पें मार रहे थे। माधवराव को आते हुए देखते ही उन्होंने तबक सरका दिये और

पगड़ियों को ठीक करते हुए वे खड़े हो गये। माधवराव ने मध्यभाग में विशेष बैठकी पर स्थान ग्रहण किया। नाना और मोरोबा बैठे। श्रीमन्त बोले,

"इच्छाराम पन्त, कब आये ?"

"बहुत देर हो गयी।"

"तो फिर अन्दर क्यों नहीं आये ? घर के लोगों के लिए यह सभागृह नहीं है।"

उसी समय बापू "नाना, मिल गया" कहते हुए कक्ष के सामने आये। हमेशा की तरह उनका सिर झुका हुआ था। सभागृह में माधवराव आकर बैठ गये हैं, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। बापू जब सभाकक्ष में चढ़ रहे थे तब माधवराव ने पूछा,

"क्या मिल गया, बापू ?"

बापू घबड़ा गये; मोरोबा और डेरेजी के मुख पर हँसी थी। बापू स्वयं को सँभालते हुए बोले, "कुछ नहीं श्रीमन्त ! बड़े रावसाहब के कार्यकाल में 'साहब' कब आया था, इस सम्बन्ध में नाना के और मेरे विचारों में भिन्नता थी। इसलिए स्वयं कार्यालय में देखकर सच बात का पता लगाकर आया हूँ।"

"नाना !" माधवराव विषय बदलते हुए बोले, "आज हमारे महल के सामने का फ़व्वारा बन्द है।"

"नल की सफ़ाई हो रही है। सन्ध्यासमय तक फ़व्वारा शुरू हो जायेगा।"

"ठीक !"

बापू बोले, "श्रीमन्त ! कल अँगरेजों के वकील आपके दर्शनों के लिए पुणे में उपस्थित हो रहे हैं।"

"अच्छा !"

"निजाम और हैदर के वकील आ गये। अब दिल्ली के और आ जायें कि बस खतम ! मराठों की सत्ता सभी ने स्वीकार कर ली—यही कहना पड़ेगा !"

माधवराव कुछ नहीं बोले। बापू बोले,

"अँगरेजों का वकील आ रहा है, यह क्या साधारण बात है ? संसार पर राज्य करनेवाले लोग हैं ये। उनका स्नेह जरूर सम्पादित करना चाहिए।"

"क्यों नहीं ?" विष्णुभट अन्दर आते हुए बोले, "साक्षात् मारुति के अवतार हैं वे, सुनते हैं कि साहब के पूँछ भी होती है।"

"विष्णु !" माधवराव बोले, "यह सभागृह है। कीर्तनमण्डप नहीं है। क्यों आये थे आप ?"

विष्णु को खड़े-खड़े पसीना आ गया। वह बोला, "श्रीमन्त, माफ़ करें। भवन में अभिषेक कल समाप्त हो रहा है, यह बात कान में...."

"समझ गये! जाइए आप।"

श्रीमन्त ने क्या कहा यह समझने से पहले ही विष्णु सभागृह के बरामदे को पार कर ओझल हो गया था। इस घटना से आये हुए क्रोध को रोकते हुए माधवराव बोले, "नाना, बापू, मोरोबा—तुम तीनों पर अँगरेज वकील का भार है। वकील आते ही उसकी व्यवस्था ठीक रखने की चिन्ता करना, कोई कमी न रहने पाये।"

दूसरे दिन सायंकाल बापू आये। उन्होंने बताया कि मास्टिन साहब आ चुके हैं।

"क्या कहते हैं साहब?" माधवराव ने पूछा।

"श्रीमन्त, वे आपसे मिलने के लिए बहुत आतुर हो रहे हैं। बड़े साफ़ मन से बोलनेवाला और बढ़िया स्वभाव का गृहस्थ है वह। कल उससे भेंट करेंगे न श्रीमन्त?"

नकारार्थी सिर हिलाते हुए माधवराव बोले,

"नहीं बापू! इतनी जल्दी साहब से मिलने से काम नहीं चलेगा। उनको हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, यह बताओ। दुःख प्रकट करो। चार-छह दिन रहने दो। जहाँ उनका निवास है वहाँ अपने विश्वासपात्र दो-एक व्यक्ति रहने दें। हमारे दरबार में आने का उनका उद्देश्य, उनके विचार—ये सब बातें भेंट से पहले ही हमको ज्ञात होनी चाहिए।"

"जो आज्ञा!"

दो दिन बीत गये। नाना खबर लेकर आये। नासिका में दादा साहब के पास भी अँगरेज़ों ने ऐसा ही वकील भेजा था। उसका नाम ब्रोम था।

"यही हमने सोचा था," माधवराव नाना से बोले, "नाना, अत्यन्त सावधान रहो। सब तरफ़ के हाल-चाल हमें मिलते रहने चाहिए। साथ ही, जब साहब हमसे मिलने के लिए आयें, तब दरबार की व्यवस्था सावधानी से करना। साहब हमारी सत्ता का साक्षात्कार कर सकें—ऐसा वातावरण होना चाहिए। मैं स्वयं भी उस समय ध्यान रखूँगा।"

सखाराम बापू से, नाना से तथा माधवराव ने जिसको आश्रय दिया था, उस बिदनूर के राजा से मास्टिन मिल रहा था। मास्टिन की सभी मुलाकातों का वृत्तान्त माधवराव को विदित हो रहा था। माधवराव ने भी नाना, मोरोबा तथा बापू के साथ सलाह-मशविरा करना प्रारम्भ कर दिया था। भेंट का दिन निश्चित हो गया।

गणपति-महल में दरबार का प्रबन्ध किया गया था। साहब दिल्ली-दरवाजे से भवन में प्रवेश करनेवाले थे। प्रथम वर्ग के सरदारों को भी आज दिल्ली-

दरवाज़े से प्रवेश करने की अनुमति दी गयी थी।

तीसरे प्रहर में दिल्ली-दरवाज़े के सामने एक-एक पालकी आकर रुक रही थी। दरवाज़े पर रामशास्त्री और मोरोबा स्वयं स्वागत के लिए उपस्थित थे। दिल्ली-दरवाज़े के दोनों ओर किनारे-किनारे खड़े हुए घुड़सवार पथक, पीले साफ़ेवाले पुरन्दर क़िले के सवार, पगड़ीबन्द गारदी—इनकी व्यवस्था देखकर पालकी से उतरनेवाले प्रत्येक सरदार के मन पर आज के दरबार का महत्त्व अंकित हो रहा था। दबे हुए मन से वे दरबार में प्रवेश कर रहे थे।

मास्टिन आता हुआ दिखाई देने लगा। उसका स्वागत करने के लिए शास्त्री और बापू दो सीढ़ियाँ नीचे उतरे। मास्टिन श्रेष्ठ घोड़े पर सवार होकर आ रहा था। उसके पीछे तैनात किया गया खास पथक चल रहा था। मास्टिन के सिर पर सफ़ेद हैट था—देह पर बन्द गले का कोट, चौड़ी मुहरी की पैण्ट और काले जूते—यह उसका वेश था। मास्टिन दरवाज़े के पास उतरा। रामशास्त्री और बापू ने उसका स्वागत किया। मास्टिन दरवाज़े की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। उसकी दृष्टि सर्वत्र घूम रही थी। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि प्रत्येक छोटी-बड़ी वस्तु को स्मृति-पटल पर अंकित करती जा रही थी।

दरवाज़े से मास्टिन ने प्रवेश किया। उसने अपना हैट हाथ में ले लिया था। अन्दर के चौक में केसर-मिश्रित जल छिड़का गया था। सर्वत्र ध्वज-पताकाएँ फहरा रही थीं। मास्टिन का ध्यान चौक में गोल बुर्ज़ पर फरफराने-वाले मराठा केसरिया ध्वज पर गया। गणेशमहल की ओर जाते हुए वह शनिवार-भवन के भव्य स्वरूप को आँखों में संचित करने का प्रयत्न कर रहा था। पक्षिबाग़ में फ़व्वारे चल रहे थे। बड़े बाजीरावजी के दीवानखाने को पार करके बापू और रामशास्त्री मास्टिन को लेकर गणेशमहल के चौक में आये।

माधवराव छत पर खड़े होकर अन्दर आते हुए मास्टिन की ओर देख रहे थे। प्रत्येक पग पर ठिठकनेवाला मास्टिन, उसकी चक्कर काटती हुई दृष्टि देखकर माधवराव के चेहरे पर हँसी की रेखाएँ अंकित हो गयी थीं। मास्टिन को गणेश-महल के चौक में पहुँचते देखकर वे मुड़े और अपने महल में आ गये। माधवराव ने श्वेत परिधान धारण कर रखा था। कमर से गुलाबी फेंटा लपेट रखा था। यह देखकर रमाबाई ने पूछा,

"यह क्या ? इन कपड़ों को पहनकर दरबार जायेंगे ?"

"हाँ ! इनमें क्या बात है ? मास्टिन को आज इतना समय ही नहीं मिलेगा कि वह हमारे कपड़ों की ओर ध्यान दे सके। गणेशमहल का वैभव देखकर ही वह स्तब्ध हो जायेगा।"

"बिलकुल सच है ! गणेश-दरवाज़े से आनेवालों का ताँता लगा हुआ है।

सरदार-स्त्रियों की पालकियों को रखने के लिए भी स्थान नहीं बचा है।"

"परन्तु, आपकी वास्तविक कुशलता तो तब दिखाई पड़ेगी जब हम साहब को भोजन के लिए आमन्त्रित करेंगे।"

रमाबाई विचार में डूब गयी। वे बोलीं,

"भई, यह कैसे हो पायेगा?—सुनते हैं कि साहब तो चम्मच-काँटे से खाता है?"

माधवराव हँसकर बोले, "वह हमारे यहाँ भोजन करेगा तो हमारे ढंग से करेगा। हम जब उनके मुल्क में जायेंगे तब वे हमको हमारे ढंग से थोड़े ही भोजन करायेंगे?"

बापू अन्दर आये। वे बोले,

"श्रीमन्त! साहब दरबार में हाजिर हो गये हैं।"

"क्या कहते हैं साहब?"

"साहब आपका वैभव देखकर स्तब्ध रह गये हैं। दरबार भर गया है।"

"समय होने पर हम दरबार में आयेंगे।"

"जो आज्ञा!" कहते हुए बापू उठे।

बापू ने जो कुछ कहा था उसमें अतिशयोक्ति नहीं थी—गणपति-महल की साज-सज्जा में किसी तरह की कमी नहीं रही थी। महल की शीशम की कोरी हुई कमानियाँ चमक रही थीं। विशाल दीवानखाने में मसनद-तकियों की बैठक लगी हुई थी। प्रत्येक बैठकी पर ईरानी ग़लीचे बिछे हुए थे। कन्नौजी धूप की गन्ध सर्वत्र महक रही थी। गणेशमहल के प्रवेश-द्वार से अन्दर जाते ही सबसे पहले दृष्टि जिस पर पड़ती थी, वह थी मसनद के पीछे बनी हुई गणेश की भव्य मूर्ति—उस मूर्ति पर जो छत्र था, उसपर अत्यन्त सुन्दर नक़्क़ाशी हो रही थी। उसमें जो रत्न जड़े हुए थे, वे प्रकाश परावर्तित कर रहे थे। श्रीमन्त की मसनद बहुमूल्य मख़मल से आच्छादित की गयी थी। उसपर हरी मख़मल पर ज़री का काम किया हुआ तकिया रखा था। उसपर तथा गल-तकियों पर मोतियों की झालरें लगी हुई थीं। उसके सामने पेशवाओं का मानचिह्न—सिरपा और कटार—सुवर्ण तबक़ में रखे हुए थे।

मसनद के पास ही सीधे हाथ पर भारी बैठक बिछी हुई थी। उस बैठकी पर स्थानापन्न होकर मॉस्टिन दरबार का निरीक्षण कर रहा था। मसनद की बायीं ओर की मेहराब पर चिक के परदे डाले गये थे। दोनों ओर की दीवारों पर भव्य तैलचित्र बनाये गये थे। पहले चित्र में बड़े पेशवे सिंहासनस्थ शाहू छत्रपतिजी से पेशवाई के वस्त्र प्राप्त कर रहे हैं—यह प्रसंग चित्रित था। इसके अतिरिक्त अन्य चित्रों में अटक के पार विजय, बाजीरावजी का दरबार—आदि प्रसंग

चिन्हित किये थे। मास्टिन पेशवाजी को देखने को अधीर हो गया था। उसने बापू से पूछा,

"पेशवाजी कब आयेंगे ?"

"नियमानुसार ठीक चार बजे दरबार प्रारम्भ होगा।"

मास्टिन ने देखा, उसकी घड़ी में अभी पांच मिनट की देर थी। उसने पूछा, "पेशवाजी समय के इतने पाबन्द हैं ?"

"यह आप देख ही लेंगे।"

अचानक सिंगी की आवाज सुनाई दी। कानाफूसी की आवाजें एकदम थम गयीं। नगाड़े की आवाज सुनाई देने लगी, ललकारी की आवाज आयी—

"बा-अदब बा-मुलाहिज़ा होशियाऽऽर"

पेशवाजी को मुजरा करने के लिए सारा दरबार खड़ा हो गया। वेत्रधारी-चोबदारों के पीछे-पीछे श्रीमन्त पन्तप्रधान माधवराव ने दरबार में प्रवेश किया। रामशास्त्रीजी ने उनके दोनों हाथों पर फूलों के हार लपेटे तथा शास्त्रीजी के साथ माधवराव पांवड़ों पर से मसनद की ओर जाने लगे। मास्टिन तनकर खड़ा था। टकटकी लगाकर वह आते हुए पेशवाजी की ओर देख रहा था।

माधवराव की पगड़ी पर अत्यन्त तेजस्वी हीरों से जड़ा हुआ शिरपेच और तुर्रा—चमक रहे थे। देह पर श्वेत शुभ्र कुरता, गले में बड़े-बड़े मोतियों का हार, कटि में फेंटा में खोंसी हुई तलवार की मूठ पर बायां हाथ रखे बड़े रौब से धीरे-धीरे पद-निक्षेप करते हुए माधवराव मसनद की ओर आ रहे थे। दोनों ओर होनेवाले मुजरों को सिर थोड़ा-सा झुकाकर स्वीकार कर रहे थे।

माधवराव ने मसनद पर आसन ग्रहण किया। दृष्टि के संकेत के साथ ही सब स्थानापन्न हो गये। मास्टिन भौंचक्का रहकर बैठ गया। नृत्य हो जाने पर दरबार प्रारम्भ हुआ। बापू ने मास्टिन का परिचय कराया। दोनों पक्ष के दुभाषिये आगे आये। मास्टिन ने लायी हुई भेंट माधवरावजी को नज़र कीं और वह अपने स्थान पर बैठ गया। माधवराव ने भी स्नेह से उसकी कुशलक्षेम पूछी।

दरबार में उपस्थित हैदर के वकील की भी माधवराव ने ऐसे ही भेंट ली।

कुछ देर तक माधवराव ने दुभाषिये के माध्यम से मास्टिन से फुटकर बातें कीं। इसके बाद दरबार का काम प्रारम्भ हुआ। दरबार समाप्त होने से पहले मास्टिन को भेंट का निमन्त्रण दिया गया। इत्रगुलाब दिया गया और मास्टिन से पहली भेंट समाप्त हुई।

दरबार के उपरान्त चार दिन बाद सन्ध्यासमय मास्टिन श्रीमन्त के निमन्त्रणानुसार पुनः शनिवार-भवन में गया। बड़े रावजी के दीवानखाने में भेंट निश्चित की गयी थी। दीवानखाने के सारे झाड़-फ़ानूस, हण्डे प्रकाशित हो रहे

स्वामी

मदान जल रहे थे। रायजी का दीवानखाना गणेशमहल-जैसा विशाल न हो, फिर भी वह सुन्दर था। उसकी देखभाल अच्छी तरह की गयी कलाबत्तू की बैठकियों से बैठक सजायी गयी थी। बैठकों पर मुरादाबादी न, विशेष पान के बीड़ों से सज्जित तबक़। बैठक को रंगीन बनाने के लिए हुए थे। चिमणबाग़ में ही माधवराव ने मास्टिन का स्वागत किया तथा साथ वे बड़े दीवानखाने में आये। इसी भवन में बड़े बाजीराव रहा करते थे।

उस ऐतिहासिक भवन में माधवराव-मास्टिन मिल रहे थे।

भेंट के समय बहुत थोड़े लोग उपस्थित थे। उनमें बापू, नाना, गोविन्द वराम, मोरोबा फडणीस तथा माधवराव का हकीम महमद अली खान, दोनों ओं के दुभाषिये—इतने लोग थे।

शुरुआत मास्टिन ने की। उसने पूछा,

"पन्तप्रधान, हमने सुना है कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है। अब कैसी है तबीयत ?"

"ठीक है।" माधवराव बोले। महमद अली की ओर अंगुलि से संकेत कर माधवराव ने कहा, "फ़िलहाल हम इनकी दवाओं का सेवन कर रहे हैं।"

"परन्तु आप एक बार हमारे डॉक्टर की दवा लेकर देखिए न !"

"इन दवाओं से फ़ायदा नहीं लगा तो ज़रूर लेंगे।"

मास्टिन माधवराव को इतने समीप से पहली बार देख रहा था। माधवराव की तबीयत ठीक नहीं थी, फिर भी उनका तरुण सुन्दर चेहरा तेजस्वी दिखाई दे रहा था। आँखों का तेज अब भी उनकी धाक जमा रहा था।

"आपकी सरकार का क्या कहना है ?"

मास्टिन कुछ क्षणों तक चुप रहकर बोला, "कम्पनी सरकार की इच्छा बताने के लिए ही मैं आया हूँ। आपमें और हममें सदैव स्नेह-सम्बन्ध बना रहे, यही सरकार की इच्छा है।

"अपनी कम्पनी सरकार को आप बताइए कि यही इच्छा हमारी भी है।" माधवराव तबक़ में रखा हुआ चम्पा का फूल सूँघते हुए बोले।

दुभाषिये से यह वाक्य सुनते ही मास्टिन के चेहरे पर सन्तोष झलकने लगा। वह बोला, "हमको आपसे कुछ सुविधाएँ चाहिए।"

"कैसी ? कहिए न !"

"मालवण और रायरी होकर हमारे जहाज़ गुज़रने की अनुमति चाहिए।"

"कारण ?" माधवराव की आँखें चमक उठीं। भाल पर सूक्ष्म सिकुड़ पड़ गयीं।

"हैदर का पराजय करने के लिए गोला-बारूद ले जाने के लिए हमको

मार्ग सुविधाजनक रहेगा।"

"हैदर से युद्ध ? और आपका !" माधवराव ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ ! वह अब निश्चित हो गया है।" मास्टिन आशा से बोला, "श्रीमन्त, यदि आप हमसे समझौता कर लेंगे तो हम आपके सभी शत्रुओं से लड़ेंगे।"

"अच्छा !" माधवराव बोले।

"हमारे लिए दोस्ती से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। उसको स्थायी बनाने के लिए, हमारे लिए जो सबसे बड़ी अड़चन है, वह वसई और साष्टी आप दीजिए। हम सोन्ध, बिदनूर जीतकर देंगे।"

माधवराव आश्चर्य से मास्टिन की ओर देख रहे थे। वे हँसकर बोले,

"साहब ! हमारे शत्रु कौन ? निजाम ? उत्तर का बादशाह ? दक्षिण का हैदर ? साहब, इनमें से यदि कोई विजयी होता है, तो भी वह हमारा ही है। भारतीय है। उनका पराजय करने के लिए आप-जैसे परदेशियों की मदद कैसे ले सकता हूँ। देखो ! व्यापार के लिए आये थे आप और इतनी जल्दी तराजू फेंककर तलवार हाथ में ले ली !"

मास्टिन ने बन्द गले के कोट का बटन खोला। वह बोला, "श्रीमन्त ! हमारा उद्देश्य अच्छा है। मित्रता बढ़े, यही कामना लेकर हम आपके दरबार में आये हैं।"

"सच ?" माधवराव की आवाज कठोर हो गयी। वे बोले, "तो फिर आपका ब्राउन साहब नासिक में काका के साथ कैसी गप्पें मार रहा है ? मित्रता की ? निजाम से समझौता कैसा किया है ? मित्रता का ? हमारे आश्रय में आये हुए बिदनूर के राजा से क्यों मिले ? आप क्या यह समझते हैं कि इन सब बातों का हमें पता नहीं है ? साहब, आपकी इस दोस्ती की हमारे देश को एक दिन भारी क़ीमत चुकानी पड़ेगी।"

बैठे-बैठे मास्टिन को पसीना आ गया। साष्टी और वसई तो दूर रहीं; परन्तु पहली ही मुलाक़ात में वातावरण बिगड़ता देखकर वह घबड़ा गया। वह बोला,

"पन्तप्रधान, आपको ग़लतफ़हमी हो रही है। वसई व्यापार की दृष्टि से चाहते हैं।"

"समझौता एक ओर से नहीं होता है साहब ! वसई जरूर देंगे, यदि आप हमारी माँगें स्वीकार कर लेंगे।"

"जरूर ! जरूर ! क्यों नहीं ?" प्रसन्न होकर मास्टिन बोला। कम्पनी सरकार ने किसी भी क़ीमत पर वसई प्राप्त करने के लिए उससे कहा था।

"साहब, साष्टी और वसई हम आपको आनन्द से देंगे। आपका स्नेह यदि हमें प्राप्त हो सका तो इससे हमें सन्तोष होगा। परन्तु उसके साथ ही आपको

भी हमको उसका बदला देना चाहिए। जिससे कि हमको भी सन्तोष हो जाये।

"कहिए, पन्तप्रधान! आपको खुश करने के लिए यदि हम कुछ कर सकें तो इससे बढ़कर आनन्द की बात हमारे लिए दूसरी नहीं होगी।"

माधवराव ने मास्टिन की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलायी। मास्टिन के चेहरे पर आनन्द छा रहा था। माधवराव की इच्छा सुनने के लिए वह आतुर हो रहा था। माधवराव बोले,

"साहब, साष्टी और बसई के बदले में आप भी हमको अपने मुल्क में ऐसे दो स्थान दें कि जहाँ हम क़िले बना सकें, सेना रख सकें, व्यापार कर सकें...."

मास्टिन की आशा एकदम डूब गयी। वह सँभलता हुआ बोला, "आपकी माँग हम ज़रूर सरकार के कान में डालेंगे। उनका विचार आपको बतायेंगे।"

"अवश्य बताइए।"

मास्टिन को इत्र-गुलाब दिया गया। पुनः मिलने की आशा लेकर मास्टिन उठा। एक बार दीवाल पर भाऊ साहब के तैलचित्र पर दृष्टि डालकर माधवराव मास्टिन के साथ बाहर निकले। इसके बाद बार-बार मास्टिन मिलने आ रहा था। ब्राउन भी नासिक से पूणे में दाखिल हो गया था; परन्तु दोनों वकीलों की माधवराव के आगे एक न चली। साष्टी और बसई को देना माधवराव ने स्वीकार नहीं किया।

और महीने-भर से अड्डा जमाये हुए अँगरेज़ वकील जैसे आये थे वैसे ही वापस चले गये।

माधवराव के दरबार से अँगरेज़ वकील यद्यपि निराश होकर लौटे थे फिर भी उन्होंने आशा नहीं छोड़ी। उन्होंने राघोबाजी से जोड़-तोड़ करना प्रारम्भ कर दिया। भोंसलों ने खुलेआम राघोबाजी का पक्ष ले लिया था। गंगोबा तात्या और चिन्तो विट्ठल—ये होलकरों के सरदार दादा साहब के सलाहकार बन गये थे। जैसे ही माधवराव को नासिक में फ़ौज इकट्ठा होने का समाचार मिला वैसे ही उन्होंने अत्यावश्यक सभा आमन्त्रित की। नाना, मोरोबा, बापू, शास्त्री, इच्छाराम पन्त आदि लोग गम्भीर वातावरण में शनिवार-भवन में इकट्ठे हुए थे। माधवराव चादर ओढ़कर बैठकी पर आसीन हुए। मोरोबा उठे। वे हाथ जोड़कर बोले,

"श्रीमन्त! दादा साहब ने फ़ौज इकट्ठी करनी प्रारम्भ कर दी है। चिन्तो विट्ठल और गंगोबा तात्या अपने दल-बल के साथ जमे हुए हैं। नागपुरकर तथा गायकवाड़ भी दादा साहब के पीछे हैं—यह आज की परिस्थिति है।"

माधवराव सबके ऊपर दृष्टि घुमाते हुए बोले, "काका ने स्पष्ट रूप से आक्रमण की तैयारी की है। झगड़ा बढ़ाने की दृष्टि से दत्तक लिया है। वे हमारे काका हैं—इस बात का बिलकुल भी मुलाहिज़ा न रखते हुए हमको उचित सलाह चाहिए।"

"श्रीमन्त!" पटवर्धन बोले, "हमारी फ़ौज खड़ी है। आपका आदेश मिलते ही राज्य के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले को दण्ड देने में वह समर्थ है; परन्तु यह घर का मामला होने से यदि शान्तिपूर्वक इसका हल निकल सके तो लाख के मोल की बात हो!"

माधवराव खिन्नता से हँसे। वे बोले,

"उसका क्या हमको शौक़ है? परन्तु गोपालराव, सहन करने की भी सीमा होती है। काकाजी ने उत्तर में जाकर जो यश प्राप्त किया है, वह सबको पता ही है, इतना होने पर भी उनके लिए हमने उनका क़र्ज़ अपने ऊपर लिया, उनकी माँग के अनुसार खर्च मंजूर किया और फिर भी अन्त में यह अवसर ये ले ही आये। आज एक व्यक्ति की आवश्यकता बहुत महसूस हो रही है।"

"वे कौन, श्रीमन्त?" शास्त्रीजी ने पूछा।

"मल्हारबा। उनका हमको बड़ा सहारा था। उनकी मृत्यु से हमारी बहुत बड़ी हानि हुई है। उसकी पूर्ति अब किसी से भी नहीं हो सकती है। वे हमपर गुस्सा होते, हमपर शर्तें डालते; परन्तु उन्होंने कभी परेशान नहीं किया। यदि वे आज होते तो निश्चय ही इस अवसर को टालने के लिए प्रयत्न करते। बापू—"

"नहीं, श्रीमन्त!" बापू बोले, "दादा साहब मेरी सुनेंगे ऐसा मुझको नहीं लगता।"

"तो फिर हम क्या करें?" माधवराव ने पूछा।

बापू बोले, "श्रीमन्त! यह सच है कि हमको दादा साहब से प्रेम है, परन्तु हम चाकरी आपकी करते हैं। मैं समझता हूँ कि जब तक दादा साहब से अँगरेज़ अथवा मुग़ल नहीं मिलते हैं, उससे पहले ही मुहीम हाथ में ले लेनी चाहिए। विलम्ब करने पर यश-अपयश के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकेगा।"

"हम आपके विचारों से सहमत हैं।"

"परन्तु श्रीमन्त, अपनी फ़ौज जितनी इकट्ठी होनी चाहिए थी उतनी अभी तक इकट्ठी नहीं हुई है। पूरी फ़ौज इकट्ठी हो जाने पर जाना ठीक होगा। नहीं तो दादा साहब की कुमुक ज्यादा होने पर...."

"बापू, पहला कथन और अब का कथन—दोनों में आपका विचार कौन-सा रहा? नाना, जितनी फ़ौज हमारे पास है, उसी को लेकर हम प्रस्थान करेंगे।

उत्तर में आज्ञापत्र भेजिए। वे हमको रास्ते में मिल जायेंगे। पटवर्धन, रास्ते, पानसे और विंचूरकर हैं ही। बिलकुल भी समय न गँवाते हुए मुहीम की शुरुआत हो जानी चाहिए। दो दिन में ही अच्छा समय देखकर हम डेरे में उपस्थित हो रहे हैं।"

पुणे से घुड़सवार जा रहे थे। पेशवाई के सरदारों की छावनियों में हलचल मच गयी थी। माधवराव ने स्वकथनानुसार दो दिन में ही डेरे में उपस्थित होने की तैयारी कर ली। प्रयाण करने के दिन माधवराव अपने शयनगृह में कपड़े पहन रहे थे। पूरी तैयारी हो चुकी थी। रमाबाई अन्दर आयीं। माधवराव उनसे बोले,

"हम आपकी ही राह देख रहे थे। इस मुहीम को पूरी करके हम जल्दी से जल्दी आने का प्रयत्न करेंगे।"

रमाबाई ने कुछ न कहा। आँखों में इकट्ठे हुए आँसुओं को वे बड़े प्रयत्न से रोक रही थीं। माधवराव के पास आते ही उन्होंने सिर झुका लिया। माधवराव बोले,

"देखिए न! इधर देखिए।"

रमाबाई ने दृष्टि ऊपर कर देखा। माधवराव बोले,

"कहिए न! मुहीम पर जानेवाले पति को यदि इस तरह विदा करेंगी तो उसके मन की क्या दशा होगी? इस मुहीम में अधिक दिन लगने की सम्भावना नहीं है। हम जल्दी आयेंगे।"

रमाबाई हँसने का प्रयत्न करती हुई बोलीं, "आप गुस्सा न हों तो —"

"कहिए! हम आजतक कभी गुस्सा हुए हैं क्या?"

"पहले एक बार ऐसा ही अवसर आया था। तब माँ साहिबा थीं। आपने उनसे कहा था..."

"यह हम भूले नहीं हैं। पूजनीया माताजी की आज हमको बहुत याद आ रही है। इस मुहीम का हमको आनन्द नहीं हो रहा है। काका का जितना ध्यान रखा जा सकता था, उतना आज तक रखा। उनकी सभी सुख-सुविधाएँ देखीं, परन्तु उनको रख नहीं सके। हमपर राज्य का भार है। व्यक्तिगत जीवन की निष्ठा रखना हमारे लिए असम्भव है। परदेशियों से हाथ मिलाकर काका राज्य को पलटने का स्वप्न देख रहे हैं। हम लाचार हैं। परन्तु इस कटु कर्तव्य को करते हुए हम इस बात की हर सम्भव कोशिश करेंगे कि घराने को बट्टा लगानेवाला कोई कार्य हमारे हाथों से न हो। इसपर विश्वास कीजिए। काकी साहिबा की ओर ध्यान रखना। नारायण की देखभाल करना। चलते हैं हम।"

कमर की तलवार सँभालते हुए माधवराव महल से बाहर निकले। देवगृह

में रामशास्त्रीजी ने श्रीफल दिया, उसको स्वीकार करके वे डेरे में उपस्थित होने के लिए बाहर निकले। दिल्ली-दरवाज़े पर नौबत बजने लगी। पेशवाओं के बाहर निकलने की सूचना पुणे को मिल गयी।

माधवराव ने मुहीम की तैयारी कर ली है, यह वार्ता राघोबा दादा तक पहुँचने में विलम्ब नहीं लगा। होलकरों ने माधवराव से जो बात कही थी, ऐन समय पर वही बात उन्होंने राघोबाजी से कही। चाचा-भतीजे के झगड़े में पड़ने से उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया। राघोबाजी ने गायकवाडजी की फ़ौज के साथ लड़ाई के उद्देश्य से हलचल प्रारम्भ कर दी। जानोजी भोंसले ने भी दादा-जी का पक्ष लेकर गंगाथडी लूटते-जलाते हुए, मनमाना 'कर' वसूल करते हुए तुलजापुर में अड्डा जमाया। अँगरेज़ों से मदद लेने के लिए युक्तियाँ की गयी थीं। वारणा-गोदावरी नदियों के संगम के पास दादाजी ने अपनी फ़ौज इकट्ठी की। दादाजी फ़ौज इकट्ठी करते हुए चांदवड तक आये। माधवराव की फ़ौज की बढ़ती हुई शक्ति का अनुमान लगते ही राघोबाजी ने चढ़ाई की नीति का परित्याग करके ज्यादा कुमुक आने तक विलम्ब करने के लिए घोडपे गांव का रास्ता पकड़ा। परन्तु पीछे माधवराव थे। फ़ौज को एक दिन का भी अवकाश न देते हुए माधवराव ने राघोबा दादाजी को घोडपे के समीप घेर लिया तथा निराश होकर राघोबा दादा अपनी पचीस हज़ार फ़ौज लेकर माधवराव की सेना पर टूट पड़े। ठीक दोपहर को लड़ाई प्रारम्भ हुई। माधवराव स्वयं घोड़े पर सवार होकर लड़ाई देख रहे थे। देखते ही देखते माधवराव की सेना की जीत दिखाई पड़ने लगी। राघोबा दादाजी के श्रेष्ठ वीर चिन्तो विट्ठल घायल हो गये। उनका भाई मोरो विट्ठल मारा गया। दादाजी की सेना सिर पर पैर रखकर भागने लगी। जिधर राह मिले, उधर ही सेना भाग रही थी। सफलता के उन्माद से मतवाले हुए सैनिकों ने घोडपे के क़िले के नीचे लगी हुई दादाजी की छावनी की जी भरकर लूट की। राघोबा दादाजी को इन सब बातों का पता चल गया। सभी सामान ले लिया। इस मुहीम में अठारह-बीस हाथी, तमाम तोपखाना, चार-पांच सौ घोड़े, सात-आठ सौ ऊँट आदि माधवराव की सेना ने ले लिये। अपनी सेना की यह दशा देखकर राघोबा दादाजी ने घोडपे क़िले का आश्रय लिया। माधवराव ने पटवर्धन, रामचन्द्र गणेश और विसाजी-पन्त कृष्ण—इन सरदारों को क़िले की मोर्चेबन्दी करने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन माधवराव अपने सरदारों के साथ मोर्चेबन्दी की देखभाल करके घोडपे के क़िले को जानेवाले रास्ते पर स्थित चौकी की ओर चले। उस चौकी को पटवर्धन सँभाल रहे थे। जेठ की धूप बढ़ती जा रही थी। माधवराव का घोड़ा पसीने से लथपथ हो रहा था। घोड़े से न उतरते हुए माधवराव पास खड़े

हुए पटवर्धनजी से बोले,

"गोपालराव, आप इसी समय क़िले में जाइए। काका साहब से कहना कि इस घटिका से ढाई घड़ी तक यदि आप गढ़ से नीचे नहीं उतरे तो लाचार होकर तोपें क़िले पर दाग दिये जायेंगे। इसकी जवाबदारी आपपर रहेगी। होनेवाली हत्याओं के लिए हम ज़िम्मेवार नहीं रहेंगे।"

माधवराव के आदेशानुसार गोपालराव सेवकों के साथ घोड़े पर सवार हुए और पूरे वेग से गढ़ पर चढ़ने लगे। धूप की तीव्रता से और देह पर टकरानेवाले उष्ण पवन से व्याकुल हुए त्रिंबकजी पन्त ने श्रीमन्त से कहा,

"श्रीमन्त! जबतक ऊपर से सन्देश नहीं आता तबतक आप विश्राम करें।"

नकारार्थी सिर हिलाकर माधवराव बोले, "नहीं त्रिंबकजी पन्त! जबतक इसका फ़ैसला नहीं हो जायेगा तबतक हमारे मन को चैन नहीं पड़ेगा। आप तोपख़ाने को सूचना दें। गोला-बारूद से तोपख़ाने तैयार रखने का आदेश दें।"

मोरोबा फड़नीस आगे आये। माधवराव उनसे बोले,

"ख़ास सरकारी फ़ौज के साथ हमारी अम्बारी मँगवा लीजिए।"

जेठ धूप में माधवराव अश्वारूढ़ हो गये थे। सेवकों ने छत्र धारण कर रखा था। तब भी पसीने की धाराएँ कनपटी से होकर बह रही थीं। सबकी दृष्टि क़िले की ओर लगी थी। एक घड़ी बीत गयी। क़िले के रास्ते से गये हुए घुड़सवार नीचे आते हुए दिखाई दिये। कुछ दूरी पर गोपालराव घोड़े से नीचे उतरे और पैदल माधवराव के पास आये।

"श्रीमन्त!" गोपालराव बोले, "दादा साहब आपके अधीन होने के लिए क़िले से उतर रहे हैं।"

गद्गद होकर माधवराव बोले, "अच्छा हुआ। गजानन ने हमारी लाज रख ली।"

प्रतिक्षण सबकी अधीरता बढ़ रही थी। जब पैदल उतरते हुए राघोबा दादा दृष्टिपथ में आये, तब तो सबकी अधीरता चरम सीमा पर पहुँच गयी। शरणागत होकर आते हुए राघोबाजी को सब निहार रहे थे। राघोबा दादा जैसे ही स्पष्ट दिखाई देने लगे वैसे ही माधवराव घोड़े से नीचे उतरे। त्रिंबकजी पन्त और मोरोबा राघोबा दादा की अगवानी करने के लिए पैदल चलने लगे। जेठ की धूप में माधवराव के सिर पर सिरपेंच चमक रहा था। राघोबा दादा सिर झुकाये आगे आ रहे थे। श्वेत शुभ्र कुरता, कमर में कसा हुआ फेंटा और उसमें खोंसी हुई कटार—इनके अतिरिक्त राघोबा दादाजी के पास कुछ भी नहीं था। न गले में माला थी, न मस्तक पर पगड़ी में सिरपेंच था। समीप पहुँचते ही माधवराव ने आगे बढ़कर राघोबा दादा के पैर छुए और वे बोले,...

"काका !"

राघोवा दादा चकित होकर देख रहे थे। उन्होंने माधवराव से इस व्यवहार की आशा नहीं की थी। किन परिस्थितियों में रहना पड़ेगा—यह विचार करते हुए ही वे क़िले से उतरे थे।

"माधव ! हम पराजित हो गये। सम्पूर्ण शरणागति के लिए हम तुम्हारे सामने खड़े हैं।"

माधवराव ने स्वयं को सँभाला और बोले,

"काका, धूप की गर्मी बढ़ रही है। यथाशक्ति जल्दी छावनी में पहुँचकर विश्राम करें।"

राघोवाजी ने सिर उठाकर देखा तो माधवराव समीप आते हुए हाथी की ओर उँगली से संकेत कर रहे थे। धूप में चमकनेवाली चाँदी की अम्बारी हाथी की पीठ पर शोभा दे रही थी। माधवराव के इशारे के साथ ही महावत ने हाथी को नीचे बैठाया। सीढ़ी लगायी गयी। राघोवा दादा बिना कुछ कहे जाकर अम्बारी में बैठ गये। पीछे-पीछे माधवराव चढ़नेवाले थे कि घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनाई देने लगी। मोर्चेबन्दी के सूबेदार अपने पथकों के साथ आ रहे थे। सूबेदार पास आते ही श्रीमन्त को मुजरा करके बोले,

"सरकार ! ये वेश बदलकर भागते हुए पकड़े गये।"

माधवराव ने उस ओर दृष्टि डाली। गंगोवा तात्या को मोटी रस्सी से बाँधकर लाया गया था। उसने एक बार अम्बारी में बैठे राघोवा दादा की ओर देखा और दूसरे ही क्षण माधवराव के पैर पकड़ने के लिए आगे आता हुआ वह बोला,

"श्रीमन्त, दया...."

झुके हुए गंगोवा तात्या पर दृष्टि डालते हुए माधवराव पीछे सरके और सूबेदार को आज्ञा दी—

"सूबेदार, इनकी मुश्कें बाँधकर हमारे सामने पुणे में पेश करना। यह ज़िम्मेवारी आपकी है।"

पास खड़े हुए विसाजी पन्त बिनीवाले की ओर देखते हुए माधवराव बोले,

"आप अपनी फ़ौज लेकर नासिक में छावनी लगायें और काकाजी की जागीर का सारा प्रदेश हाथ में आने पर ही पुणे आयें।"

उन दोनों के मुजरों को स्वीकार कर माधवराव अम्बारी में चढ़े। पीछे-पीछे गोपालराव पटवर्धन खवासखाने[1] में बैठ गये। हाथी चलने लगा। निजी

१. हाथी पर अम्बारी के पिछले भाग में सेवकों के बैठने का स्थान।

सरकारी फ़ौज के घुड़सवार तथा ऊँट पीछे-पीछे आ रहे थे।

श्रीमन्त माधवराव की विजय की वार्ता पुणे में पहले ही पहुँच गयी थी। रावसाहब का स्वागत करने के लिए सारा पुणे सज्जित हो गया था। शहर के दीप-स्तम्भ प्रज्वलित हो उठे थे, उनके प्रकाश में सारा पुणे चमचमा रहा था। सड़कें लोगों से भरी हुई थीं। शोभा-यात्रा का निश्चित रास्ता जिनको मालूम नहीं था, वे नागरिक पूछ-ताछ करते घूम रहे थे। रास्तों पर बढ़ती हुई भीड़ को नियन्त्रित करते-करते कोतवाल की नाक में दम हो रहा था। शोभा-यात्रा आगे बढ़ती आ रही थी। आतिशबाजी छूट रही थी। शनिवार-भवन के गणेश बुर्ज पर रमाबाई अपनी सखियों और दासियों के साथ खड़ी थीं। शोभा-यात्रा पास आती जा रही थी।

खास सरकारी फ़ौज के श्रेष्ठ सदस्य तथा मराठों का भगवाध्वज—ये सबसे आगे चल रहे थे। भगवाध्वज के साथ एक हज़ार सवार चल रहे थे। उनके पीछे माहीमरातब[1] के पाँच हाथी, उनके पीछे नालकी चल रही थी। फिर कोतवाल, फिर चार सौ घोड़ों को—जिनके गले में सुवर्णपट्टियाँ तथा सुवर्ण-सिक्कों की मालाएँ पड़ी थीं तथा जिनकी पीठ पर कलाबत्तू की कमखाबी झूलें पड़ी हुई थीं—रास्ते के दोनों ओर लिये सईस चल रहे थे। उनके पीछे गारदों के जमादार और चाऊश[2], दफ़ेदार[3], अरब, सिद्दी, रोहिले, पठान आदि लगभग दो हज़ार लोग झण्डियाँ फहराते हुए ढोल-ताशे बजाते चल रहे थे। उनके पीछे खास लवाज़मा तथा सरकार के, विंचूरकरों के, शिन्दे-होल्करों के लोग चोपदारों[4]-बिटे[5]-बाण-बल्लम लिये लोग, सेवकगण, पताकाएँ लिये लोग—आदि लगभग हज़ार लोग चल रहे थे। उनके पीछे हाथी पर दो रुपहली अम्बारियाँ रखी थीं। उनमें एक में दादा साहब तथा दूसरी में श्रीमन्त माधवराव बैठे हुए थे। खवासखाने में पुरन्दरे और गोपालराव पटवर्धन बैठे हुए थे। उस हाथी के चारों ओर हज़ारों मशालों का प्रकाश फैल रहा था। आगे लवाज़मा के हाथी थे। उनपर आतिशबाजी लगी हुई थीं। उनके आगे लगभग दो सौ सांडणीसवार चल रहे थे। हाथी के पीछे दस हज़ार खास सवार चल रहे थे।

---

१. मुग़ल बादशाह की ओर से पेशवाओं के लिए भेजे गये सम्मान-चिन्ह, जिनको महादजी शिन्दे लाये थे।
२. अरबों का जमादार।
३. घुड़सवार सेना का एक अधिकारी।
४. जिसके दोनों ओर फटे कपड़ों के गोले बनाकर लटका दिये हैं ऐसी लाठी।
५. एक प्रकार का भाला।

नगाड़े बज रहे थे। शोभा-यात्रा आगे आ रही थी। बुधवार-पेठ के कोतवाल के थाने के पास जैसे ही शोभा-यात्रा आयी वैसे ही श्रीमन्त के ऊपर सोने-चांदी के फूल बरसाये जाने लगे और वे शनिवार-भवन तक बरसाये जाते रहे।

दिल्ली-दरवाज़े में श्रीमन्त अम्बारी से नीचे उतरे। राघोबा दादाजी की ओर देखते हुए माधवराव बोले, "काका, चलें !"

सिर झुकाये राघोबा दादा माधवराव के साथ चलने लगे। दिल्ली-दरवाज़े में मैना के साथ अनेक दासियों ने दही-भात के पट्ट श्रीमन्त पर निछावर किये। दिल्ली-दरवाज़े से दोनों ही श्रीमन्त गणेश-महल तक गये। जब वे हिरकणी चौक में पहुँचे, उस समय वहाँ बापू और नाना खड़े थे। जैसे ही बापू की दृष्टि दादा साहब पर स्थिर हुई, उनकी आँखें भर आयीं। दादा साहब बोले,

"बापू, हम आ गये..." उनसे आगे न बोला गया। उसी समय रमाबाई और नारायणराव की पत्नी गंगाबाई आगे आयीं और उन्होंने चरण-स्पर्श किये। उनको आशीर्वाद देकर वे अपने महल की ओर चले गये। माधवराव खिन्न मन से वह दृश्य देख रहे थे।

राघोबा दादाजी के साथ ही उनके साथी भी क़ैद कर लिये गये थे। उनको छुड़ाने के लिए सखाराम बापू ने जो भी प्रयत्न किये वे सब व्यर्थ रहे।

एक दिन सायंसमय माधवराव गणेश-महल की ऊपर की दीर्घा में खड़े थे। वहाँ से गणेश-दरवाजा के सामने का राजमहल दिखाई दे रहा था। दुर्ग की दीवार, दीवार के अन्दर खड़ी हुई वह तीन-मंजिली इमारत, उसपर शान से फहराते हुए मराठा भगवाध्वज को माधवराव तन्मय होकर देख रहे थे।

माधवराव विचारमग्न खड़े थे कि सेवक अन्दर आया। माधवराव ने जैसे ही आज्ञा दी, वह बोला,

"रामशास्त्रीजी आये हैं।"

"ऊपर भेज दो।"

शास्त्रीजी के आते ही श्रीमन्त बोले, "शास्त्रीजी, आज कैसे याद आ गयी ?"

"क्षमा करें श्रीमन्त ! आप घोडपे से विजयी होकर जब आये थे, उस समय आपका स्वागत करने के लिए मैं उपस्थित नहीं था। चिंचवड के स्वामीजी के आग्रह के कारण मुझको विवश होकर उत्सव में जाना पड़ा।"

"अरे, मैंने तो यों ही कहा था। आप दुःखी न हों। हमारे स्वागत के लिए आप नहीं थे, इसका हमने बुरा नहीं माना। बनावटी धैर्य से आतिशबाजी के प्रकाश में हमने नगर में प्रवेश अवश्य किया; परन्तु इसमें हमें कोई आनन्द नहीं

लिया था। फलतः काकाजी को पकड़कर लाने में कैसा आनन्द? इससे तो मृत्यु अच्छी रहती।"

रामशास्त्री ने कुछ नहीं कहा। तट की दीवार से उस ओर उँगली से संकेत करते हुए माधवराव बोले,

"शास्त्रीजी, उस लालमहल को देखिए...जब-जब हम मुहीमों में सफलता प्राप्त कर आते हैं, तब-तब हम यहाँ आते हैं। यहाँ से उस महल की ओर देखते हैं और मन का चढ़ा हुआ नशा पल-भर में उतर जाता है। यहीं उस भवन में शिवछत्रपति का बचपन बीता। जिनके पराक्रम ने मराठा राज्य खड़ा किया, जिनको यवनयुवती को देखकर भी पूजनीया माताजी की याद आयी, जिनके राज्य में धर्म और राजनीति साथ-साथ चलते थे, उनके राज्य के हम हैं भोगभ्रष्ट मानव!"

"स्वयं को इतना गौण क्यों समझ रहे हैं श्रीमन्त?"

"विनम्रतावश मैं यह नहीं कह रहा हूँ, शास्त्रीजी! पिता पर संकट आते ही सारा अभिमान दूर रखकर मुग़ल-सत्ता के सम्मुख शरणागति स्वीकारने में क्षण-भर की भी देरी नहीं की। ऐसी पितृभक्ति! माता की इच्छा के लिए रात में गढ़ जीतने की भी मातृनिष्ठा! मुसलमान बने हुए स्वजन को पुनः धर्म में लेकर उसको अपने घराने की लड़की देने की धर्मनिष्ठा! मुहीम के दौरान भी प्रजा को कष्ट न पहुँचने देने की प्रजानिष्ठा! ऐसा वह युगपुरुष कहाँ और हम कहाँ? जब हम मुहीम को निकलते हैं और केवल लूट के लिए, क़र्ज़-निवारण करने के लिए गाँवों को वेचिराग़ करते हैं, उस समय हमको कितनी लज्जा आती है, कह नहीं सकते...."

"ऐसा क्यों कहते हैं श्रीमन्त! राज्य खड़ा करने के लिए यह करना ही पड़ता है।"

"शास्त्रीजी, यह हम जानते हैं। परन्तु केवल पथ्य से काम नहीं चलता है। उसका कुछ लाभ भी दिखाई देना चाहिए। बढ़ते हुए क़र्ज़ और खर्च से डरकर हमने इतनी लूट, आमदनी की, परन्तु उससे न क़र्ज़ निवारण हुआ और न राज्य विस्तार हुआ। जिस प्रजा का उत्तरदायित्व हमपर आया है, वह प्रजा जिस दिन सुखी-सन्तुष्ट दिखाई देगी, वह सुदिन होगा!"

"वह दिन बहुत दूर नहीं है, श्रीमन्त!" रामशास्त्री बोले, "आपकी बढ़ती हुई शक्ति आज भी उस दिन की गवाही दे रही है।"

"हूँ! यह बात कह रहे हैं!" कहते हुए माधवराव मुड़े और शनिवार-भवन के प्रांगण में खड़े राघोबा दादाजी के बादामी बँगले की ओर उँगली करते हुए वे बोले,

नगाड़े बज रहे थे। शोभा-यात्रा आगे आ रही थी। बुधवार-पेठ के कोतवाल के थाने के पास जैसे ही शोभा-यात्रा आयी वैसे ही श्रीमन्त के ऊपर सोने-चांदी के फूल बरसाये जाने लगे और वे शनिवार-भवन तक बरसाये जाते रहे।

दिल्ली-दरवाजे में श्रीमन्त अम्बारी से नीचे उतरे। राघोबा दादाजी की ओर देखते हुए माधवराव बोले, "काका, चलें !"

सिर झुकाये राघोबा दादा माधवराव के साथ चलने लगे। दिल्ली-दरवाजे में मैना के साथ अनेक दासियों ने दही-भात के पट्ट श्रीमन्त पर निछावर किये। दिल्ली-दरवाजे से दोनों ही श्रीमन्त गणेश-महल तक गये। जब वे हिरकणी चौक में पहुँचे, उस समय वहाँ बापू और नाना खड़े थे। जैसे ही बापू की दृष्टि दादा साहब पर स्थिर हुई, उनकी आँखें भर आयीं। दादा साहब बोले,

"बापू, हम आ गये..." उनसे आगे न बोला गया। उसी समय रमाबाई और नारायणराव की पत्नी गंगाबाई आगे आयीं और उन्होंने चरण-स्पर्श किये। उनको आशीर्वाद देकर वे अपने महल की ओर चले गये। माधवराव खिन्न मन से वह दृश्य देख रहे थे।

राघोबा दादाजी के साथ ही उनके साथी भी क़ैद कर लिये गये थे। उनको छुड़ाने के लिए सखाराम बापू ने जो भी प्रयत्न किये वे सब व्यर्थ रहे।

एक दिन सायंसमय माधवराव गणेश-महल की ऊपर की दीर्घा में खड़े थे। वहाँ से गणेश-दरवाजा के सामने का राजमहल दिखाई दे रहा था। दुर्ग की दीवार, दीवार के अन्दर खड़ी हुई वह तीन-मंजिली इमारत, उसपर शान से फहराते हुए मराठा भगवाध्वज को माधवराव तन्मय होकर देख रहे थे।

माधवराव विचारमग्न खड़े थे कि सेवक अन्दर आया। माधवराव ने जैसे ही आज्ञा दी, वह बोला,

"रामशास्त्रीजी आये हैं।"

"ऊपर भेज दो।"

शास्त्रीजी के आते ही श्रीमन्त बोले, "शास्त्रीजी, आज कैसे याद आ गयी ?"

"क्षमा करें श्रीमन्त ! आप घोडपे से विजयी होकर जब आये थे, उस समय आपका स्वागत करने के लिए मैं उपस्थित नहीं था। चिंचवड के स्वामीजी के आग्रह के कारण मुझको विवश होकर उत्सव में जाना पड़ा।"

"अरे, मैंने तो यों ही कहा था। आप दुःखी न हों। हमारे स्वागत के लिए आप नहीं थे, इसका हमने बुरा नहीं माना। बनावटी धैर्य से आतिशबाजी के प्रकाश में हमने नगर में प्रवेश अवश्य किया; परन्तु इसमें हमें कोई आनन्द नहीं

लिया था। साक्षात् काकाजी को पकड़कर लाने में कैसा आनन्द? इससे तो मृत्यु अच्छी रहती।"

रामशास्त्री ने कुछ नहीं कहा। तट की दीवार के उस ओर उँगली से संकेत करते हुए माधवराव बोले,

"शास्त्रीजी, उस लालमहल को देखिए...जब-जब हम मुहीमों में सफलता प्राप्त कर आते हैं, तब-तब हम यहाँ आते हैं। यहाँ से उस महल की ओर देखते हैं और यश का चढ़ा हुआ नशा पल-भर में उतर जाता है। वहीं उस भवन में शिवछत्रपति का बचपन बीता। जिनके पराक्रम ने मराठा राज्य खड़ा किया, जिनको यवनयुवती को देखकर भी पूजनीया माताजी की याद आयी, जिनके राज्य में धर्म और राजनीति साथ-साथ चलते थे, उनके राज्य के हम हैं योगभ्रष्ट मानव!"

"स्वयं को इतना गौण क्यों समझ रहे हैं श्रीमन्त?"

"विनम्रतावश मैं यह नहीं कह रहा हूँ, शास्त्रीजी! पिता पर संकट आते ही सारा अभिमान दूर रखकर मुगल-सत्ता के सम्मुख शरणागति स्वीकारने में क्षण-भर की भी देरी नहीं की। ऐसी पितृभक्ति! माता की इच्छा के लिए रात में गढ़ जीतने की थी मातृनिष्ठा! मुसलमान बने हुए स्वजन को पुनः धर्म में लेकर उसको अपने घराने की लड़की देने की धर्मनिष्ठा! मुहीम के दौरान भी प्रजा को कष्ट न पहुँचने देने की प्रजानिष्ठा! ऐसा वह युगपुरुष कहाँ और हम कहाँ? जब हम मुहीम को निकलते हैं और केवल लूट के लिए, कर्ज-निवारण करने के लिए गाँवों को बेचिराग करते हैं, उस समय हमको कितनी लज्जा आती है, कह नहीं सकते...."

"ऐसा क्यों कहते हैं श्रीमन्त! राज्य खड़ा करने के लिए यह करना ही पड़ता है।"

"शास्त्रीजी, यह हम जानते हैं। परन्तु केवल पथ्य से काम नहीं चलता है। उसका कुछ लाभ भी दिखाई देना चाहिए। बढ़ते हुए कर्ज और खर्च से डरकर हमने इतनी लूट, आगजनी की, परन्तु उससे न कर्ज निवारण हुआ और न राज्य विस्तार हुआ। जिस प्रजा का उत्तरदायित्व हमपर आया है, वह प्रजा जिस दिन सुखी-सन्तुष्ट दिखाई देगी, वह सुदिन होगा!"

"वह दिन बहुत दूर नहीं है, श्रीमन्त!" रामशास्त्री बोले, "आपकी बढ़ती हुई शक्ति आज भी उस दिन की गवाही दे रही है।"

"हूँ! यह बात कह रहे हैं!" कहते हुए माधवराव मुड़े और शनिवार-भवन के प्रांगण में खड़े राघोबा दादाजी के बादामी बँगले की ओर उँगली करते हुए वे बोले,

"इस बादामी बँगले को देखिए। मुझसे उसकी ओर देखा नहीं जाता। जिस शक्ति का उपयोग शत्रुमर्दन के लिए होना चाहिए, वह शक्ति आज हमको आप्तस्वकीयों को कारागार में डालने में खर्च करनी पड़ रही है। निजाम-जैसे जन्मजात शत्रु हमारे मित्र बन सके; परन्तु पितृतुल्य काका मुझको समझ नहीं सके। इससे बढ़कर हमारी पराजय और कौन-सी होगी ? चलिए, शास्त्रीजी ! अब अधिक देर तक यहाँ ठहरना उचित नहीं है।"

सन्ध्याकाल की छायाएँ फैल रही थीं। खिन्न मन से माधवराव सीढ़ियाँ उतर रहे थे।

दिया जले तक माधवराव और रामशास्त्री महल में बैठे बातें करते रहे। नाना फड़णीस अन्दर आये और अदब से बोले,

"दादा साहब महाराज ने बुलाया है श्रीमन्त को !"

"क्यों ? क्या हो गया ?"

"कल रात दरवाजे बन्द हो जाने पर दादा साहबजी का आश्रित विनायक भट दादा साहबजी की आज्ञा से शनिवार-भवन के बाहर जा रहा था। उसको रोका गया। यह घटना दादा साहबजी के कानों तक पहुँचायी गयी। दादा साहब महाराज सन्तप्त हो उठे हैं।"

"और कौन है वहाँ ?"

"बापू थे। मेरे सामने ही वे वहाँ से चले गये।"

"हूँ ऽ ! तो फिर ठीक है। देखा शास्त्रीजी ! यह होता है। मैं काका को सँभालने का प्रयत्न करता हूँ, उसका अर्थ इस प्रकार उलटा लगाया जाता है।"

"आप जायें श्रीमन्त। मैं जाता हूँ।"

"आप भी चलिए न !"

"रहने दें, श्रीमन्त ! यह दादा साहब पसन्द नहीं करेंगे।" रामशास्त्री बोले।

गणेश-महल पार कर माधवराव सीधे राघोबा दादाजी के महल की ओर गये। पीछे-पीछे नाना थे। दिन अस्त हो गया था। महलों में दिये जलाये जा रहे थे। राघोबा दादा अपने महल में चहलक़दमी कर रहे थे। जैसे ही माधवराव अन्दर गये, दासियाँ आँचल सँभालती हुई महल से बाहर चली गयीं। माधवराव की ओर ध्यान जाते ही राघोबा दादा गरजे—

"तुम्हें मालूम हुआ ?"

"क्या काका ?" माधवराव ने शान्ति से पूछा।

नाना की ओर उँगली से संकेत करते हुए राघोबा दादा माथे को संकुचित करते हुए बोले, "तेरे इस लिपिक ने मेरी आज्ञा की उपेक्षा की है। मैं सादे

आश्रित को भेजने में तो असमर्थ हूँ। फिर यहाँ रहूँ किस लिए ? हम आनन्दवल्ली को जायेंगे। यहाँ नहीं रहना चाहते हम। इस तरह क्या देख रहे हो ? जो सत्य है, वही कह रहा हूँ।"

माधवराव जोर से हँसे। उनका हँसना बन्द होते ही राघोबा दादाजी ने चौंककर पूछा, "हँसे किस लिए आप ? हम जायेंगे इसलिए ?"

"नहीं काका ! आप पर नहीं हँसा। मैं अपने भाग्य पर हँस रहा हूँ। जो नहीं करना चाहता, ठीक वही मुझको करना पड़ रहा है। काका, धोखे से शरणागति स्वीकार की है, यह इतनी जल्दी भूल गये ?"

इस अन्तिम वाक्य से दादा दंग रह गये। सँभलते हुए बोले, "जब हमको क़ैद में ही रखना था तो झूठे सम्मान की जरूरत ही क्या थी ? किस लिए आतिशबाजी छुड़वाते हुए एक ही अम्बारी में हमारी शोभायात्रा निकाली ?"

"काका, यह दुर्भाग्य है हमारा ! आपका ध्यान इस ओर नहीं गया। अपने घर की दरार किस मुँह से जगज़ाहिर करूँ ? घर की लाज ढकने का हमने प्रयत्न किया और उसका आपने उलटा अर्थ लगाया ?"

"श्रीमन्त पेशवे ! तो हम आपके क़ैदी हैं !" दिखावटी हँसी हँसते हुए राघोबा दादा बोले। माधवराव के मस्तक की नसें स्पष्ट दिखाई पड़ने लगीं। हाथों की मुट्ठियाँ बँध गयीं। क्रोध से वे बोले,

"अच्छा किया ! आपने हमको हमारे पद की याद दिला दी। किस कारण आपको क़ैद न किया जाये, यह बता सकेंगे आप ?"

"वाह ! हमको आँखें दिखा रहे हैं ? आपका साथ दिया, आपको सँभाला, उसका अच्छा बदला चुका रहे हैं—"

"ख़ामोश !" माधवराव गरजे, "दस वर्ष के शासन-काल में राज्य के लिए, हमारे लिए, क्या किया है, वह क्या हमें मालूम नहीं है ? सुनना चाहते हैं ?"

"श्रीमन्त !" नाना फडणीस काँपते हुए बोले। माधवराव की दृष्टि तत्क्षण नाना पर आकर ठहर गयी और उस दृष्टि के साथ ही नाना के आगे के शब्द न निकल सके। उन गम्भीर नयनों में विलक्षण तेज आ गया था। माधवराव बोले,

"नाना ! मुझको रोको मत। ये अब भी अज्ञान में हैं। हमको इनके लिए क्या-क्या सहन करना पड़ा है, उसकी इनको कल्पना तक नहीं है। पिताजी स्वर्गवासी हो गये। हम पेशवा बने, उस समय हमारी अवस्था सोलह वर्ष की। हमारा मार्गदर्शन तो दूर रहा, परन्तु कर्नाटक की मुहीम से सारी जिम्मेदारी छोड़कर ये लौट आये। हम मुहीम फतह कर लौटे तो हमारा कौतुक करना

तो दूर रहा, उलटे ये निजाम-भोंसलों से हाथ मिलाकर हमारे विरुद्ध खड़े हो गये। घोड़नदी के पात्र में ये अचानक टूट पड़े। हमारी दुर्दशा की। भरी दोपहरी में हम पराजय स्वीकार करने गये। इनकी पनहीं छाती से लगायीं। सारी सत्ता इनके हाथ में दी। परन्तु फिर भी इनको विश्वास नहीं हुआ। उनको निजाम निकट का लगा तथा लड़ाई में पराक्रम से मिला हुआ मुल्क उसको देकर इन्होंने उससे मित्रता की। हमसे वैर मानकर हमारे साथियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये। पटवर्धनजी को पराजित किया। पेशवाओं का व्रत है— छत्रपतिजी की सेवा करना; परन्तु इन्होंने नागपुरकर भोंसलों को सातारा की गद्दी पर बैठाकर स्वयं पेशवा पद लेने का साहस किया। भाग्य हमारा कि ऐन मौक़े पर निजाम विपरीत हो गया और उसने पुणे लूट लिया। निजाम से मिले हुए सरदार हमारे कहने पर हमारे पक्ष में आ गये। राक्षस-भुवन पर हमने निजाम को पूर्ण रूप से पराजित किया और इच्छा न होने पर भी राज्य की ज़िम्मेदारी हमारे सिर पर आ गयी।"

प्रत्येक वाक्य के साथ माधवराव की आवाज़ तीव्र होती जा रही थी। राघोबा दादा का शरीर सुन्न हुआ जा रहा था। माधवराव उत्तरीय से मुँह पोंछते हुए बोले,

"हमने इन बातों को मन में नहीं रखा। कर्नाटक की दूसरी मुहीम में हमने विश्वास से काका को बुलाया। उनकी ज़िद मानकर सारी सत्ता उनके हाथ में दी। परन्तु इन्होंने उस सत्ता का कैसा उपयोग किया, मालूम है ? हैदर, जिसकी पराजय सरलता से हो सकती थी, उससे समझौता ! अवसर एक बार ही आता है। वही समय था। चंगुल में फँसा हुआ हैदर इनकी कृपा से छूट गया।"

"माधव ! इतना ही क्रोध था तो...."

"बोलिए मत, काका ! हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं। रक्त का नाता आपको कभी याद नहीं आया और रक्त का सम्बन्ध हम कभी भुला नहीं सके। इसीलिए यह सब हुआ। हमने दुःख नहीं किया। हमको ऐसा लगा जैसे हैदर की पराजय की अपेक्षा और बड़ा यश हमको प्राप्त हो गया हो ! हमारे घर की फूट मिट गयी। हमने इसको बड़ा मूल्यवान् समझा। यदि ऐसा न होता तो हम आपके हाथ में फ़ौज देकर आपको उत्तर में न भेजते। परन्तु आप उस ज़िम्मेदारी को भी नहीं निभा सके। एक वर्ष की मुहीम में सम्पूर्ण रूप से पराजित होकर आप लौटे। प्रत्येक रणांगण से हिम्मत हारकर ये पलायन करते रहे..."

"माधव !" बनावटी आवेश से राघोबा दादा बोले, "किससे कह रहे हो यह ? इस राघोभरारी को ?"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले,

"काका, ये बातें आश्रितों से कहिए। शायद वे मान लें इनको। अटक तक आप गये थे! अटक की मुहीम सामने उपस्थित होने पर ऐन अवसर पर 'पूज्य भाई साहब का पत्र आया है'—यह झूठी बात बनाकर लौट आये, यह क्या हम जानते नहीं? कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य आपके बिना यहाँ रुका हुआ था?"

"माधव! उत्तर की मुहीम में मैंने कितने प्रयत्न किये, यह कैसे बताऊँ?"

"हम जानते हैं!" नाना, मुहीम पर जाने से कम से कम लूट तो मिलती ही है। पेशवाई क़र्ज़ में डूबी हुई है, यह इनको मालूम था। उत्तर की मुहीम पूरी करके ये लौटे, तो अपरम्पार लूट लेकर नहीं, बल्कि लाये पचीस लाख का क़र्ज़। जो यश कमाकर लाये, वह था सती अहिल्याबाई से छल करने का। उस साध्वी के आये हुए पत्र पढ़कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। जिन होलकरों ने पेशवाई का साथ दिया, उनके वंश की विधवा को इन्होंने अत्यधिक सताया। विधवा के धन पर नीयत बिगाड़ी।"

"माधव! क़ैदी हूँ इसलिए ये बातें कह रहे हो? अरे, ब्राह्मण हूँ, कम से कम यह तो सोच!"

"किस लिए इन शब्दों का उल्लेख करते हो काका! ब्राह्मणत्व क्या होता है, यह भी मालूम है? नाटकशाला का प्रबन्ध करने के समान सरल नहीं है वह! जिसने पैठण क्षेत्र लूटा, उसको तो ब्राह्मणत्व का आधार लेना ही नहीं चाहिए।"

राघोबाजी का सिर झुक गया। क्रोध को रोकते हुए माधवराव बोले, "काका, इतना होने पर भी हमने यह मन में नहीं रखा। परन्तु आप फिर भी रूठ गये। राज्य का बँटवारा माँगने लगे। आपको मनाने के लिए हम आनन्दवल्ली को गये। आपको मनाया। आठ लाख की तैनात मंजूर की। पचीस लाख का क़र्ज़ अदा किया। परन्तु आपमें धैर्य कहाँ? आपने अँगरेज़ों से सुलह करना प्रारम्भ कर दिया। काका, सदैव आलेगाँव की पुनरावृत्ति होगी, यह आख़िर कैसे समझ लिया आपने? क़ैदी होने पर दुःख हो रहा है? आलेगाँव की छावनी पर दो हज़ार गारदियों का पहरा बैठाया था, उस समय हमको कैसा लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिए।"

नाना की ओर मुड़कर वे बोले, "नाना, आज से काका पर पहरे बैठा दीजिए। मेरी आज्ञा के बिना यहाँ कोई भी कार्य नहीं होना चाहिए। आश्रितों की नामसूचियाँ बनवा लीजिए। उनको चुनकर उन्हीं को यहाँ रहने दीजिए। इस महल में इनको जो चाहिए वह दो; परन्तु ज़रूरत से अधिक कोई भी सुविधा नहीं मिलनी चाहिए यह ध्यान रखिए। इसका उल्लंघन होने पर, जो उत्तरदायी होगा उसको देह-दण्ड दिया जायेगा। उसका मुलाहिज़ा नहीं किया जायेगा।"

तो दूर रहा, उलटे ये निजाम-भोंसलों से हाथ मिलाकर हमारे विरुद्ध खड़े हो गये। घोडनदी के पात्र में ये अचानक टूट पड़े। हमारी दुर्दशा की। भरी दोपहरी में हम पराजय स्वीकार करने गये। इनकी पनहीं छाती से लगायीं। सारी सत्ता इनके हाथ में दी। परन्तु फिर भी इनको विश्वास नहीं हुआ। उनको निजाम निकट का लगा तथा लड़ाई में पराक्रम से मिला हुआ मुल्क उसको देकर इन्होंने उससे मित्रता की। हमसे वैर मानकर हमारे साथियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये। पटवर्धनजी को पराजित किया। पेशवाओं का व्रत है—छत्रपतिजी की सेवा करना; परन्तु इन्होंने नागपुरकर भोंसलों को सातारा की गद्दी पर बैठाकर स्वयं पेशवा पद लेने का साहस किया। भाग्य हमारा कि ऐन मौक़े पर निजाम विपरीत हो गया और उसने पुणे लूट लिया। निजाम से मिले हुए सरदार हमारे कहने पर हमारे पक्ष में आ गये। राक्षस-भुवन पर हमने निजाम को पूर्ण रूप से पराजित किया और इच्छा न होने पर भी राज्य की जिम्मेदारी हमारे सिर पर आ गयी।"

प्रत्येक वाक्य के साथ माधवराव की आवाज तीव्र होती जा रही थी। राघोबा दादा का शरीर सुन्न हुआ जा रहा था। माधवराव उत्तरीय से मुँह पोंछते हुए बोले,

"हमने इन बातों को मन में नहीं रखा। कर्नाटक की दूसरी मुहीम में हमने विश्वास से काका को बुलाया। उनकी ज़िद मानकर सारी सत्ता उनके हाथ में दी। परन्तु इन्होंने उस सत्ता का कैसा उपयोग किया, मालूम है? हैदर, जिसकी पराजय सरलता से हो सकती थी, उससे समझौता! अवसर एक बार ही आता है। वही समय था। चंगुल में फँसा हुआ हैदर इनकी कृपा से छूट गया।"

"माधव! इतना ही क्रोध था तो...."

"बोलिए मत, काका! हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं। रक्त का नाता आपको कभी याद नहीं आया और रक्त का सम्बन्ध हम कभी भुला नहीं सके। इसीलिए यह सब हुआ। हमने दुःख नहीं किया। हमको ऐसा लगा जैसे हैदर की पराजय की अपेक्षा और बड़ा यश हमको प्राप्त हो गया हो! हमारे घर की फूट मिट गयी। हमने इसको बड़ा मूल्यवान् समझा। यदि ऐसा न होता तो हम आपके हाथ में फ़ौज देकर आपको उत्तर में न भेजते। परन्तु आप उस जिम्मेवारी को भी नहीं निभा सके। एक वर्ष की मुहीम में सम्पूर्ण रूप से पराजित होकर आप लौटे। प्रत्येक रणांगण से हिम्मत हारकर ये पलायन करते रहे..."

"माधव!" बनावटी आवेश से राघोबा दादा बोले, "किससे कह रहे हो यह? इस राघोभरारी को?"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले,

"काका, ये बातें आश्रितों से कहिए। शायद वे मान लें इनको। अटक तक आप गये थे! अटक की मुहीम सामने उपस्थित होने पर ऐन अवसर पर 'पूज्य भाई साहब का पत्र आया है'—यह झूठी बात बनाकर लौट आये, यह क्या हम जानते नहीं? कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य आपके बिना यहाँ रुका हुआ था?"

"माधव! उत्तर की मुहीम में मैंने कितने प्रयत्न किये, यह कैसे बताऊँ?"

"हम जानते हैं!" नाना, मुहीम पर जाने से कम से कम लूट तो मिलती ही है। पेशवाई कर्ज में डूबी हुई है, यह इनको मालूम था। उत्तर की मुहीम पूरी करके ये लौटे, तो अपरम्पार लूट लेकर नहीं, बल्कि लाये पचीस लाख का कर्ज। जो यश कमाकर लाये, वह था सती अहिल्याबाई से छल करने का। उस साध्वी के आये हुए पत्र पढ़कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। जिन होलकरों ने पेशवाई का साथ दिया, उनके वंश की विधवा को इन्होंने अत्यधिक सताया। विधवा के धन पर नीयत बिगाड़ी।"

"माधव! कैदी हूँ इसलिए ये बातें कह रहे हो? अरे, ब्राह्मण हूँ, कम से कम यह तो सोच!"

"किस लिए इन शब्दों का उल्लेख करते हो काका! ब्राह्मणत्व क्या होता है, यह भी मालूम है? नाटकशाला का प्रबन्ध करने के समान सरल नहीं है वह! जिसने पैठण क्षेत्र लूटा, उसको तो ब्राह्मणत्व का आधार लेना ही नहीं चाहिए।"

राघोबाजी का सिर झुक गया। क्रोध को रोकते हुए माधवराव बोले, "काका, इतना होने पर भी हमने वह मन में नहीं रखा। परन्तु आप फिर भी रूठ गये। राज्य का बँटवारा माँगने लगे। आपको मनाने के लिए हम आनन्द-वल्ली को गये। आपको मनाया। आठ लाख की तैनात मंजूर की। पचीस लाख का कर्ज अदा किया। परन्तु आपमें धैर्य कहाँ? आपने अँगरेजों से सुलह करना प्रारम्भ कर दिया। काका, सदैव आलेगाँव की पुनरावृत्ति होगी, यह आखिर कैसे समझ लिया आपने? कैदी होने पर दुःख हो रहा है? आलेगाँव की छावनी पर दो हजार गारदियों का पहरा बैठाया था, उस समय हमको कैसा लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिए।"

नाना की ओर मुड़कर वे बोले, "नाना, आज से काका पर पहरे बैठा दीजिए। मेरी आज्ञा के बिना यहाँ कोई भी कार्य नहीं होना चाहिए। आश्रितों की नामसूचियाँ बनवा लीजिए। उनको चुनकर उन्हीं को यहाँ रहने दीजिए। इस महल में इनको जो चाहिए वह दो; परन्तु जरूरत से अधिक कोई भी सुविधा नहीं मिलनी चाहिए यह ध्यान रखिए। इसका उल्लंघन होने पर, जो उत्तरदायी होगा उसको देह-दण्ड दिया जायेगा। उसका मुलाहिजा नहीं किया जायेगा।"

तो दूर रहा, उलटे ये निजाम-भोंसलों से हाथ मिलाकर हमारे विरुद्ध खड़े हो गये। घोडनदी के पात्र में ये अचानक टूट पड़े। हमारी दुर्दशा की। भरी दोपहरी में हम पराजय स्वीकार करने गये। इनकी पनहीं छाती से लगायीं। सारी सत्ता इनके हाथ में दी। परन्तु फिर भी इनको विश्वास नहीं हुआ। उनको निजाम निकट का लगा तथा लड़ाई में पराक्रम से मिला हुआ मुल्क उसको देकर इन्होंने उससे मित्रता की। हमसे वैर मानकर हमारे साथियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये। पटवर्धनजी को पराजित किया। पेशवाओं का व्रत है—छत्रपतिजी की सेवा करना; परन्तु इन्होंने नागपुरकर भोंसलों को सातारा की गद्दी पर बैठाकर स्वयं पेशवा पद लेने का साहस किया। भाग्य हमारा कि ऐन मौक़े पर निजाम विपरीत हो गया और उसने पुणे लूट लिया। निजाम से मिले हुए सरदार हमारे कहने पर हमारे पक्ष में आ गये। राक्षस-भुवन पर हमने निजाम को पूर्ण रूप से पराजित किया और इच्छा न होने पर भी राज्य की जिम्मेदारी हमारे सिर पर आ गयी।"

प्रत्येक वाक्य के साथ माधवराव की आवाज़ तीव्र होती जा रही थी। राघोबा दादा का शरीर सुन्न हुआ जा रहा था। माधवराव उत्तरीय से मुँह पोंछते हुए बोले,

"हमने इन बातों को मन में नहीं रखा। कर्नाटक की दूसरी मुहीम में हमने विश्वास से काका को बुलाया। उनकी ज़िद मानकर सारी सत्ता उनके हाथ में दी। परन्तु इन्होंने उस सत्ता का कैसा उपयोग किया, मालूम है? हैदर, जिसकी पराजय सरलता से हो सकती थी, उससे समझौता! अवसर एक बार ही आता है। वही समय था। चंगुल में फँसा हुआ हैदर इनकी कृपा से छूट गया।"

"माधव! इतना ही क्रोध था तो...."

"बोलिए मत, काका! हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं। रक्त का नाता आपको कभी याद नहीं आया और रक्त का सम्बन्ध हम कभी भुला नहीं सके। इसीलिए यह सब हुआ। हमने दुःख नहीं किया। हमको ऐसा लगा जैसे हैदर की पराजय की अपेक्षा और बड़ा यश हमको प्राप्त हो गया हो! हमारे घर की फूट मिट गयी। हमने इसको बड़ा मूल्यवान् समझा। यदि ऐसा न होता तो हम आपके हाथ में फ़ौज देकर आपको उत्तर में न भेजते। परन्तु आप उस जिम्मेवारी को भी नहीं निभा सके। एक वर्ष की मुहीम में सम्पूर्ण रूप से पराजित होकर आप लौटे। प्रत्येक रणांगण से हिम्मत हारकर ये पलायन करते रहे..."

"माधव!" बनावटी आवेश से राघोबा दादा बोले, "किससे कह रहे हो यह? इस राघोभरारी को?"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले,

"काका, ये बातें आश्रितों से कहिए। शायद वे मान लें इनको। अटक तक आप गये थे! अटक की मुहीम सामने उपस्थित होने पर ऐन अवसर पर 'पूज्य भाई साहब का पत्र आया है'—यह झूठी बात बनाकर लौट आये, यह क्या हम जानते नहीं? कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य आपके बिना यहाँ रुका हुआ था?"

"माधव! उत्तर की मुहीम में मैंने कितने प्रयत्न किये, यह कैसे बताऊँ?"

"हम जानते हैं!" नाना, मुहीम पर जाने से कम से कम लूट तो मिलती ही है। पेशवाई क़र्ज में डूबी हुई है, यह इनको मालूम था। उत्तर की मुहीम पूरी करके ये लौटे, तो अपरम्पार लूट लेकर नहीं, बल्कि लाये पचीस लाख का क़र्ज। जो यश कमाकर लाये, वह था सती अहिल्याबाई से छल करने का। उस साध्वी के आये हुए पत्र पढ़कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। जिन होलकरों ने पेशवाई का साथ दिया, उनके वंश की विधवा को इन्होंने अत्यधिक सताया। विधवा के धन पर नीयत बिगाड़ी।"

"माधव! क़ैदी हूँ इसलिए ये बातें कह रहे हो? अरे, ब्राह्मण हूँ, कम से कम यह तो सोच!"

"किस लिए इन शब्दों का उल्लेख करते हो काका! ब्राह्मणत्व क्या होता है, यह भी मालूम है? नाटकशाला का प्रबन्ध करने के समान सरल नहीं है वह! जिसने पैठण क्षेत्र लूटा, उसको तो ब्राह्मणत्व का आधार लेना ही नहीं चाहिए।"

राघोबाजी का सिर झुक गया। क्रोध को रोकते हुए माधवराव बोले, "काका, इतना होने पर भी हमने यह मन में नहीं रखा। परन्तु आप फिर भी रूठ गये। राज्य का बँटवारा माँगने लगे। आपको मनाने के लिए हम आनन्दवल्ली को गये। आपको मनाया। आठ लाख की तैनात मंजूर की। पचीस लाख का क़र्ज अदा किया। परन्तु आपमें धैर्य कहाँ? आपने अँगरेजों से सुलह करना प्रारम्भ कर दिया। काका, सदैव आलेगाँव की पुनरावृत्ति होगी, यह आखिर कैसे समझ लिया आपने? क़ैदी होने पर दुःख हो रहा है? आलेगाँव की छावनी पर दो हजार गारदियों का पहरा बैठाया था, उस समय हमको कैसा लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिए।"

नाना की ओर मुड़कर वे बोले, "नाना, आज से काका पर पहरे बैठा दीजिए। मेरी आज्ञा के बिना यहाँ कोई भी कार्य नहीं होना चाहिए। आश्रितों की नामसूचियाँ बनवा लीजिए। उनको चुनकर उन्हीं को यहाँ रहने दीजिए। इस महल में इनको जो चाहिए वह दो; परन्तु जरूरत से अधिक कोई भी सुविधा नहीं मिलनी चाहिए यह ध्यान रखिए। इसका उल्लंघन होने पर, जो उत्तरदायी होगा उसको देह-दण्ड दिया जायेगा। उसका मुलाहिज़ा नहीं किया जायेगा।"

तो दूर रहा, उलटे ये निजाम-भोंसलों से हाथ मिलाकर हमारे विरुद्ध खड़े हो गये। घोडनदी के पात्र में ये अचानक टूट पड़े। हमारी दुर्दशा की। भरी दोपहरी में हम पराजय स्वीकार करने गये। इनकी पनहीं छाती से लगायीं। सारी सत्ता इनके हाथ में दी। परन्तु फिर भी इनको विश्वास नहीं हुआ। उनको निजाम निकट का लगा तथा लड़ाई में पराक्रम से मिला हुआ मुल्क उसको देकर इन्होंने उससे मित्रता की। हमसे वैर मानकर हमारे साथियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गये। पटवर्धनजी को पराजित किया। पेशवाओं का व्रत है—छत्रपतिजी की सेवा करना; परन्तु इन्होंने नागपुरकर भोंसलों को सातारा की गद्दी पर बैठाकर स्वयं पेशवा पद लेने का साहस किया। भाग्य हमारा कि ऐन मौक़े पर निजाम विपरीत हो गया और उसने पुणे लूट लिया। निजाम से मिले हुए सरदार हमारे कहने पर हमारे पक्ष में आ गये। राक्षस-भुवन पर हमने निजाम को पूर्ण रूप से पराजित किया और इच्छा न होने पर भी राज्य की ज़िम्मेदारी हमारे सिर पर आ गयी।"

प्रत्येक वाक्य के साथ माधवराव की आवाज़ तीव्र होती जा रही थी। राघोबा दादा का शरीर सुन्न हुआ जा रहा था। माधवराव उत्तरीय से मुँह पोंछते हुए बोले,

"हमने इन बातों को मन में नहीं रखा। कर्नाटक की दूसरी मुहीम में हमने विश्वास से काका को बुलाया। उनकी ज़िद मानकर सारी सत्ता उनके हाथ में दी। परन्तु इन्होंने उस सत्ता का कैसा उपयोग किया, मालूम है? हैदर, जिसकी पराजय सरलता से हो सकती थी, उससे समझौता! अवसर एक बार ही आता है। वही समय था। चंगुल में फँसा हुआ हैदर इनकी कृपा से छूट गया।"

"माधव! इतना ही क्रोध था तो...."

"बोलिए मत, काका! हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं। रक्त का नाता आपको कभी याद नहीं आया और रक्त का सम्बन्ध हम कभी भुला नहीं सके। इसीलिए यह सब हुआ। हमने दुःख नहीं किया। हमको ऐसा लगा जैसे हैदर की पराजय की अपेक्षा और बड़ा यश हमको प्राप्त हो गया हो! हमारे घर की फूट मिट गयी। हमने इसको बड़ा मूल्यवान् समझा। यदि ऐसा न होता तो हम आपके हाथ में फ़ौज देकर आपको उत्तर में न भेजते। परन्तु आप उस जिम्मेवारी को भी नहीं निभा सके। एक वर्ष की मुहीम में सम्पूर्ण रूप से पराजित होकर आप लौटे। प्रत्येक रणांगण से हिम्मत हारकर ये पलायन करते रहे..."

"माधव!" बनावटी आवेश से राघोबा दादा बोले, "किससे कह रहे हो यह? इस राघोभरारी को?"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले,

"काका, ये बातें आश्रितों से कहिए। शायद वे मान लें इनको। अटक तक आप गये थे। अटक की मुहीम सामने उपस्थित होने पर ऐन अवसर पर 'पूज्य भाई साहब का पत्र आया है'—यह झूठी बात बनाकर लौट आये, यह क्या हम जानते नहीं? कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य आपके बिना यहाँ रुका हुआ था?"

"माधव! उत्तर की मुहीम में मैंने कितने प्रयत्न किये, यह कैसे बताऊँ?"

"हम जानते हैं!" नाना, मुहीम पर जाने से कम से कम लूट तो मिलती ही है। पेशवाई क़र्ज़ में डूबी हुई है, यह इनको मालूम था। उत्तर की मुहीम पूरी करके ये लौटे, तो अपरम्पार लूट लेकर नहीं, बल्कि लाये पचीस लाख का क़र्ज़। जो यश कमाकर लाये, वह था सती अहिल्याबाई से छल करने का। उस साध्वी के आये हुए पत्र पढ़कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। जिन होलकरों ने पेशवाई का साथ दिया, उनके वंश की विधवा को इन्होंने अत्यधिक सताया। विधवा के धन पर नीयत बिगाड़ी।"

"माधव! कैदी हूँ इसलिए ये बातें कह रहे हो? अरे, ब्राह्मण हूँ, कम से कम यह तो सोच!"

"किस लिए इन शब्दों का उल्लेख करते हो काका! ब्राह्मणत्व क्या होता है, यह भी मालूम है? नाटकशाला का प्रबन्ध करने के समान सरल नहीं है वह! जिसने पैठण क्षेत्र लूटा, उसको तो ब्राह्मणत्व का आधार लेना ही नहीं चाहिए।"

राघोबाजी का सिर झुक गया। क्रोध को रोकते हुए माधवराव बोले, "काका, इतना होने पर भी हमने यह मन में नहीं रखा। परन्तु आप फिर भी रूठ गये। राज्य का बँटवारा माँगने लगे। आपको मनाने के लिए हम आनन्दवल्ली को गये। आपको मनाया। आठ लाख की तैनात मंज़ूर की। पचीस लाख का क़र्ज़ अदा किया। परन्तु आपमें धैर्य कहाँ? आपने अँगरेजों से गुफ़्तगू करना प्रारम्भ कर दिया। काका, सदैव आलेगाँव की पुनरावृत्ति होगी, यह आखिर कैसे समझ लिया आपने? कैदी होने पर दुःख हो रहा है? आलेगाँव की छावनी पर दो हज़ार गारदियों का पहरा बैठाया था, उस समय हमको कैसा लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिए।"

नाना की ओर मुड़कर वे बोले, "नाना, आज से काका पर पहरे बैठा दीजिए। मेरी आज्ञा के बिना यहाँ कोई भी कार्य नहीं होना चाहिए। आश्रितों की नामसूचियाँ बनवा लीजिए। उनको चुनकर उन्हीं को यहाँ रहने दीजिए। इस महल में इनको जो चाहिए वह दो; परन्तु ज़रूरत से अधिक कोई भी सुविधा नहीं मिलनी चाहिए यह ध्यान रखिए। इसका उल्लंघन होने पर, जो उत्तरदायी होगा उसको देह-दण्ड दिया जायेगा। उसका मुलाहिज़ा नहीं किया जायेगा।"

और राघोवाजी की ओर न देखते हुए माधवराव महल से बाहर निकले।

घोडपे की लड़ाई के बाद शनिवार-भवन का स्वरूप एकदम बदल गया। चारों दरवाज़ों पर चौकियाँ और पहरे जारी किये गये। राघोबा दादाजी पर भी सख्त नजर रखी जाने लगी। माधवराव ने राघोबाजी के साथियों की खबर लेनी शुरू कर दी। राघोबाजी की सहायता करनेवाले गायकवाड की अकाल मृत्यु हो जाने से, वे छूट गये; परन्तु नागपुरकर भोंसले तथा अन्य क़ैद हुए साथी थे। गंगोबा तात्या पर माधवराव ने तीस लाख का जुर्माना किया। वह वसूल नहीं हो रहा है, यह ध्यान में आते ही माधवराव ने उसको अपने सामने खड़ा करवाया। माधवराव दीवानखाने में बैठे हुए थे। रामशास्त्री, सखाराम बापू, नाना, मोरोबा तथा अन्य लोग उपस्थित थे। गंगोबा तात्याजी को श्रीमन्त के आगे उपस्थित किया गया। श्रीमन्त बोले,

"गंगोबा तात्या, आप होलकरों के श्रेष्ठ सरदार हैं। आपसे हमने राजनिष्ठा की अपेक्षा की थी। आज तक आप उसको व्यक्त नहीं कर सके। हमारे काकाजी ने पेशवाई के विरुद्ध विद्रोह किया, आप उनके साथी बने। राज्य के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों पर हम कदापि दया नहीं दिखायेंगे। फिर भी आपकी अवस्था और आपके सम्मान का लिहाज़ करते हुए हमने आपपर तीस लाख का जुर्माना जारी किया है। वह अभी तक वसूल नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहते हैं?"

सामने खड़े हुए गंगोबा तात्या और उनके सुपुत्र क्रुद्ध दृष्टि से पेशवाजी की ओर देख रहे थे। गंगोबा तात्या स्वयं को सँभालते हुए बोले,

"श्रीमन्त! लड़ाई में पासे उलटे पड़ गये इसलिए आप यह सज़ा हमें दे रहे हैं। यह जुर्माना हमपर यदि न्यायपूर्ण है तो जिनकी ओर से हम आपसे लड़े, उन राघोबा दादाजी पर आपने क्या जुर्माना किया है, यह हम जान सकेंगे क्या?"

माधवराव स्वयं को सँभालते हुए हँसकर बोले,

"एक बात भूलते हैं गंगोबा तात्या, राघोबा दादा हमारे आप्तस्वकीय हैं। इतना ही नहीं, बल्कि मराठा राज्य के लिए अटक के पार जाने का यश उन्होंने सम्पादित किया है। दैवयोग से ही सही, परन्तु इतना एक श्रेय उनके खाते में जमा है। गंगोबा तात्या, आपने मराठा राज्य के लिए ऐसा कोई काम किया हो तो बताइए, जिससे कि हम आपपर किये गये जुर्माने को कम कर दें। बोलिए गंगोबा तात्या! यहाँ रामशास्त्रीजी हाज़िर हैं। यदि हम कुछ अनुचित करेंगे,

तो वे हमें सलाह देंगे। राज्य के न्यायाधीश होने के कारण हम वह सलाह स्वीकार करेंगे।"

गंगोबा मन ही मन टूट चुके थे। वे बोले,

"श्रीमन्त ! जब घर में कलह होने लगता है, तब हमारे कृत्य का समर्थन भला क्या हो सकता है ? आप इस बात को कभी नहीं समझ पायेंगे। वह अवस्था भी आपकी नहीं है। पेशवाई का प्रौढ़त्व चला गया है और उसके स्थान पर लड़कपन निर्माण हो गया है। ऐसी स्थिति में हमें न्याय कहाँ मिलेगा ? यह हम अच्छी तरह जान गये हैं। तीस लाख की बात साधारण नहीं है। श्रीमन्त को कदाचित् तीस लाख की आवश्यकता हो सकती है, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि वह हम-जैसों पर लाद दी जाये। साँप को तो घर दूध पिलाते रहें और वृथा रस्सी को साँप-साँप कहकर पीटते रहें, इसमें क्या रखा है ?"

गंगोबा तात्या के प्रत्येक वाक्य के साथ माधवराव का क्रोध बढ़ता जा रहा था। वे काँपते हुए उठे और बोले,

"वाह ! गंगोबा तात्या, जिसके आश्रय में फले-फूले उसको साँप कहने तक आपका साहस पहुँच गया, तो फिर हमको दोष देने में तो आपको कुछ भी बुरा नहीं लगेगा ! हम आपसे फिर पूछते हैं, आप जुर्माना अदा...."

"जुर्माना ?" गंगोबा तात्या उफनकर बोले, "कैसा जुर्माना ? पेशवे स्वयं को राजा समझने लगे क्या ? जो वे जुर्माने की माँग कर रहे हैं ? जो कीमत होलकरों की है, वही पेशवाओं की है। जुर्माना लेना ही हो तो वह छत्रपति-जी को लेना चाहिए। पेशवाओं को वह अधिकार नहीं है।"

माधवराव का क्रोध सीमा पर पहुँच गया। वे चिल्लाये,

"देखते क्या हो ? इसी क्षण इन बाप-बेटों के बेड़ियाँ डालो। इनकी उन्मत्त जीभ जबतक होश में न आये तबतक इनको कोड़े लगाये जायें।

गंगोबा तात्या और उनके सुपुत्र दोनों के बेड़ियाँ डाल दी गयीं। परन्तु उनको कोड़े लगाने का साहस कोई नहीं कर सका। क्रोध से तमतमाते हुए माधवराव ने झटके से सेवक के हाथ से बेंत छीन लिया। क्या हो रहा है, यह समझ में आये इससे पहले ही उनके हाथ का बेंत गंगोबा तात्या की पीठ पर तड़तड़ा उठा। गंगोबा तात्या असह्य-भाव से कराह उठे। माधवराव के क्रोध ने इतना रौद्र रूप धारण कर लिया था कि उनको रोकने का साहस कोई नहीं कर सका। माधवराव के हाथ का बेंत गंगोबा की पीठ पर पड़ रहा था। प्रहार पर प्रहार हो रहे थे। गंगोबा तात्या क्षमा-याचना के लिए माधव-राव के चरणों पर जल्दी-जल्दी लोट लगा रहे थे...

रामशास्त्री आगे आये और उन्होंने श्रीमन्त का हाथ पकड़ लिया। वे

बोले, "श्रीमन्त ! क्रोध रोकिए। गंगोबा-जैसे तुच्छ स्वार्थी मनुष्य पर आप-जैसों का हाथ उठाना उचित नहीं है।"

स्वयं को सँभालते हुए जैसे-तैसे माधवराव जाकर आसन पर बैठे। रक्त-रंजित गंगोबा तात्या औंधे पड़े हुए थे। माधवराव ने तुच्छता से उनकी ओर देखा और कहा,

"उठाओ इसको और ले जाकर दिल्ली-दरवाज़े के सामने खड़ा कर दो। राजद्रोही की जाति क्या होती है, यह लोगों को एक बार जान लेने दो। जब-तक इन बाप-बेटों से तीस लाख का जुर्माना वसूल न हो, तबतक इनको मत छोड़ना। जुर्माना वसूल होने तक नगर के क़िले में अन्धेरी कोठरी में इनको पड़े रहने दो। ले जाओ इनको !"

गंगोबा तात्या और उनके लड़के को महल से बाहर ले जाया गया।

माधवराव बापू की ओर मुड़कर बोले,

"बापू, कठिनाई के समय आपको सलाह लेने के लिए हम आपके पास आते हैं। आज हमको आपकी सलाह चाहिए।"

बापू आसन से उठकर माधवराव के पास आये। उनकी नज़र से नज़र मिलाते हुए माधवराव बोले,

"बापू, आपकी निरपेक्ष सलाह से हम खुश होते हैं। आज हमको ऐसी ही सलाह की अपेक्षा है। राज्य की ओर ध्यान देते हुए घरभेदियों से कैसे सावधान रहा जा सकता है, यह आप बता सकेंगे क्या ? हमारा भय कैसे दूर होगा ?"

सखाराम बापू ने अपना चश्मा उत्तरीय से पोंछा और उसको आँखों पर लगाते हुए वे बोले,

"श्रीमन्त ! आपके प्रश्न का रुख मैं जानता हूँ। हम-जैसों को आराम से घर बैठा देंगे तो आपके मनोरथ जरूर सफल होंगे, यह हमारी सलाह है।"

माधवराव सारा क्रोध भूलकर प्रसन्नता से हँसे और बोले,

"बापू, आपसे स्पष्ट सलाह की अपेक्षा की थी, वह आपने पूरी कर दी, इसलिए हम आपके ऋणी हैं। जब ऐसी सलाह की आवश्यकता महसूस होगी, तब वह आपसे हम लेंगे, यह विश्वास रखिए।" माधवराव क्षण-भर रुके और मोरोबा की ओर मुड़कर बोले,

"मोरोबा !"

मोरोबा के पास आते ही माधवराव बोले,

"आज से बापूजी के घर पर सख्त नज़र रखिए। जैसा काकाजी का प्रबन्ध किया है, वैसा ही बापूजी का कीजिए। इसमें कोई भी कमी मत रहने

दीजिए। बापू, आप गुस्सा तो नहीं हुए न ?"

स्मिता से हँसकर बापू बोले, "श्रीमन्त! आपकी इच्छा होने पर प्रबन्धक का पद क्या अथवा नज़रकैद क्या—हमको दोनों ही समान हैं। आपकी इच्छा ही हमारा आनन्द है।"

बापू मुड़े और महल से बाहर चले गये। पीछे-पीछे मोरोबा भी चले गये।

एक के बाद एक जो घटनाएँ घटित हुईं, उनसे माधवराव खुश हो गये थे, परन्तु इन घटनाओं से माधवराव का दबदबा दरबार में सौगुना बढ़ गया। माधवराव से सभी डरते थे। सखाराम बापू के घर पर सख्त नजर रखी जा रही थी। श्रीमन्त की अनुमति के बिना कोई भी सखाराम बापू से मिलने नहीं जा सकता था।

माधवराव के मन में दो प्रबल शत्रु खटक रहे थे। एक हैदर और दूसरे अँगरेज। तीन बार प्रयत्न करने पर भी जिस हैदर का वह अन्त नहीं कर पाये थे, उस हैदर का अन्तिम निर्णय कर देना चाहिए—यह सोचकर माधवराव व्याकुल हो उठे थे। जब-तब बिगड़ उठनेवाले स्वास्थ्य की उनको बिलकुल चिन्ता नहीं थी। जिन राघोबा ने अपने तुच्छ स्वार्थवश हैदर को बचाया था, वे राघोबा आज पेशवाओं की नजर-कैद में थे। दादाजी को उकसानेवाले बापू पर कठोर दृष्टि थी। आज तक जो संकल्प किये थे, वे दादाजी के कारण सफल नहीं हो सके थे। दादाजी व बापू की क़ैद से ये अधूरे संकल्प निश्चय ही पूरे होंगे, इसमें माधवराव को लेशमात्र भी शंका नहीं थी।

जानोजी भोंसले राज्य का मार्ग रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। घोडपे की लड़ाई में दादाजी को भोंसलों ने प्रेरित किया। ऐन समय पर जानोजी की फ़ौज दादाजी की सहायता के लिए नहीं आ सकी, इसका कारण निस्सन्देह यह था कि श्रीमन्त ने उचित समय पर बहुत जल्दी की। दादाजी से हाथ मिलाकर राज्य को परकीयों के हवाले करने की दुष्ट प्रवृत्ति जानोजी ने अब भी नहीं छोड़ी थी। दादा साहब को क़ैद से छुड़ाने का प्रयत्न वह कर रहा था। जानोजी की मदद मिल सकेगी, इस आशा से दादाजी ने क़ैद से भागने का प्रयत्न किया। परन्तु सौभाग्य से यह षड्यन्त्र प्रकट हो गया। दादाजी की योजना व्यर्थ हो गयी। इस षड्यन्त्र में जो भी सम्मिलित थे, सबको बेड़ियाँ डाल दी गयीं। दादाजी की झुँझलाहट बढ़ गयी। परन्तु माधवराव ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। भोंसले इस षड्यन्त्र की जड़ में थे, उनका नशा उतारना चाहिए, इस उद्देश्य से माधवराव ने चढ़ाई करने का निश्चय किया और निज़ाम की ओर से मदद की अपेक्षा की। इसी अवधि में उन्होंने भोंसले से बातचीत भी शुरू की थी।

जानोजी को मिलने के लिए बुलाया, किन्तु वह नहीं आया। वह इधर-उधर की बातें बनाने लगा। वह अँगरेजों से मिलने का प्रयत्न कर रहा था, यह बात माधवराव के कानों में पड़ी। जानोजी युद्ध की तैयारी कर रहा है—इस तरह की खबरें आयीं और पेशवाओं ने शीघ्रता से फ़ौज इकट्ठी करनी शुरू कर दी।

निजाम की सात-आठ हज़ार फ़ौज आ गयी। पिराजी नाईक—निम्बालकर आकर मिल गये। पूर्ण तैयारी कर पेशवाओं ने भोंसलों के प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। जानोजी ने छिप-छिपकर युद्ध करने का आश्रय लिया, परन्तु पेशवाओं ने उसकी किसी चाल को सफल न होने दिया। भोंसलों को घासदाणा, देशमुखी आदि के जो अधिकार मिले हुए थे, वे छीन लिये। जागीर और इनाम के रूप में जो प्रदेश मिला था, वह सब अधिकार में कर लिया। नागपुर लूटा, भुइकोट दुर्ग ले लिया। पेशवाओं की चढ़ाई से भोंसलों के पैर उखड़ गये। अब टिकना मुश्किल है, यह ध्यान में आते ही भोंसलों ने समझौता-वार्ता आरम्भ कर दी। देवाजी पन्त को समझौता करने का सर्वाधिकार दिया गया। देवाजी पन्त ने समझौता-वार्ता प्रारम्भ कर दी। भोंसलों पर की गयी इस मुहीम के कारण उत्तर की ओर की मुहीम टलती जा रही थी तथा मुहीम के दिन भी समाप्त होते आने के कारण पेशवाओं ने समझौते को मान्यता दी। कनकापुर में पेशवाओं की क़लम से बारह शर्तोंवाला समझौता पूरा हुआ तथा पेशवे पीछे लौटे।

मुहीम के झंझट में जिसकी ओर दुर्लक्ष्य किया था, उस ज्वर की अनुभूति माधवराव को अब होने लगी। निर्बलता बढ़ने लगी। वैद्यराज की औषध शुरू हो गयी। ज्वर कम हो गया; परन्तु दुर्बलता कम नहीं हुई। थोड़ा स्वस्थ होते ही माधवराव नये उत्साह से राज्य का कार्य देखने लगे। दक्षिण में हैदर की हलचलें बढ़ रही थीं। उसने पेशवाओं के प्रदेश को जीतना प्रारम्भ कर दिया था। माधवराव को उत्तर की अपेक्षा दक्षिण को चिन्ता थी। समय रहते हैदर पर अंकुश लगाना आवश्यक था। माधवराव ने सभी सरदारों को फ़ौज के साथ इकट्ठा होने का आदेश दिया। विश्रान्ति न लेते हुए एक के बाद एक मुहीमें उठ रही थीं, फिर भी माधवराव के क्रोध को झेलने का साहस किसी में नहीं था। एक के बाद एक सरदार अपनी फ़ौज लेकर पुणे में आकर इकट्ठे हो रहे थे। आये नहीं थे केवल भोंसले। भोंसलों का वकील देवाजी पन्त पुणे में ही था। पेशवे उसके पीछे पड़ गये। उसको सम्मुख बुलवाकर माधवराव ने पूछा,

"देवाजी पन्त! अभी तक भोंसले क्यों नहीं आये? अब भी हम कितनी प्रतीक्षा करें?"

देवाजी पन्त विवशता-भरे स्वर में बोले, "दूरी बहुत है। भारी फौज साथ है। थोड़ा विलम्ब होगा ही! राजे नागपुर छोड़कर चल दिये हैं। आठ दिनों में उपस्थित हो जायेंगे।"

माधवराव का क्रोध कुछ शान्त हुआ। उनको प्रसन्न होते देखकर देवाजी पन्त बोले, "श्रीमन्त! चरणों में एक प्रार्थना है।"

"कहिए" माधवराव बोले।

"एक बार बापू से मिलने की अनुज्ञा दें!"

"मतलब!" एकदम चौंककर माधवराव ने पूछा।

देवाजी पन्त अवाक् रह गये। जैसे-तैसे वे बोले, "पहले का स्नेह। इतने दिन हो गये; मिल नहीं सका। आज्ञा हो जायेगी तो..."

क्षण-भर माधवराव चुप रहे। दूसरे ही क्षण वे हँसकर बोले,

"जरूर मिलिए। आपका और बापू का इतना स्नेह-सम्बन्ध है, यह हमें मालूम नहीं था। कौन है बाहर?"

श्रीपति अन्दर आया। उससे माधवराव बोले, "श्रीपति, कार्यालय में जा और केशव को बुला ला।"

श्रीपति चला गया। केशव लिपिक आया। कार्यालय में जो अनेक विश्वसनीय लोग थे, उनमें एक केशव था। उसके आते ही माधवराव बोले,

"केशव! इन देवाजीपन्त को लेकर बापू के पास जाओ। ये उनसे मिलना चाहते हैं। मिलने की आज्ञा मैंने दे दी है, यह बता देना।"

देवाजी पन्त के चले जाने पर भी बहुत देर तक माधवराव महल में अकेले ही बैठे थे।

दूसरे दिन प्रातःसमय केशव उपस्थित हुआ। माधवराव अश्वशाला की ओर घूम रहे थे। घोड़ों को देख रहे थे। अपने प्रिय घोड़े को थपथपाते हुए वे खड़े थे। केशव को देखते ही उन्होंने पूछा,

"केशव, मिल गये?"

"जी।"

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं। हम गये तब वे बैठे हुए थे। उनके दो आश्रित शतरंज खेल रहे थे। देवाजी पन्त ने कुशलक्षेम बतायी। यह बताया कि नागपुर से राजे चल दिये हैं और दो मंजिलें पार कर चुके हैं। बापू ने 'ठीक है' कहा।"

"और?"

"और कुछ नहीं। उसके बाद बापू चाल की ओर ही देखते रहे।"

"बस? इतना ही? कोई कुछ नहीं बोला?" आश्चर्य से माधवराव

ने पूछा।

"नहीं !" केशव नकारात्मक सिर हिलाता हुआ बोला, "बीच में आश्रित को एक चाल बतायी !"

"कौन-सी चाल बतायी ?"

"राजा दो घर पीछे ले लो, इतना ही वे बोले।"

"अच्छा !" माधवराव घोड़े को थपथपाते हुए बोले। केशव की ओर देखकर वे हँसते हुए बोले, "केशव, ऐसा करो ! सीधे कार्यालय में जाओ और यह घटना आज की तारीख में लिख रखो। नाना आ गये होंगे, उनको यहाँ भेज देना।"

नाना के आते ही माधवराव बोले, "नाना, कल से हमको नागपुरकर भोंसलों की सभी हलचलों का पता चलना चाहिए। ऐसी व्यवस्था करो।"

"श्रीमन्त ! आज ही सवार रवाना करता हूँ। परसों से वार्ता आने लगेगी।" और थोड़ी ही देर बाद सवार नागपुर की ओर रवाना हो गये।

दो दिन बाद नाना खबर लाये।

"श्रीमन्त ! नागपुरकर भोंसले चढ़ाई के लिए दो मंज़िलें आगे आ गये थे, वे फिर नागपुर लौट गये हैं।"

"हमको भी यही आशा थी ! नाना, देवाजी पन्त को बुलवाओ।"

देवाजीपन्त आये। उनके आने की खबर पाते ही माधवराव जल्दी-जल्दी सेवक-कक्ष में गये। देवाजी पन्त से बोले,

"पन्त ! अभी आपके राजा साहब का पता नहीं है !"

"श्रीमन्त, राजे चल दिये हैं। दो-चार दिन में पुणे में दाखिल हो जायेंगे !"

"आपके आशीर्वाद से या हमारे ?" पेशवाजी ने कठोर प्रश्न किया। खड़े-खड़े देवाजी पन्त काँपने लगे। केशव का लिखित उनके आगे रखते हुए माधवराव बोले, "भोंसले दो मंज़िल आगे आकर पीछे लौट गये, यह भी हमें पता चल गया है। बापू की सलाह इतनी महत्त्वपूर्ण लगी ?"

"श्रीमन्त !"

"चुप ! देवाजी पन्त, आप भोंसलों के वकील हैं, इसलिए हम दया कर रहे हैं, नहीं तो हाथी के पैरों-तले डाल दिया जाता। यदि यह शक्ति हममें न होती तो जिन्होंने यह सलाह दी, वे आज नज़रक़ैद में बैठे-बैठे शतरंज न खेल रहे होते। अपने राजा साहब को हमारा सन्देश भेज दीजिए—आठ दिन के अन्दर फ़ौज सहित वे पुणे में हाज़िर नहीं हुए तो राजा जिस स्थान पर है वहाँ से सौ घर पीछे भेज दिया जायेगा, कह देना ! समझ गये ? जाइए ! राजा साहब फ़ौज लेकर आठ दिनों के अन्दर नहीं आये तो कर्नाटक पर चढ़ाई करने के लिए

इकट्ठी हुई हमारी फ़ौज नागपुर की ओर चल पड़ेगी; परन्तु इस बार हम केवल नागपुर लूटकर या जुर्माना लेकर नहीं लौटेंगे, यह भी सूचित कर दीजिए।"

देवाजी पन्त जैसे-तैसे वहाँ से छूटा। माधवराव ने नाना को बुलवाया। अपनी खास हस्तिदन्ती मुहरोंवाली शतरंज नाना के हाथ में देते हुए वे बोले,

"यह शतरंज बापूजी को जाकर दो। उनसे कहना कि हम उनकी चाल [illegible] चुके हैं।"





माधवराव ने जो कठोर नीति अपनायी उसको देखकर राघोबाजी के पक्ष के सभी लोगों की बोलती बन्द हो गयी। माधवराव स्वास्थ्य की ओर दुर्लक्ष्य करके समस्त कार्य स्वयं देख रहे थे। पेशवाओं के व्यक्तिगत खर्च का हिसाब रखनेवाले प्रतिदिन आकर देवालयों के सम्बन्ध में बनायी हुई योजनाओं को बता रहे थे।

सन्ध्यासमय था। श्रीमन्त बहुत पहले ही कार्यालय में आकर बैठे थे। नाना, मोरोबा आदि पास खड़े थे। नगरसुधार पर खर्च होनेवाली रकम का हिसाब श्रीमन्त देख रहे थे। श्रीमन्त ने पूछा,

"नाना, खजाना कम तो नहीं पड़ेगा न ?"

"नहीं श्रीमन्त! हमको भी यही भय था। परन्तु गजानन की कृपा से बिना किसी परेशानी के यह पार पड़ जायेगा, ऐसा लगता है।"

"और काका के क्या हाल-चाल हैं ?"

"वह वातावरण अब भी तप्त है! वहाँ जाओ तो अच्छी तरह बात भी नहीं करते हैं। अनुष्ठान जोर-शोर से हो रहे हैं।"

"ठीक है," माधवराव विषय बदलते हुए बोले, "आज हम पर्वती पर जायेंगे। हमने सुना है कि देवालय का काम पूरा होता आ रहा है। आप चलेंगे ?"

"जो आज्ञा!"

श्रीमन्त उठे। दिल्ली-दरवाजे के सामने श्रीमन्त का घोड़ा खड़ा था। गारदियों का पथक अदब से खड़ा था। गारदियों के मुजरे स्वीकार करके श्रीमन्त सवार हो गये। नाना, मोरोबा, पागे, घुलप और श्रीपति श्रीमन्त के बाद ही सवार हो गये। श्रीमन्त के पीछे-पीछे चार क़दमों का अन्तर छोड़कर नाना, मोरोबा, पागे, घुलप आदि लोग थे। उनके पीछे-पीछे श्रीपति था। उसके पीछे गारदियों का पथक था। पेशवाओं के आगे पेशवाओं का खास पथक था।

पर्वती पर माधवराव के स्वागत के लिए खाजगीवाले[1] पहले से ही उपस्थित थे। पर्वती के दर्शन करके माधवराव छत्रपतिजी के मन्दिर में आये। वहाँ छत्रपतिजी की पादुकाओं की स्थापना करके वह मन्दिर बनवाया गया था।

१. राजा के व्यक्तिगत धन का हिसाब रखनेवाले।

पादुकाओं के दर्शन करके माधवराव घुलपजी से बोले,

"यहां आते ही मन व्याकुल हो जाता है। यह छत्रपतिजी की गादी का प्रतीक है। इनके आगे नतमस्तक होते समय अनेक विचार मन में आते हैं। छत्रपतिजी के राज्य की सेवा करने में हमारे हाथों से ग़लती तो नहीं हो रही है, यह शंका मन में उठती है। स्वामित्व सरल है, परन्तु सेवकत्व बड़ा कठिन है!"

माधवराव वहां से स्यायी बैठकों के स्थान पर आये। पवन आ रहा था। जहां माधवराव बैठे थे, वहां से पुणे दिखाई दे रहा था। सूर्यास्त का समय समीप आ गया था। नाना ने इस बात का स्मरण करा दिया और सब पर्वती से उतरने लगे।

घोड़ों पर सवार होकर सभी लौट रहे थे; माधवराव साथ चलते हुए घुलपजी से कुछ पूछ रहे थे। सभी असावधान थे। अचानक पीछे के गारदियों के पथक के रामसिंह गारदी ने घोड़े को एड़ लगायी और क्या हो रहा है यह समझ में आने से पूर्व ही उसने घोड़ा आगे निकाल लिया। श्रीपति के घोड़े को टक्कर देकर, नाना के घोड़े को छेककर रामसिंह ने घोड़ा आगे निकाल लिया। आश्चर्यचकित हुए श्रीपति को क्षण-भर को रामसिंह के हाथ में लगी नंगी तलवार के दर्शन हुए। पूरी शक्ति से वह चिल्लाया,

"सरकार, घाऽत!"

लगाम की ओर देखते हुए माधवराव की दृष्टि तत्क्षण मुड़ी। रामसिंह के हाथ की तलवार उसी समय वेग से नीचे आ रही थी। माधवराव ने अनजाने ही लगाम खींची। उसी समय उस इशारे के साथ ही वह उमदा जानवर सिहर उठा और उसी समय तलवार नीचे आयी। दोनों काम एक साथ हुए। तलवार सीधी माधवराव के कन्धे पर उतरी। क्षण-भर में यह सब हो गया। माधवराव का घोड़ा उनके मुख से निकली हुई चीख के साथ ही बिदक गया और एकदम भाग खड़ा हुआ। असह्य आघात से व्याकुल माधवराव का रिकावी में रखा हुआ पैर उस घोड़े के भड़कने के साथ ही रिकावी से निकल गया और वे घोड़े से नीचे गिर पड़े।

माधवराव को नीचे गिरते देखते ही रामसिंह ने अपना घोड़ा एक ओर निकाला। सन्ताप से तमतमाते हुए श्रीपति ने जब देखा कि रामसिंह बग़ल बचाकर निकला जा रहा है, तो उसने तत्क्षण घोड़े को एड़ लगायी और तेज़ी से अपना घोड़ा रामसिंह के सामने कर दिया। श्रीपति ने क्रोध से तलवार खींच ली, परन्तु उसके वार को रामसिंह ने अपनी तलवार पर झेल लिया। श्रीपति का घोड़ा रामसिंह के घोड़े से भिड़ गया। वार सँभालते हुए रामसिंह

का सन्तुलन बिगड़ गया और वह घोड़े से नीचे गिर गया। श्रीपति कूद पड़ा। भयभीत होकर देखते हुए रामसिंह पर श्रीपति ने तलवार उठायी। उसी समय उसके कानों में शब्द आये,

"ठहर। श्रीपति, हाथ रोक ले।"

श्रीपति ने देखा कि माधवराव बड़े कष्ट से उठ रहे थे, परन्तु उनकी दृष्टि श्रीपति पर लगी हुई थी। श्रीपति ने तलवार फेंक दी और वह रामसिंह से भिड़ गया। देखते ही देखते उसने रामसिंह को औंधा पटक दिया तथा अपने दुपट्टे से उसके हाथ पीठ पर बाँध दिये। खास सरकारी फ़ौज का पथक गारदियों के चारों ओर घेरा बनाकर खड़ा था। हक्के-बक्के बने हुए नाना, मोरोबा, फुलजी और पागे माधवराव को सँभालने का प्रयत्न कर रहे थे।

माधवराव बैठे हुए थे। उनका बायाँ कन्धा रक्तरंजित हो गया था। कपड़े गन्दे हो गये थे। सिर की पगड़ी गिर गयी थी, उसको हाथ में लेकर नाना खड़े थे। उनका सारा अंग काँप रहा था। फुलजी सावधान हुए। उन्होंने कमर से फेंटा खोला। सब माधवराव के आस-पास इकट्ठे हो गये थे। हल्के हाथों से मोरोबा ने अँगरखे के बन्ध खोले और कन्धे को खुला किया। लगभग उँगली की गहराई का घाव कन्धे में हो गया था। रक्त आ रहा था। फुलजी ने फेंटे के खड़े दो टुकड़े किये तथा उनमें से एक पट्टी से घाव को बाँधना शुरू किया। मोरोबा श्रीमन्त के माथे से पसीना पोंछ रहे थे। पट्टी बँध गयी। माधवराव के चेहरे पर घाव की वेदना का चिह्न भी नहीं था, परन्तु उनकी आँखें लाल हो गयी थीं।

श्रीपति ने लातें मारकर रामसिंह को केश पकड़कर बैठाया। लड़खड़ाता हुआ उठकर सिसके खाता हुआ रामसिंह वहाँ आया जहाँ माधवराव थे। खड़े-खड़े ही वह माधवराव के सामने गिर पड़ा। रोता हुआ वह बोला,

"हुजूर, मैं माफ़ी माँगना चाहता हूँ! मैं माफ़ी के क़ाबिल नहीं हूँ, लेकिन मैं...हुजूर सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि ये क़सूर मेरा नहीं....मेरा नहीं है...।"

माधवराव उद्वेग से चिल्लाये, "देखता क्या है श्रीपति? इसको कुछ भी मत बोलने दे। इसकी मुश्कें बाँध लो।"

क्षण-भर में रामसिंह की मुश्कें बाँध ली गयीं। नाना की ओर मुड़कर श्रीमन्त बोले, "नाना, इसको क़िले में ले जाकर अन्धेरी कोठरी में डाल दो। इस पर सख़्त नज़र रखो। कोई भी इससे मिलने न पाये। जब तक इस गारदी से पूछ-ताछ न हो जाये इन औरों को भी बेड़ियाँ डलवा दो। सख़्त क़ैद में रखो। मैं स्वयं इसकी जाँच करूँगा। तब तक यह एक भी शब्द न बोलने पाये, ध्यान रखिए।"

"जो आज्ञा ! श्रीमन्त, डोली मँगवा लेता हूँ।"

"नहीं नाना ! डोली की आवश्यकता नहीं है। हम ऐसे ही जा सकते हैं, डोली मँगवाओगे तो चारों ओर हल्ला हो जायेगा। जहाँ तक हो सके, इस घटना की चर्चा बाहर मत पहुँचने दो।"

माधवराव ने अँगरखा ठीक किया। डोरी से बन्ध बांधे। नाना ने पगड़ी आगे बढ़ायी, उसको सिर पर धारण करते समय, नाना की आँखें भर आयीं, सभी की आंखों से निरुद्ध आंसू बहने लगे। नाना के कन्धे पर हाथ रखकर श्रीमन्त बोले,

"नाना, ऐसा तो होता ही रहता है। श्री गजानन ने लाज रख ली आज। उस जैसा रक्षक होने पर हम लोगों को चिन्ता कैसी ? चलो, रात हो रही है।"

अन्धेरा घिरने लगा था। सामने से मशालचियों के पथक को आते हुए देखते ही माधवराव जल्दी-जल्दी बोले,

"नाना, आगे जाकर उस पथक को रोकिए। उसको हमारे आगे ही रहने दो।"

चुने हुए सवार लेकर और शेष गारदियों के प्रबन्ध के लिए छोड़कर माधवराव आगे बढ़े। धुलप की सहायता से वे अश्वारूढ़ हुए। रक्त से सने हुए अँगरखे को छोड़कर घटित घटना का और कोई चिह्न माधवराव के चेहरे पर दिखाई नहीं पड़ रहा था। माधवराव ने घोड़े को एड़ लगायी। घोड़ा तेज गति से चलने लगा। पीछे-पीछे सब जा रहे थे। दिल्ली-दरवाज़े के सामने न जाते हुए माधवराव गणेश-दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजे के पहरे पर खड़ा हुआ पथक अचानक श्रीमन्त का आगमन देखकर घबड़ा गया। मुजरे के लिए उनके सिर झुक गये; परन्तु श्रीमन्त दरवाज़े के पास उतरे नहीं। घोड़े पर ही वे अन्दर गये। अन्दर के चौक में जाकर उन्होंने घोड़ा खड़ा किया।

मोरोबा ने हाथ बढ़ाकर श्रीमन्त को उतारा। भवन में सर्वत्र दीप जल चुके थे। धीमे क़दम रखते हुए माधवराव जा रहे थे। बायें हाथ पर स्थित सुन्दर चौपल्ली इमारत को पार कर वे गोरी-महल के सामने बाग़ में आये। वहाँ से दादा साहब का महल दिखाई दे रहा था। दूसरी मंजिल पर छज्जे पर दादा साहब खड़े थे। दादा साहब की ओर दृष्टि जाते ही उन्होंने अपना इरादा बदल दिया और अपने महल की ओर चलने लगे। गोरी महल पार करके वे अन्दर के चौक में आये। हौज में फुव्वारा चल रहा था। क्षण-भर वे हौज के पास रुके। फिर वे उस बरामदे की ओर चलने लगे जहाँ दावतें होती थीं। उस बरामदे के पास ही उनका महल था। वे बरामदे में आये। उसी समय उनके

कानों में पुकार पड़ी, "श्रीमन्त !"

माधवराव ने मुड़कर देखा। दादा साहब का आश्रित विनायक खड़ा था। माधवराव के माथे पर सिकुड़नें पड़ गयीं। उन्होंने पूछा,

"क्या है ?"

"दादा साहब महाराज ने याद किया है।"

माधवराव ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और मुड़कर दादा साहब महाराज के महल की ओर जाने लगे। महल के दरवाजे पर ही दादा साहब खड़े थे। जैसे ही माधवराव ने अन्दर क़दम रखा, राघोबाजी ने पूछा,

"माधव, सुना है यह सच है क्या ?"

"क्या ?"

तब तक राघोबाजी की दृष्टि रक्तरंजित अँगरखे पर स्थिर हो चुकी थी।

"गारदी ने वार किया ?"

"हाँ !"

"घाव बड़ा है ?"

"मामूली !"

"ईश्वर की कृपा ! फिर वह गारदी...."

"जीवित है। पकड़ लिया है उसको।"

राघोबाजी कुछ कह नहीं पा रहे थे। काँपती हुई आवाज में उन्होंने पूछा,

"क्या कहा उसने ? कुछ बोला ?"

"नहीं काका ! वह कुछ कहे इससे पहले ही उसकी मुसक बाँधकर उसको अन्धेरी कोठरी का रास्ता दिखा दिया।"

"उससे उगलवाना चाहिए था। ऐसी बात में कैसी क्षमा ?" दादा कहते साहब से बोले।

तत्क्षण राघोबाजी की दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए माधवराव बोले, "काका ! वह किसलिए मुझ पर वार करेगा ? और जिसने उसके द्वारा यह घृणित कृत्य करवाया है, उसका नाम यदि मालूम पड़ गया होता तो उसको तोप से उड़वाने के अतिरिक्त मैं कर भी क्या सकता था ? काका, चिन्ता मत करो। उससे उगलवाने का साहस मुझमें नहीं है। जाता हूँ मैं।"

यह कहकर माधवराव महल से बाहर निकले।

माधवराव अपने महल में आये और पलंग पर बैठ गये। मोरोबा ने हलके

हाथों से अँगरखा उतारा। कन्धे पर लपेटा हुआ फँटा जैसे का तैसा था। नाना वैद्यराज को बुलाने नीचे गये थे। वे वैद्यराज को लेकर आये। वैद्यराज ने अचक-पचक हाथों से फँटा खोला। घाव धोकर स्वच्छ किया तथा उसपर लेप चढ़ाकर फिर से कन्धा बांध दिया। वैद्यराज चले गये और उसी समय रमाबाई अन्दर आयीं। अन्दर कोई है या नहीं, यह चिन्ता उन्होंने नहीं की। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं।

रमाबाई के अन्दर आते ही नाना, धुलप और पागे—ये लोग अदब से बाहर चले गये। रमाबाई की दृष्टि माधवराव पर स्थिर थी। माधवराव हँसते हुए अत्यन्त व्याकुल हुई रमाबाई की ओर देख रहे थे। देखते-देखते रमाबाई की आँखें भर आयीं और वे दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर रोने लगीं।

माधवराव निकट गये। दायें हाथ से रमाबाई की पीठ थपथपाते हुए बोले,

"किसलिए आंसू बहा रही हैं ? ठीक है मेरी तबीयत ?"

रमाबाई ने दृष्टि ऊपर की। उनकी आँखें अश्रु-परिपूर्ण थीं। वे हँसते हुए माधवराव को देखकर चिढ़कर बोलीं,

"आप नहीं सोच सकते हमारी बात। ऐसा वार कैसे कर दिया ? साथ और कौन थे ? इतना वार होने तक वे सो रहे थे क्या ?"

"अरे ! अरे ! एक बार में एक प्रश्न पूछिए। पहले बैठिए तो सही।"

रमाबाई पलंग की पाटी पर बैठ गयीं। उनके पास बैठते हुए बोले,

"अब पूछिए।"

"असमय में मज़ाक़ सूझता है। पता चला कि गारदी ने वार किया है। आपको देखने तक जो दशा हुई, वह कैसे कहूँ ? और आप हँस रहे हैं ?"

"क्रोध मत कीजिए ! परन्तु आनन्द के अवसर पर हँसें नहीं तो क्या करें ?"

"आनन्द का अवसर !" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं तो ? यदि श्रीपति ने सूचना देने में एक क्षण भी विलम्ब कर दिया होता तो हमारा मस्तक उस वार के साथ ही...."

रमाबाई ने तत्क्षण माधवराव के मुख पर अपनी हथेली रख दीं और वे बोलीं, "समझ गयी ! और हत्यारे का क्या किया ?"

"कौन ? वह गारदी ? उसको पकड़ रखा है।"

"अच्छा किया !" रमाबाई क्रोध से बोलीं, "कल उसका मस्तक मोगरे से कैसे फूटेगा, यह देखना चाहती हूँ मैं।"

"यदि ऐसा किया तो उस बेचारे पर बहुत बड़ा अन्याय होगा।"

"बेचारा ?"

"हाँ ! अपनी इच्छा से उसने हम पर आक्रमण नहीं किया। उसमें इतनी हिम्मत नहीं है।"

"तो फिर जिसने उससे यह काम करवाना चाहा उसके मस्तक को कुचलवा दीजिए।" रमाबाई सन्तप्त होकर बोलीं।

"रमा ऽऽ"

इस उद्‌गार को सुनते ही रमाबाई ने मुड़कर देखा। माधवराव के मुख पर पसीना चमकने लगा था। अधर थरथरा रहे थे। आँखें भर आयी थीं।

"क्या ? क्या कहा मैंने ?" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "बोलिए न ?"

"रमा ! वह शक्ति मुझमें नहीं है....मुझमें नहीं है...."

"किसने भेजा था हत्यारा ? निज़ाम ने ?"

"नहीं !"

"भोसलों ने ?"

"नहीं।"

"तो फिर ऽऽ"

"जाने दो, रमा ! भगवान् ने बचाया नहीं क्या ? जब वह बचानेवाला समर्थ है तो चिन्ता क्यों करती हो ?"

"परन्तु हत्यारे पर इतनी दया क्यों ? कौन है ऐसा शक्तिशाली कि...?"

"रमा ! बोलो मत..." माधवराव बेचैन होकर बोले, "रमा, यदि मैं तुमको काका का नाम बताऊँ तो ?"

रमाबाई की आँखें विस्फारित हो गयीं। आश्चर्य से हाथ का पंजा मुखपर आ गया...उनका चेहरा भयग्रस्त हो उठा। माधवराव खिन्नता से हँसकर बोले,

"रमा, मारनेवाले से बचानेवाला शक्तिशाली है, इस पर विश्वास रखो। मैं ज़रा लेटता हूँ। देखना, श्रीपति है क्या !"

रमाबाई श्रीपति को पुकारने के लिए उठीं। उसी समय श्रीपति अन्दर आया और बोला, "काकी साहब महाराज..."

माधवराव उठकर खड़े हो गये। पार्वती काकी अन्दर आ रही थीं। अचानक पार्वती काकी के आने से माधवराव देखते ही रह गये। पचीसवर्षीया रूपवती पार्वती काकी अन्दर आयी। उनके भाल पर कुंकुम था। गले में मंगल-सूत्र था। उनका चेहरा व्यथित दिखाई दे रहा था। अपना महल छोड़कर इधर वे क्वचित् ही आती थीं। उन्हीं पार्वती काकी के आकस्मिक रूप से महल में आ जाने से माधवराव असमंजस में पड़ गये थे। उनको उठते देखते ही पार्वती काकी बोलीं,

हाथों से अँगरखा उतारा। कन्धे पर लपेटा हुआ फेंटा जैसे का तैसा था। नाना वैद्यराज को बुलाने नीचे गये थे। वे वैद्यराज को लेकर आये। वैद्यराज ने अचक-पचक हाथों से फेंटा खोला। घाव धोकर स्वच्छ किया तथा उसपर लेप चढ़ाकर फिर से कन्धा बांध दिया। वैद्यराज चले गये और उसी समय रमाबाई अन्दर आयीं। अन्दर कोई है या नहीं, यह चिन्ता उन्होंने नहीं की। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं।

रमाबाई के अन्दर आते ही नाना, धुलप और पागे—ये लोग अदब से बाहर चले गये। रमाबाई की दृष्टि माधवराव पर स्थिर थी। माधवराव हँसते हुए अत्यन्त व्याकुल हुई रमाबाई की ओर देख रहे थे। देखते-देखते रमाबाई की आँखें भर आयीं और वे दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर रोने लगीं।

माधवराव निकट गये। दायें हाथ से रमाबाई की पीठ थपथपाते हुए बोले,

"किसलिए आंसू बहा रही हैं ? ठीक है मेरी तबीयत ?"

रमाबाई ने दृष्टि ऊपर की। उनकी आँखें अश्रु-परिपूर्ण थीं। वे हँसते हुए माधवराव को देखकर चिढ़कर बोलीं,

"आप नहीं सोच सकते हमारी बात। ऐसा वार कैसे कर दिया ? साथ और कौन थे ? इतना वार होने तक वे सो रहे थे क्या ?"

"अरे ! अरे ! एक बार में एक प्रश्न पूछिए। पहले बैठिए तो सही।"

रमाबाई पलंग की पाटी पर बैठ गयीं। उनके पास बैठते हुए बोले,

"अब पूछिए।"

"असमय में मज़ाक़ सूझता है। पता चला कि गारदी ने वार किया है। आपको देखने तक जो दशा हुई, वह कैसे कहूँ ? और आप हँस रहे हैं ?"

"क्रोध मत कीजिए ! परन्तु आनन्द के अवसर पर हँसें नहीं तो क्या करें ?"

"आनन्द का अवसर !" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं तो ? यदि श्रीपति ने सूचना देने में एक क्षण भी विलम्ब कर दिया होता तो हमारा मस्तक उस वार के साथ ही...."

रमाबाई ने तत्क्षण माधवराव के मुख पर अपनी हथेली रख दीं और वे बोलीं, "समझ गयी ! और हत्यारे का क्या किया ?"

"कौन ? वह गारदी ? उसको पकड़ रखा है।"

"अच्छा किया !" रमाबाई क्रोध से बोलीं, "कल उसका मस्तक मोगरे से कैसे फूटेगा, यह देखना चाहती हूँ मैं।"

"यदि ऐसा किया तो उस बेचारे पर बहुत बड़ा अन्याय होगा।"

"बेचारा ?"

"हाँ ! अपनी इच्छा से उसने हम पर आक्रमण नहीं किया। उसमें इतनी हिम्मत नहीं है।"

"तो फिर जिसने उससे यह काम करवाना चाहा उसके मस्तक को कुचलवा दीजिए।" रमाबाई सन्तप्त होकर बोलीं।

"रमा ऽऽ"

इस उद्‌गार को सुनते ही रमाबाई ने मुड़कर देखा। माधवराव के मुख पर पसीना चमकने लगा था। अधर थरथरा रहे थे। आँखें भर आयी थीं।

"क्या ? क्या कहा मैंने ?" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "बोलिए न ?"

"रमा ! वह शक्ति मुझमें नहीं है....मुझमें नहीं है...."

"किसने भेजा था हत्यारा ? निजाम ने ?"

"नहीं।"

"भोसलों ने ?"

"नहीं।"

"तो फिर ऽऽ"

"जाने दो, रमा ! भगवान् ने बचाया नहीं क्या ? जब वह बचानेवाला समर्थ है तो चिन्ता क्यों करती हो ?"

"परन्तु हत्यारे पर इतनी दया क्यों ? कौन है ऐसा शक्तिशाली कि...?"

"रमा ! बोलो मत..." माधवराव बेचैन होकर बोले, "रमा, यदि मैं तुमको काका का नाम बताऊँ तो ?"

रमाबाई की आँखें विस्फारित हो गयी। आश्चर्य से हाथ का पंजा मुखपर आ गया...उनका चेहरा भयग्रस्त हो उठा। माधवराव खिन्नता से हँसकर बोले,

"रमा, मारनेवाले से बचानेवाला शक्तिशाली है, इस पर विश्वास रखो। मैं जरा लेटता हूँ। देखना, श्रीपति है क्या !"

रमाबाई श्रीपति को पुकारने के लिए उठीं। उसी समय श्रीपति अन्दर आया और बोला, "काकी साहब महाराज..."

माधवराव उठकर खड़े हो गये। पार्वती काकी अन्दर आ रही थीं। अचानक पार्वती काकी के आने से माधवराव देखते ही रह गये। पचीसवर्षीया रूपवती पार्वती काकी अन्दर आयी। उनके भाल पर कुंकुम था। गले में मंगल-सूत्र था। उनका चेहरा व्यथित दिखाई दे रहा था। अपना महल छोड़कर इतरत्र वे क्वचित् ही जाती थीं। उन्हीं पार्वती काकी के आकस्मिक रूप से महल में आ जाने से माधवराव असमंजस में पड़ गये थे। उनको उठते देखते ही पार्वती काकी बोली,

"उठिए मत। आप विश्राम करें। आपको बिना देखे चैन नहीं पड़ा, इसलिए आयी हूँ।"

"काकी साहब, आप चिन्ता न करें। घाव मामूली है।"

"उस गजानन की कृपा। आप सोइए, मैं जाती हूँ। स्वास्थ्य की चिन्ता रखिए। सावधान रहिए।"

पार्वती बाई मुड़ीं। दो क़दम जाकर वे फिर लौटीं और माधवराव से बोलीं,

"और यह भी ध्यान में रखिए कि साँप को कितना भी दूध पिलाइए, फिर भी वह जब भी उगलेगा, विष ही उगलेगा। वहाँ अमृत की आशा मत कीजिए।" इतना कहकर पार्वती बाई झट् से मुड़ीं और महल से बाहर चली गयीं।

माधवराव निःश्वास छोड़कर बोले,

"देखा रमा! कुछ कहे बिना ही ये काकी सब कुछ समझ गयीं। काकीजी को देखकर सिर अपने-आप झुक जाता है...."

वायु परिवर्तन के लिए माधवराव सिद्धकोट को गये। लगभग दो महीने वहाँ रहे; परन्तु स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कनिंगहम की औषध चल रही थी। दिनानुदिन निर्बलता बढ़ रही थी। माधवराव का स्वभाव लहरी बन गया था। दो महीने पूरे होने से पहले ही वे पुणे को चले गये। माधवराव के निकटस्थ आश्रितों के तथा सरदारों के विचार कनिंगहम की औषध के विरुद्ध थे। वह फिरंगी होने के कारण उसकी औषध लेने से अनाचार होता है, यह आश्रितों का विचार था। माधवराव के शरीर में तो अब अधिक देर तक एक स्थान पर बैठने की शक्ति नहीं रही थी।

प्रातःकाल था। माधवराव अपने महल में विश्राम कर रहे थे। मृगनक्षत्र का प्रारम्भ हो गया था। पश्चिमी पवन शुरू हो गया था। हवा में किंचित् आर्द्रता आ गयी थी। आकाश में मेघों का आवागमन प्रारम्भ हो गया था। पश्चिम क्षितिज से बादल सरक रहे थे। मन्द गति से आगे बढ़नेवाले बादलों को माधवराव खिड़की से देख रहे थे।

श्रीपति अन्दर आया और बोला, "बापू आये हैं।"

"उनको ऊपर भेज दो।"

माधवराव पलंग से नीचे बैठकी पर आकर बैठ गये। बापू अन्दर आये। नमस्कार करके वे माधवराव के सामने बैठ गये। माधवराव ने पूछा,

"बापू, आज जल्दी आ गये?"

"श्रीमन्त ! पता चला कि कल रात आपको बहुत कष्ट हुआ।"

"यह तो सदा ही रहता है। सुना है कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।"

"हाँ। घुटनों में दर्द होता है। पैर कभी-कभी सुन्न हो जाते हैं। अवस्था के अनुसार यह सब होगा ही। इसलिए सोचा कि एक बार आपसे मिलकर आपकी सम्मति ले लूँ।"

"किस सम्बन्ध में ?"

"आपको फिरंगी वैद्य औषध देता है। आपकी आज्ञा मिल जाये तो मैं भी उसकी औषध लेकर देखूँ ?"

"औषध लेनेवाले आप। इसमें हमारी सलाह की क्या आवश्यकता है ?" माधवराव हँसते हुए बोले।

"क्यों नहीं ? आखिर हम आपके क्रोध के पात्र हैं। नजरक़ैद में पड़े हुए लोग हैं।"

"बापू, आपको नाममात्र के लिए नजरक़ैद में रखा है, यह आप भी स्वीकार करेंगे। राजनीति को छोड़कर और कोई बन्धन हमने आप पर नहीं डाला है। इसके विपरीत आपसे मिले बिना हमको चैन नहीं पड़ता है, तो क्या क्रोध होने के कारण ?"

"तो फिर आपकी आज्ञा है, यह समझूँ मैं ?"

"आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। आप जरूर औषध लें। इतना कष्ट होता है ?"

"कुछ मत पूछिए ? एक बार दर्द शुरू होने पर फिर सहा नहीं जाता। उठा-बैठा तक नहीं जाता।"

माधवराव हँस पड़े। यह देखकर बापू ने पूछा,

"क्यों हँसे ? झूठी बात लगती है श्रीमन्त को ?"

"नहीं। मैं इसलिए नहीं हँसा, बापू ! मृत्यु के बाद नरक पर विश्वास नहीं है हमारा। हम जो कर्म करते हैं, उनके फल इसी जन्म में भोगने पड़ते हैं। यह मैं जान चुका हूँ। व्याधि के रूप में वे प्रकट होते हैं और भोगने पड़ते हैं।"

बापू कुछ नहीं बोले। माधवराव बोले,

"क्यों बापू, चुप हो गये ?"

"क्षमा मिले तो खुले मन से कुछ कहूँ !"

"कहिए न ! हम बिलकुल भी बुरा नहीं मानेंगे।" माधवराव ने अभय दिया।

माधवराव की दृष्टि से दृष्टि मिलाते हुए बापू बोले, "क्षमा करें श्रीमन्त ! परन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता है कि इन-वैद्यों को तो साधारण

सन्निपात[1] जकड़ता है और आप-जैसों को..."

"....राजयक्ष्मा-जैसा दुर्घट रोग क्यों हो, यही न ?" माधवराव ने पूछा। "आप-जैसे बुद्धिमान् लोगों को तो बिलकुल भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आप-जैसे अनेक आश्रय में होते हैं। हमारे नाम पर अनेक भले-बुरे कार्य करते रहते हैं। उनका दोष पर्याय से हमारे माथे ही आता है, और इसीलिए आप-जैसों का छुटकारा साधारण सन्निपात से हो जाता है, किन्तु आप-जैसे सैकड़ों का स्वामित्व निभानेवाले हम-जैसों को राजयक्ष्मा-जैसे दुर्घट रोगों का सामना करना पड़ता है। अल्पायुषी होने का भाग्य हमें मिलता है।"

सहज कथन ने इतना गम्भीर रूप ले लिया, यह देखकर सखाराम बापू दुःखी हो गये। वे कुछ नहीं बोले। माधवराव अपना क्रोध छिपाते हुए बोले, "बापू, यह मैं क्रोध में नहीं कह रहा हूं। अब किसी पर क्रोध करने की इच्छा नहीं होती है।"

कनिंगहम के आने की सूचना आयी। माधवराव बोले,

"लगे हाथ आपका भी काम हो गया। इसी समय मिल लीजिए।"

बापू उठते हुए बोले, "नहीं श्रीमन्त ! अपनी जांच होने दें। मैं नीचे बैठूंगा। बाद में कनिंगहम से मिल लूंगा।"

"ऐसा कर लीजिए।"

बापू दरवाजे तक गये होंगे कि माधवराव ने पुकारा, "बापू !"

बापू मुड़े। माधवराव बोले, "कनिंगहम से औषध ही लेना। यद्यपि वे फिरंगी हैं, फिर भी दूसरी सलाह मत लेना। वे मेरे अच्छे स्नेही हैं।"

"जो आज्ञा।" कहते हुए बापू बाहर गये।

कनिंगहम ने आकर माधवराव की परीक्षा की। ज्वर देखा। द्वार में रमाबाई खड़ी थीं। देखभाल हो जाने पर माधवराव ने पूछा,

"डॉक्टर, क्या कह रही है हमारी तबीयत ?"

"ठीक है !" कनिंगहम बोला।

"अर्थात् अधिक नहीं बिगड़ी है, यही न ? आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूं ?"

"जरूर पूछिए !" कनिंगहम बोला।

"हम पहले जिन गंगा वैद्यराज की औषध ले रहे थे, सब कहते हैं कि उन्हीं वैद्यराज की औषध लो। यदि आपकी...."

"जरूर ! जरूर ! आपको यदि वह पसन्द हो तो जरूर कीजिए। मुझको एतराज नहीं है !"

---

१. गठिया।

"परन्तु डॉक्टर ! आप जरूर आते रहिए !"

"अवश्य आऊँगा ! आपको अच्छा लगे, इसलिए मैं जरूर आऊँगा। इसमें मुझको शरम नहीं लगेगी।" बड़े प्रेम से कनिंगहम ने माधवराव का हाथ अपने हाथ में लेकर दबाया और वह बाहर चला गया। रमाबाई अन्दर आयीं। वे बोलीं,

"आज मैं यह नयी ही बात सुन रही हूँ।"

"क्या ?"

"कनिंगहम काका की औषध बन्द कर देंगे ?"

"हाँ ! अब किसी को दुःख देने की इच्छा नहीं होती है। अनेक लोगों का कहना है कि वैद्यराज की औषध पुनः शुरू कर दें ! कर देंगे। क्या लायी हो ?"

रमाबाई पंचपात्र लेकर आगे आयीं और बोलीं, "चरणामृत लें !"

माधवराव ने चरणामृत लिया और बोले, "देखा रमा ? उपचार में कोई कुछ भी कमी नहीं रखता है। मैंने यदि चरणामृत के लिए मना कर दिया होता, तो तुम्हें कैसा लगा होता ?"

"मैं क्या वैद्यराज की औषध के लिए मना करती हूँ ? आपको फ़ायदा हो तो सब कुछ मिल गया। फिर वह औषध से हो या चरणामृत से हो।"

माधवराव जोर से हँसे। रमाबाई क्रोध से बोलीं,

"हँसने की कौन-सी बात है ?"

"कोई नहीं। हमारे स्वभाव का चिड़चिड़ापन अब तुममें भी शुरू हो गया। हमारे लिए व्रत-उपवास करते-करते जो यह दशा कर ली है, उसका ही यह फल है !"

"अच्छा-अच्छा ! लेकिन मैं तो गुस्सा नहीं हूँ !" रमाबाई खिलखिलाकर हँसती हुई बोलीं।

"अब हमको बड़ा अच्छा लग रहा है। थोड़ी देर में ही वैद्यराज आयेंगे। हमको देखकर उनको भी अच्छा लगेगा।"

दोपहर में वैद्यराज आकर देख गये। वैद्यराज की औषध शुरू हो गयी। कठिन पथ्य बताये गये। माधवराव को औषधों से कष्ट नहीं होता था, किन्तु पथ्य उनको असह्य हो रहे थे।

रात में माधवराव पलंग पर पड़े हुए थे। उनकी मुखाकृति चिन्ताग्रस्त थी। खाँसी आ रही थी। उन्होंने पुकारा, "श्रीपति !"

श्रीपति अन्दर आया। माधवराव बोले,

"श्रीपति, वह सन्दूक इधर ला।"

श्रीपति ने सन्दूक निकट लाकर रख दिया। माधवराव ने झुककर सन्दूक खोला। उसमें अनेक काग़ज़-पत्र थे। माधवराव बोले,

"श्रीपति, नीचे जा और अँगीठी ले आ।"

श्रीपति नीचे गया और एक अँगीठी ले आया। माधवराव ने वह लाकर बिस्तर के पास रख देने को कहा। सन्दूक से एक-एक काग़ज़ निकालकर वे अँगीठी में डाल रहे थे। काग़ज़ पड़ते ही कुछ देर धुआँ हो जाता था। काग़ज़ जलने तक माधवराव एकटक देखते रहते थे। जब उनको पूरा विश्वास हो जाता कि काग़ज़ जल गया है, तब वे काँपते हाथों से दूसरा काग़ज़ उसमें डाल देते। उसी समय अचानक बापू अन्दर आये। श्रीपति श्रीमन्त के पास होने से वह पहले से सूचना नहीं दे सका। ऊपर न देखते हुए माधवराव बोले,

"आइए बापू, हम आपकी ही राह देख रहे थे।"

बापू चकित होकर सामने का दृश्य देख रहे थे। धुएँ से माधवराव को कष्ट हो रहा था। वे खाँस रहे थे। बापू से न रहा गया, बोले,

"श्रीमन्त ने क्या सोच रखा है? जब विश्राम करने के लिए कहा गया हो तब इतना कष्ट करने की क्या ज़रूरत थी! यह क्या इतना महत्त्वपूर्ण काम था?"

"महत्त्वपूर्ण!" क्षण-भर को दृष्टि ऊपर करते हुए माधवराव बोले। अँगीठी में काग़ज़ का टुकड़ा जल रहा था। "बापू, हमारे दरबार में जो निष्ठावान्, ईमानदार सेवक, सरदार और सभासद हैं, उनके बेईमानी के कृत्यों के प्रमाण हम नष्ट कर रहे हैं।"

"यदि ये बेईमानी के कृत्यों के प्रमाण हैं, तो इनको जलाने के बजाय उन बेईमानों को फाँसी पर लटकाना उचित होगा।"

"यह कहते हैं?" यह कहते हुए माधवराव ने उठाया हुआ काग़ज़ बापू के हाथ में दिया। "पढ़ो बापू।"

बापू काग़ज़ समई के पास ले गये। चश्मा लगाकर वे काग़ज़ पढ़ने लगे। देखते-देखते उनके हाथ थरथराने लगे। उनके माथे पर पसीना छा गया। वह पत्र स्वयं बापू ने निजाम को लिखा था। निजाम से मिली हुई धनराशि का उसमें उल्लेख था। सखाराम बापू पागलों की तरह उस पत्र को देख रहे थे।

"लाओ वह पत्र।" माधवराव बोले। भारावनत-से बापू ने वह पत्र माधवराव के हाथ में दे दिया। "कहिए, ऐसे पत्रों का हम क्या करें? बैठिए बापू। इसी बात के लिए हमने आपको नहीं बुलाया है।" यह कहते हुए माधवराव ने वह पत्र अँगीठी पर डाल दिया।

श्रीपति की ओर मुड़कर माधवराव बोले, "श्रीपति! बाहर खड़ा रह! किसी को भी अन्दर मत आने दो। बापू, आज मुझको बहुत-सी बातें करनी हैं।

श्रीपति बाहर गया। पलंग पर बैठते हुए माधवराव बोले, "बापू, इस सन्दूक में ऐसे अनेक पत्र हैं। गत दस वर्षों में बहुत-से इकट्ठे हो गये। इनमें जैसे आपके, निजाम के पत्र-व्यवहार हैं; वैसे ही काकाजी के, नागपुरकरजी के और अँगरेजों के भी हैं। इसमें पटवर्धनजी ने निजाम से जो मित्रता की थी, वह है। शिन्दे और होल्करजी के हमारे सम्बन्ध में पत्र हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर हम न्याय करने बैठें तो वह उचित नहीं होगा। ये सब राज्य के प्रति निष्ठावान्, ईमानदार और समय पड़ने पर प्राणों को निछावर कर देनेवाले लोग हैं। कभी-कभार बुद्धिभ्रंश हो जाता है। अपराध हो जाता है, इसलिए उतना ही ध्यान में रखने से काम नहीं चलेगा। अब हमारा भरोसा नहीं है। कुछ भला-बुरा होने से पहले इन प्रमाणों का नष्ट होना जरूरी है। नहीं तो, हमारे बाद ये पत्र किसी और के हाथ में पड़ेंगे तो उसके परिणाम बड़े भयंकर होंगे!"

"श्रीमन्त इतने निराश क्यों हो रहे हैं?"

"मैं निराश नहीं हो रहा हूँ। कर्तव्य की भावना से मैं यह कह रहा हूँ, कर रहा हूँ। राजयक्ष्मा-जैसा रोग साथी बन जाने पर निश्चिन्त होने से कैसे काम चलेगा? इसीलिए आपको बुलाया था।"

"श्रीमन्त की जो आज्ञा होगी वह सिर झुकाकर स्वीकार है।" बापू बोले।

"आप यह कहोगे, यह विश्वास है हमें। बापू, आपका काका से जो प्रेम है, वह हम जानते हैं। जब हमको पेशवाई के वस्त्र मिले थे, तब आप व्यवस्थापक थे। काका हमको मार्ग दिखा रहे थे। परन्तु काका कानों के कच्चे हैं। मौज-मौज करनेवाले हैं। अपने पहले स्वभाव के कारण वे किसी पर भी विश्वास नहीं कर सके। दूसरे के कारण उत्तरदायित्व नहीं निभा सके। इसलिए आपको हवबल होना पड़ा।"

माधवराव कुछ क्षण रुके। साँस लेने के बाद वे बोले, "हमको आपकी बुद्धिमत्ता के प्रति पहले से ही आदर था। अपने जीवनकाल में ऐसे व्यक्ति मैंने बहुत थोड़े देखे हैं। निजाम का विट्ठल सुन्दर। भोंसलों के देवाजी और आप। राजनीति का आपका ज्ञान अपार है। शुरू-शुरू में मुझको उससे भय लगता था। आगे चलकर आपकी बुद्धि से लड़ने में मुझको आनन्द आने लगा। नहीं तो, जब देवाजी पन्तजी को सलाह दी थी, तब प्रसन्न होकर शतरंज का खेल आपको न देते। व्यवस्थित राजकाज चलाने के लिए आपने ही यह सलाह दी कि आपको

घर बैठा दिया जाये। परन्तु जब-जब हमने आपको घर बैठाने का प्रयत्न किया, तब-तब हमको नये संकटों का सामना करना पड़ा। आपकी सत्ता-लालसा ज़बरदस्त है। आप उपेक्षित रह ही नहीं सकते हैं, यह मेरे ध्यान में आ चुका है।"

"श्रीमन्त, आपको कष्ट हो रहा है।" बापू विषय बदलने की दृष्टि से बोले।

माधवराव दुकूल से पसीना पोंछते हुए बोले, "अब कष्ट की चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं रही, बापू! वह सीमा हम पार कर चुके हैं। बापू, मैं केवल आपके ही दोष देखता होऊँ, यह बात नहीं है। नाना को फड़णीसी मैंने इसलिए नहीं लिया कि वह सर्वगुणसम्पन्न है। नाना का व्यक्तिगत चारित्र्य मुझको मालूम नहीं है क्या? उसकी धूर्तता, स्वयं को सँभालकर, सुरक्षित रखकर काम करने का ढंग—इन बातों को क्या मैं जानता नहीं? परन्तु साथ ही हिसाब-किताब में उसकी ईमानदारी मेरी नज़रों से छूटी नहीं? दोष जान लेने पर भी मैं चुप रहा। किसी के भी व्यक्तिगत जीवन में मैं कभी नहीं झांका। वह मेरा अधिकार नहीं है। इन सब बातों की मैं उपेक्षा करता आया हूँ। परन्तु जहाँ राज्य का सम्बन्ध आता है, वहाँ मेरा कर्तव्य खड़ा हो जाता है। फिर वहाँ मैं किसी का भी विचार नहीं कर सकता हूँ। आखिर मैं भी तो किसी सीमा तक ही अप्रामाणिक बन सकता हूँ? काकाजी को नज़रक़ैद करने का क्या शौक़ था मुझको?"

"श्रीमन्त, आपका हृदय विशाल है, इसलिए ऐसा समझते हैं, नहीं तो...." बापू बोले।

"मेरा बड़प्पन नहीं है। आपका भी बड़प्पन क्या कम है? आलेगांव में हमारी पराजय हुई। हम क़ैदी बन गये। आपके स्थान पर कोई दूसरा होता, तो उसने काकाजी को पेशवे बनने की सलाह दी होती। भोले काकाजी का भी वही स्वप्न था और वे पेशवे बन भी गये होते। परन्तु आपने वह सलाह नहीं दी। काका को उस विचार से परावृत्त किया। बापू, आपके मराठी राज्य पर अनगिनत उपकार हैं।"

बापू ने देखा। माधवराव भावाभिभूत हो गये थे। उनकी आवाज कांप रही थी, "बापू, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। यदि उसी समय काका पेशवे बन गये होते तो मराठी राज्य का टिकना कठिन था। बापू, नया राज्य प्रस्थापित करना एक बार सरल है। परन्तु दृढ़ जमी हुई राजसत्ता को हटाकर दूसरी को स्थापित करना बड़ा ही कठिन होता है। बदली हुई राजसत्ता को प्रजा मान ही लेगी, यह नहीं कहा जा सकता। आपने समय रहते यह बात जान ली और काका को योग्य सलाह दी। ये आपके उपकार हैं। ऐसी एक कृति के लिए ऐसे

एक गया परन्तु हजार पत्रों को भी मैं आनन्द से उपेक्षा कर दूँगा।"

माधवराव को खाँसी आ गयी। सखाराम बापू ने पीकदान उठाया। खाँसी कम होते ही माधवराव बोले, "बापू, वह नीचे रखिए। पीकदान उठाने के लिए मैं हाथ नहीं हैं। अब मैं पूर्ण रूप से थक गया हूँ। अब राज्य के शेष स्वप्नों को आप पूरा करें। उनको देखने का सौभाग्य हमें मिलने दें।"

"श्रीमन्त!" बापू आँखें पोंछते हुए बोले।

"बापू, इस अल्पावधि में इस शरीर ने बड़े कष्ट उठाये हैं। यह अब अधिक कार्य करने को तैयार नहीं है। कर्नाटक की मुहीमें, भोंसलों के आक्रमण, राज्य का तनाव, घर की फूट—इन सबसे एक शरीर आखिर कितना लड़ेगा? यह बिलकुल ही हतबल हो उससे पहले एक बार हैदर पर चढ़ाई करने की इच्छा है। बस यह चढ़ाई सफल हो जाये, फिर कोई चिन्ता नहीं।"

"ऐसी स्थिति में...."

"हाँ, जाना ही चाहिए। हैदर अँगरेजों से हाथ नहीं मिलायेगा, यह हमें विश्वास है। परन्तु पता नहीं, उस खतरे को स्वीकार नहीं कर सकते। हमपर ऋण भी बढ़ता जा रहा है। समय रहते उनको सँभाल लेना चाहिए। बापू, इन बातों के लिए मैंने आपको नहीं बुलाया है।"

माधवराव ने थोड़ा विश्राम किया।

"अब हमारा अन्त समय आ गया है। तुंगभद्रा से लेकर अटक तक राज्य खड़ा हो जायेगा, ऐसे लक्षण दिखाई दे रहे हैं। अब नारायण की चिन्ता हो रही है। अन्त समय इतनी जल्दी आ जायेगा, यह नहीं जानते थे। नारायण को मैं आपके हाथों में सौंपना चाहता हूँ। नारायणराव को दीवानगिरी के वस्त्र देकर आपको मुतालकी के वस्त्र दिये जायें—यह हमारी कामना है। दोनों साथ-साथ रहकर राजकार्य करें। नारायण को अनुभव नहीं है। वह आपकी सलाह से राजकार्य करेगा। काकाजी को भी उचित समय आने पर हम मुक्त कर देंगे।"

"श्रीमन्त! बहुत बड़ी जिम्मेदारी...."

"नहीं बापू, यह उत्तरदायित्व आपको स्वीकारना ही पड़ेगा। नाना होशियार हैं, परन्तु मुझ-जैसा अल्पवयस्क है। वह भी अनुभवी नहीं है। नारायण आपके हाथों जितना सुरक्षित है, उतना वह नाना के हाथों में नहीं है। उसको सँभालना। वह चंचल है। उसको सँभालना पड़ेगा। बापू, यह तुमको करना ही पड़ेगा।"

"मैं आपकी आज्ञा के बाहर नहीं हूँ, श्रीमन्त!"

"मुझको सन्तोष हुआ। मुझको विश्वास था कि आप यही कहोगे।"

जो कुछ हुआ वह भूल जाओ। मन में कुछ भी न रखते हुए मराठी राज्य की रक्षा जी-जान से कीजिए। भेदभाव न रखते हुए राज्य की सेवा करोगे तो परमेश्वर मेरी ही तरह आपको भी यश देगा। अब मैं विश्राम करता हूँ। कल मिलेंगे हम।"

माधवराव कटोरा से आ गये। वहाँ सुवर्णतुला भी हुई, परन्तु रोग में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उलटे दिनानुदिन स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था। कभी छाती में असह्य वेदना उठती थी, तो कभी अचानक ज्वर आ जाता था। कभी निरन्तर सिर में दर्द होता रहता था तो कभी निरा पसीना आता रहता था। परन्तु फिर भी माधवराव विश्राम नहीं कर रहे थे। थोड़ा-सा स्वस्थ होते ही कार्यालय का काम, मिलना-जुलना प्रारम्भ हो जाता था।

प्रातःकाल माधवराव अपने महल में बैठे हुए पत्र लिख रहे थे। रमाबाई कब आ गयीं, इसका भी उनको पता न चला। उन्होंने सिर ऊपर किया, तब रमाबाई निकट आकर खड़ी हो गयी थीं। पूर्व की ओर की खिड़की से अन्दर आये हुए प्रकाश में माधवराव रमाबाई को निरख रहे थे। उपवास और अनुष्ठानों से कृश हुई रमाबाई को देखते ही माधवराव व्याकुल हो गये।

रमाबाई ने पूछा, "यह क्या हो रहा है?"

"दो महत्त्वपूर्ण पत्र थे। एक गंगापुर को भेजना है। बहुत दिनों से मातोश्री का कोई समाचार नहीं मिला।"

"यह तो ठीक है, परन्तु देह में ज्वर होने पर पत्र क्यों लिखे जायें?"

"ज्वर कहाँ है? आज ज्वर नहीं है।" माधवराव बोले।

रमाबाई ने झुककर माधवराव के मस्तक पर हाथ रखा। वे बोलीं, "समझ गयी! आप उठिए।"

"परन्तु यह पत्र...." माधवराव पत्र की ओर देखते हुए बोले।

"कहती हूँ न कि उठिए! शपथ है मेरी।" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "किसी ने देख लिया, तो मुझसे क्या कहेगा? आपसे कोई कुछ नहीं कहेगा। जो कुछ कहेंगे वह मुझसे। कहती हूँ न कि उठिए!"

"उठता हूँ" कहते हुए माधवराव उठे। पलंग पर लेटते ही रमाबाई ने चादर उढ़ा दी। माधवराव हँसते हुए बोले, "अच्छा लग रहा है न?"

"हाँ, लग रहा है! काम के सिवाय आपको और कुछ दिखाई ही नहीं देता है क्या?"

"बिलकुल झूठ!" माधवराव रमाबाई का हाथ पकड़ते हुए बोले।

हाथ छुड़ाती हुई रमाबाई बोलीं, "जाइए, झूठ मत बोलिए।"

"सच, हम असत्य नहीं कह रहे हैं। मैं असत्य बोलना जानता ही नहीं हूँ। रमा, तुम्हारी याद कब-कब आती है, यह यदि गिनने बैठूँ तो जीवन में दूसरे काम मिलेंगे ही नहीं।"

"अरी माँ! कोई सच ही समझेगा!" रमाबाई हँसती हुई बोलीं।

"परिहास मत करो" माधवराव गम्भीर होकर बोले, "जहाँ-जहाँ मैं कुछ भी सुन्दर देखता हूँ, वहाँ-वहाँ उत्कटता से तुम्हारी याद आती है। हम मुहीमों पर सदैव बाहर रहते हैं, यह सच है; परन्तु तुम्हारा रूप, तुम्हारी स्मृति सदैव पास रहती है। अनेक बार, कर्नाटक की छावनी में रहते समय रात में दुग्ध-धवल चन्द्रिका देखकर मैं घण्टों डेरे के बाहर खड़ा-खड़ा चन्द्र की ओर देखता रहा हूँ। यह क्या चन्द्र देखने के लिए? रमा, जब मैं बेलूर क्षेत्र में गया था, वहाँ तो तुम्हारी उत्कट स्मृति ने मेरा मन ही हर लिया।"

इतना सुन्दर है यह?"

"सुन्दर! बड़ा अपूर्ण शब्द है। उस क्षेत्र के लिए रास्ता घोर जंगल में होकर जाता जरूर है; परन्तु यदि एक बार वहाँ पहुँच जायें तो मन और आँखें तृप्त हो जाती हैं। उत्कृष्ट शिल्प वहाँ बिखरा हुआ है। देखकर जी नहीं भरता है। यदि समझने का प्रयत्न किया जाये, तो समझ में नहीं आता है। ठीक ऐसा लगता है, जैसे तुम्हें देख लिया हो! और इसीलिए उसको देखते समय तुम निरन्तर आँखों के सामने खड़ी रहती थीं।"

"तभी मुझको हिचकी आया करती थी।"

"हिचकी कैसे आती? तुम वहाँ रही ही कब थी?" माधवराव बोले, "तुम्हारी स्मृति आने के लिए इतना भव्य और दिव्य दृश्य देखना जरूरी हो, यह बात नहीं है। चैत्र में पल्लवित इमली देखकर भी तुम आँखों के आगे खड़ी हो जाती हो। घोर गर्मी में आकाश में रुई की तरह बहता हुआ एकाकी बादल देखते ही तुम्हारी स्मृति से प्राण व्याकुल हो जाते हैं।"

उस वाक्य से रमाबाई की आँखों में आँसू घिर आये। वे बोलीं, "ऐसी बातें मत कहिए! मेरे बड़े भाग्य हैं जो आप यह अनुभव करते हैं।"

"नहीं रमा। यह बात नहीं है। तुम क्या हो—यह जैसे तुमको मालूम नहीं है, ऐसे ही औरों को भी इसकी जानकारी नहीं है। और फिर, जानकारी हो भी तो उससे क्या?"

"यह विषय बन्द कर दो न?"

"हाँ! यह भी सच है। रमा, जब कभी हम ऐसी बातें करते हैं, तब ये ही विषय क्यों निकलते हैं, यह मैं जानता हूँ। एक-दूसरे के अतिरिक्त जिनका

संसार में और कोई नहीं होता है, वे एकान्त में अच्छी तरह बातें ही नहीं कर पाते हैं। संसार को भ्रम में डालनेवाले वे प्राणी एकान्त में मुक्तमन से बातें करने लगते हैं और ठीक उसी समय गहराई में छिपे हुए, अन्तर्तम में दबे हुए दुःख उफन-उफनकर बाहर आने लगते हैं।"

"आप जब मुहीम पर जाते हैं, तब आपको ऐसा लगता है; फिर उस समय मेरी क्या दशा होती होगी ? आप कटोरा गये थे, यहां अन्न अच्छा नहीं लगता था। भय से प्राण अधमरे हो गये।" रमाबाई बोलीं।

"कैसा भय ?" माधवराव ने चौंककर पूछा।

"जैसे कुछ मालूम ही नहीं है। चाचाजी के उग्र अनुष्ठान, होम-हवन ये क्या आपके अनजाने हो रहे हैं ?"

माधवराव खिन्नता के हँसे। "यह सब हमें मालूम है। परन्तु हमने काका को केवल नजरकैद में रखा है। उनको घर में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतानेवाला मैं कौन होता हूं ?"

"परन्तु काकाजी को छोड़ दो न ! आप बाहर होते हैं; आंखों के आगे यहां यह सब होता रहता है, यह कैसे सहन किया जाये ?"

"और इसीलिए आपने भी उग्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये हैं ?"

"किसने कहा ?" रमाबाई ने पूछा।

"दर्पण में ही देख लो न ? रमा, काका को नजरकैद करने में क्या मुझको आनन्द हो रहा है ? परन्तु उनको छोड़ने में राज्य का अनहित है। अब धोखा स्वीकार नहीं कर सकते। तुम परमेश्वर पर विश्वास रखो। काका क्या करते हैं, इस ओर ध्यान ही मत दो।"

"यह कैसे हो ? कोटि मृत्युंजय मन्त्र का जप हुआ। जो कुछ बोला था, वह पूरा हुआ। लक्ष लोगों को भोजन कराया। अभिषेक चल रहे हैं। दानधर्म सब हो गया, परन्तु पल्ले क्या पड़ा ? और शेष क्या रहेगा ?"

माधवराव कुछ क्षणों तक चुप रहे। दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे बोले, "रमा, अच्छी याद दिलायी। एक बात रह गयी है, वह निरन्तर मन में चुभ रही है।"

"कौन-सी ?"

"हरिहरेश्वर हमारे कुलदेवता हैं। वहां जाने की बड़ी इच्छा थी। वह एक देवस्थान ऐसा है कि साक्षात् मृत्युयोग भी वहां कुछ नहीं कर सकता। हरेश्वर का बड़ा महत्त्व है। वहां जाने की इच्छा होती है। परन्तु अब इतना कष्ट सहन हो सकेगा, ऐसा लगता नहीं है। रमा, मेरे लिए तुम वहां जाकर आ सकोगी क्या ? न जाने क्यों, परन्तु इससे मैं ठीक हो जाऊँगा, यह मेरा विश्वास है।"

"आपकी आज्ञा होगी तो मैं जरूर जाऊँगी।"

"मुझको यही आशा थी। हम दोनों मिलकर आयेंगे, यह सोचकर दो महीने पहले ही यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। तुम जब कहोगे, तभी जा सकोगे। यथाशक्ति जल्दी घूम आओ तो अच्छा है।"

"अकेले?"

"अकेली क्यों? साथ चल सकें तो पार्वती काकी को पूछ लो; नारायण से पूछकर छोटी बहू को ले जाओ।"

"मैं काकीजी को पूछकर आती हूँ। परन्तु उठना मत, नहीं तो फिर लिखने बैठ जाओगे।"

"नहीं रमा, तुम पूछ आओ।"

•

रमाबाई जब पार्वतीबाई के महल में पहुँचीं तब वे पोथी पढ़ रही थीं। रमाबाई ने पुकारा,

"काकीजी..."

"क्या है री?" पोथी का पन्ना नीचे रखती हुई पार्वतीबाई ने पूछा।

"हरिहरेश्वर का देवस्थान सचमुच ही क्या तेजःपुंज है?"

उस नाम को सुनते ही पार्वतीबाई ने हाथ जोड़ लिये। वे बोलीं,

"हरिहरेश्वर माने साक्षात् कालभैरव! उसके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता? क्यों री, बीच में ही हरेश्वर की याद कैसे आ गयी?"

"हरेश्वर को चलने का निश्चय होने पर आप चलेंगी साथ?"

"किसने, माधवराव ने कहा है?"

"हाँ।"

"कौन इनकार करेगा?" पार्वतीबाई बोलीं, "तेरे पुण्यों से मैं भी यह यात्रा कर लूँगी। और कौन चलेगा?"

"गंगाबाई को ले लेंगे।"

"नारायण से पूछ लिया है?"

"उनसे क्या पूछना? वे क्या मना करेंगे? तो फिर निश्चय हो गया न?"

"हाँ, परन्तु जाना कब है?"

"कह रहे थे कि सब तैयारी हो गयी है। अच्छा मुहूर्त देखकर चल दें।"

"ठीक है। चलेंगे।"

रमाबाई आनन्द से यह बात कहने के लिए माधवराव के महल की ओर मुड़ीं।

संसार में और कोई नहीं होता है, वे एकान्त में अच्छी तरह बातें ही नहीं कर पाते हैं। संसार को भ्रम में डालनेवाले वे प्राणी एकान्त में मुक्तमन से बातें करने लगते हैं और ठीक उसी समय गहराई में छिपे हुए, अन्तर्तम में दबे हुए दुःख उफन-उफनकर बाहर आने लगते हैं।"

"आप जब मुहीम पर जाते हैं, तब आपको ऐसा लगता है; फिर उस समय मेरी क्या दशा होती होगी ? आप कटोरा गये थे, यहाँ अन्न अच्छा नहीं लगता था। भय से प्राण अधमरे हो गये।" रमाबाई बोलीं।

"कैसा भय ?" माधवराव ने चौंककर पूछा।

"जैसे कुछ मालूम ही नहीं है। चाचाजी के उग्र अनुष्ठान, होम-हवन ये क्या आपके अनजाने हो रहे हैं ?"

माधवराव खिन्नता के हँसे। "यह सब हमें मालूम है। परन्तु हमने काका को केवल नजरक़ैद में रखा है। उनको घर में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतानेवाला मैं कौन होता हूँ ?"

"परन्तु काकाजी को छोड़ दो न! आप बाहर होते हैं; आँखों के आगे यहाँ यह सब होता रहता है, यह कैसे सहन किया जाये ?"

"और इसीलिए आपने भी उग्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये हैं ?"

"किसने कहा ?" रमाबाई ने पूछा।

"दर्पण में ही देख लो न ? रमा, काका को नजरक़ैद करने में क्या मुझको आनन्द हो रहा है ? परन्तु उनको छोड़ने में राज्य का अनहित है। अब धोखा स्वीकार नहीं कर सकते। तुम परमेश्वर पर विश्वास रखो। काका क्या करते हैं, इस ओर ध्यान ही मत दो।"

"यह कैसे हो ? कोटि मृत्युंजय मन्त्र का जप हुआ। जो कुछ बोला था, वह पूरा हुआ। लक्ष लोगों को भोजन कराया। अभिषेक चल रहे हैं। दानधर्म सब हो गया, परन्तु पल्ले क्या पड़ा ? और शेष क्या रहेगा ?"

माधवराव कुछ क्षणों तक चुप रहे। दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे बोले, "रमा, अच्छी याद दिलायी। एक बात रह गयी है, वह निरन्तर मन में चुभ रही है।"

"कौन-सी ?"

"हरिहरेश्वर हमारे कुलदेवता हैं। वहाँ जाने की बड़ी इच्छा थी। वह एक देवस्थान ऐसा है कि साक्षात् मृत्युयोग भी वहाँ कुछ नहीं कर सकता। हरेश्वर का बड़ा महत्त्व है। वहाँ जाने की इच्छा होती है। परन्तु अब इतना कष्ट सहन हो सकेगा, ऐसा लगता नहीं है। रमा, मेरे लिए तुम वहाँ जाकर आ सकोगी क्या ? न जाने क्यों, परन्तु इससे मैं ठीक हो जाऊँगा, यह मेरा विश्वास है।"

"आपकी आज्ञा होगी तो मैं जरूर जाऊँगी।"

"मुझसे यही आशा थी। हम दोनों मिलकर जायेंगे, यह सोचकर दो महीने पहले ही यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। तुम जब कहोगी, तभी आ सकोगी। यथाशक्ति जल्दी घूम आओ तो अच्छा है।"

"अकेली ?"

"अकेली क्यों ? आप चल सकें तो पार्वती काकी को पूछ लो; नारायण से पूछकर छोटी बहू को ले जाओ।"

"मैं काकीजी को पूछकर आती हूँ। परन्तु उठना मत, नहीं तो फिर लिखने बैठ जाओगे।"

"नहीं रमा, तुम पूछ आओ।"

रमाबाई जब पार्वतीबाई के महल में पहुँचीं तब वे पोथी पढ़ रही थीं। रमाबाई ने पुकारा,

"काकीजी..."

"क्या है री ?" पोथी का पन्ना नीचे रखती हुई पार्वतीबाई ने पूछा।

"हरिहरेश्वर का देवस्थान सचमुच ही क्या तेजःपुंज है ?"

उस नाम को सुनते ही पार्वतीबाई ने हाथ जोड़ लिये। वे बोलीं,

"हरिहरेश्वर माने साक्षात् कालभैरव ! उसके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता ? क्यों री, बीच में ही हरेश्वर की याद कैसे आ गयी ?"

"हरेश्वर को चलने का निश्चय होने पर आप चलेंगी साथ ?"

"किसने, माधवराव ने कहा है ?"

"हाँ।"

"कौन इनकार करेगा ?" पार्वतीबाई बोलीं, "तेरे पुण्यों से मैं भी यह ... कर लूँगी। और कौन चलेगा ?"

"... को ले लेंगे।"

"... से पूछ लिया है ?"

"... पूछना ? वे क्या मना करेंगे ? तो फिर निश्चय हो गया न ?"

"... कब है ?"

"... सब तैयारी हो गयी है। अच्छा मुहूर्त देखकर चल दें !"

"... ।"

... से यह बात कहने के लिए माधवराव के महल को

संसार में और कोई नहीं होता है, वे एकान्त में अच्छी तरह बातें ही नहीं कर पाते हैं। संसार को भ्रम में डालनेवाले वे प्राणी एकान्त में मुक्तमन से बातें करने लगते हैं और ठीक उसी समय गहराई में छिपे हुए, अन्तर्तम में दबे हुए दुःख उफन-उफनकर बाहर आने लगते हैं।"

"आप जब मुहीम पर जाते हैं, तब आपको ऐसा लगता है; फिर उस समय मेरी क्या दशा होती होगी ? आप कटोरा गये थे, यहाँ अन्न अच्छा नहीं लगता था। भय से प्राण अधमरे हो गये।" रमाबाई बोलीं।

"कैसा भय ?" माधवराव ने चौंककर पूछा।

"जैसे कुछ मालूम ही नहीं है। चाचाजी के उग्र अनुष्ठान, होम-हवन ये क्या आपके अनजाने हो रहे हैं ?"

माधवराव खिन्नता से हँसे। "यह सब हमें मालूम है। परन्तु हमने काका को केवल नजरक़ैद में रखा है। उनको घर में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतानेवाला मैं कौन होता हूँ ?"

"परन्तु काकाजी को छोड़ दो न! आप बाहर होते हैं; आँखों के आगे यहाँ यह सब होता रहता है, यह कैसे सहन किया जाये ?"

"और इसीलिए आपने भी उग्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये हैं ?"

"किसने कहा ?" रमाबाई ने पूछा।

"दर्पण में ही देख लो न ? रमा, काका को नजरक़ैद करने में क्या मुझको आनन्द हो रहा है ? परन्तु उनको छोड़ने में राज्य का अनहित है। अब धोखा स्वीकार नहीं कर सकते। तुम परमेश्वर पर विश्वास रखो। काका क्या करते हैं, इस ओर ध्यान ही मत दो।"

"मुझको यही आना थी। हम दोनों मिलकर जायेंगे, यह सोचकर दो महीने पहले ही यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। तुम जब कहोगी, तभी जा सकोगी। यथाशक्ति जल्दी तुम आओ तो अच्छा है।"

"अकेली ?"

"अकेली क्यों ? साथ चल सकें तो पार्वती काकी को पूछ लो; नारायण से पूछकर छोटी बहू को ले आओ।"

"मैं काकीजी को पूछकर आती हूँ। परन्तु उठना मत, नहीं तो फिर लिखने बैठ जाओगे।"

"नहीं रमा, तुम पूछ आओ।"

रमाबाई जब पार्वतीबाई के महल में पहुँची तब वे पोथी पढ़ रही थीं। रमाबाई ने पुकारा,

"काकीजी..."

"क्या है री ?" पोथी का पन्ना नीचे रखती हुई पार्वतीबाई ने पूछा।

"हरिहरेश्वर का देवस्थान सचमुच ही क्या तेजपुंज है ?"

उस नाम को सुनते ही पार्वतीबाई ने हाथ जोड़ लिये। वे बोलीं,

"हरिहरेश्वर माने साक्षात् कालभैरव ! उसके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता ? क्यों री, बीच में ही हरेश्वर की याद कैसे आ गयी ?"

"हरेश्वर को चलने का निश्चय होने पर आप चलेंगी साथ ?"

"किसने, माधवराव ने कहा है ?"

"हाँ।"

"कौन इनकार करेगा ?" पार्वतीबाई बोलीं, "तेरे पुण्यों से मैं भी यह यात्रा कर लूँगी। और कौन चलेगा ?"

"...को ले लेंगे।"

"...से पूछ लिया है ?"

"...पूछना ? वे क्या मना करेंगे ? तो फिर निश्चय हो गया न ?"

"...कब है ?"

"...कि सब तैयारी हो गयी है। अच्छा मुहूर्त देखकर चल दें।"

"...।"

...से यह बात कहने के लिए माधवराव के महल की

संसार में और कोई नहीं होता है, वे एकान्त में अच्छी तरह बातें ही नहीं कर पाते हैं। संसार को भ्रम में डालनेवाले वे प्राणी एकान्त में मुक्तमन से बातें करने लगते हैं और ठीक उसी समय गहराई में छिपे हुए, अन्तर्तम में दबे हुए दुःख उफन-उफनकर बाहर आने लगते हैं।"

"आप जब मुहीम पर जाते हैं, तब आपको ऐसा लगता है; फिर उस समय मेरी क्या दशा होती होगी ? आप कटोरा गये थे, यहाँ अन्न अच्छा नहीं लगता था। भय से प्राण अधमरे हो गये।" रमाबाई बोलीं।

"कैसा भय ?" माधवराव ने चौंककर पूछा।

"जैसे कुछ मालूम ही नहीं है। चाचाजी के उग्र अनुष्ठान, होम-हवन ये क्या आपके अनजाने हो रहे हैं ?"

माधवराव खिन्नता के हँसे। "यह सब हमें मालूम है। परन्तु हमने काका को केवल नज़रक़ैद में रखा है। उनको घर में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतानेवाला मैं कौन होता हूँ ?"

"परन्तु काकाजी को छोड़ दो न ! आप बाहर होते हैं; आँखों के आगे यहाँ यह सब होता रहता है, यह कैसे सहन किया जाये ?"

"और इसीलिए आपने भी उग्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये हैं ?"

"किसने कहा ?" रमाबाई ने पूछा।

"दर्पण में ही देख लो न ? रमा, काका को नजरक़ैद करने में क्या मुझको आनन्द हो रहा है ? परन्तु उनको छोड़ने में राज्य का अनहित है। अब धोखा स्वीकार नहीं कर सकते। तुम परमेश्वर पर विश्वास रखो। काका क्या करते हैं, इस ओर ध्यान ही मत दो।"

"मुझसे यही आशा थी। हम दोनों मिलकर जायेंगे, यह सोचकर दो महीने पहले ही यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। तुम जब कहोगी, तभी जा सकोगी। यथाशक्ति जल्दी तुम जाओ तो अच्छा है।"

"अकेली ?"

"अकेली क्यों ? साथ चल सकें तो पार्वती काकी को पूछ लो; नारायण से पूछकर छोटी बहू को ले जाओ।"

"मैं काकीजी को पूछकर आती हूँ। परन्तु उठना मत, नहीं तो फिर लिखने बैठ जाओगे।"

"नहीं रमा, तुम पूछ आओ।"

रमाबाई जब पार्वतीबाई के महल में पहुँचीं तब वे पोथी पढ़ रही थीं। रमाबाई ने पुकारा,

"काकीजी..."

"क्या है री ?" पोथी का पन्ना नीचे रखती हुई पार्वतीबाई ने पूछा।

"हरिहरेश्वर का देवस्थान सचमुच ही क्या तेजःपुंज है ?"

उस नाम को सुनते ही पार्वतीबाई ने हाथ जोड़ लिये। वे बोलीं,

"हरिहरेश्वर माने साक्षात् कालभैरव ! उसके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता ? क्यों री, बीच में ही हरेश्वर की याद कैसे आ गयी ?"

"हरेश्वर को चलने का निश्चय होने पर आप चलेंगी साथ ?"

"किसने, माधवराव ने कहा है ?"

"हाँ।"

"कौन इनकार करेगा ?" पार्वतीबाई बोलीं, "तेरे पुण्यों से मैं भी यह यात्रा कर लूँगी। और कौन चलेगा ?"

... को ले लेंगे।"

... से पूछ लिया है ?"

... पूछना ? वे क्या मना करेंगे ? तो फिर निश्चय हो गया न ?"

... जाना कब है ?"

... कि सब तैयारी हो गयी है। अच्छा मुहूर्त देखकर चल दें।"

... ।"

... से यह बात कहने के लिए माधवराव के महल को

संसार में और कोई नहीं होता है, वे एकान्त में अच्छी तरह बातें ही नहीं कर पाते हैं। संसार को भ्रम में डालनेवाले वे प्राणी एकान्त में मुक्तमन से बातें करने लगते हैं और ठीक उसी समय गहराई में छिपे हुए, अन्तर्तम में दबे हुए दुःख उफन-उफनकर बाहर आने लगते हैं।"

"आप जब मुहीम पर जाते हैं, तब आपको ऐसा लगता है; फिर उस समय मेरी क्या दशा होती होगी ? आप कटोरा गये थे, यहाँ अन्न अच्छा नहीं लगता था। भय से प्राण अधमरे हो गये।" रमाबाई बोलीं।

"कैसा भय ?" माधवराव ने चौंककर पूछा।

"जैसे कुछ मालूम ही नहीं है। चाचाजी के उग्र अनुष्ठान, होम-हवन ये क्या आपके अनजाने हो रहे हैं ?"

माधवराव खिन्नता के हँसे। "यह सब हमें मालूम है। परन्तु हमने काका को केवल नजरकैद में रखा है। उनको घर में क्या करना चाहिए और क्या नहीं, यह बतानेवाला मैं कौन होता हूँ ?"

"परन्तु काकाजी को छोड़ दो न ! आप बाहर होते हैं; आँखों के आगे यहाँ यह सब होता रहता है, यह कैसे सहन किया जाये ?"

"और इसीलिए आपने भी उग्र अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिये हैं ?"

"किसने कहा ?" रमाबाई ने पूछा।

"दर्पण में ही देख लो न ? रमा, काका को नजरकैद करने में क्या मुझको आनन्द हो रहा है ? परन्तु उनको छोड़ने में राज्य का अनहित है। अब धोखा स्वीकार नहीं कर सकते। तुम परमेश्वर पर विश्वास रखो। काका क्या करते हैं, इस ओर ध्यान ही मत दो।"

"यह कैसे हो ? कोटि मृत्युंजय मन्त्र का जप हुआ। जो कुछ बोला था, वह पूरा हुआ। लक्ष लोगों को भोजन कराया। अभिषेक चल रहे हैं। दानधर्म सब हो गया, परन्तु पल्ले क्या पड़ा ? और शेष क्या रहेगा ?"

माधवराव कुछ क्षणों तक चुप रहे। दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे बोले, "रमा, अच्छी याद दिलायी। एक बात रह गयी है, वह निरन्तर मन में चुभ रही है।"

"कौन-सी ?"

"हरिहरेश्वर हमारे कुलदेवता हैं। वहाँ जाने की बड़ी इच्छा थी। वह एक देवस्थान ऐसा है कि साक्षात् मृत्युयोग भी वहाँ कुछ नहीं कर सकता। हरेश्वर का बड़ा महत्त्व है। वहाँ जाने की इच्छा होती है। परन्तु अब इतना कष्ट सहन हो सकेगा, ऐसा लगता नहीं है। रमा, मेरे लिए तुम वहाँ जाकर आ सकोगी क्या ? न जाने क्यों, परन्तु इससे मैं ठीक हो जाऊँगा, यह मेरा विश्वास है।"

"आपकी आज्ञा होगी तो मैं जरूर जाऊँगी।"

"मुझको यही आशा थी। हम दोनों मिलकर जायेंगे, यह सोचकर दो महीने पहले ही यात्रा की तैयारी शुरू कर दी थी। तुम कब चलोगी, इसे बता सकोगी। यथाशक्ति जल्दी घूम आओ तो अच्छा है।"

"अकेली ?"

"अकेली क्यों ? साथ चल सकें तो पार्वती काकी को पूछ लो; नारायण से पूछकर छोटी बहू को ले आओ।"

"मैं काकीजी को पूछकर आती हूँ। परन्तु उठना मत, नहीं तो फिर लिखने बैठ जाओगे।"

"नहीं रमा, तुम पूछ आओ।"

रमाबाई जब पार्वतीबाई के महल में पहुँचीं तब वे पोथी पढ़ रही थीं। रमाबाई ने पुकारा,

"काकीजी..."

"क्या है री ?" पोथी का पन्ना नीचे रखती हुई पार्वतीबाई ने पूछा।

"हरिहरेश्वर का देवस्थान सचमुच ही क्या तेजःपुंज है ?"

उस नाम को सुनते ही पार्वतीबाई ने हाथ जोड़ लिये। वे बोलीं,

"हरिहरेश्वर माने साक्षात् कालभैरव ! उसके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता ? क्यों री, बीच में ही हरेश्वर की याद कैसे आ गयी ?"

"हरेश्वर को चलने का निश्चय होने पर आप चलेंगी साथ ?"

"किसने, माधवराव ने कहा है ?"

"हाँ।"

"कौन इनकार करेगा ?" पार्वतीबाई बोलीं, "तेरे पुण्यों से मैं भी यह यात्रा कर लूँगी। और कौन चलेगा ?"

"गंगाबाई को ले लेंगे।"

"नारायण से पूछ लिया है ?"

"उनसे क्या पूछना ? वे क्या मना करेंगे ? तो फिर निश्चय हो गया न ?"

"हाँ, परन्तु जाना कब है ?"

"कह रहे थे कि सब तैयारी हो गयी है। अच्छा मुहूर्त देखकर चल दें !"

"ठीक है। चलेंगे।"

रमाबाई आनन्द से यह बात कहने के लिए माधवराव के महल की ओर मुड़ीं।

हरिहरेश्वर की यात्रा के लिए निकलने का दिन आ गया। माधवराव ने पहले ही जंजिरा के नवाब को सूचित कर दिया था। अन्य क़िलेदारों को आदेशपत्र भेज दिये थे। रमाबाई माधवराव के महल में विदा लेने आयीं।

"सब तैयारी हो गयी?"

"जी।"

"अच्छी तरह जाना!"

माधवराव पलंग पर तकिये के सहारे बैठे थे। वहाँ रमाबाई गयीं। उनसे कुछ कहते नहीं बना। भारी आवाज़ में वे बोलीं, "ऐसी स्थिति में छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती है! भवन में अब कोई तो नहीं है। आप सावधान रहना।"

"जरूर रहेंगे! तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे आने तक तो निश्चय ही सावधान रहूँगा। जब से मैंने हरिहरेश्वर की मनौती की है, तबसे अच्छा लगने लगा है।"

"आपके मुँह में घी-शक्कर!"

"कदाचित् आपके आने तक हम इतने अच्छे हो जायेंगे कि आधे रास्ते पर तुम्हारे स्वागत के लिए आ सकेंगे।"

"यदि ऐसा हो गया तो सात जन्मों का पुण्य सफल हो गया, यही समझूँगी मैं। इसके अतिरिक्त देव से भी क्या माँगूँगी मैं?"

देखते-देखते रमाबाई की आँखों से आँसू बह चले। माधवराव ने रमाबाई का हाथ पकड़ लिया। रमाबाई ने होंठ कसकर दबा रखे थे। माधवराव बोले,

"देवता के पास कुछ माँगने जाना हो तो, हँसते हुए जाना चाहिए। इधर देखो। आँखों को पोंछो। जो कहता हूँ वह सुनो।"

रमाबाई ने आँखें पोंछीं। माधवराव ने रमाबाई को बलपूर्वक पास बैठाया। रमाबाई माधवराव की ओर देख रही थीं। माधवराव कह रहे थे, "रमा, जिस मार्ग से तुम जाओगी, उसको आँखें भरकर देखना। रास्ते में तुम्हें सागर के दर्शन होंगे। निरन्तर तट की ओर छलांग लगाते हुए उस सागर को देखना। प्रत्येक स्थान का सागर तुमको भिन्न लगेगा। यदि ध्यान से देखोगी तो प्रत्येक स्थान का किनारा भिन्न आवाज़ें देगा। कुछ स्थानों पर तुम्हें सागर उन्मत्त दिखाई देगा, कुछ स्थानों पर उसकी आवाज़ में व्यथा प्रकट होगी। ज्वार के समय पृथ्वी को पादाक्रान्त करने को गरजता आनेवाला समुद्र, जब भाटा शुरू होता है तब व्याकुल होकर पीछे लौटता हुआ दिखाई देगा। किनारे

पर नारियल और सुपारियों के बाग सागर पर हँसते हुए दिखाई देंगे। यह पराजय बड़ी हृदयविदारक है; क्लेशदायक है। हाथ में आयी हुई धरती को स्वीकार न कर पाये—यह उग्र प्रेमी सागर की पराजय दयार्द्र दृष्टि से देखना। नित्य के पराजय को वह निरन्तर सहन कर रहा है। फिर भी उसके प्रेम की उत्कटता रत्ती-भर भी कम नहीं होती है।

"वहाँ आकाश से स्पर्धा करने निकले हुए नारियल के वृक्ष अपने पत्तों की सरसर तुमको सुनायेंगे। चाँदनी रात में सरसर करते हुए वे रुपहले नारियल के पत्ते तुम्हारा मन मोह लेंगे। भरी दोपहरी के सूर्यबिम्ब को भी धरती पर न पड़ने देनेवाली घनी छाया में होकर तुम्हारे मार्ग जायेंगे। समुद्र के किनारे सूर्यास्त को देखना कभी मत भूलना। सूर्यबिम्ब जब क्षितिज पर टिकता है, तब तुम्हें ऐसा आभास होगा जैसे वह लहरों पर दौड़ता हुआ ठीक तुम्हारे हाथों में आ गया हो।"

कहते-कहते माधवराव हँस पड़े। मन्त्रमुग्ध होकर सुनती हुई रमाबाई ने पूछा, "हँसे क्यों ?"

"कुछ नहीं। यों ही याद आ गयी। भाटा के समय रिक्त पड़े हुए किनारे पर जब समुद्री केकड़े अल्पनाएँ बनाने लगेंगे, तब तुम्हारा अभिमान समूल धुल जायेगा और तुम कौतुक से उन रेखांकित कलाकृतियों को देखती रह जाओगी।"

रमाबाई हँसीं। वे बोलीं, "यह सब आपने कब देख लिया और याद कैसे रख लिया ?"

माधवराव खिन्नता से हँसे। बोले, "यह उत्तरदायित्व सँभालने से पहले एक बार मैं गया था। रमा, आज तक मैंने जो कुछ सीखा है, वह निसर्ग से ही। उसने मुझको जितना सिखाया है, दिया है, उतना अन्य किसी ने नहीं। समुद्र ने यह सिखाया कि प्रेम की विफलता कैसे सहन करनी चाहिए। कर्नाटक के खुले पत्थरों ने आवारा झंझावातों को निरन्तर टक्कर देते हुए संकटों का सामना करना सिखाया। तट से स्वयं को फेंक देनेवाले प्रपात ने त्याग की महत्ता गायी। क्या-क्या बताऊँ तुमको ? जाओ तुम। देर हो जायेगी। रास्ते में स्थान-स्थान पर तुम्हारा स्वागत होगा। जब हरिहरेश्वर को जाओगी तब नवाब की ओर से तुम्हें उपहार भेजे जायेंगे। उनके बदले में वापस भेजे जानेवाले उपहार भी तुम्हारे साथ रख दिये गये हैं। कदाचित् गोदल-बेड़ा का निरीक्षण भी तुमको करना पड़े। इसलिए निर्भय होकर सब देखो।"

मैना अन्दर आयी। रमाबाई उठीं। भवन के बाहर विशेष पालकियाँ सज्जित थीं। उनके अतिरिक्त राजा के लिए ही उपयोग में आनेवाले विशेष घोड़े, सेवकवर्ग, अश्वशाला, गजशाला, बाजेवाले आदि लवाजमा के पथक

अनुशासनबद्ध खड़े थे। रमाबाई, पार्वती काकी और गंगाबाई अपनी-अपनी पालकी में बैठ गयीं। संकेत के साथ ही पालकियाँ उठा ली गयीं। गजशाला का प्रमुख हाथी गाडेराव सबसे आगे शान से चल रहा था। पीछे-पीछे सारा लवाजमा जा रहा था।

रमाबाई हरेश्वर की यात्रा को गयीं; परन्तु माधवराव के स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ा। सभी उपाय किये जा रहे थे। कभी वैद्य के, कभी हकीम के तो कभी कनिंगहम के औषधोपचार चल रहे थे। दिनानुदिन शरीर निर्बल होता जा रहा था। माधवराव निश्चिन्तता से रोग से लड़ रहे थे। रोग के भयंकर स्वरूप का जैसे ही उनको पता चला वैसे ही उन्होंने राजकार्य में स्वयं ध्यान देना शुरू कर दिया। माधवराव का शय्यागृह दूसरा कार्यालय बन गया।

माधवराव सन्तप्त हो गये थे। किसी में सामने जाने का साहस नहीं था। माधवराव तकिये के सहारे चादर ओढ़े बैठे थे। सखाराम बापू को अत्यन्त आवश्यक बुलावा गया था। मास्टिन से मिलने के बाद माधवराव ने अँगरेजों से तोपें खरीदी थीं। जब उनको यह पता चला कि वे तोपें बिलकुल बेकार हैं, तब चिढ़कर माधवराव ने तोपों का कारखाना शुरू किया था। कर्नाटक की मुहीम के समय भी कारखाने का वृत्तान्त मिलते रहने की व्यवस्था उन्होंने की थी। वही कारखाना पूर्ण रूप से विफल हो गया है, यह वार्ता नाना ने उनको दी थी। इसीलिए बापू को अत्यावश्यक बुलावा भेजा गया था।

बापू को अन्दर आते देखते ही उनपर अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए माधवराव ने पूछा, "बापू, तोपों के कारखाने की जो खबर सुनी है हमने, वह सच है?"

"जी हाँ, श्रीमन्त!" बापू नजर टालते हुए बोले।

माधवराव ने अपनी चादर फेंक दी। बड़े कष्ट से वे खड़े हो गये। वे बोले, "बापू, इतनी सरलता से आपने यह बात कह दी! आश्चर्य है। बापू, आप व्यवस्थापक हैं। नारायण छोटा है, मेरा कोई भरोसा नहीं रहा है और आपको इस बात की भयानकता का पता नहीं? बोलिए ऽऽ"

"श्रीमन्त, मैंने स्वयं कारखाने की ओर ध्यान दिया। आपकी आज्ञानुसार तोपें ढालने के लिए हाथी की अम्बारी के बराबर ऊँचा घर नाना ने बनवा दिया। तोपों के लिए आवश्यक लोहे का प्रबन्ध कर दिया, परन्तु..."

"रहने दीजिए बापू! क्या बनवा दिया और क्या प्रबन्ध कर दिया, इसका विवरण लेकर क्या करना है? जहाँ लम्बी नली की तोपें तैयार होनी चाहिए

सीधी माधवराव के महल की ओर गयीं।

दोपहर का समय था। माधवराव के महल में धुँधला प्रकाश था। माधवराव पलंग पर सोये हुए थे। श्रीपति द्वार पर खड़ा था। रमाबाई महल में गयीं। माधवराव ने पूछा, "कौन है?"

"मैं" रमाबाई बोलीं।

वे जल्दी-जल्दी खिड़कियों के मखमली परदे ऊपर कर रही थीं। देखते ही देखते सारा महल प्रकाश से भर गया। सिर उठाकर माधवराव ने पूछा,

"कब आयी रमा?"

"अभी। सीधी यहीं आ रही हूँ।" रमाबाई माधवराव को निरखती हुई बोलीं। माधवराव की आँखें अन्दर धँस गयी थीं। मुखमण्डल निस्तेज हो गया था। माधवराव उठकर बैठे। रमाबाई बोलीं, "लेटे रहिए न!"

"ठीक है। परन्तु तुम्हें क्या हो गया है? इस तरह क्या देख रही हो?"

"मुझसे पूछ रहे हैं? क्या कहा था मुझसे? यही सावधानी रखो? और जब तबीयत इतनी बिगड़ गयी थी तो मुझको क्यों नहीं सूचना भिजवायी?"

रमाबाई चिढ़कर बोल रही थीं। माधवराव सन्तोषपूर्वक रमाबाई का सौन्दर्य निहार रहे थे। यात्रा से रमाबाई का स्वास्थ्य सुधर गया था। माधवराव हँसकर बोले, "रमा, एक प्रश्न करोगी तो उसका उत्तर दे सकूँगा। इतने प्रश्नों के उत्तर कैसे दूँगा?"

"ढंग से बातें नहीं करनी हों तो मत कीजिए। जाती हूँ मैं। जो कुछ कहती हूँ, उसी को हँसी में उड़ा देते हैं...." रमाबाई मुड़ीं।

"ठहर, रमा!"

रमाबाई मुड़ीं। माधवराव बोले, "यहाँ आओ।"

"कोई जरूरत नहीं।"

"मैं कहता हूँ न—आओ!"

रमाबाई समीप गयीं। माधवराव बोले, "मैं औषध खा रहा हूँ। जब से तुम गयी हो, मैं कहीं नहीं गया। आज फ़ायदा होगा, कल फ़ायदा होगा, इसी आशा में तुमको खबर नहीं की। अब रोग दूर नहीं हो रहा है तो मैं क्या करूँ?"

"ऐसी बात मत कहिए।" रमाबाई अवरुद्ध कण्ठ से बोलीं, "किस लिए भेजा था मुझको? क्या लाभ हुआ इस यात्रा का, मनौती का?"

"यह मत कहो। बहुत लाभ हुआ है। मुझको लाभ होगा—यह सोचकर तो मैंने तुमको भेजा ही नहीं था।"

"तो फिर?" रमाबाई ने आश्चर्य से पूछा।

"सच कहूँ, कटोरा से आया। तुमको देखा और मन बेचैन हो गया। बाबाजी का अनुष्ठान, यहाँ का वातावरण—इन सब विपदाओं से तुम बिलकुल ही मुरझा गयी थीं। मैंने अनुभव किया कि यदि जरा वातावरण बदल जाये तो अच्छा रहेगा। इसलिए तुम्हें भेजा था। यात्रा सफल हो गयी।"

"भाड़ में जाये ऐसी यात्रा। मुझको क्या हो गया था? आपके सामने ही मैं चली जाती, तब भी सन्तोष होता।"

"ऐसी बात मत कहो, रमा! प्रत्येक मनुष्य स्वार्थी होता है। तुम चली जाओगी तो फिर इस संसार में मेरा कौन है? कौन देखेगा मुझको? ईश्वर की कृपा से हो सकता है कि मैं ठीक हो जाऊँ।"

"कुछ मत कहिए। मेरे पहुँचने से पहले ही आप बिलकुल ठीक हो जायेंगे—यह कहा था पुजारी ने।"

"और तुमको यह सत्य लगा? रमा, अन्धश्रद्धा से मनुष्य को कभी मार्ग दिखाई नहीं देता है। इस धरती पर जो कुछ होता है वह परमेश्वर की कृपा से होता है। उत्पत्ति और अन्त—दोनों का कर्ता है वह। यदि श्रद्धा से यह स्वीकार कर लो तो इन मनौती का कुछ अर्थ नहीं रह जाता है। हरिहरेश्वर की यात्रा से मुझमें कोई परिवर्तन होगा, यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था। इसलिए मुझको निराशा स्पर्श नहीं कर सकती है।"

"फिर मेरी ही बुद्धि में यह बात क्यों बैठायी थी? किस लिए इतनी दूर भेजा था?"

"भविष्य में आनेवाले संकटों का सामना करने की शक्ति का निर्माण हो सके, इसलिए! रमा, प्रकृति ने तुम्हें कुछ नहीं सिखाया है क्या? जरा विचार करो। देखो। सूर्यास्त, सूर्योदय, ज्वार-भाटा, दिन-रात—सृष्टि का यह क्रम निरन्तर बिना रुके चल रहा है, यह तुमने नहीं देखा? प्रकृति के नानाविध रूपों ने तुमको मोहित नहीं किया? परमेश्वर की सत्य सत्ता की प्रतीति नहीं होती है। तुम उसका साक्षात्कार करो, यही इच्छा थी। खूब बातें करनी हैं। पूछना है। तुमने अभी कुछ खाया-पीया नहीं होगा। कपड़े बदलकर भोजनादि से निवृत्त होकर स्वस्थ चित्त से आना। तब हम बातें करेंगे।"

जैसे ही रमाबाई बाहर गयी, रोगी की खाँसी एकदम उभरकर आ गयी। खाँसी की उग्र आवाज को सुनकर श्रीपति अन्दर दौड़ा।

कर्नाटक की चौथी मुहीम के लिए जब माधवराव बाहर निकले तब उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। डॉक्टर और वैद्यों ने उनको न जाने की सलाह दी,

फिर भी उन्होंने अपना विचार नहीं बदला। रमाबाई के आग्रह के कारण उनको साथ लेकर माधवराव कर्नाटक पर चढ़ाई करने के लिए पुणे से बाहर निकले। स्वास्थ्य में कोई सुधार हो ही नहीं रहा था। स्वास्थ्य के कारण पड़ाव हटाने में विलम्ब हो रहा था। मिरज के पड़ाव में तो यात्रा का कष्ट सहन करने की शक्ति भी माधवराव में नहीं रही। विवश होकर मुहीम का भार त्र्यम्बकराव पेठे को सौंपकर श्रीमन्त पुणे को लौटे।

परन्तु पुणे में आकर भी माधवराव को आराम नहीं मिला। डॉक्टर कनिंघम ने वायु-परिवर्तन की सलाह दी और तदनुसार वे कटोरा में जाकर रहे। भवन में नारायणराव, उनकी पत्नी गंगाबाई, रमाबाई, पार्वतीबाई—ये ही विशिष्ट व्यक्ति रह गये। राघोबाजी के व्रत-अनुष्ठान आदि जोरों से चल रहे थे, उसमें रुकावट नहीं थी।

दोपहर के भोजन से निवृत्त होकर रमाबाई गंगाबाई के महल से वापस आ रही थीं। वे गौरी चौक पार करके पंगत के बरामदे से अपने महल की ओर आ रही थीं कि उनके कानों में पुकार पड़ी,

"भाभी साहिबा!"

रमाबाई ने पीछे मुड़कर देखा। राघोबा दादाजी का सेवक रंगभट पीछे-पीछे आ रहा था। रमाबाई रुक गयीं। वह समीप आकर बोला,

"भाभी साहिबा, मैं आपके पास ही आ रहा था।"

रंगभट का वह दन्तविहीन चेहरा और बातें करते समय होठों का खुलना तथा बन्द होना देखकर रमाबाई को हँसी आ गयी। वे बोलीं,

"चलिए रंगभट!"

रमाबाई अपने महल में आयीं। रंगभट को देखते ही फूलों की माला गूँथती बैठी हुई मैना के भाल पर सिकुड़नें पड़ गयीं। रंगभट दरवाजे के पास पालथी मारकर बैठ गया। रमाबाई पलंगपर बैठकर बोलीं, "रंगभट, आज रास्ता कैसे भूल गये?"

"सच कहूँ भाभी साहिबा! आपके दर्शन किये बिना चैन नहीं पड़ता। पेशवाई की साक्षात् लक्ष्मी हैं आप। इस भवन की शोभा हैं; परन्तु साली राजनीति के कारण इधर का मनुष्य उधर जाने से डरता है। समझ गयीं क्या?"

"समझ गयी।" मैना बोली।

"तुझसे किसने कहा बीच में बोलने के लिए?"

"लगता है कि अभी भोजन नहीं हुआ, रंगभट !" रमाबाई ने पूछा।

"कहाँ का भोजन भाभी साहिबा ! जब मालिक ही नहीं खाते हैं तो हमें मसीहा कौन खिलायेगा ? समझ गयीं ?"

"ऐसा क्यों ?" रमाबाई ने पूछा।

"खूब ! तो आपको मालूम नहीं है ? दादा साहब केवल दूध पर रह रहे हैं।"

"दादाजी भोजन नहीं करते ?"

"अब क्या बताऊँ ? कोई अनुष्ठान चल रहा है। अब भी यदि खिड़की से देखा जाये तो छत पर खड़े होकर एकटक सूर्य की ओर देखते हुए दिखाई देंगे। बड़ा घोर अनुष्ठान कर रहे हैं। परन्तु दादा साहब का स्वास्थ्य देखिए। चेहरे पर निराला ही तेज दमक रहा है। भाभी साहिबा, एक बात कहूँ तो सुनेंगी क्या ?"

"क्या रंगभट ?"

"छोटे मुँह बड़ी बात हो रही है। आपके ही अन्न पर पला हूँ। कहे बिना रहा नहीं जाता। श्रीमन्त से कहकर यह रुकवा दीजिए। मुझको लक्षण अच्छे नहीं दिखाई दे रहे। इधर बढ़ते हुए अनुष्ठान और उधर बढ़ते हुए कष्ट। अकारण ही सत्पात्र ब्राह्मण का शाप क्यों ले रहे हैं—यह कहिए !"

"किससे कह रहा है रे बुड्ढे ?" मैना उबल पड़ी।

"मैना !" रमाबाई बोली।

"चुप रहिए दीदी साहिबा ! इसकी बातें क्या सुनती हैं ? यह बकवास कहनेवाला और आप सुननेवाली। मैं इसको नख-शिख पहचानती हूँ !"

"ए मैने ! ज़्यादा मत बोल। रंगभट कहते हैं मुझको।"

"चुप रह !" मैना चिल्लायी। वह क्रोध रोक नहीं पा रही थी। वह बोली,

"रंगा के बच्चे, यह नाटकशाला में जाकर कह। लबरा मरा। हमेशा दादा साहब महाराज की नाटकशाला में फुदकता रहता है।"

"अब चुप रहती है कि नहीं ?" रंगभट दुपट्टा झाड़ता हुआ बोला।

"ज़रूर रहूँगी ! आने दो सरकार को, उनसे कहूँगी, और फिर देखना क्या होता है ? जब गरम राख तेरे मुँह में डाली जायेगी, तब मालूम पड़ेगा !"

"अब तेरे मुँह कौन लगे ! जाता हूँ भाभी साहिबा !" कहता हुआ रंगभट उठकर चल दिया। माधवराव का नाम सुनते ही वह काँपने लग गया था।

---

१. दण्ड के रूप में गरम राख मुँह में भरी जाती थी।

उसके ओझल होते ही रमाबाई ने पूछा,

"मैना, क्या कह रही थी ?"

"दीदी साहिबा, आप थीं इसलिए चुप रही। नहीं तो जूतों से पिटाई करती।"

रमाबाई एकदम गम्भीर हो गयीं। देखते ही देखते उनकी आँखें भर आयीं। वे सिसकने लगीं। हाथ में लगी माला रखकर मैना उठी। पास आकर बोली,

"क्यों रोती हैं दीदी साहिबा ?"

"कुछ नहीं।"

"कहिए न ! आग लगे मेरे मुँह में। उस रंगभट से मैंने कुछ कह दिया, इसलिए गुस्सा आ गया है आपको ?"

"नहीं री !" आँसू पोंछती हुई रमाबाई बोलीं, "उसने जो कुछ कहा, उसमें असत्य क्या है ? इनकी तबीयत ऐसी है और काकाजी के उग्र अनुष्ठान हो रहे हैं। जिनको आशीर्वाद देना चाहिए, वे ही यदि शाप देने लगेंगे तो कैसे होगा ?"

"अकारण बुरी बात मन में मत आने दीजिए दीदी साहिबा !" मैना बोली।

"मैं गलत नहीं कह रही हूँ। ठहर..." कहकर रमाबाई उठीं और पलंग के पास कोने में आले के पास गयीं। वहाँ से लौटीं और उन्होंने मुट्ठी खोली। उसमें गुलाल लगा तीन धारियोंवाला नीबू था। भयचकित दृष्टि से मैना उस नीबू को देख रही थी। अनजाने उसका हाथ मुँह पर चला गया। रमाबाई बोलीं,

"सुबह मिला।"

मैना के प्राण काँप रहे थे। उसके मुख से शब्द नहीं निकल रहा था। रमाबाई बोलीं,

"तू यहीं बैठ। मैं अभी आती हूँ।" कहकर रमाबाई बाहर चली गयीं।

पार्वतीबाई अपने महल में बैठकी पर बैठी हुई थीं। जप की माला उनके हाथ में थी। जैसे ही रमाबाई महल में पहुँचीं, उन्होंने जप की माला सामने रखे पात्र में रख दी। रमाबाई की ओर हँसकर देखती हुई वे बोलीं,

"आओ। आज दोपहर में ही आ गयीं ?"

उन शब्दों को सुनते ही रमाबाई रुलाई न रोक सकीं। वे खड़ी-खड़ी सिसकने लगीं। पार्वतीबाई घबड़ाकर उठीं। पास आकर रमाबाई को अंक में भरती हुई वे बोलीं,

"क्या हो गया, यह तो बता ! कटोरे में पत्र आया है क्या ?"

सिर हिलाकर इनकार करती हुई रमाबाई ने मुट्ठी खोली। उस मुट्ठी में तीन धारियोंवाले नीबू को देखते ही पार्वतीबाई सब कुछ समझ गयीं। उन्होंने पूछा,

"कहाँ मिला ?"

"सुबह आले में था।"

"घबड़ाओ मत, रमा ! परमेश्वर सब कुछ देख लेगा। इसकी अपेक्षा उसपर विश्वास रखो।"

रमाबाई पार्वतीबाई की बाँहों के बन्धन से अपने को छुड़ाकर सीधी महल के पूर्वी कोने में गयीं और वहाँ की बन्द खिड़की को उन्होंने खोल दिया। वहाँ से राघोबाजी का महल दिखाई दे रहा था। छत पर राघोबा हाथ जोड़कर सूर्य की ओर देखते हुए खड़े थे।

"काकीजी ! आइए, देखिए।"

एक पैर भी आगे न रखते हुए पार्वतीबाई बोलीं, "बन्द कर दे उस खिड़की को, मैं क्या जानती नहीं यह ? उठते-बैठते यह अभद्र दर्शन न हो, इसीलिए मैंने वे खिड़कियाँ बन्द कर दी हैं। इधर आ।"

जैसे ही रमाबाई पास आयीं, पार्वतीबाई ने उनको बाँहों में भर लिया। रमाबाई अविरत रोती जा रही थीं; पार्वतीबाई उनकी पीठ पर हाथ फिरा रही थीं। जब आवेग कम हुआ तब वे बोलीं,

"इधर देख तो।"

रमाबाई ने सिर उठाया। उनकी आँखों में झाँकती हुई पार्वतीबाई बोलीं, "देख। अभी हाल में तुमने कभी दर्पण में देखा है ? व्रत और उपवासों के कारण तुम्हारी क्या दशा हो गयी है, यह देखा है ? यह सब क्या व्यर्थ जायेगा ? मैं भी माधव के लिए मृत्युंजय का जप कर रही हूँ। मेरे भी तो कुछ न कुछ पुण्य शेष होंगे ही ? वे सब मैंने माधव के पीछे खड़े कर दिये हैं। माधव के लिए ऐसे न जाने कितने लोगों ने अपने पुण्य दिये होंगे ? इनका कुछ भी मूल्य नहीं है क्या ? एक व्यक्ति की घृणा से क्या यह सब व्यर्थ हो जायेगा ?"

रमाबाई ने आँखें पोंछीं। उनकी पीठ पर हाथ फेरती हुई पार्वतीबाई बोलीं, "ऐसे पचास नीबू भी मिलें, तब भी तुम मत घबड़ाओ। जाओ, जरा सो लो।"

रमाबाई उठीं और अपने महल में आयीं। मैना बकुल के फूलों की माला गूँथ रही थी। बिना कुछ कहे रमाबाई पलंग पर जाकर लेट गयीं। मैना सिर झुकाये माला गूँथ रही थी। अनजाने वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी। गीत के स्वर उसके मुख से बाहर निकलने लगे—

बाट आकाश की जोवें, सखि ! किस लिए नर नारी।

देव रहा मन्दिर में, भाव वनवासी हो गया।
ध्रुव कैसे टल गया, चन्दन का दाह हुआ।
आज सती जानकी का, त्याग राम राजा ने किया॥
क्षितिज को तोड़कर, रथ जानकी का गया।
शुष्क आंसुओं में, स्वामी अयोध्या का नहा गया॥

उस विरह-गीत से रमाबाई अत्यन्त बेचैन हो गयीं। वे उठकर बोलीं,

"किस लिए व्याकुल है? सिर में दर्द होने लगा, यह पर्याप्त नहीं है क्या?"

मैना एकदम चुप हो गयी। रमाबाई फिर सो गयीं। अनजाने उनको गीत की वे पंक्तियां याद आ रही थीं। उनको चैन नहीं पड़ रहा था। वे मुड़कर बोलीं,

"मैना—"

"जी!" मैना सिर ऊपर न उठाती हुई बोली।

"गाओ!"

मैना कुछ नहीं बोली।

"गुस्सा हो गयी! गुस्सा मत हो री! उस गीत को फिर सुना। कहाँ से सीखा है री?"

"काकी साहिबा गाती हैं।"

"कौन? पार्वती काकीजी?" रमाबाई ने पूछा।

"जी! जब कभी अकेली होती हैं, तब गाती हैं। सुनते-सुनते ध्यान में भर गया है।"

रमाबाई की आँखें भर आयीं। वे भावाकुल होकर बोलीं,

"सुना री मैना! अभी मैं बेकार गुस्सा हुई थी। सुना न...."

मैना गीत गाने लगी—

इस तीर पर है सुख। उस तीर पर है दुःख।
बीच में जीवन बहता है। है यही संसार का रूप॥
मिलकर बिछुड़ने को। देव! क्या यह खेल है?
बताओ इसमें देवत्व, सचमुच तुम्हारा क्या है?
विघ्नहर्ता हे विनायक! पार्वती की आन तुमको!
रमा-माधव को सँभालो! मैं तुम्हारा गुण गाऊँगी॥

"आइए शास्त्रीजी!" खास बैठक में आते हुए रामशास्त्रीजी को देखकर बापू बोले। शास्त्रीजी ने देखा। बैठक में नाना, मोरोबा, बापू और दौलतराव

घोरपड़े थे। रामशास्त्रीजी बैठकी पर जाकर बैठ गये। दौलतराव ने पूछा,

"श्रीमन्त सासवड से कब आये?"

"कल रात।" नाना बोले।

"आज राह देखकर सासवड को जाने का विचार किया था।"

"भला सो क्यों?" रामशास्त्रीजी ने पूछा।

"फिर मुहीम पर लौटना है। श्रीमन्त का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, यह पता चला, तब त्र्यम्बकराव ने विशेष रूप से भेजा।"

एक दीर्घ उच्छ्वास छोड़कर रामशास्त्री बोले, "शरीर को विश्राम और शान्ति कुछ मिलेगी तो औषध कुछ कर सकेगी। दौलतराव, कर्नाटक की लड़ाई से श्रीमन्त वापस आये। उसके बाद आज तक वे महल में विश्राम कर रहे थे, यदि आप यह समझे हुए हैं, तो आप भ्रम में हैं। इतने दिनों में नासिक, नगर, सासवड, जेजुरी, थेऊर, कटोरा, सिद्धटेक—इन स्थलों पर श्रीमन्त घूम आये हैं। राजनीति में ध्यान रत्ती-भर भी कम नहीं हुआ है। स्वास्थ्य इतना क्षीण होने पर ये व्यवहार कैसे हो सकेंगे?"

"परन्तु शास्त्रीजी! यह आपको कहना चाहिए। वे आपकी बात मानते हैं।"

"हाँ! यह सच है।" दौलतराव घोरपड़े बोले, "तीसरी मुहीम पर तुम्हारा पत्र आया था। श्रीमन्त ने उसी समय छावनी उठा दी थी।"

"मैं कहता नहीं हूँ—यह समझते हैं क्या आप?" रामशास्त्री बोले, परन्तु यह बहुत पहले की बात हो गयी। जैसे-जैसे उनका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है, वैसे ही वैसे दिनानुदिन उनका स्वभाव अधिक सन्तापी और अधिक उग्र बनता जा रहा है। मृत्यु का भय होने पर मनुष्य अपनी चिन्ता करता है। इनको भय नाम का शब्द ही ज्ञात नहीं है।"

"बिलकुल सच है।" दौलतराव बोले, "निजगाल की लड़ाई की वास्तविक बात मालूम है?"

सबने नकारार्थी सिर हिलाये। दौलतराव बैठकी पर जरा आगे सरके, "बात यह थी कि हम निजगाल का घेरा डाले बैठे थे; परन्तु वह स्थान बड़ा दृढ़ था। हाथ में जल्दी नहीं आ रहा था। मोर्चे बाँधकर हम लड़ रहे थे। इधर श्रीमन्त और मैं—दोनों शतरंज खेल रहे थे। छोटे श्रीमन्त नारायणराव—"

बीच में ही दौलतराव ने पूछा, "श्रीमन्त हैं न?"

"नहीं। छोटे श्रीमन्त अनुष्ठान के लिए थेऊर को गये हैं।" बापू ने कहा।

"छोड़ो इन बातों को; फिर क्या हुआ?" नाना ने पूछा।

"फिर क्या होना था?" दौलतराव आवेश से कहने लगे, "अचानक गोली

देव रहा मन्दिर में, भाव वनवासी हो गया।
ध्रुव कैसे टल गया, चन्दन का दाह हुआ।
आज सती जानकी का, त्याग राम राजा ने किया॥
क्षितिज को तोड़कर, रथ जानकी का गया।
शुष्क आंसुओं में, स्वामी अयोध्या का नहा गया॥

उस विरह-गीत से रमाबाई अत्यन्त बेचैन हो गयीं। वे उठकर बोलीं,

"किस लिए व्याकुल है? सिर में दर्द होने लगा, यह पर्याप्त नहीं है क्या?"

मैना एकदम चुप हो गयी। रमाबाई फिर सो गयीं। अनजाने उनको गीत की वे पंक्तियां याद आ रही थीं। उनको चैन नहीं पड़ रहा था। वे मुड़कर बोलीं,

"मैना—"

"जी!" मैना सिर ऊपर न उठाती हुई बोली।

"गाओ!"

मैना कुछ नहीं बोली।

"गुस्सा हो गयी! गुस्सा मत हो री! उस गीत को फिर सुना। कहाँ से सीखा है री?"

"काकी साहिबा गाती हैं।"

"कौन? पार्वती काकीजी?" रमाबाई ने पूछा।

"जी! जब कभी अकेली होती हैं, तब गाती हैं। सुनते-सुनते ध्यान में भर गया है।"

रमाबाई की आँखें भर आयीं। वे भावाकुल होकर बोलीं,

"सुना री मैना! अभी मैं बेकार गुस्सा हुई थी। सुना न...."

मैना गीत गाने लगी—

इस तीर पर है सुख। उस तीर पर है दुःख।
बीच में जीवन बहता है। है यही संसार का रूप॥
मिलकर बिछुड़ने को। देव! क्या यह खेल है?
बताओ इसमें देवत्व, सचमुच तुम्हारा क्या है?
विघ्नहर्ता हे विनायक! पार्वती की आन तुमको!
रमा-माधव को सँभालो! मैं तुम्हारा गुण गाऊँगी॥

"आइए शास्त्रीजी!" खास बैठक में आते हुए रामशास्त्रीजी को देखकर बापू बोले। शास्त्रीजी ने देखा। बैठक में नाना, मोरोबा, बापू और दौलतराव

घोरपडे थे। रामशास्त्रीजी बैठकी पर जाकर बैठ गये। दौलतराव ने पूछा,

"श्रीमन्त सासवड से कब आये?"

"कल रात।" नाना बोले।

"आज राह देखकर सासवड को जाने का विचार किया था।"

"भला सो क्यों?" रामशास्त्रीजी ने पूछा।

"फिर मुहीम पर लौटना है। श्रीमन्त का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, यह पता चला, तब त्र्यम्बकराव ने विशेष रूप से भेजा।"

एक दीर्घ उच्छ्वास छोड़कर रामशास्त्री बोले, "शरीर को विश्राम और शान्ति कुछ मिलेगी तो औषध कुछ कर सकेगी। दौलतराव, कर्नाटक की लड़ाई से श्रीमन्त वापस आये। उसके बाद आज तक वे महल में विश्राम कर रहे थे, यदि आप यह समझे हुए हैं, तो आप भ्रम में हैं। इतने दिनों में नासिक, नगर, सासवड, जेजुरी, थेऊर, कटोरा, सिद्धटेक—इन स्थलों पर श्रीमन्त घूम आये हैं। राजनीति में ध्यान रत्ती-भर भी कम नहीं हुआ है। स्वास्थ्य इतना क्षीण होने पर ये व्यवहार कैसे हो सकेंगे?"

"परन्तु शास्त्रीजी! यह आपको कहना चाहिए। वे आपकी बात मानते हैं।"

"हाँ! यह सच है।" दौलतराव घोरपड़े बोले, "दूसरी मुहीम पर तुम्हारा पत्र आया था। श्रीमन्त ने उसी समय छावनी उठा दी थी।"

"मैं कहता नहीं हूँ—यह समझते हैं क्या आप?" रामशास्त्री बोले, परन्तु वह बहुत पहले की बात हो गयी। जैसे-जैसे उनका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है, वैसे ही वैसे दिनानुदिन उनका स्वभाव अधिक सन्तापी और अधिक उग्र बनता जा रहा है। मृत्यु का भय होने पर मनुष्य अपनी चिन्ता करता है। इनको भय नाम का शब्द ही ज्ञात नहीं है।"

"बिलकुल सच है।" दौलतराव बोले, "निजगाल की लड़ाई की वास्तविक बात मालूम है?"

सबने नकारार्थी सिर हिलाये। दौलतराव बैठकी पर जरा आगे सरके, "बात यह थी कि हम निजगाल का घेरा डाले बैठे थे; परन्तु वह स्थान बड़ा दृढ़ था। हाथ में जल्दी नहीं आ रहा था। मोर्चे बाँधकर हम लड़ रहे थे। इधर श्रीमन्त और मैं—दोनों शतरंज खेल रहे थे। छोटे श्रीमन्त नारायणराव—" बीच में ही दौलतराव ने पूछा, "श्रीमन्त हैं न?"

"नहीं। छोटे श्रीमन्त अनुष्ठान के लिए थेऊर को गये हैं।" बापू ने कहा।

"छोड़ो इन बातों को; फिर क्या हुआ?" नाना ने पूछा।

"फिर क्या होना था?" दौलतराव आवेश से कहने लगे, "अचानक गोली

आयी और बैठे-बैठे खेल देखते हुए नारायणराव को स्पर्श करती हुई चली गयी। कलाई में थोड़ा-सा घाव हो गया। श्रीमन्त ने 'इनको छावनी में ले जाओ' यह कहकर फिर खेलना शुरू कर दिया। सब चिन्तित हो उठे; परन्तु श्रीमन्त से कौन कहे? उसी समय दादा वहाँ आ गये।"

"कौन? मुरारराव घोरपड़े?"

"हाँ! वे ही श्रीमन्त से कह सकते थे। उन्होंने एकदम कहा, "श्रीमन्त! यहाँ बैठने में खतरा है। उठिए।"

श्रीमन्त बोले, "उठिए! मुरारराव, यह स्थान हाथ में नहीं आ रहा है, इसका क्या करना चाहिए, यह बता दो तो मैं उठ जाऊँ। एक-एक स्थान के लिए इतनी देर हुई तो जीवन-भर शतरंज ही खेलते रहेंगे।"

दादा ने एकदम कह दिया, "श्रीमन्त, चिन्ता मत करो। कल ही अगर यह स्थान क़ब्ज़े में न लिया तो घोरपड़े की औलाद नहीं!"

श्रीमन्त उठे।

"फिर दूसरे दिन उस अड्डे पर क़ब्ज़ा कर लिया?" बापू ने पूछा।

"अड्डे पर क़ब्ज़ा!" दौलतराव मूँछों को ऐंठते हुए बोले, "प्रातःकाल हम दोनों एक हज़ार घुड़सवार लेकर टूट पड़े। देखते-देखते तिनगाल पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ का ध्वज उतारने के लिए दादा सीढ़ी लगाकर चढ़े। ध्वज उतरा ही था कि भूल उनके ध्यान में आयी। दादा के पास भगवा झण्डा नहीं था। भगवाध्वज लेने के लिए वे मुड़ने ही वाले थे कि नीचे से श्रीमन्त की आवाज़ आयी, मुरारराव, मुड़ो मत। यह लो भगवा झण्डा।

"दादा ने देखा कि सीढ़ी के नीचे श्रीमन्त हँसते हुए झण्डा लेकर खड़े थे। इसको कहते हैं छाती! ऐसी निडर छातीवाला स्वामी के पीछे खड़ा होने पर ऐसी पचास लड़ाइयाँ जीती जा सकती हैं।"

दौलतराव की बात समाप्त होते ही रामशास्त्री बोले, "श्रीमन्त का यह कार्य यद्यपि साहस-भरा है, तथापि उचित निश्चय ही नहीं है। ऐसी भीड़ में श्रीमन्त का प्रवेश करना योग्य नहीं है।"

"जब घोरपड़ेजी-जैसे लोग रास्ता साफ़ करने के लिए उपस्थित हों, तब हम आगे बढ़ने से क्यों डरें?"

इस वाक्य के साथ ही सबकी आँखें मुड़ीं। बैठक के अन्दर के दरवाज़े से माधवराव आ रहे थे। झटपट सब उठकर खड़े हो गये। नमस्कार के लिए सिर झुक गये। माधवराव ने आगे आकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक दौलतराव का हाथ पकड़कर उनको अपने पास बैठकी पर बैठाते हुए पूछा,

"दौलतराव, मुरारराव ठीक हैं न?"

"जी, हैं!"

"आप कब आये?" माधवराव ने पूछा।

"चार दिन हो गये। आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आपके स्वास्थ्य की वार्ता पहुँची, इसलिए त्र्यम्बकराव मामा ने भेजा।"

"अब हमारे स्वास्थ्य की चिन्ता मत करो। इस मुहीम को सफल करो। अब आपपर ही हमारा भरोसा है।" कहते-कहते माधवराव का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे बोले, "आज गोपालराव की बहुत याद आ रही है। उन-जैसा निष्ठावान् व्यक्ति मुश्किल से मिलेगा। कर्नाटक की मुहीमों का सतत तनाव उन-पर पड़ा। इन दिनों किसी भी विचार-विमर्श में उनकी सलाह लिये बिना हमने कुछ नहीं किया। उनकी अकाल मृत्यु से पेशवाई की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति असम्भव है।"

"श्रीमन्त, गोपालराव के जाने से फ़ौज को भी धक्का लगा है। हैदर भी उनको मानता था। शत्रु भी उनको आदर से देखते थे—वे ऐसे व्यक्ति थे।" दौलतराव बोले।

लम्बी साँस छोड़कर माधवराव बोले, "दौलतराव, यदि गोपालराव पटवर्धन और मुरारराव घोरपड़े—ये लोग हमारे पास नहीं होते, तो कर्नाटक की मुहीम का सफल होना कठिन था। कर्नाटक की जितनी जानकारी उनको थी, उतनी बहुत थोड़े लोगों को है। गोपालराव को जलोदर हो गया। मृत्यु दिखाई देने पर भी उन्होंने उत्तरदायित्व से मुँह नहीं मोड़ा। अपने भाई वामनराव को बुलवाकर, उनको अपने स्थान पर नियुक्त कर वे मृत्यु के सामने चले गये। ऐसे व्यक्ति कठिनता से मिलते हैं।"

"दौलतराव कल जाने की कह रहे हैं।" रामशास्त्री बोले।

"ठीक है। उनपर बड़ा उत्तरदायित्व है। दौलतराव, हम त्र्यम्बकराव मामाजी को पत्र लिखेंगे, परन्तु आप भी उनको प्रत्यक्ष वृत्तान्त बता देना।"

दौलतराव मुजरा करके बैठक से बाहर चले गये। भोजन की सूचना आते ही बैठक उठ गयी।

दोपहर के समय रमाबाई अपने महल में पलंग पर लेटी हुई थी। मैना रमाबाई के पैर दबा रही थी। उसी समय नारायणराव की पत्नी गंगाबाई महल में आयी। रमाबाई ने आँखें बन्द कर ली थीं। गंगाबाई को देखते ही मैना बोली,

"दीदी साहिबा!"

रमाबाई ने देखा। गंगाबाई पर दृष्टि जाते ही वे बोलीं, "अरे वाह! आज दोपहर को ही तुम खूब आयी हो! अन्दर आओ।"

गंगाबाई लजाती हुई अन्दर आयीं। उन्होंने कत्थई रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी। केशों में फूलों की वेणी गुँथी हुई थी। नाक में नथ थी। रमाबाई आश्चर्य से लजाती आती गंगाबाई को देख रही थीं। गंगाबाई पास आयीं और एकदम पैर छूने लगीं। रमाबाई उनको पास लेती हुई बोलीं,

"क्यों री, आज कौन-सा त्योहार है जो इतनी सजी है?"

गंगाबाई लजाती हुई बोलीं, "काकीजी ने भेजा है। उन्होंने ही रेशमी साड़ी पहनने को कहा था।"

"किसने? बड़ी काकीजी ने?"

"उँहुं! बादामी बँगलेवाली!"

"क्या आयी थीं?"

"हाँ! वे बोलीं...."

"क्या बोलीं?"

"वे बोलीं, नयी पेशवाइनबाई कैसी दिखाई देती हैं, यह देखें तो।" एक साँस में ही गंगाबाई ने कह दिया।

"अच्छा!" क्षण-भर रमाबाई का चेहरा गम्भीर दिखाई दिया। दूसरे ही क्षण उनके चेहरे पर मुसकराहट छा गयी। वे बोलीं,

"बड़ी अच्छी लग रही हो! ठहरो, परन्तु गले और कान नंगे क्यों हैं? मैना, मेरे आभूषणों की पेटिका ला।"

मैना ने पेटिका सामने रख दी। उसको खोलकर रमाबाई बोलीं, "देखो तो, तुमको इसमें से कुछ पसन्द है क्या? लो न! तुम्हारा ही है यह।"

गंगाबाई ने अनजाने मोतियों का हार उठा लिया। उसको हाथ में लेकर रमाबाई ने अपने हाथों से उसको गंगाबाई के गले में डाल दिया तथा उनको देखती हुई वे बोलीं,

"देखो तो, अब कितनी अच्छी लग रही हो! चलो।"

रमाबाई ने गंगाबाई का हाथ पकड़ा और वे चलने लगीं। महल के बाद महल पार करती हुई वे जब माधवराव के महल की ओर मुड़ीं, तब गंगाबाई की चाल धीमी हो गयी। रमाबाई के हाथ के तनाव को वे अनुभव कर रही थीं।

माधवराव के महल के द्वार में श्रीपति बैठा था। रमाबाई को देखते ही वह मुजरा करके एक ओर हट गया। रमाबाई अन्दर गयीं। माधवराव बैठे-बैठे लिख रहे थे। यह देखते ही रमाबाई बोलीं,

"यह क्या ? 'सोता हूँ' कहकर लिखने क्यों बैठ गये ?"

"अजी नहीं। यह एक ही पत्र था, इसको समाप्त कर लूँ। दौलतराव जानेवाले हैं। पेठेजी को पत्र भेजना चाहिए।"

"देखा आपने, कौन आया है ?"

माधवराव का ध्यान गंगाबाई की ओर गया। वे हँसकर बोले, "कौन! छोटी बाई ?"

गंगाबाई लजाती हुई खड़ी थी। रमाबाई बोलीं, "देखो तो, कैसी दिखाई देती है, एकदम मनमोर! बादामी बँगले से सजकर आयी और मुझसे पूछने लगी—देखो पेशवाइनबाई कैसी दिखाई देती है ?"

माधवराव चकित होकर गंगाबाई की ओर देख रहे थे। रमाबाई बोलीं, "पैर छू न !"

गंगाबाई आगे बढ़ीं और उन्होंने झुककर पैर छुए। माधवराव का ध्यान गंगाबाई के गले में पड़े मोतियों के हार पर क्षण-भर स्थिर हो गया। रमाबाई हँसकर बोली, "पेशवाइनबाई लगती है कि नहीं ?"

"बिलकुल लगती है !" माधवराव सावधान होते हुए बोले। उनका उतना कथन कानों में पड़ते ही गंगाबाई लजाकर बाहर भाग गयीं। उनके पीछे दोनों की ही हँसी महल में गूँज उठी। रमाबाई बोली,

"जाती हूँ मैं। आप पत्र पूरा कर लें।"

"ठहरो रमा।" कहते हुए माधवराव रमाबाई के पास गये। दोनों हाथों में उन्होंने रमाबाई का चेहरा लिया। उन स्याह काले विशाल नेत्रों को देखते हुए माधवराव बोले, "रमा, इतना बड़ा मन तो मेरा भी नहीं है।"

रमाबाई लजाकर मुड़ी। तभी माधवराव बोले, "रमा, यहाँ नीबू मिला है, यह सच है ?"

रमाबाई तत्क्षण मुड़ीं। उनका चेहरा निस्तेज हो गया था। कातर आवाज में उन्होंने पूछा, "किसने कहा ?"

"रमा, नीबू मिला है इसलिए चिन्ता मत करो। जो कुछ होता है, वह ईश्वर की इच्छा से। मेरा उसपर विश्वास है। ऐसे नीबू पर नहीं। परन्तु यह बात बाहर प्रकट न हुई होती, तो अच्छा होता !"

"क्यों ? क्या हो गया ?"

"कुछ नहीं, परन्तु धर्मशास्त्र का निर्णय हमको सुनना पड़ा। उसका उल्लंघन करने का साहस मुझमें नहीं है।"

"कैसा निर्णय !" रमाबाई ने घबड़ाकर पूछा।

"इस भवन में इस समय हम नहीं रह सकेंगे। कहते हैं कि स्वास्थ्य के लिए

यह ठीक नहीं है....”

प्रातःकाल। पौ फटने लगी थी। उस अन्धकारमय प्रकाश में माधवराव की पालकी थेऊर के भवन के सामने जाकर खड़ी हो गयी। कुछ गिनती के घुड़सवार पीछे थे। सामान लानेवाले दो ऊँट अपनी कनौतियाँ खलखलाते खड़े हो गये। पालकी के आगे मशाल लेकर दौड़नेवाले मशालची प्रातःकाल की उस ठण्ड में स्वेद से नहा रहे थे। पेशवे थेऊर में उपस्थित हो गये हैं—इस बात की सूचना नक्कारखाने का नगाड़ा दे रहा था। इस तरह अकस्मात् और असमय में पेशवा आयेंगे, यह किसी ने सोचा भी नहीं था। चारों ओर भगदड़ मच गयी और उतरी हुई पालकी से माधवराव बाहर आये। इच्छाराम पन्त डेरे जल्दी-जल्दी घोड़े से उतर कर आगे बढ़े।

माधवराव भवन के नक्कारखाने की ओर देख रहे थे। प्रातःकाल की ठण्डी हवा से हो या यात्रा की थकावट से हो, परन्तु उनका क्रोध शान्त हो गया था। दो दिन पहले ही शुभ मुहूर्त में श्रीमन्त शनिवार-भवन से बाहर निकलकर भवानी पेठ में जाकर रहने लगे थे। थेऊर को जाने का निर्णय सबको विदित था, परन्तु जब से भवानी पेठ में आये थे तब से श्रीमन्त प्रतिक्षण बेचैन होते जा रहे थे। वह बेचैनी इतनी बढ़ गयी कि पूर्वरात्रि को माधवराव ने सबको रात में ही कूच करने की सूचना दे दी। मध्यरात्रि की तोप दागी गयी। और सीधा-सामग्री के लिए जो गाँव में गये थे, वे सबके सब गाँव में अटक गये। दो प्रहर रात में ही माधवराव ने डेरे उखाड़ने का आदेश दिया। जब बेल-दार, झाड़ू लगानेवाले और बिछावन करनेवाले, सेवक, ढालबन्द सिपाही आदि लोग सामने दिखाई न दिये तब तो माधवराव के क्रोध की सीमा न रही। ऊँटों पर सामान लदवाकर जितने घुड़सवार थे उनके साथ ही माधवराव ने थेऊर को कूच किया।

माधवराव नक्कारखाने के सामने खड़े थे कि इच्छाराम पन्त सामने गये और बोले, “श्रीमन्त—”

“क्या है ?”

“हवा बड़ी ठण्डी है।”

“हाँ” कहते हुए माधवराव ने अपनी गरम कनटोपी ठीक की तथा कन्धे पर शाल लपेट ली। पन्त बोले,

“चलें श्रीमन्त !”

“पन्त ! श्री गजानन के दर्शन करके ही हम भवन में जायेंगे। आज तक

का हमारा यह नियम है। श्रीपतीऽ"

"जी !"

"तू सामान लगा ले। हम दर्शन करके आ रहे हैं।"

"जी" कहकर श्रीपति मुड़ा।

प्रातःकाल का प्रकाश तेजी से धरती पर फैल रहा था। अन्धकार में डूबी हुई पृथ्वी प्रातःकाल के उस प्रकाश से जाग्रत् हो रही थी। आकाश में पक्षियों के झुण्ड किलबिलाट करते हुए पूर्वक्षितिज की ओर जा रहे थे। यह सब देखते हुए माधवराव मन्दगति से देवालय की ओर जाते हुए बोले,

"पन्त—"

"आज्ञा !" पन्त आगे बढ़े।

परन्तु माधवराव कुछ नहीं बोले। वे अपने ही विचारों में लीन देवालय की ओर जा रहे थे। देवालय की सीढ़ियों तक की इतनी कम दूरी, परन्तु इतने श्रम से ही गठीला उनका चेहरा कष्ट से आच्छादित हो गया। सीढ़ियों के पास उनको रुकते देखते ही इच्छाराम पन्त ने उनकी ओर हाथ बढ़ाया। क्षण-भर उन्होंने पन्त की ओर देखा और फिर उन्होंने हाथ का सहारा लिया। देवालय के प्रवेश-द्वार से वे अन्दर आये।

माधवराव देवालय का विस्तृत प्रांगण निरख रहे थे। चारों ओर से बरामदों से घिरे हुए प्रांगण में स्थान-स्थान पर फूलों की क्यारियाँ प्रातःकाल के प्रकाश में हँसती दिखाई दे रही थीं। प्रवेश-द्वार के सामने ही पीपल का वृक्ष दिखाई दे रहा था। अनेक शाखाओं से विशाल बना हुआ वह पीपल का वृक्ष बड़ी शान से खड़ा था। उस पीपल के चबूतरे के पास सभामण्डप के प्रवेश-द्वार के निकट लकड़ी की तिपाई पर बड़ा घण्टा दृष्टि आकर्षित कर रहा था। निरखते-निरखते माधवराव की दृष्टि बायें हाथ पर श्वेतशुभ्र पारिजात पर पड़ी। पारिजात के नीचे पुष्प बिछे हुए थे। बीच-बीच में उन फूलों में ऊपर से गिरनेवाले फूल और मिल रहे थे। माधवराव मन्त्रमुग्ध-से उस ओर गये। हलके हाथों से उन्होंने कुछ फूल चुने और वे पन्तजी से बोले, "पुणे से लोग आज आ जायेंगे, है न ?"

"आशा है आज सन्ध्यासमय तक उपस्थित हो जायेंगे।"

"चलिए, हम लोग दर्शन करें।"

माधवराव ने सभामण्डप के बाहर अपने जूते उतारे और वे अन्दर गये। माधवराव ने ही वह सभामण्डप तथा चारों ओर के बरामदे बनवाये थे। पुराने फ़व्वारे के हौद की ओर उन्होंने दृष्टि डाली और वे मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। गर्भगृह में जाते ही उनकी दृष्टि श्री गजानन पर स्थिर हो गयी।

श्री गजानन की बैठी हुई मूर्ति को माधवराव देख रहे थे। उन्होंने अत्यन्त भक्तिभाव से हाथ में लगे पुष्प गजानन को अर्पण किये। पुजारी ने चरणामृत दिया, वह ग्रहण किया और माधवराव प्रदक्षिणा करने के लिए चलने लगे। उन्होंने दो प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं; परन्तु इतने से ही वे थक गये। इच्छाराम पन्त आगे बढ़े। उनके कन्धे का आधार लेकर माधवराव ने तीसरी प्रदक्षिणा जैसे-तैसे पूरी की और वे गजानन के सामने खड़े हो गये। उन्होंने घुटने टेके। अज्ञात व्यथा से अंकित माधवराव के चेहरे पर समइयों का प्रकाश पड़ रहा था। काँपते हाथों से उन्होंने गजानन को वन्दन किया। पीछे मुड़कर वे बोले,

"इच्छाराम पन्त—"

उस पुकार को सुनते ही पीछे खड़े हुए पन्त ने हाथ में लगी आयताकार पेटिका आगे बढ़ा दी। काँपते हाथों से माधवराव ने वह पेटिका खोली। उस पेटिका में नीले मखमली अस्तर पर बड़े-बड़े तेजस्वी मोतियों का तुर्रा था। तुर्रे की चौफुली में लगे हुए हीरे प्रकाश परावर्तित कर रहे थे। माधवराव ने तुर्रा उठाया और श्री गजानन के थाल में रख दिया। देव पर केन्द्रित दृष्टि न हटाते हुए उन्होंने फिर हाथ जोड़े और मस्तक धरती पर टेक दिया। जब उन्होंने सिर उठाया, तब उनकी आँखें भरी हुई थीं। भारी आवाज में वे बोले,

"गजानन, अब तुम्हीं समर्थ हो। अब मैं थक गया हूँ। तुम्हारे सिवाय अब कोई आश्रय-स्थान नहीं है। तुम्हारे आशीर्वाद से तुंगभद्रा से अटक तक फिर राज्य खड़ा हो गया है; परन्तु अभी वह स्थिर नहीं हुआ है। राज्योपभोग के लिए नहीं, परन्तु राज्य के लिए और चार वर्ष मिल जायें तो अधूरे स्वप्न पूरे हो जायें और राज्य स्थिर हो सकेगा। वह अब तुम्हारे हाथ में है। तुमने ही हमारे मस्तक पर यश का जो तुर्रा चढ़ाया था, वही तुर्रा आज तुम्हारे चरणों में रख दिया है। जो यश मिला, जो कुछ हाथों से हुआ, वह सब तुम्हारा ही है। जो होनेवाला है, वह भी अपनी ही इच्छा से होने दो।"

माधवराव जैसे-तैसे उठे। इच्छाराम पन्त की सहायता से वे मन्दिर से बाहर आये। नक्कारखाने के दरवाजे में सिपाही खड़े थे। मुजरे किये जा रहे थे। माधवराव ने भवन में प्रवेश किया। सभाकक्ष में खड़े हुए गाँव के कामगार लोगों के मुजरे स्वीकार कर माधवराव अन्दर मुड़े।

चारों ओर से घिरा हुआ भवन का सहन। उस सहन में बनी हुई इमारतों को, दुमंजिली अटारियों को माधवराव देख रहे थे। रास्ते से जाते समय स्थान-स्थान पर दिखाई देनेवाली फूलों की क्यारियाँ देखकर उनके पैर ठिठक रहे थे। उसी समय सामने से श्रीपति पास आता हुआ दिखाई दिया। श्रीपति के पास आने पर माधवराव बोले,

"श्रीपति।"

"जी।"

"सोने की व्यवस्था हो गयी ?"

"जी।"

"चल।" कहते हुए माधवराव ने पैर उठाये। श्रीपति आगे जा रहा था। जहाँ-तहाँ सेवक खड़े थे। माधवराव अटारी पर गये। खिड़की से आनेवाले प्रातःकालीन शीतल पवन से उन्हें अच्छा लगा। पलंग पर उनकी शय्या बिछी हुई थी। माधवराव ने कनटोपी उतारी। शाल और देह पर से गरम बण्डी उतारकर वे पलंग पर सो गये। अचक-पचक हाथों से श्रीपति ने उनकी देह पर आवरण चढ़ा दिया। इच्छाराम पन्त समीप ही खड़े थे। उनसे माधवराव बोले,

"पन्त, हम ज़रा लेटते हैं।"

"जो आज्ञा।" कहकर पन्त बाहर गये और कुछ क्षणों में ही माधवराव को नींद आ गयी। माधवराव सो गये।

दोपहर के समय माधवराव भोजन समाप्त कर पलंग पर बैठे थे। देह में ज्वर नहीं था, फिर भी दुर्बलता अत्यधिक थी। उसी समय पूर्व की ओर की खिड़की से कोलाहल अन्दर आया। माधवराव की भ्रुकुटियाँ वक्र हो गयीं। उन्होंने नीचे क़ालीन पर बैठे हुए इच्छाराम पन्त की ओर देखा। इच्छाराम पन्त उठकर खिड़की की ओर गये। कुछ न कहकर वे लौटे। माधवराव ने पूछा,

"क्या है ?"

इच्छाराम पन्त अत्यन्त ही विनम्र आवाज़ में बोले,

"कुछ नहीं श्रीमन्त ! छोटे-छोटे खेमे लगाने का काम चल रहा है।"

"किनका ?"

इच्छाराम पन्त अकारण खाँसे और बोले, "मैं समझता हूँ कि झाड़ू लगाने-वाले, सेवक, ढालबन्द सिपाही आदि लोग उपस्थित हो गये हैं।"

"किसकी अनुमति से उपस्थित हुए हैं ? रात-बिरात छावनी छोड़कर घूमते हैं। इनको छोड़ दिया जायेगा, यह इन्होंने कैसे समझ लिया ?"

माधवराव पलंग से उतर चुके थे। उनका क्रोध बढ़ गया था। उठकर झटाट उन्होंने अपनी बेंत की छड़ी ली और वे जीने से उतरने लगे। पीछे-पीछे जाने का साहस इच्छाराम पन्त में नहीं था। भयाकुल हृदय से वे खिड़की के पास खड़े थे। माधवराव ने ढालबन्द सिपाहियों को हाज़िर करने की आज्ञा दी—यह उन्होंने सुना। थोड़ी ही देर में भवन के प्रवेश-द्वार से सहमते-सहमते ढालबन्द सिपाही अन्दर आते हुए दिखाई दिये। उसी समय अटारी के नीचे से माधवराव चौक में जाते हुए दिखाई दिये। पीछे-पीछे श्रीपति था। सामने आते

ही सिपाहियों ने पैर पकड़ने का प्रयत्न किया। माधवराव का छड़ीवाला हाथ ऊपर जाता हुआ दिखाई दिया। उसी समय इच्छाराम पन्त का ध्यान थेऊर से बाहर पठार की ओर गया। शाही शिविका त्वरित गति से थेऊर की ओर आ रही थी। दुकूल सँवारते हुए इच्छाराम पन्त नीचे दौड़े। हाँफते हुए वे माधवराव के पास पहुँचे। माधवराव भानरहित होकर सामने झुके हुए सिपाही पर छड़ी के प्रहार कर रहे थे। सारी शक्ति लगाकर इच्छाराम पन्त ने ऊपर उठा हुआ माधवराव का छड़ीवाला हाथ पकड़ लिया। माधवराव झट से मुड़े। सन्ताप से आरक्त नेत्रों को पन्त पर केन्द्रित करते हुए वे बोले, "पन्त! हमारा हाथ पकड़ने की आपकी हिम्मत!"

पकड़े हुए हाथ को छोड़ते हुए पन्त बोले, "श्रीमन्त! क्षमा करें; परन्तु जिन हाथों को दिल्ली के बादशाह, हैदराबाद के निजाम—इनपर टूट पड़ना चाहिए; उन हाथों का साधारण लोगों पर पड़ना उचित नहीं दिखाई देगा, इसलिए हाथ पकड़ने का साहस किया। शाही शिविका थेऊर की ओर आ रही है, यह भी बताना था। अपराध हो गया हो तो उसको क्षमा किया जाये।"

क्षण-भर इच्छाराम पन्त का चेहरा निरखकर माधवराव ने छड़ी फेंक दी। उनके चेहरे पर मुसकराहट छा गयी। वे बोले,

"पन्त, सचमुच शाही शिविका आ रही है?"

"जी हाँ, श्रीमन्त! धूप तेज़ हो रही है। आप चलें।"

"चलिए" कहकर माधवराव चलने लगे। दूसरी मंजिल पर आते ही उन्होंने खिड़की से दृष्टि डाली। सचमुच ही शाही शिविका द्रुत गति से मुख्य द्वार से गाँव में प्रवेश कर रही थी।

शिविका नक़्क़ारखाने के आगे के चौक में आयी। मार खाये हुए ढालबन्ध सिपाही आगे के दरवाज़े के पास खड़े-खड़े कराह रहे थे। क्षण-भर को शिविका का परदा एक ओर हटा। दुःख भूलकर सिपाही तनकर खड़े हो गये। दूसरे ही क्षण उनकी पीठें मुजरे के लिए झुक गयीं। परदा पूर्ववत् हो गया और शिविका जनाने दरवाज़े की ओर मुड़ गयी।

जनाने दरवाज़े के पहरेदार एक ओर हट गये। भवन में से सुहागिनें दौड़ीं। शिविका के स्वागत के लिए इच्छाराम पन्त दरवाज़े के पास खड़े थे। शिविका के पीछे-पीछे आया हुआ अश्वपथक नक़्क़ारखाने के पास रुक गया था। वृद्ध रामजी जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ शिविका के पास आया। शिविका से रमाबाई उतर रही थीं। रमाबाई ने उतरते ही इच्छाराम पन्त की ओर दृष्टि

डाली। मुजरा करके पन्त आगे बढ़े।

"पन्त, नक्कारखाने के पास गड़बड़ कैसी है?" रमाबाई ने पूछा।

"बाई साहिबा, श्रीमन्त रात में ही आ गये। ढालबन्ध सिपाही शहर में गये थे, उनको वहीं पर रुकना पड़ा। प्रातःकाल वे उपस्थित हुए। श्रीमन्त गुस्सा हो गये थे।"

"फिर..."

"क्रोध के आवेश में उन सिपाहियों को छड़ियाँ खानी पड़ीं। भाग्य उनका कि आपकी शिबिका उसी समय मेरी दृष्टि में आ गयी। थोड़े से ही काम चल गया।"

"फिर इस समय कहाँ हैं?"

"ऊपरवाले महल में हैं!"

रमाबाई महल की ओर जाने लगीं। पीछे-पीछे मैना और अन्य सुहागिनें चल रही थीं। चलते-चलते रमाबाई मुड़ीं और मैना से बोलीं, "मैना, सामान आयेगा, तू उसको लगा लेना। कोठी की क्या दशा है, यह देख तब तक मैं आती हूँ।"

"जी" कहकर बीच के चौक से मैना मुड़ गयी।

जिस समय रमाबाई महल में गयीं, माधवराव पलंग पर लेटे हुए थे। रमाबाई समीप गयी। माधवराव का चेहरा प्रसन्न दिखाई दे रहा था। वे हँस-कर बोले,

"इतनी शीघ्रता से आ गयीं!"

"यह मैं भी पूछने आ रही थी।" रमाबाई हँसकर बोलीं, "प्रातःकाल मुझे पता चला कि आप डेरा उठवाकर थेऊर आ गये हैं।"

माधवराव उठकर बैठते हुए बोले, "हमने आपको सूचित नहीं किया, इस-लिए गुस्सा हैं आप?"

नकारार्थी सिर हिलाती हुई रमाबाई बोलीं, "नहीं, इसका अब मुझको अभ्यास हो गया है।"

माधवराव ने एक दीर्घ उच्छ्वास छोड़ा और वे बोले, "हमने पुणे छोड़ दिया है, यह जैसे ही मालूम पड़ा होगा, वैसे ही आप शीघ्रता से चल दी होंगी। मनस्ताप भी बहुत हुआ होगा। हम यह जानते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में फिर बात करेंगे।"

"आपका..."

"ठीक है। आज ज्वर नहीं है। बहुत हलका लग रहा है।"

रमाबाई हँसकर बोलीं, "इसीलिए शायद वे ढालबन्ध सिपाही निर-

गये थे..."

"वाह ऽ !" माधवराव हँसकर बोले, "लगता है कि इतने में ही हमारी शिकायतें भी कानों में पहुँच गयी हैं ?"

"मैं अभी आती हूँ।" विषय बदलती हुई रमाबाई बोलीं।

"ठहरिए !" माधवराव उठे। खिड़की के पास जाते हुए वे बोले,

"इधर आइए !"

रमाबाई खिड़की की ओर गयीं। खिड़की से भवन का चौक दिखाई दे रहा था। स्थान-स्थान पर क्यारियों में फूल खिले थे। उसको दिखाते हुए माधव-राव बोले, "देखा ?"

भवन में प्रवेश करते समय वह परिवर्तन रमाबाई के ध्यान में नहीं आया था। वे एकदम बोलीं, "अरी दैया ! मेरे ध्यान में नहीं आया था। सचमुच ही सुन्दर बाग़ लग गया है।"

"आपको याद है ? अभिषेक के लिए जब हम यहाँ आये थे, तब आपने हमको बाग़ के सम्बन्ध में सूचित किया था। उस समय हमने तुमको वचन दिया था। आप जब मन्दिर में जायेंगी, तब वहाँ भी आपको खिलखिलाता बग़ीचा दिखाई देगा। आज प्रातःकाल हमने बाग़ देखा, तब हमको तुम्हारी याद आयी। उसमें भी जब प्रातःकाल खिला हुआ पारिजात देखा, तब तो दृष्टि के सामने आप खड़ी हो गयीं।"

"भला वह किस लिए ?" रमाबाई ने पूछा।

रमाबाई के कन्धे पर हाथ रखकर उनको निरखते हुए माधवराव बोले, "एक बार हम दरबार समाप्त कर माँ साहिबा के महल में गये थे। उस समय आप सिर पर अंचल रखे खड़ी थीं। पहले तो मैंने तुमको पहचाना तक नहीं था। तुम्हारे मस्तक तक पहुँचे हुए साड़ी के जरी के सितारे महल के प्रकाश में जगमगा रहे थे। आज प्रातःकाल के धूमिल प्रकाश में पारिजात हमको ऐसा ही लगा।"

रमाबाई के चेहरे पर प्रसन्न हास्य था। माधवराव उसको देख रहे थे। अनजाने ही रमाबाई के दोनों कन्धों पर रखे हुए हाथ उठा लिये गये। उन हाथों से वे रमाबाई का मुख सहलानेवाले थे कि पीछे सरकती हुई रमाबाई बोलीं,

"जाती हूँ मैं ! मैना प्रतीक्षा कर रही होगी। अचानक आप इधर चले आये। कोठी की क्या दशा है, यह एक बार मुझको देख लेना चाहिए।"

"जाइए न, मैं कब मना करता हूँ !"

उसी समय माधवराव के पास जाकर रमाबाई ने पूछा, "ग़ुस्सा हो

गये ?"

"नहीं, सचमुच नहीं।" माधवराव के चेहरे पर हँसी देखते ही रमाबाई के चेहरे पर हँसी छा गयी। वे मुड़ीं और तत्क्षण महल से बाहर चली गयीं।

दोपहर को नाना फड़णीस पुणे से आये। माधवराव ने उनका मुजरा स्वीकार करके पूछा, "नाना! क्या वार्ता है?"

"सब प्रकार से क्षेम है। आप अत्यन्त शीघ्रता से चले आये इसलिए मन शंकित हो गया।"

"अच्छा! नारायणराव कैसे हैं? कार्यालय में आते हैं न?"

"आते हैं! परन्तु श्रीमन्त, अभी उनका मन कार्यालय में लगता नहीं है। वे अलसा जाते हैं।"

"स्वाभाविक है। परन्तु उस ओर ध्यान देने से काम नहीं चलेगा। उनको कार्यालय में बैठना ही चाहिए। हम भी उनको लिखेंगे। बहुत बड़े उत्तरदायित्व का उनको सामना करना है। जबतक हम जीवित हैं, तबतक उनको राज्य-कार्य-भार वहन करने में समर्थ यदि हम देख सकें, तो इससे बढ़कर आनन्द की बात दूसरी नहीं हो सकती। यह सुख हमको प्राप्त कराना आपके हाथ में है।"

"इतना निराश होने का कोई कारण नहीं है, श्रीमन्त! रावसाहब जरूर तैयार होंगे। स्वभाव थोड़ा-सा जिद्दी और क्रोधी जरूर है, परन्तु...."

"यही तो कहते हैं हम। रावसाहब के सम्बन्ध में हमको जो भय लगता है, वह यही है। यही हठी स्वभाव और क्रोध कदाचित् उनके लिए बड़ा अवरोध बनेगा; इस क्रोध का साथ देनेवाली धैर्यशाली वृत्ति उनके पास नहीं है। काका साहब क्या कहते हैं?"

"आजकल दर्शन नहीं होते हैं।"

"अर्थात्?"

"मुझसे गुस्सा हो गये हैं वे। आज्ञा दी है कि दर्शन करने मत आओ।"

"परन्तु काकाजी पर दृष्टि है न?"

"उसकी चिन्ता न करें।"

"इसके साथ ही काका की किसी प्रकार की अवहेलना या उपेक्षा न हो, इस ओर तुम स्वयं ध्यान रखना!"

"जो आज्ञा।"

"आप जायें। यहाँ की चिन्ता न करें; परन्तु किसी भी कारणवश नारायणराव को आँखों से ओझल मत करना। पुणे छोड़कर कहीं भी मत जाना।"

नाना फड़णीस चले गये। पठार पर से पाँच-छह सवारों के साथ जाते हुए

नाना जबतक ओझल नहीं हो गये तबतक माधवराव देखते रहे।

सायंसमय माधवराव बाग के सभाकक्ष में जाकर बैठ गये। इच्छाराम पन्त, मोरोबा और गाँव का अधिकारीवर्ग सभाकक्ष में उपस्थित था। माधवराव प्रसन्न मन से गाँव की पूछताछ कर रहे थे।

रात्रि का भोजन होने पर श्रीमन्त अपने महल में आये। बैठकी पर मसनद के सहारे वे विचारमग्न बैठे थे। समइयाँ जल रही थीं। धूपदानियों से धुआँ बढ़ना यद्यपि बन्द हो गया था, तथापि महल में कन्नौजी धूप की गन्ध महक रही थी। रमाबाई महल में आयीं। कंकण की आवाज़ सुनकर माधवराव सचेत हुए। उन्होंने देखा। रमाबाई बीड़े का थाल लेकर सामने खड़ी थीं।

"बैठिए न।"

रमाबाई ग़लीचे पर बैठ गयीं। थाल में दो बीड़े थे। उन बीड़ों की ओर देखते हुए माधवराव बोले,

"याद है?"

एकदम लजाकर रमाबाई ने मुख मोड़ लिया। माधवराव बोले,

"सचमुच रमा! मनुष्य को कभी बड़ा होना ही नहीं चाहिए। जिस समय हमने कहा था कि बीड़ा लेंगे ही नहीं, उस समय तुम्हारे चेहरे पर आश्चर्य छा गया था। दो बीड़े आने के बाद जो लज्जा प्रकट हुई थी, जो हँसी विलसित हुई थी, उसका सौन्दर्य कुछ निराला ही था। वह हमारे मन से जाता ही नहीं है।"

"फिर अब मुझमें क्या परिवर्तन हो गया है?"

माधवराव एकदम गम्भीर हो गये। वे बोले, "रमा, वृक्ष पर खिले हुए फूल का सौन्दर्य नितान्त निराला होता है। उसकी बराबरी केशों में मुरझाया हुआ फूल कैसे कर सकता है? प्रौढ़ता की यही सबसे बड़ी पराजय होती है।"

"बीड़ा लीजिए न।"

"रहने दो।"

"क्यों?"

"अब पान सहन नहीं होता है। तत्क्षण सुपारी लगती है। खाँसी आती है।"

"तो रहने दीजिए।"

"बीड़ा नहीं लिया इसलिए नाराज़ हो गयी हो?"

"नहीं जी!" कहती हुई रमाबाई उठीं और खिड़की के पास जाकर खड़ी

हो गयी।

"आपने ही तो कहा था!"

"क्या?" मुड़कर देखते हुए रमाबाई ने पूछा।

"कि होंठ रँगने के लिए बोड़ों की जरूरत नहीं होती है।"

"जाइए!" कहती हुई रमाबाई ने खिड़की पर सिर टेक दिया। वे बाहर देख रही थीं।

"रमा, क्या देख रही हो?" माधवराव उठते हुए बोले।

"यह देखा? आकाश तारों से किस प्रकार भरा हुआ है। कितना सुन्दर लग रहा है!"

माधवराव रमाबाई के पीछे जाकर खड़े हो गये। रमाबाई को यह पता चल गया कि वे पीछे खड़े हैं, किन्तु उन्होंने मुड़कर नहीं देखा। माधवराव ने रमाबाई के दोनों कन्धों पर हाथ रखे। अनजाने ही रमाबाई का सिर माधवराव की छाती पर टिक गया। आकाश निरभ्र था। लक्ष-लक्ष तारे आकाश में चमचमा रहे थे। माधवराव बोले,

"रमा, पूर्णमासी की रात से मस्त हो जानेवाले बहुत ही थोड़े लोग अमावस्या की रात्रि का सौन्दर्य देख पाते हैं। जिनको यह दृष्टि प्राप्त हो जाती है उनको सुख-दुःख का भय नहीं रहता है। दोनों ही अवसरों के सौन्दर्य को हृदय पर अंकित करने के लिए वे तैयार रहते हैं।"

अनजाने ही रमाबाई के मुख से दीर्घ निःश्वास बाहर निकला। खिड़की से शीतल पवन अन्दर आ रहा था। दोनों आकाश के शान्त सौन्दर्य को निरख रहे थे।

माधवराव जग गये। उन्होंने देखा कि बाहर पर्याप्त प्रकाश हो चुका था। उनको विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सिर उठाकर देखा। उसी समय खिड़की के पास खड़ी हुई रमाबाई की ओर उनका ध्यान गया। निश्चल खड़ी हुई रमाबाई की ओर देखते हुए माधवराव कुछ देर तक वैसे ही लेटे रहे। उसी समय शयन-गृह में मैना आ गयी। उसके कंकणों की आवाज से सचेत होकर रमाबाई मुड़ीं। मैना कुछ कहने ही वाली थी कि रमाबाई ने अपने मुँह पर उँगली रखी और माधवराव की ओर देखा। माधवराव खुले नेत्रों से रमाबाई की ओर देख रहे थे। उनके चेहरे पर मुसकराहट थी। मैना का ध्यान माधवराव की ओर गया। माधवराव जग रहे हैं, यह ध्यान में आते ही वह घबड़ा गयी। माधवराव सो रहे हैं, यह धारणा बनाकर वह आयी थी। जल्दी-जल्दी उसने पैर छुए और

वह शयनगृह से बाहर चली गयी। रमाबाई माधवराव के समीप जाती हुई बोलीं,

"आप कब जग गये ?"

"अभी-अभी।"

"तो फिर मुझको पुकारा क्यों नहीं ?"

"देख रहा था।" माधवराव उठते हुए बोले।

"क्या ?"

"आप कैसी दिखाई देती हैं—यह !"

"क्या मतलब ?" रमाबाई ने पूछा।

"हम अपने रोग के कारण क्षीण हो रहे हैं; परन्तु आप हमारी चिन्ता और उपवास तथा अनुष्ठानों से सूखती जा रही हैं, यह प्रतीति हमको आज बड़ी तीव्रता से हुई।"

"जाइए। आप भी जानें क्या-क्या सोचते रहते हैं !" रमाबाई बोलीं, "मुझको क्या हो गया है ?" रमाबाई माधवराव की ओर देख रही थीं। कई दिनों बाद इतने प्रसन्न जगे हुए वे देख रही थीं। इधर इतनी शान्ति से सोते हुए रमाबाई ने उनको देखा नहीं था।

माधवराव का ध्यान रमाबाई के हाथ की ओर गया। उन्होंने पूछा,

"क्या लायी हैं ?"

रमाबाई हँसती हुई आगे आयीं। उन्होंने अंजलि आगे बढ़ा दी। उनके हाथों में पारिजात के पुष्प थे। मन्द सुगन्ध महक रही थी। वे बोलीं,

"मन्दिर में गयी थी। आते समय पारिजात के फूल पड़े हुए दिखाई दिये। आपके लिए ये फूल ले आयी।"

खिड़की से आयी हुई सूर्य-किरणों की ओर देखकर माधवराव ने रमाबाई के हाथ अपने हाथों में ले लिये। झुककर उन पुष्पों की गन्ध सूँघकर वे बोले,

"रमा ! जब यह देखता हूँ तब तुम्हारे हाथों की सामर्थ्य देखकर मैं चकित हो जाता हूँ।"

"क्यों ?" रमाबाई ने पूछा।

"देखा, ये फूल कितने ताजे बने हुए हैं ! पारिजात स्वर्गीय कुसुम है ! एक अद्वितीय प्रेम के लिए पृथ्वी पर आया है। इस पुष्प को भी एक शाप मिला हुआ है।"

"कैसा ?"

"वह शाप यह है कि अत्यन्त निर्मल प्रेम के बिना ये फूल ताजे नहीं रहते हैं। स्वयं देवों के सहवास में भी जिनकी ताज़गी टिक नहीं पाती है, ऐसे ये

पारिजात के फूल सूर्य के इतने चढ़ आने पर भी तुम्हारे हाथों में कैसे हँस रहे हैं, देखो तो ! यह देखकर आश्चर्य न हो तो और क्या हो ?"

"जाइए, आप तो बस बेकार की बातें—" रमाबाई दूसरी ओर देखती हुई बोलीं ।

माधवराव हँसते हुए पलंग से उतरे । उनको हाथ का सहारा देने के लिए रमाबाई आगे बढ़ीं । माधवराव बिना आधार के उतर पड़े । वे बोले,

"आज उठने में बहुत देर हो गयी । नगाड़े की आवाज से भी आँख नहीं खुली ।"

"रात बहुत कष्ट हुआ था । फिर कहीं जाकर आपकी आँख लगी थी । नींद न टूट जाये इसलिए...."

"नगाड़ा बन्द करवा दिया न ?" माधवराव हँसकर बोले, "बहुत अच्छा किया । अब वास्तव में हम श्रीमन्त शोभा देते हैं । प्रभु की नौबत और आरती तो बन्द नहीं की है न ?"

"छि ! इतना क्या मैं जानती नहीं ?"

"नीचे इच्छाराम पन्त, नाना, मामा आदि लोग आ गये होंगे न ?"

"हाँ ।"

"ओह ! आज देवालय में जाने में देर हो जायेगी । चलो ।"

माधवराव शयनगृह से बाहर निकले । पीछे-पीछे रमाबाई चल रही थीं । बहुत धीरे-धीरे एक-एक पग रखते हुए माधवराव जा रहे थे । बायें हाथ पर श्रीपति चल रहा था । दायीं ओर रमाबाई चल रही थीं । जब-तब माधवराव श्रीपति के कन्धे पर हाथ रख लेते थे । उसका सहारा ले लेते थे ।

स्नान समाप्त कर, कपड़े पहनकर माधवराव नीचे बैठक में आये । इच्छाराम पन्त डेरे, मोरोबा आदि लोग वहाँ खड़े थे । उनके मुजरों को स्वीकार करके माधवराव मंचक पर बैठ गये । श्रीमन्त की प्रसन्न मुद्रा देखकर सबको अच्छा लगा । मोरोबाजी ने पूछा,

"नींद आयी थी ?"

"हाँ !" माधवराव ने प्रसन्नता से कहा ।

"थेऊर के वायु-परिवर्तन से श्रीमन्त को जरूर लाभ होगा । अब वर्षा भी समाप्त हो गयी है ।"

"मोरोबा !" माधवराव उच्छ्वास छोड़कर बोले, "लाभ होगा तो वह वायु-परिवर्तन से नहीं, बल्कि गजानन की कृपा से । अहंकारी वैद्यों ने, फिरंगी डॉक्टरों ने, सबने ही जब अपयश पाया तभी हमने निश्चय कर लिया और यहाँ आये । औषध-पानी सब छोड़कर हम प्रभु के आगे जली धूप की राख के सहारे

रहे। अब यदि ठीक होना होगा तो उन्हीं की कृपा से होंगे। चलिए, दर्शन कर आवें।"

माधवराव उठे। बैठक के बरामदे में आते ही श्रीपति ने जूते आगे बढ़ा दिये। जूते पहनकर माधवरावजी नक्कारखाने से बाहर निकले। नक्कारखाने के सामने शिवपंचायतन देवालय के सम्मुख दो व्यक्ति खड़े थे। माधवराव के बाहर आते ही उन्होंने मुजरे किये। उनमें से एक व्यक्ति आगे आया। सिर पर केसरिया पगड़ी, देह पर श्वेत स्वच्छ कुरता और चूड़ीदार पाजामा धारण किये हुए; गौर वर्ण का, कंजी भेदक आँखोंवाला तथा ऊपर की ओर उठी हुई मूँछोंवाला वह व्यक्ति धीरे-धीरे माधवराव के सम्मुख आया। माधवराव ने पूछा, "कौन ?"

बड़े आदर से वह व्यक्ति बोला, "हुजूर, मैं मोरेश्वर।"

"मोरेश्वर!" क्षण-भर विचार करते हुए माधवराव खड़े रहे। मोरेश्वर कुछ कहने जा रहा था कि माधवराव बोले, "ठहरो!" और दूसरे ही क्षण वे बोले,

"हाँ! मोरेश्वर! आप हमारे दरबार में गायक थे न ?"

"जी।" मोरेश्वर आनन्द से बोला।

"बहुत वर्ष पहले की बात है, है न ? आप प्रातःकाल गा रहे थे। तब से आपसे फिर भेंट हुई ही नहीं।"

"जी! सच है। आप कर्नाटक में गये और मैं पुणे छोड़कर उत्तर में गया। अब तक वहीं था।"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले, "आपने राजी-खाशी से पुणे नहीं छोड़ा होगा। उसका भी कोई प्रबल कारण उस समय रहा होगा। वह कारण हम तुमसे नहीं पूछते हैं। पुराने दुःखद प्रसंगों को प्रकाश में लाकर उनको सहन करने की शक्ति हममें नहीं रही है। अब आप सब प्रकार से ठीक हैं न ?"

"जी! आपके आशीर्वाद से कोई कमी नहीं है। जयपुर के दरबार में नौकर हूँ।"

"अच्छा! गुणों के पारखी हैं वे लोग, आपके आने का प्रयोजन ?"

"सरकार से पता चला था कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आपके दर्शन करने की उत्कट इच्छा हुई, इसलिए आया। पुणे में पता चला कि आप यहाँ हैं। इसलिए वहाँ से सीधा यहाँ आया हूँ।"

व्याकुल करनेवाली एक अज्ञात भावना माधवराव के चेहरे पर व्याप्त हो गयी। अकारण उनकी आँखें भर आयीं। इच्छाराम पन्त की ओर मुड़कर वे बोले,

"देखा पन्त ? पूर्वजन्म के ऋणानुबन्ध। इसके अतिरिक्त इसको क्या नाम

होंगे ? ऐसे अवसर देखकर लगता है कि जीवन सफल हो गया। कुछ भी कारण न होने पर, एक प्रसंग की स्मृति के लिए एक मनुष्य इतनी दूर से हमारे स्वास्थ्य की वार्ता सुनकर दौड़ा आता है, यह क्या साधारण बात है ? मोरेश्वर ! ऋणी रहकर जाना हमें स्वीकार नहीं है। परन्तु आप-जैसे लोग मिलने पर, सभी ऋणों से उऋण हुआ जा सकता है, इस बात पर हमें विश्वास नहीं होता है।"

"श्रीमन्त ! आज जो कुछ पा रहा हूँ वह आपके ही आशीर्वाद से है।"

"आप यह समझते हैं, यह आपका बड़प्पन है। मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?"

मोरेश्वर माधवराव की ओर देख रहा था। प्रातःकाल की कोमल किरणों में वह माधवराव का रूप निहार रहा था। रोग के कारण अस्थिपंजर बनी हुई देह पर श्यामता छा गयी थी। उस मूर्ति को मोरेश्वर देख रहा था। अत्यन्त सुन्दर, रूपसम्पन्न, रसिक, तरुणाई की मस्ती में निश्चिन्तता से घूमनेवाली माधवराव की स्वप्निल मूर्ति कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। परिचय मिल रहा था केवल नेत्रों से। उतना ही चिह्न शेष बचा था।

"बोलो मोरेश्वर, जो चाहो मुक्तमन से कह दो।"

मोरेश्वर सचेत हुआ। आँखों में आये हुए जल को पोंछता हुआ वह बोला,

"श्रीमन्त, एक ही इच्छा मन में लेकर मैं इतनी दूर से आया हूँ।"

"बोलो, मोरेश्वर ! वही हम पूछ रहे हैं।"

"श्रीमन्त, आज्ञा हो तो एक बार आपके चरणों में सेवा का अवसर मिले, बस यही इच्छा है।"

माधवराव खिन्नता से हँसे। "मोरेश्वर ! इतनी दीर्घकालीन संगीत-सेवा में तुमने अत्यधिक प्रगति कर ली होगी; परन्तु हम तुम्हारा गाना पहली बार सुनते समय जितने अनभिज्ञ थे, उतने ही आज भी हैं...।"

"परन्तु श्रीमन्त..."

"हम तुम्हें नाराज नहीं करते हैं। हम जरूर गाना सुनेंगे। नाना—"

"जी !" नाना फड़नीस आगे बढ़े।

"मोरेश्वर, भाग्य से कल नागपुरकर भोंसले आ रहे हैं। उनको भी आपका गायन सुनवायेंगे। नाना, जब भोंसले आ जायँ,....रात में गजानन के सम्मुख मोरेश्वर के गायन की बैठक रखिए ! हम बैठक में उपस्थित रहेंगे। ठीक है न, मोरेश्वर !"

मोरेश्वर ने आगे बढ़कर माधवराव के पैर छुए। माधवराव पन्त के कन्धे पर हाथ रखकर मन्दिर की ओर चलने लगे। पीछे-पीछे नाना, बापू और मोरेश्वर आ रहे थे।

रहे। अब यदि ठीक होना होगा तो उसी की कृपा से होंगे। चलिए, दर्शन कर आयें।"

माधवराव उठे। बैठक के बरामदे में आते ही श्रीपति ने जूते आगे बढ़ा दिये। जूते पहनकर माधवरावजी नक्क़ारखाने से बाहर निकले। नक्क़ारखाने के सामने शिवपंचायतन देवालय के सम्मुख दो व्यक्ति खड़े थे। माधवराव के बाहर आते ही उन्होंने मुजरे किये। उनमें से एक व्यक्ति आगे आया। सिर पर केसरिया पगड़ी, देह पर श्वेत स्वच्छ कुरता और चूड़ीदार पाजामा धारण किये हुए; गौर वर्ण का, कंजी भेदक आंखोंवाला तथा ऊपर की ओर उठी हुई मूँछोंवाला वह व्यक्ति धीरे-धीरे माधवराव के सम्मुख आया। माधवराव ने पूछा, "कौन ?"

बड़े आदर से वह व्यक्ति बोला, "हुजूर, मैं मोरेश्वर।"

"मोरेश्वर !" क्षण-भर विचार करते हुए माधवराव खड़े रहे। मोरेश्वर कुछ कहने जा रहा था कि माधवराव बोले, "ठहरो !" और दूसरे ही क्षण वे बोले,

"हाँ ! मोरेश्वर ! आप हमारे दरबार में गायक थे न ?"

"जी।" मोरेश्वर आनन्द से बोला।

"बहुत वर्ष पहले की बात है, है न ? आप प्रातःकाल गा रहे थे। तब से आपसे फिर भेंट हुई ही नहीं।"

"जी ! सच है। आप कर्नाटक में गये और मैं पुणे छोड़कर उत्तर में गया। अब तक वहीं था।"

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले, "आपने राज़ी-बाजी से पुणे नहीं छोड़ा होगा। उसका भी कोई प्रबल कारण उस समय रहा होगा। वह कारण हम तुमसे नहीं पूछते हैं। पुराने दुःखद प्रसंगों को प्रकाश में लाकर उनको सहन करने की शक्ति हममें नहीं रही है। अब आप सब प्रकार से ठीक हैं न ?"

"जी ! आपके आशीर्वाद से कोई कमी नहीं है। जयपुर के दरबार में नौकर हूँ।"

"अच्छा ! गुणों के पारखी हैं वे लोग, आपके आने का प्रयोजन ?"

"सरकार से पता चला था कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आपके दर्शन करने की उत्कट इच्छा हुई, इसलिए आया। पुणे में पता चला कि आप यहाँ हैं। इसलिए वहाँ से सीधा यहाँ आया हूँ।"

व्याकुल करनेवाली एक अज्ञात भावना माधवराव के चेहरे पर व्याप्त हो गयी। अकारण उनकी आँखें भर आयीं। इच्छाराम पन्त की ओर मुड़कर वे बोले,

"देखा पन्त ? पूर्वजन्म के ऋणानुबन्ध। इसके अतिरिक्त इसको क्या नाम

होगे ? ऐसे अवसर देखकर लगता है कि जीवन सफल हो गया। कुछ भी कारण न होने पर, एक प्रसंग की स्मृति के लिए एक मनुष्य इतनी दूर से हमारे स्वास्थ्य की वार्ता सुनकर दौड़ा आता है, यह क्या साधारण बात है ? मोरेश्वर ! ऋणी रहकर जाना हमें स्वीकार नहीं है। परन्तु आप-जैसे लोग मिलने पर, सभी ऋणों से उऋण हुआ जा सकता है, इस बात पर हमें विश्वास नहीं होता है।"

"श्रीमन्त ! आज जो कुछ पा रहा हूँ वह आपके ही आशीर्वाद से है।"

"आप यह समझते हैं, यह आपका बड़प्पन है। मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?"

मोरेश्वर माधवराव की ओर देख रहा था। प्रातःकाल की कोमल किरणों में वह माधवराव का रूप निहार रहा था। रोग के कारण अस्थिपंजर बनी हुई देह पर श्यामता छा गयी थी। उस मूर्ति को मोरेश्वर देख रहा था। अत्यन्त सुन्दर, रूपसम्पन्न, रसिक, तरुणाई की मस्ती में निश्चिन्तता से घूमनेवाली माधवराव की स्वप्निल मूर्ति कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। परिचय मिल रहा था केवल नेत्रों से। उतना ही चिह्न शेष बचा था।

"बोलो मोरेश्वर, जो चाहो मुक्तमन से कह दो।"

मोरेश्वर सचेत हुआ। आँखों में आये हुए जल को पोंछता हुआ वह बोला, "श्रीमन्त, एक ही इच्छा मन में लेकर मैं इतनी दूर से आया हूँ।"

"बोलो, मोरेश्वर ! वही हम पूछ रहे हैं।"

"श्रीमन्त, आज्ञा हो तो एक बार आपके चरणों में सेवा का अवसर मिले, बस यही इच्छा है।"

माधवराव खिन्नता से हँसे। "मोरेश्वर ! इतनी दीर्घकालीन संगीत-सेवा में तुमने अत्यधिक प्रगति कर ली होगी; परन्तु हम तुम्हारा गाना पहली बार सुनते समय जितने अनभिज्ञ थे, उतने ही आज भी हैं...।"

"परन्तु श्रीमन्त..."

"हम तुम्हें नाराज नहीं करते हैं। हम जरूर गाना सुनेंगे। नाना—"

"जी !" नाना फड़नीस आगे बढ़े।

"मोरेश्वर, भाग्य से कल नागपुरकर भोंसले आ रहे हैं। उनको भी आपका गायन सुनवायेंगे। नाना, जब भोंसले आ जायँ,....रात में गजानन के सम्मुख मोरेश्वर के गायन की बैठक रखिए ! हम बैठक में उपस्थित रहेंगे। ठीक है न, मोरेश्वर !"

मोरेश्वर ने आगे बढ़कर माधवराव के पैर छुए। माधवराव पन्त के कन्धे पर हाथ रखकर मन्दिर की ओर चलने लगे। पीछे-पीछे नाना, बापू और मोरेश्वर जा रहे थे।

स्वामी

बैठक में त्र्यम्बक मामा, रघुनाथराव, श्रीपतराव, कृष्णराव काले, पाटकर, दरेकर आदि नीतिज्ञ जन उपस्थित हुए। घोड़ों की टापों की आवाजों से थेऊर गूँज रहा था। त्र्यम्बकराव मामा के आगमन की सूचना देने के लिए नाना जल्दी-जल्दी माधवराव के ऊपर के शयनगृह की ओर गये। श्रीपति द्वार पर खड़ा था।

"श्रीपति!"

"जी!"

"श्रीमन्त सो गये?"

"नहीं। जग रहे हैं। सूचना देता हूँ।"

"और कौन है?"

"कोई नहीं।"

"ठहरो, तो मैं ही जाता हूँ।" कहते हुए नाना आगे बढ़े। उन्होंने महल में पैर रखा। माधवराव खिड़की के पास खड़े थे। वे पूर्वी पठार पर सैनिकों की हलचल देख रहे थे। पीछे न देखते हुए वे बोले,

"क्या है नाना?"

"पेठे, पाटणकर, पटवर्धन—ये लोग अभी-अभी उपस्थित हुए हैं।"

"अच्छा! वह हम देख ही रहे हैं। चलिए, हम अभी आ रहे हैं।" माधवराव बोले।

जैसे ही माधवराव सभाकक्ष में आये, सब खड़े हो गये। मुजरे हुए। सबकी दृष्टियाँ माधवराव पर केन्द्रित थीं। माधवराव में जो परिवर्तन हुआ था, उसकी उन्होंने स्वप्न में भी अपेक्षा नहीं की थी।

माधवराव ने बैठकी पर बैठते हुए पूछा,

"क्यों मामा, मुहीम क्या कहती है?"

"श्रीमन्त, क्या बतायें? बारम्बार सारी सूचना आपको देते ही रहे हैं। मोती तालाब की लड़ाई में, काश! आप होते, श्रीमन्त! नीलकण्ठराव ने आहुति देकर हैदर का वास्तविक पराभव वहाँ किया। गोपालराव पटवर्धन पहले गये। बाद में नीलकण्ठराव गये। हैदर की मुहीम की सफलता का आधे से अधिक श्रेय गोपालराव, नीलकण्ठराव, घोरपडे आदि लोगों के कर्तृत्व को है।"

गोपालराव की स्मृति आते ही माधवराव भाव-विह्वल हो गये। वे बोले, "मामा, गोपालराव हमको छोड़ गये हैं, इस बात पर विश्वास ही नहीं होता है। उनकी मृत्यु से हम व्याकुल हो उठे। हरिभाऊ के पास स्वयं जाकर उनको

समझाना हमारा कर्तव्य था; परन्तु इतना करने की शक्ति भी हममें नहीं रही थी। क्या मुँह लेकर हम उनके सामने जाते? जिन्होंने अपनी पूरी पीढ़ी ही मराठा राज्य की सेवा में निछावर कर दी, उनसे हम क्या कहते?"

"श्रीमन्त! जो होना था, वह हो गया। आपके स्वास्थ्य के बारे में सुना। आपका अत्यन्त आवश्यक पत्र पहुँचा इसलिए हैदर से समझौता किया, नहीं तो उसका सफ़ाया करके ही आपके चरणों में उपस्थित होते।"

"मामा" माधवराव बोले, "हमारे स्वास्थ्य के कारण आप मुहीम अधूरी छोड़कर आये, परन्तु आप सब एक होकर इस मुहीम को इस दशा में ले आये, यही क्या कम है? आपने जो यश सम्पादन किया है, उससे हम तृप्त हो गये। शिव छत्रपतिजी के समय जितना प्रदेश था, उतना प्रदेश आपने प्राप्त कर लिया। मराठा राज्य स्थिर हो गया, यह देखने का सौभाग्य हमको मिला। और क्या चाहिए?"

"आपका स्वास्थ्य कैसा है, श्रीमन्त?" मामाजी ने पूछा।

"यह पूछने के लिए और बताने के लिए अब वैद्यराज की आवश्यकता नहीं होती है।" श्रीमन्त हँसकर बोले, "स्वास्थ्य का निर्णय हो रहा है।"

"क्या मतलब? औषध नहीं चल रही है?" मामाजी ने आश्चर्य से पूछा।

"मामा, हम औषध से ठीक होनेवाले नहीं हैं, यह बात ध्यान में आते ही हम थेऊर की शरण में आये। जो भोग लिखे हैं, वे भोगने हैं। जो दिन बचे हैं, वे बिताने हैं। मन को हमने तैयार कर लिया है। आप सब थके हुए आये हैं। विश्राम कीजिए। हम थोड़ा-सा लेटते हैं। सन्ध्यासमय हम मिलेंगे।"

माधवराव को एकदम स्मरण हो आया। वे बोले,

"मामा, कल नागपुरकर भोंसले हमसे मिलने के लिए आ रहे हैं। हम उनके स्वागत को नहीं जा सकेंगे। आप, नाना तथा अन्य सरदार मण्डली—आप लोग जाकर उनकी अगवानी करें। सम्मानपूर्वक उनको ले आयें।"

नागपुरकर भोंसले के स्वागत की विशाल तैयारी शुरू हो गयी थी। थेऊर के राजभवन की खास बैठक में सभा का आयोजन था। धरती पर गद्दे बिछे हुए थे। दोनों ओर से श्वेत शुभ्र चादरें बिछाकर मसनदें लगा दी गयी थीं। मध्यभाग में विशेष महत्त्वपूर्ण लोगों की बैठक थी। विशेष बैठक को गहरी नीली मखमल पर ज़री के कलाबत्तू से सजाकर सँवारा गया था। श्वेतशुभ्र बैठक में वह स्थान बहुत सुन्दर लग रहा था। बैठक के बरामदे में झाड़-फ़ानूस साफ़ करके लगाये जा रहे थे।

सन्ध्या समय भोंसलों के आने की वार्ता आयी। सारी बैठक हण्डों और झाड़-फ़ानूसों के प्रकाश से भरी थी। जानोजी भोंसलों के स्वागत के लिए माधवराव पहले ही बैठक में उपस्थित हो गये। पगड़ी पर शिरपेंच, तुर्रा और क़लगी शोभा दे रही थी। देह पर रेशम और ज़री के कपड़े से बना हुआ कुरता, और पैरों में पाजामा—यह माधवराव का वेश था। कलाइयों में पहुँची (कंकण) तथा गले में मोतियों और नवरत्नों का हार शोभित हो रहा था।

जानोजी भोंसले के आगमन का पता चलते ही माधवराव बैठकी पर से उठे और कक्ष के प्रवेशद्वार तक गये। त्र्यम्बकरावजी के पीछे-पीछे जानोजी भोंसले कक्ष में आये। माधवराव ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक जानोजी भोंसले के मुजरे को स्वीकार किया तथा उनका हाथ पकड़कर अपनी बैठकी पर ले आये। खास बैठकी पर बैठते ही श्रीमन्त के पीछे सेवक खड़े हो गये। दोनों ओर से कुशल-क्षेम की विचारणा हो जाने पर माधवराव का संकेत पाकर सारे माननीय सरदार उठकर बाहर चले गये। कक्ष में केवल पेशवे और भोंसले रह गये थे। भोंसले माधवराव की ओर देख रहे थे। जिन पेशवाओं ने नागपुर पर आक्रमण करके भोंसलों को सोलापुर का समझौता करने के लिए विवश किया था तथा कनकापुर के समझौते में लाखों रुपयों का 'कर' वसूल किया था, उन माधवराव को भोंसले निरख रहे थे। जेजुरी में मिले बहुत दिन नहीं हुए थे; परन्तु इसी बीच माधवराव में जो परिवर्तन हो गया था, उसकी प्रतीति भोंसलों को तीव्रता से हो रही थी।

"कहिए राजन्! हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?" माधवराव ने पूछा।

जानोजी भोंसले बोले, "श्रीमन्त, पता चला कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है। रहा नहीं गया, इसलिए मिलने चला आया।"

"यह आपका बड़प्पन है, राजन्! किन्तु हमारे लिए आपके मन में इतनी आत्मीयता सचमुच ही उत्पन्न हो गयी है क्या?"

"श्रीमन्त!" जानोजी भोंसले छाती पर हाथ रखकर बोले, "यह जानोजी भोंसले सब कुछ करेगा, किन्तु झूठ नहीं कहेगा। श्रीमन्त, नहीं तो मन में आते ही पेशवाओं के विरुद्ध वह इतनी बार खड़ा न हुआ होता।"

"वाह राजन्! आपके इस स्पष्ट कथन से हम खुश हैं। परन्तु यह व्यक्तिगत मित्रता, जो अब हुई है, अधिक समय तक टिक सकेगी, ऐसा लगता नहीं है।"

भोंसले चौंक पड़े। वे शंकित होकर बोले, "क्यों?"

"अब हमारा भरोसा नहीं है। हम थक गये हैं, राजन्! हमने दो बार आपपर चढ़ाई की। आपका पराभव किया; परन्तु उस सफलता से हमें ज़रा

भी आनन्द नहीं लिया। अपनों से लड़ने में क्या आनन्द होता है? परन्तु यह हमको करना ही पड़ा। यदि हम वैसा न करते, तो राज्य के प्रति हम बेईमान ठहरते। जाने दो। रावबा, जो होना था, वह हो गया। उसको मन में मत रखिए। मराठा राज्य को आपकी सदैव आवश्यकता है, यह बात हम आपसे सदैव कहते रहे हैं; परन्तु कुछ काकाओं की तथा अपने देशकी पन्त की सलाह के कारण आप उधर विश्वास नहीं कर सके। कनकापुर के हमलों के बाद आप और हम जैसे पास आये, वैसे यदि पहले आये होते, तो इससे भी अधिक कुछ किया जा सकता था।"

"श्रीमन्त! हमने दादा साहब के सम्बन्ध में सुना है। हमारा उनसे पुराना स्नेह है। आपने जेजुरी में उनको जल्द ही मुक्त करने का वचन दिया था, उस बात की याद...."

"छिपाने की कोई जरूरत नहीं है।" माधवराव लम्बी साँस छोड़कर बोले, "रावबा, काका को कैद में रखना क्या हमारे लिए शोभा की बात है? उनका क्या हमको शौक है? परन्तु राज्यकर्ता को मन नहीं होता है। उसको सदा कर्तव्य का ही पालन करना पड़ता है। परन्तु रावबा, काका अब मेरी नजरकैद में नहीं हैं। यथाशक्ति जल्दी ही मैं उनको मुक्त कर दूँगा। यह बात मुझको सदा ही दुःख देती रही है।"

भोंसले बोले, "श्रीमन्त, अब मेरी भी अवस्था हो गयी है। स्वास्थ्य जैसा रहना चाहिए, वैसा अच्छा नहीं रहता है। जो आपके घर है, वही हमारे घर हैं। यह मैंने आपके कानों में डाल ही दिया है। अब हमारी इच्छा यह है कि अपने भाई मुधोजी के लड़के को दत्तक ले लें और घर का झगड़ा मिटा दें।"

"आपकी इच्छा हमें स्वीकार है। उसको हम जरूर मान्य करेंगे; परन्तु रावबा! एक बात कहता हूँ, उसको कदापि मत भूलिए। सातारा की गद्दी के प्रति मन में वैरभाव मत रखिए। उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। ताराबाई ने इसी वैर से श्री रामराजा को कैद किया। हमारे पिताजी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। पेशवाओं ने यह भूल की। इसका फल उनको पानीपत पर भोगना पड़ा। हमने छत्रपतिजी को किले से छुड़ाकर सातारा भेजा; परन्तु वहाँ हमारी इच्छा पूरी नहीं हुई। कुछ कारणों से वह अधूरी ही रही। हम सातार-कर छत्रपति को पुनः बलशाली देखना चाहते थे। हमारे उस स्वप्न को आप पूरा कीजिए। जबतक आप भी छत्रपति को मानते हैं, तभी तक आपको दक्षिण की सत्ता मानेगी। दक्षिण की सत्ता का मानबिन्दु भी छत्रपति की गद्दी है। उसको बिलकुल भी धक्का मत लगाइए। यदि ऐसा प्रयत्न करोगे, तो फिर वहाँ स्थान का, सत्ता का, और मान का विचार किये बिना सारा राज्य तुम्हारे उठे.

टूट पड़ेगा। कोल्हापुरकर या आप उस मान को कभी नहीं प्राप्त कर सकेंगे। जहाँ भावना युद्ध करती है वहाँ सत्ता अधिक समय तक नहीं टिकती है। यह साहस आप मत कीजिए। यह मेरी आपको प्रेमपूर्ण सलाह है।"

"श्रीमन्त ! समय हो गया। आज्ञा मिले।" जानोजी बोले।

"राजन्, कल हमने गणेशमन्दिर में गायन का आयोजन किया है। आप उपस्थित रहें, यह इच्छा है।"

"जो आज्ञा।"

श्रीमन्त ने जैसे ही आज्ञा की वैसे ही बाहर खड़े हुए सरदार अन्दर आये। सबको इत्र-गुलाब दिया जाये, उससे पहले माधवराव ने अपने हाथों से मोतियों का तुर्रा जानोजी भोंसले की पगड़ी में लगाया। यह मान परम्परा में नहीं समा सकता था। उस बहुमान से जानोजी अभिभूत हो गये। माधवराव भोंसलेजी के हाथों को अपने हाथों में लेकर प्रेम से दाबते हुए बोले, "राजन्, अब तो हमारे प्रेम की प्रतीति हो गयी न ?"

दूसरे दिन माधवराव को फिर खाँसी आने लगी। माथे पर पसीना आने लगा। रमाबाई घबड़ा गयीं। वे बोलीं,

"देखा ! कुछ कहती हूँ तो आप सुनते नहीं हैं।"

अँगोछा से माथे का पसीना पोंछते हुए माधवराव ने पूछा, "क्या नहीं सुना ?"

"मन्दिर पैदल किस लिए गये ? बैठक में घण्टों बातें करते रहते हैं ?"

"कल से हम जरूर सुनेंगे।" माधवराव बोले।

ऐसी परिस्थिति में भी रमाबाई को हँसी आ गयी। बोलीं, "रहने दीजिए... कोई सुनेगा, तो कहेगा कि आप तो अक्षरशः मेरा कहना मानते हैं।"

"यह सच ही है।" माधवराव बोले।

"देखूँगी ! अब मैं आपको हिलने-डुलने भी नहीं दूँगी।"

"एकदम स्वीकार है; परन्तु कल से।" माधवराव कल पर ज़ोर देकर बोले।

"क्यों ? कल क्यों ?" आश्चर्य से रमाबाई ने पूछा।

"अपने भवन में पहले एक भाट था—"

"फिर ?"

"वह बहुत बड़ा गायक हो गया है।"

"फिर ?"

"श्री के मन्दिर में आज उसका गायन होगा।"

"गाने का इतना शौक आपको कब से हो गया? गाने को कोई बहुत नहीं है।"

"रमा!"

इस प्रकार पुकारने से रमाबाई चकित हो गयीं। बहुत ही कदाचित् वे इस तरह पुकारते थे। रमाबाई पर दृष्टि केन्द्रित करते हुए माधवराव बोले, "रमा, संगीत का शौक हमें नहीं है। परन्तु अब किसी का मन दुखाने की इच्छा नहीं होती है। यह बेचारा हमारे स्वास्थ्य की वार्ता सुनकर जयपुर से आया है। यह उसकी इच्छा है। हमने यह वचन दिया है। जानोजी भोंसले भी आनेवाले हैं।"

रमाबाई हँसकर बोलीं, "आपने जब वचन दिया है, तो क्या मैं मना कर दूँगी? परन्तु आप पालकी में जायें।"

"इतना पास तो मन्दिर है!"

"यह सच है। परन्तु इतना श्रम तो बचेगा!"

"ठीक है। हम पालकी में जायेंगे। और कोई आज्ञा?"

रमाबाई हँसती हुई बोलीं, "अधिक देर तक नहीं बैठना है।"

"स्वीकार है। और कुछ?"

"हैं अभी!" रमाबाई दृष्टि से दृष्टि मिलाती हुई बोलीं।

"क्या?"

"यह कह रही हूँ इसलिए गुस्सा नहीं होना है!"

माधवराव हँस पड़े। हँसते-हँसते गम्भीर हो गये। वे बोले,

"आप इतनी चिन्ता क्यों करती हैं? किस लिए?"

"मैं नहीं समझी।"

"एक बात पूछूँ?"

"पूछिए न?"

"कुछ नहीं।"

"कहिए न!"

"आपसे पूछना चाहता था कि वृक्ष से तोड़ लेने के बाद फूल कितनी देर तक वैसा ही बना रहता है?"

"मैं नहीं जानती।" कहकर रमाबाई तत्क्षण मुड़ीं और खिड़की से बाहर देखती हुई खड़ी रहीं।

माधवराव उठे। पीछे से आकर उन्होंने रमाबाई के कन्धों पर हाथ रख दिये। रमाबाई को बलात् अपनी ओर अभिमुख किया। रमाबाई की आँखें भर आयी थीं। उनको पोंछते हुए वे बोले,

"रमा, संकटों की ओर से आँखें बन्द करने से काम नहीं चलेगा। वह देखो।" खिड़की से बाहर उँगली से संकेत करते हुए माधवराव बोले।

रमाबाई ने देखा। सूर्य अस्त हो रहा था। सम्पूर्ण पश्चिम क्षितिज अनेक प्रकार के रंगों से चित्रित हो गया था। उस दृश्य को देखकर रमाबाई मुग्ध हो गयीं। स्थिर दृष्टि से वे उस दृश्य को देख रही थीं। माधवराव बोले,

"देखा? कभी विचार किया है क्या कि सूर्योदय के समय सारा आकाश कैसे दिव्य तेज से दीप्त होता है; परन्तु सूर्यास्त के समय वही सहस्र रंगों से इस तरह क्यों भर जाता है? इतना ज्वार क्यों आता है? जानती हो?"

रमाबाई ने नकारार्थी सिर हिलाया।

"नहीं? थोड़ा-सा भी यदि विचार किया होता, तो उसका उत्तर मिल गया होता। प्रातःकाल जब सूर्यबिम्ब क्षितिज पर आता है, तब उसके तेज से आकाश चमचमाने लगता है। वह सूर्यजन्म का प्रतीक होता है; परन्तु सन्ध्या-समय वही सूर्य जब अस्तंगत होता है, तब सारे आकाश में रंगों की वर्षा-सी हुई दिखाई देती है। पूरे दिन अपने तेज से पृथ्वी को स्नान कराने से जीवन कृतार्थ हो गया होता है, उसका समाधान इन रंगों से प्रकट होता है। ऐसा समाधान कितने जनों को होता है?"

"कितनी बार कहा है कि इस तरह की बातें मत कहा करो?" रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं। उनके दोनों बड़े-बड़े नयन आँसुओं से भर आये थे। स्वयंको सँभालते हुए माधवराव बोले, "रहने दो तो! मैं तो यों ही कह रहा था। भूल जाओ।"

कुछ न कहकर आँखें पोंछती हुई रमाबाई वहाँ से चली गयीं।

रात को माधवराव का भोजन हो जाने पर सब लोग गायन सुनने के लिए मन्दिर जाने को तैयार हो गये। माधवराव श्रीपति का और पन्त का सहारा लेते हुए दरवाज़े तक आये। पालकी खड़ी थी। माधवराव चुपचाप पालकी में बैठ गये। उन्होंने ऊन की बण्डी पहन रखी थी। कन्धों पर चादर डाल ली थी। सिर पर पगड़ी थी; किन्तु उसपर शिरपेच नहीं था। भवन से मन्दिर अधिक से अधिक सौ क़दम दूर था। पालकी से उतरकर माधवराव ने मन्दिर में प्रवेश किया। मोरेश्वर स्वागत के लिए खड़ा था। माधवराव धीमे-धीमे पैर रखते हुए सभामण्डप तक आये। बाहर की सीढ़ी पर से ही उन्होंने दर्शन किये।

सभामण्डप की छत में लगे हुए रंग-बिरंगे दीपदानों में मोमबत्तियाँ जल रही थीं। सभामण्डप की दोनों ओर बरामदों की दिशा में स्थान-स्थान पर मशालें

जल रहो थीं। मन्दिर का दीपस्तम्भ प्रज्वलित था। सभामण्डप में बैठक सजी हुई थी। फव्वारा चल रहा था। फव्वारे पर लगे हुए बिल्लौरी दीपदान में से पड़नेवाले प्रकाश में फव्वारे के जल के कण चमक रहे थे। सभामण्डप में सारी सरदार मण्डली इकट्ठी हो गयी थी। जानोजी भोंसले पहले ही आ गये थे। दायीं ओर के चौक में छावनी के अधिकारी लोग स्थान ग्रहण कर रहे थे। जानोजी भोंसले के साथ माधवराव बैठकी पर बैठ गये। नाना, बापू, पटवर्धन, पन्त, विंचूरकर आदि कृपापात्र जन श्रीमन्त के समीप बैठे हुए थे। श्रीगणेश के सामने के बरामदे पर चिक का परदा लगा दिया था।

मोरेश्वर अपनी बैठकी पर बैठ गया। उसके पीछे-पीछे तबलची, सारंगी वादक और दो साथी अपने-अपने वाद्य लिये बैठकी पर आये। वाद्यों को ठीक किया गया। श्रीमन्त यह सब देख रहे थे। वाद्य ठीक जमते ही मोरेश्वर श्रीमन्त के चरणों को स्पर्श कर हाथ जोड़कर बोला, "श्रीमन्त, क्या गाऊँ मैं?"

श्रीमन्त हँसे। वे बोले, "मोरेश्वर! सचमुच हमें संगीत का कुछ भी ज्ञान नहीं है। हमारे स्वास्थ्य को देखते हुए अधिक देर तक बैठना हमारे लिए अशक्य है। इसलिए ऐसा कुछ गाओ जिससे इस व्याधि का विस्मरण हो जाये और मन अन्तर्मुखी हो जाये।"

मोरेश्वर मुजरा करके बैठकी की ओर गया। उसने वीरासन लगाया। साथियों के हाथों में तानपूरे बोलने लगे। समइयों के प्रकाश में दिखाई देनेवाली श्रीगणेश की मूर्ति को वन्दन करके मोरेश्वर ने आलाप किया। उस निर्मल स्वर से सबके मन अभिभूत हो गये। मोरेश्वर ने किसी करुण राग के आरोह-अवरोहों को कुछ क्षणों तक गुनगुनाया, तत्पश्चात् वह अपने निर्मल स्वर में गाने लगा,

> तुम विश्वनाथ हो, मैं दीन, रंक, हूँ अनाथ
> चरणों में आया हूँ, थोड़ी कृपा करो नाथ।

मोरेश्वर अब बैठक को भूल गया था। भावना से तद्रूप होकर वह भानरहित होकर गा रहा था। माधवराव मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। भावना से सराबोर एक-एक शब्द उनके हृदय से टकरा रहा था। मोरेश्वर गा रहा था....

> तुम्हारे पास क्या कमी, मैं तो हूँ अल्प-सन्तोषी
> तुका कहे, देव, देव! सप्रेम दे प्रसाद॥

जब यह छन्द समाप्त हुआ तब सबको भान हुआ। मोरेश्वर और श्रीमन्त दोनों ने ही आँखें पोछीं। श्रीमन्त बोले,

"मोरेश्वर, तुम धन्य हो, मर्मस्पर्शी तुम्हारी आवाज धन्य है! हम इस

दशा को पहुँच गये हैं, फिर भी हम राज्य के स्वामी हैं, यह भावना अब भी शेष है। आपके आज के छन्द से हम जाग्रत् हो गये हैं। हम राज्य के स्वामी नहीं हैं। स्वामी वह है। हम तो केवल दीन, रंक और अनाथ हैं, यही सच है! कौन कह सकता है? इस बात की प्रतीति कराने के लिए शायद परमात्मा ने इतनी दूर से आपको भेजा हो...." माधवराव कह रहे थे। सबकी आँखें उनकी ओर लगी हुई थीं। कहते-कहते माधवराव एकदम रुके और मोरेश्वर की ओर देखते हुए बोले,

"मोरेश्वर!"

मोरेश्वर उठकर सामने आया।

माधवराव बोले, "हम अब जाते हैं। ये लोग बैठेंगे। संगीत-साधना इसी तरह चालू रखो। हारे-थके प्राणों को विश्रान्ति दो।"

श्रीमन्त ने काँपते हाथ से अपनी अँगुली से हीरे की अगूँठी उतारी और उसको मोरेश्वर के हाथ में देते हुए वे बोले,

"यह लो। हमारी यादगार के रूप में सँभालकर रख लो।" और नाना की ओर मुड़कर वे बोले,

"नाना! कल इनको पुरस्कार देना। सम्मानपूर्वक भेजना।"

प्रातःकाल माधवराव की आँख खुली। हाल ही में पौ फटने की शुरुआत हुई थी। श्रीमन्त ने देह पर से आवरण एक ओर हटाया और वे उठकर बैठ गये। पूर्व की ओर खिड़की से प्रातःकालीन पवन आ रहा था। रमाबाई दौड़ीं। जल्दी-जल्दी माधवराव की देह से चादर लपेटती हुई वे बोलीं,

"मुझको आवाज क्यों नहीं दी?"

"अभी-अभी तो उठा हूँ। रमा, तुमको ठण्ड लग रही है क्या?"

"हाँ। ठण्ड तो है ही।"

"शरीर टूटा-टूटा-सा लग रहा है।"

रमाबाई ने देह से हाथ लगाकर देखा। देह गरम नहीं थी, परन्तु देह पर चिपचिपाहट थी। जल्दी-जल्दी पूर्व की ओर की खिड़की बन्द करने के लिए वे दौड़ीं।

"रहने दीजिए। बन्द मत कीजिए।"

रमाबाई वहीं खड़ी रहीं। माधवराव उठे। धीरे-धीरे वे खिड़की के पास आये। सामने नदी तक फैले हुए पठार पर छावनी लगी हुई थी। कुछ-कुछ जगार दिखाई दे रही थी। पूर्व-क्षितिज पर प्रकाश चमक रहा था। पक्षियों के

झुण्ड किलबिलाट करते हुए आकाश में जा रहे थे। रमाबाई माधवराव की ओर मुड़कर बोलीं,

"देखा, सूर्योदय कैसा दिखाई दे रहा है?"

माधवराव ने क्षण-भर रमाबाई को देखा और वे प्रसन्न होकर हँसने लगे। हँसते-हँसते उनको खाँसी आने लगी। उन्होंने मंचक का आधार लिया। जैसे-तैसे वे मंचक पर बैठे। रमाबाई घबड़ाकर उनके पास गयीं। जब खाँसी थमी तब हँसने से आँखों में आया हुआ पानी पोंछते हुए वे बोले,

"घबड़ाओ मत रमा! सब ठीक है।"

"इतना हँसने को क्या बात थी?"

"कल के सूर्यास्त के कारण ही आज का सूर्योदय दिखाया है न? मृत्यु का भय कितना लगता है? इतनी पोथियाँ, पुराण पढ़कर और जप-तप करके तुम यही समझ पायी हो? रमा, मृत्यु अटल है। जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह एक न एक दिन नष्ट होना है, फिर वह आज होवे अथवा अनेक वर्षों बाद होवे। जीवन और मृत्यु का भय रखनेवाला कभी समृद्ध जीवन नहीं बिता सकता है—"

"परन्तु आपकी अवस्था ऐसी कितनी हो गयी है, जो आप इस तरह की बात करते हैं?" उद्विग्न होकर रमाबाई बोली।

"रमा, जीवन कितने वर्ष जीया, इसका अधिक महत्त्व नहीं है। जीवन कैसे जीया, इसका महत्त्व है। नहीं तो चन्दन का कोई नाम भी न लेता और सब वटवृक्ष का ही कौतुक करते। जो आनन्द चन्दन के माथे पर लिखा है, उसी आनन्द का उपभोग मैं कर रहा हूँ। सचमुच रमा, मैं सन्तुष्ट हूँ। सुखी हूँ। तृप्त हूँ। द्वार पर आयी हुई मृत्यु का स्वागत करने के लिए मैं तैयार हूँ। मुझको उससे भय नहीं लगता है...।"

"स्वामी..." रमाबाई आर्त-स्वर में बोलीं। माधवराव चौंके। आज तक इस तरह रमाबाई ने कभी नहीं पुकारा था। रमाबाई का सारा अंग काँप रहा था। उनकी विशाल आँखें अत्यधिक बेचैन हो गयी थीं। होंठ सूख गये थे। माधवराव ने रमाबाई को एकदम बाँहों में भर लिया। थरथराते हाथ से उनके चेहरे को स्पर्श करते हुए माधवराव बोले,

"रमा, इस तरह क्यों पुकारा? इसकी क्या मुझको प्रतीति नहीं है? यह सूर्य उदित हो रहा है। आज अस्त भी होगा! परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह फिर उदित नहीं होगा। जन्म और मृत्यु की यह आँखमिचौली निरन्तर चल रही है, यह हम देख रहे हैं। इतनी भयव्याकुल मत हो। हमारा जीवन समाप्त नहीं होगा, यह पुनः शुरू होगा। हम जिनको अन्त समय को

वेदनाएँ समझते हैं, वे ही पुनर्जन्म की प्रसव-वेदनाएँ होती हैं, रमा ! मेरी देह में सब कुछ सहन करने की शक्ति है; परन्तु तुम्हारे आँसुओं के समक्ष मैं टिक नहीं सकता हूँ। पोंछो ये आँखें।"

रमाबाई होश में आयीं। उन्होंने आँखें पोंछीं। माधवराव के बाहुपाश से अलग होती हुई वे बोलीं,

"सूर्योदय हो गया। अभी आपको मुखमार्जन करना है। मैं अभी आयी।"

रमाबाई चली गयीं। माधवराव क्षितिज पर चढ़ते हुए सूर्य-बिम्ब की ओर देहभान भूलकर देख रहे थे।

भरी दोपहरी का समय था। खुले पठार पर बसा हुआ थेऊर गाँव धूप में चमक रहा था। क्वचित् घोड़ों की हिनहिनाहट की आवाज या किसी कुत्ते की भौंकने की आवाज—इनको यदि छोड़ दिया जाये तो सर्वत्र शान्ति छायी हुई थी। थेऊर के चारों ओर पटवर्धन, रास्ते, बारामतीकर, पाटणकर, दरेकर आदि सरदारों की छावनियां फैली हुई थीं, फिर भी वातावरण शान्त था। नदी तक का पठार तो छावनी से पूरा भरा हुआ था। थेऊर के भवन के बाहर सरदार और सम्मानित सभासद् चुपचाप खड़े थे। उनके चेहरे चिन्तातुर दिखाई दे रहे थे। रामशास्त्री के आने की सूचना आयी थी। उनके स्वागत के लिए वे खड़े थे। रामशास्त्री आते हुए दिखाई दिये। घोड़े धीमी गति से आगे आ रहे थे। भवन से पर्याप्त दूरी पर घोड़े रुक गये। शास्त्रीजी पैदल भवन की ओर आते हुए दिखाई देने लगे। धूप में आने से उनका चेहरा पसीने से तर हो रहा था। अंगोछे से पसीना पोंछते हुए वे नक्कारखाने के पास आये। नाना और पेठेजी के नमस्कार को स्वीकार कर उन्होंने पूछा,

"नाना, श्रीमन्त की तबीयत कैसी है ?"

"कल से रोग कुछ बढ़ने लगा है।"

"परन्तु अचानक तबीयत बिगड़ने का कारण आखिर क्या है ?"

"क्या बताऊँ शास्त्रीजी ! पाँच-छह दिन पहले श्रीमन्त मन्दिर में गाना सुनने गये थे। स्वास्थ्य में तो पहले भी इतना अधिक सुधार नहीं था; परन्तु इतना ही बहाना बन गया और ज्वर बढ़ गया। खाँसी भी है। खाँसी में रक्त आता है।"

"फिर किसकी औषध चल रही है ?"

"कैसी औषध और कैसा पथ्य ?" नाना बोले, "जब से यहाँ आये हैं, तब से

न औषध है, न पथ्य है। कोई कुछ कहे तो विवशता की, अन्त समय की बात ! फिर, कहे कौन ? कब क्रोध आ जायेगा, इसका पता नहीं चलता। मन के विरुद्ध इतनी-सी भी बात सहन नहीं होती। इसलिए आपके पास सन्देश भेजा। श्रीमन्त आपको मानते हैं। कदाचित् वे आपकी बात मान लें।"

"चलो, अन्दर चलें। श्रीमन्त ऊपरी मंज़िल के महल में ही हैं न ?"

"चार दिन पहले ही श्रीमन्त को नीचे लाये हैं। चलने की भी शक्ति नहीं रही है। फिर चढ़ना-उतरना कैसे हो सकता है ?" नाना बोले।

रामशास्त्री दरवाजे से अन्दर आये। भवन में बहुत-से सेवक खड़े थे, बहुत-से घूम रहे थे, फिर भी सर्वत्र शान्ति थी। नाना और मामा आगे जा रहे थे। पीछे-पीछे शास्त्रीजी जा रहे थे। सामने बैठक में परदे लगाये जा रहे थे। इच्छाराम पन्त ढेरे बाहर आये। उन्होंने शास्त्रीजी को नमस्कार किया। उसको स्वीकार कर रामशास्त्रीजी ने पूछा,

"कैसी है श्रीमन्त की तबीयत ?"

"अब ज्वर कम है। थोड़ी आँख लग जाती है। इस समय जग रहे हैं।"

"कौन है ?" अन्दर से आवाज आयी।

अन्दर जाते हुए इच्छाराम पन्त ढेरे बोले, "शास्त्रीजी आये हैं।"

माधवराव के पैताने बैठी हुई रमाबाई जल्दी-जल्दी उठीं। माधवराव बोले, "बैठिए न। शास्त्रीजी कोई पराये नहीं हैं।"

रमाबाई रुक गयीं। रामशास्त्री अन्दर आये। उन्होंने आदर से दोनों को मुजरा किया।

"पन्त, हमको बैठा दो।"

इच्छाराम पन्त आगे बढ़े। पलंग पर आड़ा तकिया लगाकर माधवराव को बैठाया। श्रीमन्त की यह दशा देखकर रामशास्त्री ने मुँह फेर लिया।

"शास्त्रीजी, आप आ गये। ठीक हुआ। पुणे में सब क्षेम है न ?"

"जी हाँ, श्रीमन्त। आपकी प्रकृति की वार्ता सुनी और दर्शन करने चला आया।"

"कोई नयी बात नहीं है।"

"किसकी औषध चल रही है, श्रीमन्त ?"

"श्री गजानन की।" माधवराव बोले।

"यह कहने से कैसे काम चलेगा, श्रीमन्त ? औषधोपचार तो होने ही चाहिए न। नाना, पुणे से वैद्यजी को बुलाइए। आज ही श्रीमन्त के औषधोपचार शुरू हो जाने चाहिए।"

"नहीं शास्त्रीजी, उससे कोई लाभ नहीं होगा।" माधवराव बोले।

"श्रीमन्त ! स्पष्ट कह रहा हूँ, इसलिए क्षमा करें।...परन्तु जबतक जीव है, तबतक शरीरधर्म का पालन करना ही चाहिए, यह धर्माज्ञा है।"

माधवराव कुछ नहीं बोले। नाना तत्क्षण बाहर गये। उनके मुख पर सन्तोष था। कार्यालय में जाकर उन्होंने खलीता लिखा और थोड़ी ही देर में दो घुड़सवार थेऊर छोड़कर बेतहाशा दौड़ते हुए पुणे की ओर जाने लगे।

दूसरे दिन सुप्रसिद्ध वैद्य गंगा विष्णु महेश्वर, तेरदल के रणछोड़ नाईक और सातार के रूपेश्वरजी—ये लोग थेऊर में उपस्थित हो गये। जिनकी औषध बहुत दिनों तक श्रीमन्त ने ली थी, वे कनिंघम साहब भी दोपहर तक थेऊर आ गये। श्रीमन्त पहले कनिंघम से मिले। उसने श्रीमन्त का स्वास्थ्य देखा। स्वास्थ्य का निरीक्षण करते ही वह गम्भीर हो गया। अनेक वर्षों के साहचर्य से वह श्रीमन्त के अत्यन्त निकट आ गया था। श्रीमन्त क्षीण स्वर में बोले,

"डॉक्टर ! सबका कहना है कि वैद्य की औषध चालू करके देखा जाये। आपकी सलाह चाहिए। जो बात हो, स्पष्ट कहिए।"

"सरकार, आवश्यकता हो तो आप औषध लीजिए। मैं मना नहीं करता। आपको इससे लाभ हो तो ठीक है।" कनिंघम ने कहा।"

वैद्यराजों को बुलाया गया। उन्होंने श्रीमन्त का निरीक्षण किया। गंगा विष्णु लोक में साक्षात् अश्विनी कुमार के नाम से प्रसिद्ध थे। तीनों वैद्यों में वे ही अग्रगण्य थे। जब गोपिकाबाई रुग्ण थीं तब माधवराव ने उनको ही गंगापुर को भेजा था। उनकी औषध से गोपिकाबाई को लाभ भी हुआ था। सबको गंगा विष्णु का ही भरोसा था।

गंगा विष्णु का रंग साँवला, नाक बड़ी और मोटी, आँखें तीक्ष्ण और शरीरयष्टि मध्यम ऊँचाई की थी। उसके मुख पर विद्वत्ता का तेज दिखाई देता था। श्रीमन्त का निरीक्षण समाप्त होते ही शास्त्रीजी ने पूछा,

"वैद्यराज—"

"शास्त्री, अनेक औषधों और अपथ्यों से उनके स्वास्थ्य की अपार क्षति हुई है। इससे पहले यदि समय पर ही औषधोपचार हो जाता, तो बहुत अच्छा होता, यह मेरा स्पष्ट विचार है।"

श्रीमन्त यह सुन रहे थे। गंगा विष्णु की वह अस्थानोचित स्पष्टोक्ति सुनकर सबको क्रोध आया। श्रीमन्त क्षीण हास्य करते हुए बोले,

"वैद्यराज, औषध की अब आवश्यकता नहीं है, यही न ! यही तो हम सबसे कहते थे।"

गंगा विष्णु को उस कथन से भान हुआ। स्वयं को सँभालता हुआ वह बोला,

"यह बात नहीं, श्रीमन्त ! प्रयत्न तो अन्त तक किये ही जाते हैं। कदाचित् अब भी आप ठीक हो जायें !"

"वैद्यराज, इस व्याधि की हमको पूरी जानकारी है। आप औषध अवश्य दें। वह आनन्द से लेंगे। परन्तु एक बात बता जाइए।"

"आज्ञा श्रीमन्त !" गंगा विष्णु ने कहा।

"और कितने दिन ये यातनाएँ हमको सहन करनी पड़ेंगी ?"

गंगा विष्णु की और अन्य सबकी दशा ऐसी हो गयी मानो देह पर अचानक बिजली गिर पड़ी हो। गंगा विष्णु का नाम जैसे प्रसिद्ध था वैसे ही स्पष्टोक्ति और सनकीपन के लिए भी वह प्रसिद्ध था। श्रीमन्त बोले,

"बोलिए वैद्यराज ! आप जो कुछ कहेंगे, उसको सुनने के लिए धैर्य हममें है। हमारा मन तैयार हो गया है। मृत्यु से हमको भय नहीं लगता है; परन्तु इस तरह किड़रते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा करना असह्य हो रहा है। हमारी मृत्यु कोई व्यक्तिगत बात नहीं है। राज्य का उत्तरदायित्व हमपर है। हमारी स्थिति हमको ज्ञात होनी ही चाहिए। अचूक भविष्यकाल बता देना भी वैद्य का श्रेष्ठ लक्षण है। परमेश्वर के अतिरिक्त वही उसको जान सकता है।" माधवराव बीच-बीच में खाँसते हुए बोल रहे थे। इतने ही परिश्रम से उनके मस्तक पर पसीना आ रहा था। हरिपन्त फड़के पसीना पोंछ रहे थे।

गंगा विष्णु ने श्रीमन्त की ओर देखा। अविचलित स्वर में उन्होंने कहा,

"श्रीमन्त ! मृत्यु के बारे में कोई नहीं बता सकता। फिर भी, मेरे तर्क के अनुसार अधिक से अधिक एक महीने की अवधि आपके हाथ में है। नाना, दो काढ़े बता रहा हूँ, उनको लिख लो। एक मात्रा भी देता हूँ। श्रीमन्त के पथ्य का ध्यान रखना।"

"वैद्यराज ! किस लिए कष्ट उठा रहे हैं ? मृत्यु आनेवाली ही है, उसको किस लिए रोका जाये ?"

"श्रीमन्त !" गंगा विष्णु तीक्ष्ण स्वर में बोला, "आनेवाली मृत्यु सरलता से आये, इसलिए ये औषधें हैं। यदि समयानुसार इनका सेवन किया गया तो कदाचित् भावी यातनाएँ कम हो जायें।"

श्रीमन्त ने गंगा विष्णु को हाथ जोड़े। गंगा विष्णु अन्य वैद्यों के साथ बाहर निकले। कर्नियम श्रीमन्त के पास आया। उसके भूरे केशों को और एकदम गोरे लम्बे चेहरे को श्रीमन्त देख रहे थे। उसकी आँखें अश्रुपूर्ण थीं। पलंग की पाटी पर रखा हुआ श्रीमन्त का हाथ उसने अपने हाथों में ले लिया। धीरे से उसने उसको अपनी मुट्ठी में दबाया और फिर तत्क्षण वह बाहर चला गया।

माधवराव अकेले ही पलंग पर सो रहे थे। रमाबाई अन्दर आयी। माधव-

राव के पैताने वे बैठ गयीं। माधवराव चुपचाप रमाबाई की ओर देख रहे थे। रमाबाई दोनों हाथों में मुँह छिपाकर सिसक रही थीं। उनकी सिसकियों की आवाज़ बाहर गूँज रही थी।

माधवराव ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। वे बोले, "रमा !"

उस पुकार से रमाबाई और अधिक रोने लगीं। माधवराव बोले,

"रमा ! क्यों रोती हो ? वैद्यराज ने कहा है कि एक महीने के भीतर लाभ होने लगेगा...."

रमाबाई ने आँखें पोंछीं और बोलीं, "कुछ मत कहिए। मैंने सब कुछ सुन लिया है।"

श्रीमन्त कुछ नहीं बोले। रमाबाई के नेत्रों से फिर अश्रुधारा बहने लगी।

"क्या करूँ मैं...? क्या करूँ मैं....?" कहती हुई वे माधवराव के पैरों पर गिर पड़ीं। माधवराव कष्टपूर्वक उठे। रमाबाई की पीठ पर हाथ फिराते हुए वे बोले,

"रमा, पागल हो क्या ? परमात्मा पर श्रद्धा रखो। कौन जानता है, शायद इसमें से भी वह पार कर दे।"

रमाबाई एकदम उठकर बैठ गयीं। उनकी आँखों का पानी न जाने कहाँ अदृश्य हो गया था। व्रतोपवासों से कृश रमाबाई ने एक दृष्टि डाली और वे बोलीं,

"परमेश्वर ? कहाँ है वह ? करने में क्या क़सर छोड़ी है जो वह अब भी प्रार्थना नहीं सुन रहा है ? इतना दानधर्म किया जा रहा है, पुणे में मृत्युंजय का जप अहोरात्र हो रहा है। ब्राह्मण शान्ति-अनुष्ठान में नियुक्त हैं। गजानन पर निरन्तर अभिषेक हो रहा है। परन्तु आपका स्वास्थ्य तिल-भर भी नहीं सुधर रहा है। पता नहीं, कहाँ से यह मरा रोग लग गया ? इतने वैद्य हुए, साधु हुए, फिर भी नहीं हटता है। मरा मुझसे हिसाब चुकता कर रहा है..."

रमाबाई की वह करुण मूर्ति, उनकी वह शीलसम्पन्न धृष्टता, अत्यन्त प्रेम के कारण उत्पन्न हुआ सात्त्विक सन्ताप—माधवराव चकित होकर देख रहे थे। रमाबाई ने माधवराव की ओर देखा। माधवराव के चेहरे पर मुसकराहट थी। सन्तप्त होकर रमाबाई बोलीं,

"हँसते क्यों हैं ?"

"रमा, कितना द्वेष करती हो इस रोग से !" माधवराव शान्त स्वर में बोले, "रमा, इतना द्वेष मत करो। इस रोग के बराबर निष्ठावान् साथी धरती पर दूसरा नहीं होगा। तुम ध्यान दो या उपेक्षा करो, बुलाओ या मत बुलाओ, परन्तु किसी भी मानापमान की अपेक्षा न करते हुए, किये हुए विरोध की चिन्ता

न करते हुए, उसके लिए मन में बैर न रखते हुए, अन्त तक साथ निभानेवाला, इसके अतिरिक्त दूसरा कौन-सा मित्र इस संसार में है ? यह तुम्हारे पति का अत्यन्त निष्ठावान् एकमात्र मित्र है, इसका कम से कम तुम तो द्वेष मत करो।"

"सब बातों को हँसी में उड़ा देने का स्वभाव है आपका!" कहती हुई रमाबाई उठीं। उनका हाथ पकड़ते हुए माधवराव बोले,

"गुस्सा हो गयी हो ?"

"गुस्सा और आप से ?" उनकी ओर देखती हुई रमाबाई बोली, "इतना साहस किसमें है ?"

"निश्चय ही तुममें है !" माधवराव व्याकुल होकर बोले, "बैठो, रमा ! जो जीवन-भर नहीं किया, वह तुम मुझसे से मत करो।"

"सचमुच, मैं गुस्सा नहीं हूँ।" रमाबाई बोली।

"आप आज पुणे को जायेंगी क्या ?" माधवराव ने पूछा। उस प्रश्न के साथ ही रमाबाई के मन में भय झाँक गया। वे बोलीं,

"नहीं।"

"परन्तु भवन में पार्वती काकी अकेली होंगी।"

रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "मैंने आज तक आपसे कुछ नहीं माँगा है। आज माँग रही हूँ मैं। अब मुझको मत भेजिए। आपकी तबीयत ठीक नहीं थी, फिर भी आपने मुझको गंगापुर को भेज दिया। मैंने मना नहीं किया। स्वास्थ्य के लिये वर्ष-भर पुणे के आस-पास घूमती रही। मैं पुणे में रही। हठ नहीं की। थेऊर को आये। पुणे-थेऊर के चक्कर काटते-काटते प्राण थक गये। थेऊर छोड़ते समय मन व्याकुल हो जाता है। पुनः थेऊर दिखाई देने लगा कि यही दशा होती है। श्रीमन्त पधारते हैं। अब कहीं जाने के लिए मत कहो। क्षण-भर भी आपको आँखों की ओट नहीं करना चाहती हूँ।"

माधवराव के हाथ में लगे रमाबाई के हाथ का कम्पन माधवराव अनुभव कर रहे थे। उस नाजुक हाथ को पसीना छूट रहा था, उसका स्पर्श माधवराव के हाथ को हो रहा था। माधवराव बोले,

"मत जाओ ! मेरी जबरदस्ती नहीं है। मैं तुमको बार-बार पुणे क्यों भेजता हूँ, यह जानती नहीं हो। नारायण छोटा है। काका का स्वभाव तुम जानती हो। ऐसे समय में अपना व्यक्ति वहाँ होना चाहिए। तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसे भेजूँ ? अपनी दशा भी मैं जानता हूँ। पेट में जब दर्द उठता है, तब क्या होता है यह कैसे बताऊँ ? ऐसे समय तुम पास होती हो तो धैर्य बँधता है। दर्द सहने की शक्ति आती है।"

माधवराव के हाथ की पकड़ में बढ़ते हुए कसाव को रमाबाई अनुभव कर रही थीं। उन्होंने माधवराव की ओर देखा। माधवराव के मस्तक पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे थे। जल्दी से रमाबाई ने स्वेद पोंछा।

"इतना बोलने से ही देखो तो कितना पसीना आ गया! थोड़ी देर विश्राम करो। तब तक मैं काढ़े का पता लगाती हूँ।"

"जाने दो काढ़े को! अब विश्राम तो इकट्ठा ही मिलना है। पूरे जीवन में विश्राम नहीं मिला; वह अब क्या मिलेगा? रमा, पार्वती काकी वहाँ हैं। मुझको उनकी चिन्ता होती है। मेरे मन में सबसे अधिक आदर केवल उन्हीं के लिए है। उनकी श्रद्धा अद्वितीय है, किन्तु निरर्थक है, यह जानते हुए भी उस श्रद्धा को धक्का पहुँचाने का साहस मुझमें नहीं है। विधवा होती हुई भी वे सधवा के सौभाग्यालंकार धारण कर शनिवार-भवन में घूमती हैं, यह देखकर लोग क्या कहते हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसी एक श्रद्धा के बल पर वह स्त्री जी रही है। उस श्रद्धा को किसी तरह का धक्का न लगे, यह सावधानी मैंने अब तक रखी है। इस सम्बन्ध में मैंने लोकापवाद, रूढ़ि अथवा धर्म—किसी का विचार नहीं किया है। मुझको उनकी चिन्ता है। वे वहाँ अकेली हैं।"

"उनकी भी बड़ी इच्छा है। उनको बुलवा लूँ क्या?"

"काकीजी की यदि इच्छा है तो उनको कौन रोक सकता है?"

"आपका दबदबा क्या कम है? वे भी डरती हैं।"

माधवराव हँसे। वे बोले, "मुझको समझ लेनेवाला कोई मिलेगा ही नहीं क्या? लोग समझते हैं कि मैं क्रोधी हूँ, कठोर अनुशासन प्रिय हूँ, न्यायनिष्ठुर हूँ...."

"तो क्या यह ग़लत है?" रमाबाई ने पूछा, "कर्नाटक की मुहीम में मिर्जा के दल को लूट लिया था, इसलिए लोगों के हाथ तोड़ने की आज्ञा आपने ही दी थी न?"

"हाँ, परन्तु उसकी कितनी यातना हमने सही, आप यह नहीं जान सकी होंगी! हजारों की छावनी होती है। उस प्रमाद को यदि हम सहन कर लेते तो सभी ऐसा ही करने लग जाते। धाक जमाने के लिए, छावनी का अनुशासन बनाये रखने के लिए ऐसे कठोर मार्ग का कभी सहारा लेना पड़ता है। रमा, केवल वही घटना मत देखो। मातोश्री के गमन पर ध्यान दो। रामचन्द्रराव ने कितना प्रमाद किया था, फिर भी उनको जागीर दी, यह याद करके देखो। काकाजी के साथ हमारे व्यवहार को देखो। इन सब बातों को समझने का प्रयत्न करोगी तो यह रहस्य तत्क्षण खुल जायेगा।"

"जाने दीजिए। मैं नहीं समझ सकूँगी। तो फिर पार्वती काकी साहिबा को

बुलवा लूँ न ?"

"बुलवा लो न। यहाँ अकेली रहने में डर लगता है न? जानते हैं हम। उनका भी आपपर प्रेम है। यों देखा जाये तो आप दोनों ही समदुःखी हैं।"

"सो कैसे?" न समझकर रमाबाई ने पूछा।

"वे विधवा होकर सधवा की तरह रहती हैं और तुम सधवा होकर—" माधवराव के होंठों पर पंजा रखती हुई रमाबाई चिल्लायीं,

"क्या कह रहे हैं आप?"

"कुछ नहीं। परन्तु रमा, एक बात तुमसे कहता हूँ उसपर विश्वास रखो। झूठी श्रद्धा जीवन में काम नहीं आती है। एक न एक दिन पश्चात्ताप करना ही पड़ता है। इतना बड़ा दुःख और नहीं है।"

"मैं कहती हूँ वह भी सुन लें।" रमाबाई के शब्दों में निराला ही वेग था।

"आप पुरुष हैं। स्त्री के मन की कल्पना, उसकी श्रद्धा की शक्ति को आप नहीं आजमा सकते। उसको यदि समझना हो तो स्त्री ही बनना पड़ेगा।"

तत्क्षण रमाबाई मुड़ीं और बैठक के अन्दर चली गयीं। माधवराव रमाबाई के अन्तिम वाक्य का अर्थ समझने का प्रयत्न कर रहे थे। क्षण-भर के लिए वे अपने रोग को भी भूल गये थे।

दोपहर के समय माधवराव थेऊर के भवन के पीछे के बरामदे में सो रहे थे। द्वार पर जालीदार परदा पड़ा हुआ था। माधवराव से जीना चढ़ने-उतरने का कष्ट सहन नहीं होता था, इसलिए इस ओसारे में उनके रहने की व्यवस्था की थी। सामने के चौक में तिमंजिला भवन दिखाई दे रहा था। सामने के नक्क़ारख़ाने तक गयी हुई पगडण्डी इस ओसारे से दिखाई दे रही थी। माधवराव के रहने के कारण चारों ओर एकदम शान्ति थी। मैना परदे के बाहर सीढ़ी पर बैठी थी। अन्दर माधवराव की शय्या के पैताने रमाबाई बैठी हुई थीं। बाहर पठार पर छावनियों से आनेवाली घोड़ों की टापों की और पुकारों की आवाज़ें अस्पष्ट कानों में पड़ रही थीं। उस आवाज को छोड़कर सर्वत्र शान्ति थी।

मैना हाथ में लगी घास की डण्डी से खिलवाड़ करती हुई समय बिता रही थी। जूतों की चरमराहट सुनकर उसने सिर उठाया। सामने अखाड़े के चौक से रामशास्त्री और बापू आ रहे थे। उनको ओसारे की ओर आते हुए देखकर मैना जल्दी-जल्दी उठी और उनके सामने पहुँची। बापू ने पूछा,

"मैना, श्रीमन्त जग रहे हैं?"

"नहीं जी। सो रहे हैं।" मैना बोली।

रामशास्त्रीजी ने बापू की ओर देखा। बापू बोले,

"मैना ! वहाँ कौन है ?"

"दीदी साहिबा हैं।"

"उनसे कहो कि श्रीमन्त को जगा दें !"

"परन्तु श्रीमन्त सोये हुए हैं।" मैना ने प्रयत्न किया।

"कहा न ! भाभी साहिबा से कहो कि श्रीमन्त को जगा दें। कहना कि बहुत जरूरी सन्देश है।"

"अच्छा।" कहती हुई मैना मुड़ी। थोड़ी ही देर में मैना बाहर आयी और बोली,

"दीदी साहिबा ने बुलाया है आपको।"

रामशास्त्री और बापू जूते उतारकर सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गये और वहीं रुक गये। अन्दर से आवाज आयी,

"इनकी अभी-अभी आँख लगी है। यदि बहुत जरूरी..."

"जी हाँ, भाभी साहिबा !" शास्त्रीजी बोले, "यदि ऐसा न होता तो यह कष्ट न दिया होता...."

जाली से रमाबाई देख रही थीं। दोनों के चेहरे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। चिन्ता का कोई कारण दिखाई नहीं दे रहा था। वे बोलीं,

"थोड़ी ही देर में जग जायेंगे। उस समय मिल लें तो...."

"परन्तु भाभी साहिबा, बाद में 'मुझको क्यों नहीं जगाया' यह कहकर वे गुस्सा हुए तो क्या करेंगे ?"

"ठीक है ! उठाती हूँ उनको।" कहती हुई रमाबाई मुड़ीं। माधवराव शान्तिपूर्वक सो रहे थे। समीप पहुँचकर रमाबाई ने पुकारा,

"सुन रहे हैं ? मैं कहती हूँ—सुन रहे हैं ?"

माधवराव ने आँखें खोलीं। रमाबाई को देखते ही वे बोले,

"रमा ! क्या है ?"

"बाहर शास्त्रीजी और बापू मिलने आये हैं। कहते हैं—बहुत जरूरी काम है।"

माधवराव झटपट उठकर बैठ गये। चादर ओढ़ते हुए बोले, "भेज दो उनको।"

रमाबाई अन्दर चली गयीं। मैना ने परदा अलग हटाया। बापू और रामशास्त्री अन्दर आये। माधवराव ने अधीर होकर पूछा,

"बापू, काका कहाँ हैं ?"

"दादा साहब पुणे में ही हैं।"

"फिर ?"

"उत्तर की ओर से खलीता आया है, इसलिए उठाने का साहस किया।". बापू ने खलीता आगे बढ़ा दिया। काँपते हुए हाथों से माधवराव ने उसे लिया।

"क्या है ?"

"आनन्ददायक वार्ता है! अपनी फ़ौज ने बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली है।"

"क्या कह रहे हैं ? कहते हुए माधवराव ने खलीता खोला। माधवराव अधीर होकर लेख पर जल्दी-जल्दी नजर फिरा रहे थे। क्षण-क्षण उनके चेहरे का आनन्द द्विगुणित हो रहा था। प्रसन्नता से खिल रहा था। पत्र समाप्त होते ही घड़ी करके थैली में डालते हुए माधवराव गद्‌गद होकर बोले,

"यह दिन उदित होगा, ऐसा लगता नहीं था।"

माधवराव उठे। उन्होंने पगड़ी-पोशाक मँगवायी। पगड़ी-पोशाक पहनकर वे बोले, "चलिए। मन्दिर में जाकर दर्शन करें। उसकी कृपा का फल है।"

"श्रीमन्त, बाहर ऊष्मा है। सायं समय...."

"नहीं बापू, अभी जाना चाहिए...."

बापू का हाथ पकड़कर माधवराव सीढ़ियों पर उतरने लगे। श्रीमन्त को आते हुए देखते ही दिल्ली-दरवाजा की ओर के पहरेदारों में गड़बड़ी मच गयी। इच्छाराम पन्त पगड़ी सँवारते हुए आगे आये। माधवराव जब वापस आये तब सूर्य पश्चिम की ओर झुक चुका था। भवन में माधवराव ने साथियों के साथ पहले दीवानखाने में प्रवेश किया। बैठकी पर बैठते हुए माधवराव बोले,

"सचमुच बापू, आज हमारे आनन्द की सीमा नहीं है। यह सुख दिन देखने को मिलेगा, ऐसा लगता नहीं था।"

माधवराव के चेहरे पर थकावट दिखाई नहीं दे रही थी। बापू ने कहा, "श्रीमन्त! विजयोत्सव मनाने की आज्ञा दी जाये।"

"जरूर! यहाँ और पुणे में भी वार्ता भिजवा दीजिए। सारे महाराष्ट्र को यह वार्ता जानने दो।".

बापू जल्दी-जल्दी बाहर गये। माधवराव रामशास्त्रीजी से बोले, "शास्त्रीजी, अब मृत्यु चाहे जब आ जाये, हम स्वागत के लिए तैयार हैं। सभी स्वप्न पूरे हो गये।"

"ऐसे शुभ अवसर पर परिहास में भी श्रीमन्त अशुभ बात न कहें।"

माधवराव उठकर बोले, "हम थोड़ा विश्राम कर लें, शास्त्रीजी!"

"यही कहनेवाला था, श्रीमन्त! अत्यानन्द के अवसर पर होनेवाली थकावट दिखाई नहीं देती है..."

माधवराव केवल हँसे। शास्त्रीजी बोले, "श्रीमन्त, जाता हूँ मैं।"

शास्त्रीजी के जाते ही माधवराव सीधे भवन के सामने के चौक में आये; परन्तु वे सीधे ओसारे की ओर न मुड़कर श्रीपति से बोले,

"श्रीपति, मैना से कहो। कहना कि हम अपने भवन के शयनगृह में चले गये हैं। जाओ तुम। मैं चला जाऊँगा!"

माधवराव ओसारा पार कर जीने से ऊपर के शयनगृह में गये। माधवराव भवन की ओर मुड़ेंगे, यह किसी ने सोचा भी नहीं था। सभी सेवक एकदम घबड़ा गये, परन्तु माधवराव का उस ओर ध्यान नहीं था। इन दिनों माधवराव के ऊपर न रहने से सारा शयनगृह घुटा-घुटा-सा हो गया था। माधवराव ने जल्दी-जल्दी खिड़कियाँ खोलना शुरू किया। अस्तंगत तिरछी किरणों से शयनगृह भर गया। खिड़कियों से दूसरे तट के पठार पर फैली हुई छावनी दिखाई दे रही थी। छावनी में शोरगुल मच रहा था। माधवराव मुड़े। सारे शयनगृह में दो ही भव्य तैलचित्र लगे हुए थे। पूर्वीय दीवाल पर स्वर्गीय शाहू महाराज का तैलचित्र तथा पश्चिमी दीवाल पर गजानन की प्रतिमा थी। माधवराव जहाँ जाते थे, वहीं ये प्रतिमाएँ जाती थीं। माधवराव ने चित्रकार से विशेष रूप से वे चित्र बनवाये थे। शयनगृह में शीशम का विशाल पलंग था। उस पलंग से सटी हुई ही ग़लीचे और मसनदों की छोटी बैठक सजी हुई थी। छत्रपति की प्रतिमा के पास जाकर माधवराव क्षण-भर खड़े रहे। उसी समय दिल्ली-दरवाज़े के नक़्क़ारखाने के नगाड़े बजने लगे। माधवराव अधीर होकर उत्तर की ओर की खिड़की के पास गये। उत्तरीय पठार पर दूर कोने पर अश्वारोहियों की भीड़ दिखाई दे रही थी। क्षण-भर में एक धुएँ का काला धब्बा आकाश में उठा और उसके बाद ही तोपों की आवाज़ आयी।

'धुऽडूऽऽ'

हर बार तोप की आवाज से भवन हिल-सा उठता था। खिड़की के पास निश्चल खड़े रहकर माधवराव उस दृश्य को देख रहे थे। पश्चिमीय क्षितिज पर रंग बिखरे हुए थे। छावनियों से तुरही की आवाज़ें आ रही थीं। तोपें छूट रही थीं। माधवराव के मस्तक पर पगड़ी में लगा हुआ मोतियों का शिरपेच शान से चमक रहा था। देह पर कुरता और पैरों में चूड़ीदार पाजामा था। कमर से लपेटे हुए दुपट्टे में कटार खुँसी हुई थी। निश्चल दृष्टि से माधवराव पठार पर तोपों की ओर देख रहे थे। इक्कीस तोपें छूटीं और माधवराव मुड़े। देखा तो रमाबाई समीप खड़ी थीं। वे माधवराव की ओर निरख रही थीं। माधवराव बोले,

"कौन, रमा! कब आयीं?"

रमाबाई हँसकर बोलीं, "जब डंका बजने लगा, तभी मैं समझ गयी। मैं दरवाजे के पास आ गयी थी कि पहली तोप छूटी। आप इस अवस्था में थे कि मैं समीप आ गयी फिर भी आप नहीं जान सके। मैं राजनीति में कुछ नहीं जानती। परन्तु आपको अत्यधिक आनन्द हुआ है, यह मैं जान गयी। उसका कारण मुझको नहीं बतायेंगे क्या?"

माधवराव तत्क्षण आगे बढ़े और रमाबाई के कन्धे पकड़कर बोले,

"रमा, सचमुच आज मैं इतना आनन्दित हूँ कि आज तक इतना सुख मैंने कभी नहीं भोगा। तुम जानती हो? ये तुरहियाँ किस लिए बज रही हैं? ये तोपें किस विजय की घोषणा कर रही हैं?"

रमाबाई बोलीं, "उत्तर की ओर विजय मिली है, उसकी न?"

"नहीं रमा! केवल उत्तर की विजय में यह यश समाया हुआ नहीं है।" श्री छत्रपति की प्रतिमा की ओर उँगली से संकेत करते हुए माधवराव बोले, "इन छत्रपतिजी के चरणों में श्रीमन्त पेशवे थोरले बाजीराव ने उत्तर के प्रमाण-पत्र लाकर रख दिये थे। जिन मराठों ने उत्तर में तलवार चलायी, झण्डा अटक के पार ले गये; उनको पानीपत की रणभूमि पर अपमानित पराजय सहन करनी पड़ी। रोहिले और पठानों ने बेशुमार मराठों को क़त्ल किया। उत्तर के इतिहास में महाराष्ट्र की जो पराजय हुई थी, उसको फिर कभी धोया जा सकेगा, ऐसा लगता नहीं था। उस पराजय की कसक इतनी तीव्र थी कि सिन्दे और पानसों की सहायता से दिल्लीपति पुनः सिंहासन पर बैठ गये, यह वार्ता भी मन को सुख नहीं पहुँचा सकी। दिल्ली के उत्तराधिकारी शाह आलम हमारी सहायता से, हमारी शक्ति से दिल्ली के तख्त पर बैठे—इसका भी अभिमान नहीं हुआ। परन्तु आज की वार्ता....इसका महत्व क्या बतायें? इस वार्ता से जो आनन्द हुआ है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? विसाजी कृष्ण बिनीवाले, महादजी शिन्दे, तुकोजी होलकर—इन श्रेष्ठ सरदारों ने अपनी फ़ौज से, पानीपत पर हमारी मराठा फ़ौज को निर्मम होकर क़त्ल करनेवाले रोहिलों और पठानों को बुरी तरह पराजित कर जो यश प्राप्त किया है, उस यश की तुलना नहीं। इस सफलता का मूल्यांकन होना कठिन है। आज पानीपत की पराजय का कलंक धुल गया और उस यश को देखने के लिए हम बचे हैं, इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है? रमा! आज तक मृत्यु से डर लगता था, केवल इसी कारण से। यह खेद मन को डँस रहा था। यह दुःख मन में चुभ रहा था। उसकी वेदनाएँ मन में सदैव कसकती रहती थीं...." माधवराव भरे गले से बोल रहे थे। रमाबाई भयचकित होकर सुन रही थीं। चार-पाँच दिन पहले दो-चार वाक्य बोलने से ही माधवराव की साँस फूल जाती थी। वे ही [illegible]

कह रहे हैं, इसपर उनको विश्वास नहीं हो रहा था। वे भय-व्याकुल होकर बोलीं,

"कम से कम बैठें तो! इस तरह खड़े रहकर ही बातें करने से क्या होगा? वैद्यराज ने आपको विश्राम करने की सलाह दी है। फिर भी आप भरी धूप में मन्दिर गये। इतना ही नहीं, जीना चढ़कर इस शयनगृह में आये। हवा में खड़े रहे। यह श्रम...."

"रमा! घबड़ाओ मत। इस वार्ता से मेरी शक्ति बढ़ गयी है। मैं सच कहता हूँ रमा! मेरी मृत्यु यदि पास आ गयी हो तो इस वार्ता से वह आज अनेक योजन दूर भाग गयी है। तुम मन में बेकार की बातें मत सोचो। आज की इस विजयवार्ता से सारी दक्षिण की राजसत्ता अतुल यश से मत्त हो गयी है। ऐसे समय में तुम अपने पति को, उसकी व्याधि का भय दिखाकर, हतोत्साह करना चाहती हो? नहीं, रमा, यह साहस मत करो। आज यह यश मुझको मनमाना भोगने दो। रमा, हमारी इच्छा है कि आज हमारी पंक्ति[1] में सभी सरदार हों...."

रमाबाई बोलीं, "वह क्या मुझसे कहना पड़ेगा? जब डंका बजा था, तभी मैंने यह जान लिया था। बापू को सूचित कर दिया है।"

"रमा! यह विश्वास यदि हमें न होता तो हम इस इच्छा को प्रकट भी न करते।"

रमाबाई ने आँखें नीची कर लीं। उनकी हनु को हाथ से स्पर्श करते हुए माधवराव ने उनका मुख ऊपर किया। उसी समय लजाकर रमाबाई ने सिर झुका लिया। अलग हटती हुई वे बोलीं,

"मुझको नीचे जाना चाहिए।"

वे मुड़ीं और देखते-देखते शयनगृह से बाहर हो गयीं।

रात में पंक्ति का ठाट बहुत बड़ा था। थेऊर के पास लगी हुई छावनी के माननीय सरदारों को स्वतन्त्र निमन्त्रण भेजे गये थे। दीपदानों और झाड़-फ़ानूसों से महल जगमगा रहा था। चारों ओर की दीवारों के सहारे पत्तलें लगा दी गयी थीं। अल्पनाएँ काढ़ी गयी थीं। अगरबत्तियों के धूम्र से सुगन्धित धुआँ फैल रहा था। उसकी गन्ध सर्वत्र महक रही थी। पूर्वीय पंक्ति के मध्यभाग में रखे हुए रुपहले पाट पर माधवराव आकर बैठ गये। दायें हाथ पर बापू और बायीं ओर नाना बैठे। पंगत बैठी। सभी श्रीमन्त की आज्ञा की राह देख रहे थे।

---

१. पंक्ति=पाँति=दावत।

माधवराव के प्रसन्न चेहरे से सभी आनन्दित हो रहे थे। माधवराव स्पष्ट आवाज में बोले,

"आज हमारे सुख की, आनन्द की सीमा नहीं है। यह दिन देखने का सौभाग्य हमें मिला, इससे हम धन्य हो गये। जिन वीरों ने हमको यह गौरव दिलाया है; उनका अभिनन्दन करें तो कैसे? वे नीतिज्ञ सरदार धन्य हैं, जिन्होंने दक्षिण की शान रखी। होलकर, शिन्दे और विसाजी पन्त बिनीवाले ने यह कार्य करके अपना नाम महाराष्ट्र के इतिहास में अजरामर कर दिया है। बापू, जब विसाजी पन्त बिनीवाले लौटकर आयेंगे, तब यदि हम हुए तब तो स्वयं उनका स्वागत करने जायेंगे ही; परन्तु दुर्भाग्य से यदि हम उस समय न रहें, तो हमारी इस इच्छा को ध्यान में रखना। नाना, कार्यालय में इसको लिख लेना। विसाजी पन्त का नगरप्रवेश चुपचाप मत होने देना। सुवर्णपुष्प बरसाते हुए उनका पुणे में प्रवेश होने देना।"

माधवराव के उस भाषण से कुछ देर शान्ति छायी रही। माधवराव ने हँसकर पंक्ति को आज्ञा दी। हँसी-खुशी के वातावरण में पंगत भोजन कर रही थी। भोजन समाप्त होने पर सभी बैठक में आये। सबको बीड़े दिये गये। सबको श्रीमन्त के स्वास्थ्य पर आश्चर्य हो रहा था। इतना उत्साह कहाँ से आया— इसपर सबको आश्चर्य हो रहा था। सबको विदा कर माधवराव शयनकक्ष की ओर मुड़े।

श्रीपति शयनगृह के द्वार पर खड़ा था। बड़े आदर से उसने परदा एक ओर सरकाया। माधवराव अन्दर गये। सारा शयनगृह प्रकाश से भरा हुआ था। बैठक बदल दी गयी थी। झाड़-फ़ानूसों के लोलक किनकिन कर रहे थे। पलंग पर शय्या बिछी हुई थी। धूप की मन्द गन्ध महक रही थी। माधवराव ने अपनी पगड़ी उठाकर रख दी। कमर से दुकूल खोला और केवल कुरता पहने वे खिड़की के पास जाकर खड़े हो गये। कुछ क्षणों तक वे वैसे ही खड़े रहे, फिर वे पलंग पर जाकर लेट गये। लेटे-लेटे उनको ग्यारह वर्ष पहले का कार्यकाल याद आ रहे थे। बीच में ही उनको भान हुआ और उन्होंने पुकारा, "श्रीपति!"

श्रीपति अन्दर आया। माधवराव बोले,

"श्रीपति! ये झाड़-फ़ानूस कम करो। प्रकाश से कष्ट होता है।"

श्रीपति ने झाड़-फ़ानूस की लकड़ी लाकर हलके हाथों से झाड़-फ़ानूसों की एक-एक मोमबत्ती को बुझाना शुरू किया। सारी मोमबत्तियाँ बुझाकर श्रीपति बाहर गया। अब केवल सिरहाने रखी हुई समइयाँ जल रही थीं। माधवराव विचार कर रहे थे। सब कुछ याद आ रहा था। उन विचारों से माधवराव उत्साहित हो गये। वे पुनः उठे। खिड़की से ठण्डी हवा आ रही थी। आसमान

तारों से भरा हुआ था। छावनियों में पलीते और अँगीठियाँ जल रही थीं। डफ—इकतारे के सुर पर कोई 'पोवाड़े'[1] गा रहा था। अचानक आकाश में पटाखा छूटा। उसकी सतरंगी चिनगारियाँ उड़ने लगीं। छावनियों में आतिश-बाज़ी छोड़ी जा रही थी। उस प्रकाश में लोगों का आना-जाना दिखाई दे रहा था। उस सारे दृश्य को माधवराव देख रहे थे। कंकण की आवाज़ सुनकर माधवराव मुड़े। रमाबाई आ रही थीं। माधवराव बोले,

"ठीक समय पर आयीं! मालूम पड़ता है—छावनियों में आतिशबाज़ी शुरू हो गयी है!"

रमाबाई ने क्षण-भर खिड़की से बाहर देखा और मुड़कर वे बोलीं,

"देखी है मैंने आतिशबाज़ी! आज बहुत दौड़-धूप हो गयी। अब सोइए तो!"

परन्तु माधवराव टस से मस नहीं हुए। रमाबाई की भुजा पकड़कर वे बोले,

"घबड़ाइए मत। मुझको कुछ नहीं होगा। अब कम से कम तीन-चार वर्षों तक मृत्यु का विचार करने का अवकाश नहीं है।"

"आपको अच्छा लगे—यह क्या मैं नहीं चाहती? परन्तु...."

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं। रमा! अरे आज तो आरोग्यशास्त्र के नियमों को कम कर दो...."

माधवराव अचल दृष्टि से खिड़की से बाहर देख रहे थे। समई के निश्चल प्रकाश में रमाबाई माधवराव की मूर्ति को देख रही थीं। माधवराव कुछ देर बाद बोले,

"रमा, कितना सन्तोष हो रहा है, यह कैसे कहूँ? जब राज्य का उत्तर-दायित्व स्वीकार करना पड़ा था, तब मन कितना भयग्रस्त था, यह तुम सोच भी नहीं सकोगी। क़र्ज़ में डूबी हुई पेशवाई, पिताजी के ब्राह्मणी राज्य की कल्पना से बिदकी हुई मराठाशाही, श्री छत्रपति के घराने में पड़ी हुई फूट, कोल्हापुरकर और सातारकर इनमें बढ़ती हुई शत्रुता, हमारा अनुभव और अवस्था इतनी कम कि उस सम्बन्ध में विचार करना ही व्यर्थ, घर का सहारा समझकर जिनकी ओर देखा उन्होंने ही प्रारम्भ में इतना रुद्र रूप धारण किया कि शत्रु से भी अधिक उनका भय लगने लगा। राज्य की रक्षा के लिए, पेश-वाई का मान रखने के लिए कालानुसार पेशवाई का शिरपेच अपने ही हाथों से धरती पर रखने को मजबूर हुए और जूते हृदय से लगाने पड़े। इसका कितना दुःख हुआ, यह कैसे कहूँ? परन्तु गजानन ने राज्य की लाज रखी।

१. पोवाडा—वीरगाथा का एक छन्द।

आज टीपू का पराभव हो गया है। निजाम, जो पेशवाई का जन्मजात शत्रु था, वह मित्र बन गया है। आज दिल्लीपति हमारी ही सहायता से सिंहासनस्थ हुए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि हमारे इतिहास को कण्टक की तरह चुभनेवाला पानीपत के पराभव का कलंक भी आज धुल गया है। राज्य का कोई भी स्वप्न अधूरा नहीं रहा है। यह देखने को मिला, यह कितने बड़े सुख की बात है? यही इच्छा होती है कि काश! आज हम उत्तर की मुहीम पर होते तो कितना अच्छा होता!"

रमाबाई खिन्न होकर बोलीं, "अभी तक मुहीमों की हौस पूरी नहीं हुई क्या? मुहीमें, कीर्ति—इनके अतिरिक्त पुरुषों को कुछ सूझता ही नहीं है क्या?"

"क्या कह रही हो?" माधवराव ने आश्चर्य से मुड़कर पूछा।

"जो सत्य है, वही कह रही हूँ मैं। दोपहर को मैंने देखा—आप तोपों की आवाजें सुन रहे थे। उसमें इतने तल्लीन हो गये थे कि मैं निकट होती हुई भी आपके ध्यान में न आ सकी। यश का सुरा इस प्रकार देहभान भुलवा देता है, यह मैंने सोचा भी नहीं था।"

माधवराव को तत्क्षण भान हुआ। व्याकुल होकर उन्होंने तत्क्षण रमाबाई को आलिंगन में भर लिया और वे बोले,

"नहीं रमा! इस तरह मत बोलो।"

माधवराव आर्त स्वर में बोले, "रमा, यह विजय मेरी नहीं है। ये नगाड़े बज रहे हैं, तोपों की आवाजें गूँज रही हैं, ये मेरे यश के लिए नहीं हैं। नहीं रमा, सम्पूर्ण जीवन में मैं कभी विजयी नहीं हुआ। बचपन नासमझी में बीता। जब कुछ समझ में आने लगा तब पिताजी के और माताजी के अनुशासन में दिन बीते। जीवन में माता-पिता के प्रेम की अपेक्षा उनका दबदबा ही अधिक जाना। युवावस्था में पदार्पण किया और उसी समय अचानक यह राज्य का उत्तरदायित्व अंगीकार करना पड़ा। इसको तोलते-तोलते सारे वैयक्तिक जीवन की ओर दुर्लक्ष्य करना पड़ा। निजी कुछ रहा ही नहीं। जिन पर निष्ठा रखी थी, उन पूजनीया माताजी के दर्शन भी अन्त समय में दुर्लभ हो गये। जिनके पराक्रम से बचपन से ही अभिभूत था, जो आदर्श प्रतीत हुए थे, वे ही काका शत्रु से मिलकर राज्य के विरुद्ध खड़े हो गये। उन्हीं काकाजी को आज इन हाथों से नजरकैद में रखना पड़ा। जितनी शक्ति काकाजी को सँभालने में खर्च करनी पड़ी, उतनी यदि बची होती तो राज्य का एक भी स्वप्न अधूरा न रहा होता! कठोर अनुशासन में माता-पिता के प्रेम से वंचित रहा, काकाजी के प्रेम के कारण राज्य के प्रति बेईमानी की। तुम्हारे जैसा सात्त्विक सुन्दर

प्रेम द्वार पर होने पर भी उस तक हाथ नहीं पहुँच सके...आज नगाड़े राज्य के यश के बज रहे हैं। मैं सदा अपयशी ही रहा...."

"इस तरह क्यों कह रहे हैं ?" व्याकुल होकर रमाबाई बोलीं।

"यह सच है ! प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन की ओर देखकर ही जीवन की सफलता का अनुमान लगाता है। इस माप से यदि देखा जाये तो तुम्हारे पति के हाथ में कुछ भी नहीं बचा है...उसने एकाकी जन्म लिया और अन्त तक वह अकेला ही रहा...."

"आपके जीवन में मेरा कुछ भी स्थान नहीं है क्या ?...मैं नहीं हूँ क्या ?"

"इस तरह ग़लत मत समझो रमा ! तुम यदि न होतीं, तो कौन जाने, यह सब सहन करने की शक्ति भी न रही होती। अब केवल तुम्हारे साहचर्य की ही आशा बच रही है....यही मिल जाये तो बहुत है..."

माधवराव ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। रमाबाई एक ओर सरकती हुई बोलीं, "आज झाड़-फ़ानूस नहीं जलाये लगते हैं ?"

"जलाये थे। मैंने ही कम करने को कहा था..."

"क्यों ?"

रमाबाई को पास करते हुए माधवराव बोले, "अन्धकार की शोभा प्रकाश में रहकर नहीं देखी जाती है, इसलिए। डरो मत। पति समीप खड़ा होने पर कभी-कभी प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार ही उपकारक ठहरता है...."

रमाबाई का शरीर काँप रहा था। लज्जित होकर उन्होंने अपना सिर माधवराव के वक्षस्थल पर टेक दिया। माधवराव मुक्तमन से हँस पड़े।

छावनियों में आतिशबाजी छूट रही थी। आकाश में पटाखे फूट रहे थे। डफ-इकतारे की ताल पर गाये जानेवाले 'पोवाडे' के अस्पष्ट स्वर कानों में पड़ रहे थे।

जब से उत्तर की विजय की वार्ता आयी थी, तब से थेऊर का वातावरण बदल गया था। माधवराव की दुर्बलता को यदि छोड़ दिया जाये, तो वे कभी बहुत अधिक बीमार थे, यह स्वप्न में भी नहीं लगता था। कार्यालय के लिपिकों के होश ग़ायब हो रहे थे। उत्तर के लिए खलीते तैयार हो रहे थे। आदेश दिये जा रहे थे। श्रीमन्त के हस्ताक्षर एवं मुहर के लिए काग़ज़ आगे बढ़ाये जा रहे थे। माधवराव के उत्साह की सीमा नहीं रही थी। उत्तर की विजय के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर वे बात ही नहीं करते थे। दो-तीन दिन इसी धूमधाम में

बापू ने शास्त्रीजी की ओर देखा। रामशास्त्री खिन्नता से हँसकर बोले,

"चलिए बापू! काशी में अध्ययन समाप्त होने पर मानार्थ दुकूल प्राप्त करते समय सत्य और स्पष्ट कथन की जो प्रतिज्ञा की थी, वह कैसे भग्न होती है, यह देखें! असत्य भाषण का अभ्यास करना चाहिए।"

और दोनों बैठक से बाहर निकले।

दोपहर का समय टलता जा रहा था फिर भी श्रीमन्त का ज्वर कम नहीं हुआ। उसी में खाँसी और शुरू हो गयी थी। निरन्तर प्यास लग रही थी। पसीना आ रहा था। रमाबाई सिरहाने बैठी हुई पसीना पोंछ रही थीं। माधवराव का सम्पूर्ण शरीर बेचैन हो रहा था। रमाबाई के चिन्ताक्रान्त चेहरे की ओर ध्यान जाते ही उस स्थिति में भी माधवराव बोले,

"चिन्ता मत करो। ज्वर जायेगा। अब मुझको भय नहीं है। मुझको जीना है।

"बोलिए मत!" रमाबाई बोलीं, "वैद्यराज ने कहा है कि बातें नहीं करनी हैं।"

माधवराव आँखें बन्द करके चुपचाप लेटे रहे। उसी समय अकस्मात् किसी ने कहा,

"नाना आ गये!"

"कौन, नाना आ गये?" तत्क्षण आँखें खोलकर माधवराव ने पूछा। गरदन मोड़कर वे परदे की ओर देख रहे थे। नाना अन्दर आये। मुजरा करके वे खड़े हो गये। माधवराव ने पूछा, "नाना, जल्दी से उत्तर को खलीता भेज दिया, बड़ा अच्छा किया। पुणे में सबके कानों में वार्ता पहुँच गयी न?"

"जी हाँ श्रीमन्त! सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया। इस विजय की वार्ता से नगाड़े निरन्तर बज रहे थे। नागरिकों ने घर-घर दीपावलि जलायी।"

"छत्रपतिजी को..."

"आपकी आज्ञानुसार उसी दिन छोटे रावसाहब के हस्ताक्षर और मुहर के साथ खलीता रवाना कर दिया।"

"अच्छा किया। अब बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ गयी है। प्रदेश जीतना सरल है; परन्तु उसकी रक्षा करना...."

"बोलिए! कहिए न!"

"दादा साहब महाराज भी आये हैं!"

उस कथन के साथ ही सबने चौंककर नानाजी की ओर देखा। रमाबाई

भयचकित होकर नानाजी की ओर देखती रहीं। नानाजी का सिर झुक गया था। माधवराव बोले,

"यहीं आये हैं ? तो फिर काका बाहर क्यों हैं ? पिछले दो दिनों में हज़ार बार उनकी याद आयी होगी। बुलाओ न उनको।"

राघोबा दादा जब आये तब रमाबाई उनके चरण छूकर अन्दर चली गयीं। लेटे-लेटे माधवराव ने हाथ जोड़े। सदा की भाँति राघोबा दादा आगे नहीं आये। वे चुपचाप खड़े थे। माधवराव की दृष्टि को वे टाल रहे थे। सभी के प्राण व्याकुल हो गये थे। बापू खड़े-खड़े काँप रहे थे। नाना थूक निगलकर बोले,

"श्रीमन्त ! आज मैं विवश हूँ। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, यह मैं जानता हूँ। आपको क्रोध न आये, यह सावधानी हमको रखनी चाहिए, यह भी जानता हूँ। परन्तु...."

"कहिए न ! जो कुछ हो वह कह दीजिए।"

"श्रीमन्त ! उत्तर से आयी हुई वार्ता से हम सब असावधान थे और उसी अवसर का लाभ उठाकर दादा साहबजी ने नज़रकैद से भाग जाने का प्रयत्न किया। ऐन समय पर षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ हो गया। मन में न होने पर भी काका साहब को पकड़ना पड़ा। आपके कानों में डाले बिना इस घटना को सहने की शक्ति हम सेवकों में नहीं थी। इसलिए विवश होकर दादा साहब महाराज को आपके सामने खड़ा करना पड़ा, इसके लिए क्षमा करें...."

माधवराव को क्षण-भर यही पता नहीं चला कि वे क्या सुन रहे हैं। सर्वत्र निस्तब्ध शान्ति छायी हुई थी। उस ज्वर में भी माधवराव उठकर बैठ गये। राघोबा दादाजी का सिर झुक गया था। सब पर दृष्टि घुमाकर उसको नानाजी पर स्थिर करते हुए माधवराव गम्भीर स्वर में बोले,

"नाना, शीघ्र ही सातारा को खलीता रवाना कीजिए। हमने नारायणराव के नाम पर जो पेशवाई के वस्त्र मँगाये हैं, उनको काकाजी के नाम पर मँगवाओ। काकाजी को पेशवे-पद प्राप्त होते हुए देखने का सौभाग्य हमें मिलने दीजिए।"

"माधव !" एक पैर आगे बढ़ाकर राघोबा रुके। थूक निगलकर वे बोले, "माधव, यह तुम क्या कह रहे हो ? हमको राज्य करने की होस नहीं है।"

"रहने दीजिए, काका !" माधवराव के स्वर में तीव्रता बढ़ती जा रही थी, "झगड़ा, टण्टा, मनस्ताप सहन करने की शक्ति हममें नहीं रही है। हम आज हैं, कल शायद न रहें। आपको समझाकर देखा, नज़रकैद किया, परन्तु आपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ; होगा इसका कोई भरोसा नहीं..."

"नहीं माधव ! मुझपर विश्वास रखो !" राघोबा गिड़गिड़ाकर बोले, "मैंने

यह इसलिए नहीं किया कि राज्य चाहिए, सचमुच मैं राज्य नहीं चाहता।"

"खबरदार!" माधवराव एकदम भड़ककर बोले। उनका सारा शरीर क्रोध से थर-थर कांप रहा था। चेहरा भयंकर क्रोध से तमतमा रहा था। वे गरजे, "राज्य नहीं चाहिए, बग़ावत चाहिए! उत्तरदायित्व नहीं चाहिए, अनुशासनहीनता चाहिए। तीन बार पेशवे-पद चरणों में रखा, उसको ठुकरा दिया। नहीं काका, अब मुझमें यह सहन करने की शक्ति नहीं है। सारे जीवन में काकाजी, खुशामद करते रहने के अतिरिक्त मुझको और कोई काम ही नहीं है क्या? आपके स्थान पर कोई और होता तो...."

"तो क्या किया होता....?" राघोबाजी ने पूछा।

"क्या किया होता? मुझसे पूछते हो काका? कहाँ से आयी यह शक्ति, काका? क्या किया होता, सुनिए! दूसरा कोई होता तो हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया होता....मस्तक धड़ से अलग कर दिया होता...आपके स्थान पर यदि मेरा लड़का होता, तब भी मैंने यही किया होता....।" उस तनाव से माधवराव को खाँसी आ गयी। उनके प्राण व्याकुल हो गये। ढेरे जल्दी-जल्दी जलपात्र लेकर आगे दौड़े। पानी पीते ही खाँसी ज़रा कम हुई। माधवराव कुछ शान्त हुए। राघोबा दादा बोले,

"माधव, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। तुम विश्राम करो। हम लोग बाद में बातें करेंगे।" कहते हुए वे मुड़े। उसी समय कानों में पुकार पड़ी,

"ठहरिए, काकाजी!"

सबकी निगाहें मुड़ीं। अन्दर से रमाबाई आ रही थीं। राघोबा दादा मुड़े। रमाबाई व्याकुल होकर बोलीं, "बोलिए काकाजी! शपथ है आपको जो इस तरह अधूरी बात कह के जायें! अब अधिक सहन करने की शक्ति नहीं रही है इनको।"

"लड़की!" राघोबा दादा जैसे-तैसे बोले, "क्या कह रही हो तुम? मैं क्या इतना पापी हूँ?" और इतना कहकर राघोबा दादा खड़े-खड़े आँसू बहाने लगे।

माधवराव बोले, "काका, रोइए मत। मुझको कुछ नहीं सूझ रहा है। आपने तीन बार मराठा राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। आपको रोकने के लिए मैंने प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर दी। आपको क़ैद करके भी कारागार में नहीं रखा। प्रतिवर्ष लक्षावधि रुपये तैनात कर देने पर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ। आपको मुसलमानी सल्तनत की तरह विलास करने की हविस है, यह हम जानते थे; परन्तु उस हविस के साथ ही उस रक्त का गुण भी आपके हाड़-मांस में इस तरह घुस गया होगा, यह हम नहीं जानते थे। राज्यकर्ता

आत्मसमर्पण होने पर उनके लड़के उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा न करके राज्य में विद्रोह कर देते हैं—यह उनके यहाँ रिवाज है। उसी रिवाज का पालन आप कर रहे हैं..."

"माधव, अरे इस तरह मत बोल !"

"मैं गुस्से में नहीं कह रहा हूँ।" माधवराव शान्त स्वर में बोले, "काका, यह कथन आग्रहपूर्ण भी नहीं है। आप अवश्य राज्य करें। मैं आनन्दपूर्वक वह आपको सौंप दूँगा। यह मेरी प्रार्थना समझिए!"

"माधव, क्या कहूँ रे ? मैं मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ। मैंने गलती की है। कैसे कहूँ मैं तुमसे ? मेरे साथ रहनेवाले तुच्छ लोग मेरे कान भर देते हैं, उकसा देते हैं। इन सब बातों का मूल कारण ये मेरे आश्रित हैं। तुम जैसा समझते हो मैं वैसा नहीं हूँ..."

"यह भी मैं जानता हूँ, काका! परन्तु यह भी सत्य है कि आपका मन योग्य संगति और उचित सलाह में रमता नहीं है। वह वहाँ स्थिर नहीं होता है, यह मैं जान चुका हूँ। हमारे आश्रय में भी सभी योग्य सलाह देनेवाले हों, ऐसी बात नहीं है। परन्तु वह दोष उनका नहीं है। उनको अधिक से अधिक स्वार्थी ही कह सकते हैं। स्वार्थी होना तो अपराध नहीं है। बुद्धि तो ठिकाने पर हमको रखनी चाहिए। हम उसको गिरवी रख देते हैं, उसका दोषारोपण उनपर क्यों ? नारायण छोटा है। उसको अनुभव नहीं है। आवश्यकता से अधिक क्रोधी है यह। राज्य बड़ा है। उसके हिसाब से असीम है। वह उसको सँभाल नहीं सकेगा। ऐसी परिस्थितियों में वह सुरक्षित रहेगा—ऐसा लगता नहीं है। उसको मैं इसमें नहीं फँसाता हूँ। आप ही इस उत्तरदायित्व को...."

"....प्राण जानेपर भी मैं 'हाँ' नहीं कहूँगा। माधव, अब मुझको पुणे अथवा अन्य स्थानों पर अकेला मत भेजो। चाहो तो देहदण्ड देकर छोड़ दो। परन्तु अकेला मत भेजो। कहो तो मैं यहीं तुम्हारे पास रहूँ।"

"ठीक है। काका, आज से आप स्वतन्त्र हैं। आपके यहाँ रहने में भी मुझको आनन्द है। यहाँ बापू भी हैं। वे उचित सलाह आपको देंगे ही। हे गजानन..."

माधवराव ने आँखें बन्द कर लीं। रमाबाई दौड़ीं। हाथों से सहारा देकर उन्होंने माधवराव को सुलाया।

माधवराव को थकावट आ गयी थी।

सभी आशाएँ छोड़कर माधवराव मन्दिर में आ गये। उनका निश्चय था

कि जो कुछ होना है वह गजानन के सामने हो। परन्तु जैसे ही माधवराव मन्दिर में आये वैसे ही व्याधि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। श्रीमन्त को ज्वर आनेपर देह जलने लगती थी। उदर में असह्य शूल उठने लगता था। पहले से ही व्याधि से जर्जरित उस शरीर में वेदना सहन करने की शक्ति नहीं रही थी। वह वेदना-दाह शुरू होने पर माधवराव के आक्रोश की सीमा नहीं रहती थी। समीपस्थ रामशास्त्री, राघोबा दादा, सखाराम बापू, हरिपन्त फडके और मामा पेठे से वे वेदनाएँ देखी भी नहीं जाती थीं। रमाबाई के प्राण तो मछली की तरह तड़पते। अन्न त्यागकर वे केवल गोमूत्र पर रह रही थीं। देवों की प्रार्थना करते-करते होंठ सूख गये थे।

माधवराव असह्य वेदना से तड़प रहे थे। क्रन्दन कर रहे थे, "गजानन, अन्त कितना देखोगे? इनसे छुड़ाओ। अरीऽऽ माँ ऽ!"

माधवराव की देह ज्वर से दहक रही थी। शूल के उठते ही देह ऐंठने लगती थी। श्रीमन्त चिल्ला रहे थे। इच्छाराम पन्त उनको सँभालने का प्रयत्न कर रहे थे। माधवराव चिल्लाये—

"काका कहाँ हैं? बुलाओ उनको।"

इच्छाराम पन्त ने श्रीपति की ओर देखा। वह ओसारे के बाहर दौड़ा। राघोबा दादा भवन के सभाकक्ष में बैठे हुए थे। नाना, त्र्यम्बकराव पेठे, बापू आदि लोग पास थे। श्रीपति अन्दर आया। वह बोला,

"सरकार, जल्दी चलिए।"

"क्यों रे?" उठते हुए राघोबा दादा बोले।

"बहुत परेशान होने लगे हैं। आपको बुलाने के लिए कहा है।"

राघोबाजी ने मस्तक पर हाथ मारा। वे बोले, "दुर्भाग्य मेरा, चार दिन पहले माधव इसी तरह चिल्लाने लगा था। कटार माँगने लगा था। उसको धैर्य बँधाने के लिए मैंने कहा था कि दो दिन प्रतीक्षा कर, फिर यदि दाह नहीं रुका तो कटार दूँगा। अब क्या मुँह लेकर उसके पास जाऊँ? तुम जाओ श्रीपति! मैं उसको मुँह नहीं दिखा सकता।"

श्रीपति चला गया। ओसारे का परदा हटाकर अन्दर प्रवेश करते ही कष्ट में पड़े हुए माधवराव को भान हुआ। उन्होंने पूछा,

"काका आये?"

श्रीपति सिर झुकाये हुए खड़ा रहा। उस दशा में भी माधवराव खिन्नता से हँसे। वे बोले, "मैं जानता हूँ, काका मुझसे दूर-दूर क्यों रहते हैं। डरपोक कहीं के!" और उनके जोर से शूल उठा। उस हूक के साथ ही माधवराव के मुख से शब्द निकले,

"मर गयाऽऽ रेऽ बरीऽऽ माँऽ"

इच्छाराम पन्त ने दुकूल से पसीना पोंछा और अश्रुपूर्ण आँखों से बोले,

"श्रीमन्त, दुःख को रोकें।"

"हूँ" माधवराव ने आँखें खोलीं। इच्छाराम पन्त की ओर देख रहे थे।

"इच्छाराम पन्त, हम यही करेंगे। इस रोग को रोकने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इच्छाराम, खंजर दो।"

उन शब्दों को सुनते ही इच्छाराम पन्त पीछे हटे। उनका सिर झुक गया।

"इच्छाराम, खंजर दे। पेशवाओं की आज्ञा है।"

इच्छारामजी ने दोनों हाथ कानों पर रख लिये।

"अच्छा! यह हिम्मत!" माधवराव बोले, "श्रीपति, कोड़ा लाओ। कहता हूँ न कि ला?"

श्रीपति बाहर गया। थोड़ी ही देर में वह कोड़ा लेकर अन्दर आया। उसका चेहरा भयभीत हो गया था। श्रीपति को देखते ही माधवराव चिल्लाये,

"देख क्या रहा है? मारो! कहता हूँ—मारो! मेरी शपथ है तुझको! मारो!"

श्रीपति ने होंठों को भींचा। उसका हाथ ऊपर उठा और कोड़ा इच्छाराम पन्त की पीठ पर पड़ा।

इच्छाराम पन्त की पीठ पर कोड़े पड़ रहे थे। प्रत्येक प्रहार के साथ माधवराव दाँतों से होंठ दबा कर चिल्ला रहे थे,

"और!"

इच्छाराम पन्त को खड़ा रहना मुश्किल लगा। ओसारे में प्रवेश करती हुई मैना उस दृश्य को देखते ही पीछे मुड़ी और दौड़ती हुई भवन की ओर गयी। रात-भर माधवराव की सेवा में बैठे रहने के कारण थके हुए नारायणराव ओसारे में सो रहे थे। वे चौंककर उठे। इच्छाराम पन्त धरती पर तिरछे पड़े हुए थे। श्रीपति कोड़े लगा रहा था। इच्छाराम पन्तजी की पीठ पर रेशमी कुरते पर रक्त के धब्बे अंकित हो रहे थे। माधवराव ने गरदन कुछ झुकायी। रक्त के धब्बे देखते ही उनको भान हुआ। उन्होंने हाथ से श्रीपति को संकेत किया। श्रीपति ने मस्तक से पसीना पोंछा। क्षण-भर में माधवराव का क्रोध दूर हो गया। उनके सुघर होंठ थरथराने लगे। गालों पर से आँसू बहने लगे। इच्छाराम पन्त ने सिर उठाया। श्रीमन्त की ओर उन्होंने देखा—माधवराव की आँखों में अश्रु देखते ही वे बड़े कष्ट से उठे और अपने दुकूल से माधवराव की आँखें पोंछते हुए बोले,

"श्रीमन्त ! आप आँखों में पानी न लायें। वैद्यराज ने कहा है कि दुखी नहीं होना है।"

माधवराव ने इच्छाराम पन्त के हाथ पकड़ लिये।

"इच्छाराम ! इस वेदना के कारण जो नहीं होना चाहिए वह हो गया। इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहता हूँ। नारायण ऽऽ !"

नारायणराव पास आये। उनको पास बैठाकर उनका हाथ इच्छाराम पन्त के हाथ में देते हुए वे बोले, "यह पेशवाओं का उत्तराधिकारी आज तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूँ। इसकी रक्षा करोगे, यह वचन दो।"

"श्रीमन्त ! सामने विराजमान गजानन को साक्षी बनाकर मैं वचन देता हूँ। प्राणपण से मैं छोटे श्रीमन्त की रक्षा करूँगा। इस पर विश्वास रखिए।"

माधवराव ने निःश्वास छोड़ा और वे बोले,

"अब मुझको नारायण की चिन्ता नहीं है...."

मैना दौड़ती हुई महल में घुसी। रमाबाई देवता के सम्मुख बैठी हुई जप कर रही थीं। मैना बोली, "दीदी साहिबा !"

"क्या है री ?" चौंककर रमाबाई ने पूछा।

"सरकार के दर्द फिर शुरू हो गया। बुरी तरह चिल्लाने लगे। पन्तजी की पीठ को घायल करा दिया है। किसी की भी नहीं सुनते हैं।"

"पन्तजी की पीठ को घायल करा दिया है ! क्यों ?"

सिर नीचा कर मैना बोली,

"कटार नहीं दी इसलिए।"

"ठहर, चलती हूँ मैं।" कहती हुई रमाबाई ने जपमाला पात्र में रखी और वे उठीं।

मैना आगे जा रही थी। रमाबाई जल्दी-जल्दी मन्दिर के प्रवेश-द्वार की सीढ़ियाँ उतरकर ओसारे के पास आयीं। ओसारे के परदों से बातचीत सुनाई दे रही थी। क्षण-भर को वे रुकीं और फिर निश्चय करके वे धृष्टता-पूर्वक ओसारे के मुख पर लगे जालीदार परदे को हटाकर अन्दर प्रविष्ट हुईं।

रमाबाई को अन्दर आयी हुई देखते ही इच्छाराम पन्तजी ने सिर झुका लिया। हरिपन्त फडके भी उठे। दोनों आदर से बाहर चले गये। इच्छाराम पन्त की पीठ की ओर रमाबाई का ध्यान गया, श्रीमन्त ने ऊपर देखा। व्रतोपवासों से कृश रमाबाई की करुण-मूर्ति खड़ी थी। क्षण-भर दृष्टि से दृष्टि मिला-

खड़ी हुई थीं। रूपेश्वर वैद्यजी की दृष्टि मुड़ते ही रमाबाई बोलीं,

"वैद्यराज ! लोग आपको अश्विनीकुमार का अवतार कहते हैं। झूठी आशा पर जीना अब मेरे लिए असम्भव हो रहा है। आपका निर्णय सुनने के लिए मैं आयी हूं।"

उन शब्दों से वैद्यजी खड़े-खड़े कांप गये। वे बोले,

"बाई साहिबा ! श्रीमन्त को जरूर लाभ होगा....जरा...."

"वैद्यराज, गजानन की शपथ है आपको..."

रूपेश्वर के मुंह से शब्द नहीं निकल रहा था। थूक निगलकर सिर झुकाये हुए वे बोले, "बाई साहिबा ! इन हाथों में अब यश नहीं रहा। जिस गजानन की आपने शपथ दी है, उसी के हाथ में है सब कुछ। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है..."

—जब रूपेश्वर बाबा ने सिर उठाया तब रमाबाई वहां नहीं थीं।

भवन में अपने देवगृह के सामने पहुंचते ही रमाबाई हतबल हो गयीं। देवता के सम्मुख मस्तक टेककर उन्होंने रोके हुए आंसुओं को मुक्त कर दिया। भीतर से उफनाती हुई सिसकियों से उनका सारा शरीर कम्पित हो रहा था। बहुत देर तक वे वैसे ही पड़ी रहीं। कन्धे पर हस्तस्पर्श का अनुभव कर उनको भान हुआ। साथ ही पुकार आयी,

"लड़की !"

रमाबाई ने पीछे मुड़कर देखा। पीछे पार्वतीबाई बैठी हुई थीं। वे पीठ पर हाथ फिरा रही थीं। उनको देखते ही रमाबाई के मन का बांध टूट गया। पार्वतीबाई की गोद में लोटती हुई वे बोलीं,

"क्या करूं मैं ? क्या करूं ?"

पार्वतीबाई कुछ कह न सकीं। उनकी आंखों से भी अश्रुधाराएं बह रही थीं।...अवरुद्ध कण्ठ से बोलीं,

"धैर्य रखो बेटी, देवता जरूर तुमपर दया करेंगे..."

नकारात्मक सिर हिलाती हुई रमाबाई बोलीं, "नहीं काकी जी, उसने आंखें बन्द कर ली हैं। इतनी मनौतियां मनायीं, उनका कोई उपयोग नहीं हुआ।.... काकीजी, मेरा पुण्य कम हो रहा जी...." और रमाबाई फिर रोने लगीं।

"कहती हूं चुप हो जा ! कितना दुःख करेगी ? जब से तू इस घर में आयी है, मैंने तुझे कभी बहू की तरह नहीं देखा। तुझको मैं अपनी बेटी समझती हूं। तेरे लिए अपने प्राणों की बलि देने में भी मैं नहीं हिचकिचाऊंगी; परन्तु क्या

करूँ ? तेरा दुःख देखते रहने के अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं कर सकती; परन्तु बेटी, तू रो मत। यह मुझसे देखा नहीं जाता....सहन नहीं होता—"

परन्तु रमाबाई की सिसकियाँ बन्द नहीं हुई। पार्वतीबाई दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई बोलीं, "यह क्या करती हो ? मेरी ओर देखो न। क्या करने से दुःख हलका हो जायेगा ? देखो, स्त्री को अपने सौभाग्य के सिवा दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं होता है ..माधव के लिए मैं उसको भी देने को तैयार हूँ।"

पार्वतीबाई हाथ मस्तक पर ले गयीं। रमाबाई विस्फारित नेत्रों से देख रही थीं। पार्वतीबाई ने प्रसन्नतापूर्वक अपने मस्तक का सिन्दूर उँगली पर लगाया और रमा के मस्तक पर लगाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। भय से व्याकुल रमाबाई एकदम पीछे हटीं। 'नहीं-नहीं' कहती हुई रमाबाई ने पंजे का पृष्ठभाग मुख पर रख लिया। क्षण-भर भयभीत रमाबाई को देखकर पार्वतीबाई ने अपना हाथ लौटा लिया। फिर अपने मस्तक पर कुंकुम लगाती हुई वे बोलीं,

"बेटी, मैंने ध्यान नहीं दिया। ऐसे संकट के समय इस अभिशप्त सौभाग्य का भयंकर लगना स्वाभाविक है। मैं आग्रह नहीं करती।" और पार्वतीबाई का सिर झुक गया। रमाबाई की आँखों का पानी न जाने कहाँ चला गया। उनको भान हुआ और वे आगे बढ़कर पार्वतीबाई के चरणों को स्पर्श करके बोलीं,

"आज तक आपकी इच्छा का कभी उल्लंघन नहीं किया है; परन्तु काकीजी, आज क्षमा करें। कोई स्त्री जो देने का साहस नहीं कर सकती, वह आपने दिया, इससे धन्य हो गयी। इतनी बड़ी देन किसी ने मुझको नहीं दी है।....कोई देगा, ऐसा लगता भी नहीं है। मुझको क्षमा कीजिए....।"

रमाबाई तत्क्षण उठीं और बाहर आते ही मैना से बोलीं,

"मैना, रामजी को बुलाओ।"

रामजी ने वहाँ आते ही उनसे पूछा,

"क्या है दीदी साहिबा ?"

"रामजी ! एक काम है, करोगे ?"

"एक क्या, पचास बताइए दीदी साहिबा !"

"परन्तु किसी को भी इसका पता नहीं चलना चाहिए।"

रामजी ने सिर हिलाया।

"यह नहीं होगा। शपथ लो !"

रामजी ने तत्क्षण पैर छूए और बोला, "मेरे पास आप छोटी से बड़ी हुई हैं दीदी साहिबा ! और विश्वास नहीं है ?"

"यह बात नहीं रामजी ! काम नाजुक है। तुम घोड़े पर बैठना जानते हो ?"

रामजी हँसा। "बुड्ढे की हँसी उड़ा रही हैं क्या ? बुड्ढा हुआ तो क्या,

अभी घोड़े पर आसन ढीला नहीं हुआ है।"

हाथ में लगा रेशमी बटुआ रामजी के हाथों में डालती हुई रमाबाई बोलीं, "यह लो। इसे लेकर पुणे पहुँचो और सती के वस्त्र ले आओ।"

"दीदी साहिबा!" रामजी की आँखें फट गयीं।

"रामजी, जो कुछ कहा है, वह जल्दी से करो। इसकी किसी को खबर नहीं होनी चाहिए। मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ। जाओ।"

और सूर्यास्त के समय थेऊर से एक घुड़सवार पूरे वेग से पुणे की राह काटने लगा।

पुणे की ओर पूरे वेग से निकला हुआ रामजी दिन छिपने पर शनिवार-भवन के गणेश-दरवाजे के सामने रुका। पसीने से लथपथ घोड़े से उतरते ही ड्योढ़ी के पहरेदार दौड़े। उन्होंने घोड़ा पकड़ा।

"रामजी काका, सरकार कैसे हैं?" पहरेवाले ने पूछा।

उसके प्रश्न का उत्तर न देते हुए रामजी बोला, "बेकार की बातें मत पूछो। घोड़ा घुड़साल में ले जाओ और ताजे दम का दूसरा घोड़ा यहाँ लाकर खड़ा करो। मुझको जल्दी से जल्दी थेऊर लौटना है।"

सूरजमल पेठ में सबसे बड़ा व्यापारी था। उसके पास बनारसी साड़ियों से लेकर सूती अँगोछा तक सभी प्रकार के वस्त्रों का भण्डार रहता था। उसके बारे में प्रसिद्ध था कि शनिवार-भवन की सारी खरीद उसी के यहाँ से होती है। रामजी को चढ़कर ऊपर आते हुए देखते ही सूरजमल बोला,

"रामजी काका, आओ। असमय में आये आज?"

रामजी कुछ नहीं बोला। सूरजमल ने पूछा, "थेऊर से आये हो न?"

रामजी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी, थूक निगला और वह बोला,

"सेठजी! सती के वस्त्र चाहिए।"

"सती के? कौन हो रही है सती? क्या हुआ? कहिए न?"

सूरजमल के चेहरे की ओर न देखते हुए रामजी बोला, "कुछ नहीं हुआ, परन्तु देर मत कीजिए।"

सती के वस्त्रों की गठरी लेकर रामजी जब गणेश-दरवाजे के पास आया, तब वहाँ घोड़ा तैयार था। किसी से कुछ भी न कहते हुए रामजी ने घोड़े पर आसन जमाया और पूरे वेग से वह अँधेरे में अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल सारे शहर में यह वार्ता फैल गयी कि थेऊर से एक घुड़सवार जल्दी-जल्दी आया और सती के वस्त्र ले गया। माधवराव की मृत्यु

की वार्ता उठी और उस वार्ता के साथ ही देखते-देखते शहर के बाजार बन्द हो गये। सारे शहर पर उदासी के बादल छा गये। दोपहर तक यह पता चल गया कि वार्ता झूठी है; परन्तु उससे किसी को धैर्य नहीं बंधा। थेऊर के रास्ते पर लोगों की भीड़ चल पड़ी।

माधवराव का स्वास्थ्य अधिकाधिक बिगड़ता जा रहा था। देह पर सूजन चढ़ रही थी। दिनानुदिन ज्वर और दाह बढ़ रहा था। माधवराव की दशा बिगड़ती देखकर आदेश निर्गत किये गये थे। मन्दिर के सहन में बैठने की मनाही कर दी गयी थी। थेऊर को शहर का रूप प्राप्त हो रहा था। थेऊर के चारों ओर पहाड़ों पर अनेक सरदारों ने छावनियाँ लगा रखी थीं। माधवराव ने राघोबा दादाजी को बुलवाया। उनके आते ही माधवराव बोले,

"काका, अब हमारा भरोसा नहीं है।"

"माधव! धैर्य रख। श्री गजानन को ..."

"यही मैं भी कहता हूँ।" माधवराव बोले, "अब जो कुछ होना हो वह श्री के परिसर में ही होने दो। हमको श्री के सामने लाकर रखो।"

दरेकर, पेठे, नाना, राघोबा दादा, कृष्णाराम पन्त, पटवर्धन—इन लोगों ने माधवराव की अस्थिपंजर देह को ओसारे से हाथों पर उठाकर सभामण्डप में बिछायी हुई शय्या पर लाकर रख दिया। क्षण-प्रतिक्षण पास आती हुई मृत्यु की आहट से सबके मन बेचैन हो गये थे। माधवराव के बचने की आशा अब किसी को नहीं रही थी। दूसरे दिन प्रातःकाल माधवराव ने सबको बुलवाया।

श्रीमन्त देह पर कुरता पहने, सिर पर पगड़ी तथा ऊपर से ऊनी कपड़े का रूमाल बाँधे, पाजामा पहने मसनद के सहारे बैठे थे। गर्भगृह में अनुष्ठान के लिए ब्राह्मण बैठे हुए थे। माधवराव जहाँ बैठे थे, वहीं से उनको श्री गजानन के दर्शन हो रहे थे।

धीरे-धीरे नाना फड़नीस, मोरोबा दादा फड़नीस, हरिपन्त तात्या फड़के, पेठे, सखाराम बापू, महादजी पन्त गुरुजी, राजगोवाले, पानसे, विंचूरकर, रास्तबहादुर आदि छोटे-बड़े मौजिज़ लोग सभामण्डप में आकर श्रीमन्त को मुजरा करके खड़े हो गये। रामशास्त्री पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। श्रीमन्त ने सब पर दृष्टि घुमायी और बैठने की आज्ञा की। सबके स्थानापन्न हो जाने पर माधवराव क्षीण आवाज़ में बोले,

"आप सबको आज विशेष रूप से बुलवाया है। अब बहुत दिनों तक आपको कष्ट देने के लिए हम रहेंगे, ऐसा लगता नहीं है...."

"श्रीमन्त....!" रामशास्त्रीजी ने बोलने का प्रयत्न किया। उनको रोकते हुए माधवराव बोले, "शास्त्रीजी, मुझको बोलने दीजिए।" अँगोछे से मुँह पोंछते हुए वे कह रहे थे, "...अब राज्य की चिन्ता नहीं रही। हैदर सिर उठायेगा ऐसा नहीं लगता...उत्तर की विजय से हम धन्य हुए....यह यश हमारा नहीं, आपका ही है। आपको उसकी रक्षा करनी है। हमारे अधिकतर कार्य लगभग पूरे हो चुके; परन्तु तीन बातें मन में रह गयीं..."

जैसे ही श्रीमन्त ने बोलना बन्द किया, नाना आगे आये। वे बोले, "श्रीमन्त, संकोच न करें। इच्छाएँ व्यक्त करें। यदि उनको पूर्ण करना शक्य होगा तो 'हाँ' कह देंगे, नहीं तो मौन रहेंगे; परन्तु मन में आप कुछ भी न रखें।"

कुछ क्षणों तक विश्राम कर माधवराव बोले, "अन्त समय में तीन बातें मन में रह गयी हैं। पहली—गिलचा का पतन। इसके बिना पानीपत का बदला पूरा नहीं होगा। दूसरी—हैदर की पराजय। तीन बार जाकर भी अनेक कारणों से हम यह नहीं कर सके और तीसरी बात है हमारा क़र्ज़। राज्य के लिए जो क़र्ज़ लेना पड़ा है, उसको चुकाया नहीं जा सका है। साहूकार के घर हमारे जो दस्तावेज हैं, वे यदि छुड़ाये नहीं गये तो हमारी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी..."

क्षण-भर सारी सभा शान्त थी। सभी की आँखें अश्रुपूर्ण हो उठी थीं। माधवराव की दृष्टि सबपर घूम रही थी। नानाजी ने नाक पोंछी। वे बोले, "श्रीमन्त, चिन्ता न करें। हम श्रीमन्त की इच्छा को ईश्वरेच्छा समझकर रहेंगे...."

यह कहकर उन्होंने रामचन्द्र नाईक को संकेत किया। रामचन्द्र नाईक उठे और साथ लाये हुए रूमाल को उन्होंने श्रीमन्त को भेंट कर दिया।

"यह क्या?"

"श्रीमन्त, आपकी इच्छा जानकर पहले ही इन दस्तावेजों को छुड़ा लाये हैं। आपके पचीस लाखों के हवाले देकर आपके नाम के दस्तावेज लाकर आपके चरणों में रख दिये हैं। बचे हुए क़र्ज़ की भी इसी तरह व्यवस्था कर दी जायेगी, यह विश्वास रखें।"

माधवराव की आँखों से आँसू बहने लगे। उनका चेहरा आनन्द-से प्रफुल्लित हो गया। उसके बाद माधवराव ने अपना नौ परिच्छेदोंवाला मृत्युपत्र तैयार किया। भरे हुए अन्तःकरण से सबने श्री गजानन की शपथ लेकर उसपर हस्ताक्षर किये।

सारे दिन ज्वर बढ़ता रहा था। कुछ देर अचेत तो कुछ देर सचेत से होते

रहे। सीप से मोड़ उनके मुख में डाला जा रहा था।

रात में माधवराव थके। उन्होंने आँखें खोलीं। गरदन घुमाकर गर्भगृह की ओर देखा। अनुष्ठान के लिए बैठे हुए ब्राह्मण दिखाई दे रहे थे। गर्भगृह में समइयाँ जल रही थीं। सभामण्डप के बाहर जलते हुए पलीतों के प्रकाश में पहरेदार खड़े हुए दिखाई दे रहे थे। इतने लोगों का आना-जाना लगा रहने पर भी सर्वत्र शान्ति छायी थी। अनजाने माधवराव कराहने लगे,

"अरी ओ माँ ऽऽ"

माधवराव का हाथ हाथ में लेकर रमाबाई ने पूछा, "क्या हुआ?"

"कौन? कितने प्रहर हो गये?"

"आधी रात बीत गयी है।"

"थोड़ा-सा पानी दो।"

रमाबाई ने सीप से पानी पिलाया। माधवराव रमाबाई की ओर देख रहे थे। वे बोले,

"रमा, किसी और को यहाँ बैठा दो। इतना जगना तुम्हारे वश की बात नहीं है।"

"मुझे नींद नहीं आ रही है।"

"यह भी मैं जानता हूँ। रमा, इस अन्त समय में किसी भी विचार से मन व्याकुल नहीं होता है। परन्तु तुम्हारा विचार आते ही प्राण व्याकुल हो जाते हैं।"

"ज्यादा बात न करें। थकावट आ जायेगी।" रमाबाई बोलीं।

"मुझको रोको मत, रमा! अब थकावट की चिन्ता करना व्यर्थ है। तुमसे बातें करने को अवकाश ही नहीं मिलता है। जब मिलता है, तब मन में विचारों की इतनी भीड़ हो जाती है कि मुँह से शब्द ही नहीं निकलता है।"

कुछ क्षणों तक माधवराव चुप रहे। अपनी कातरसी अँगुलियों से रमाबाई के हाथ को स्पर्श करते हुए उस हाथ को दबाकर वे बोले,

"सोलह वर्ष की अवस्था होने से पहले ही यह उत्तरदायित्व अंगीकार करना पड़ा। राज्य के इस उत्तरदायित्व को वहन करते-करते दम घुटने लगा। ग्यारह वर्ष के इस कार्यकाल में चार कर्नाटक की, दो नागपुरकर भोंसलों की और दो निजाम की मुहीमें हुईं। जब राज्य स्थिर हो गया और ऐसा लगा कि अब अवकाश मिल जायेगा, तभी इस व्याधि ने आकर घेर लिया। यह सब होते समय तुम्हारी ओर ध्यान ही नहीं दे सका। मन में दुःख .."

"मुझे किस बात की कमी है, जो आप इस तरह की बात कर रहे हैं?" रमाबाई की आँखों से आँसू बह रहे थे। गाल पर होता हुआ एक आँसू माधव-

राव के हाथ पर गिरा। माधवराव खिन्नता से हँसे। वे बोले,

"देखा! तुम्हारी आँखों के आँसू पोंछने की भी शक्ति हममें नहीं रही है। तुमने कभी कुछ नहीं माँगा; हठ नहीं की और न मैंने तुमको कुछ दिया ही। तुमपर बहुत बड़ा अन्याय हुआ यह..."

"मत बोलिए नऽऽ!" रमाबाई व्याकुल हो उठीं।

"रमा, मुझको मन हलका कर लेने दे। मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। अपने कार्यकाल के प्रारम्भ में ही तुम्हारे पिताजी के अधिकार से मिरज लेकर, वह पटवर्धनजी को दिया। तुमने इस सम्बन्ध में एक बार भी नहीं पूछा। उन्हीं पटवर्धनजी के पास दो सुन्दर हथिनियाँ थीं। दूसरा हाथी बदले में देकर हमारी ही सवारी के लिए तुमने मोरोबा पटवर्धन से उनमें से एक हथिनी माँगी थी; परन्तु मोरोबाजी ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की थी। तुम क्या यह समझती हो कि इस बात का मुझको पता नहीं चला? परन्तु जानते हुए भी मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। केवल इसलिए कि जो हमारे लिए प्राण देने को तैयार रहते हैं, उनके मन को ठेस न पहुँचायी जाये। मन में यह बात थी कि कभी समय आने पर अपने गाढेराव से भी बड़ा हाथी तुमको भेंट करूँगा। मन की मन में ही रह गयी। तुमने भी उस घटना के सम्बन्ध में बातें नहीं कीं।"

"मुझको तो वह याद भी नहीं रही।" रमाबाई बोलीं।

खिन्नता से माधवराव बोले, "तुम्हारी इसी महानता से मैं चकित हो जाता हूँ। इस ग्यारह वर्ष के कार्यकाल में तुम्हारे साथ जो दिन बिताये हैं, वे सब मिलाकर कुछ महीने भी हो पायेंगे या नहीं, इसमें मुझको सन्देह है। तुमने दिन कैसे बिताये होंगे? उस एकाकीपन के भय से तुम्हें न जाने कितनी यातना सहन करनी पड़ी होगी? रमा, तुम्हें सच बताऊँ? आज इस क्षण मेरा मन भय-व्याकुल हो उठा है..."

माधवराव ने फिर पानी माँगा। पानी पी लेने पर लम्बी साँस छोड़कर वे गम्भीर स्वर में कहने लगे,

"राज्य-कार्यभार के झंझट में अपनी ओर देखने का अवसर ही कभी नहीं मिला; परन्तु अब मृत्यु की छाया में यह एकाकीपन असह्य लग रहा है। अब इच्छा होती है कि कोई साथी अवश्य होना चाहिए। एकाकी यात्रा जितनी हो गयी, वही बहुत है..."

"ऐसी बात क्यों कहते हैं? मैं नहीं हूँ क्या?"

"रमा, किन शब्दों में मैं यह अपेक्षा करूँ? राजा के रूप में राज्य के उत्तरदायित्व को वहन करते हुए, पति के नाते से कितना ध्यान दिया तुम्हारी ओर? परन्तु रमा, यह मैंने जान-बूझकर नहीं किया है। इतना अवकाश ही

नहीं मिला। अब यह आशा हुई थी कि अब अवकाश मिलेगा, तभी इस रोग ने जकड़ लिया। किसे पता था कि लगभग सत्ताईस वर्ष की अवस्था में सब कुछ समाप्त हो जायेगा ? राज्य के स्वप्न साकार हो गये, परन्तु घर-संसार के स्वप्न अधूरे ही रह गये। अब इनका कोई अर्थ नहीं रह गया है—"

"इस तरह मत बोलिए न ? मैं क्या परायी हूँ ?"

"यह नहीं कहते हैं हम। तुम्हारे सिवाय और कौन है ? रमा, पुनर्जन्म पर मेरा विश्वास है। यदि तुम्हारा साथ मिला, तो अनजाने तुमपर जो अन्याय हुआ है, उन सबकी कसर मैं पूरी कर दूँगा। फिर से यह भूल नहीं होने दूँगा। सचमुच ! रमा, साथ दोगी क्या ?"

"ईश्वरेच्छा प्रमाण !"

"यह आज्ञा नहीं है रमा ! आज तक मैंने किसी से प्रार्थना नहीं की है। यह मेरी प्रार्थना है। आग्रह नहीं—आज्ञा नहीं—"

बहुत देर तक जब माधवराव कुछ नहीं बोले, तब रमाबाई ने झुककर उनके चेहरे की ओर देखा। माधवराव को नींद आ गयी थी। माधवराव के हाथ के नीचे से अपना हाथ हौले से रमाबाई ने निकाल लिया।

प्रातःकाल की ठण्ड पड़ रही थी। माधवराव के पैताने रखा हुआ ऊनी कम्बल धपरा-धपक उनको उढ़ाकर आँखें पोंछकर रमाबाई उठीं। सभामण्डप के बाहर आते ही ओसारे की सीढ़ियों पर बैठे हुए ढेरे सामने आये। वे बोले,

"भाभी साहिबा ! हम हैं। चिन्ता न करें।"

रमाबाई आगे बढ़ गयीं। मैना आयी। उसको देखते ही रमाबाई बोलीं,

"मैना, प्रातःकाल हो गया है। मेरे स्नान की व्यवस्था कर।"

दूसरा दिन उदित होने पर स्पेश्वर माधवराव के स्वास्थ्य को देखने आये। गंगा वैद्य भी थे। पैरों पर सूजन बढ़ गयी थी। मुख पर भी कुछ-कुछ सूजन दिखाई पड़ रही थी। वैद्यराज ने जब निरीक्षण कर लिया, तब श्रीमन्त बोले,

"वैद्यराज, जब से मेरी देह में दाह शुरू हुआ है, तबसे बहुत से लोग आपको दोष देने लगे हैं। उस ओर ध्यान न दें। सफलता मिलने पर वाहवाही और विफलता मिलने पर निन्दा—यह वैद्यों का भूषण है। मृत्यु तो अटल है, परन्तु उसका दोष परमात्मा अपने ऊपर नहीं लेता है। किसी न किसी व्याधि के नाम के पीछे मृत्यु छिपी जाती है और उसका दोष वैद्य के माथे मढ़ दिया जाता है—"

"श्रीमन्त इस तरह निराश न हों। इससे भी भयंकर दशा में से ठीक होते

रोगियों को हमने देखा है।" रूपेश्वर वैद्य बोले।

माधवराव खिन्नता से हँसे और बोले,

"कितना अहंकार है ! शायद आप धैर्य बँधाने के उद्देश्य से कह रहे हैं। वैद्यराज ! अब एक ही प्रार्थना है। अन्त समय में अतिसार भी हो जाये तो चिन्ता नहीं है। परन्तु सिर्फ़ एक बात मत होने देना, गजानन का नाम लेने के लिए वाणी शुद्ध बनी रहे, इतना ही आप कर देंगे तो आपके हमपर असंख्य उपकार होंगे।"

इस कथन से सभी अभिभूत हो गये थे। माधवराव की दृष्टि से दृष्टि मिलाने की शक्ति रूपेश्वरजी में नहीं रही थी। मन्दिर के बाहर कोलाहल बढ़ रहा था। माधवराव ने पूछा,

"यह गड़बड़ कैसी है ?"

राघोबा दादा बोले, "माधव, पुणे से लोगों की भीड़ आ रही है तुमको देखने के लिए। उनको कैसे रोका जाये, यही समझ में नहीं आता है।"

"काका, किस लिए रोकते हो उनको ? सबको अनुज्ञा दो। इस योग से मुझको भी प्रजादर्शन होगा। उनको रोको मत; परमेश्वर द्वार पर आये और हम उसके दर्शन किये बिना ही चले जायें, यह नहीं होना चाहिए।"

श्रीमन्त की आज्ञा हो गयी और लोग चुपचाप आकर दर्शन करके जाने लगे। लोगों की अनन्त भीड़ शुरू हो गयी। अत्यन्त परिचित व्यक्ति सभामण्डप में आ रहे थे। रास्ते आये। श्रीमन्त के पास बैठ गये। माधवराव को देखकर उनको आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। माधवराव के भाल पर सिकुड़नें पड़ गयीं। उन्होंने पूछा,

"मामा, पुणे में इस समय कौन है ? हमारे स्वास्थ्य के कारण सब यहाँ आ गये। आपके भरोसे पर शनिवार-भवन छोड़कर आये। वहाँ कौन है ?"

मल्हारराव जहाँ के तहाँ काँप रहे थे। माधवराव का बढ़ता हुआ क्रोध उनको दिखाई दे रहा था। वे बोले,

"श्रीमन्त, क्षमा करें। जो दशा सारी प्रजा की हुई, वही मेरी हुई। थेऊर से सवार आता है और सती के वस्त्र ले जाता है, इसका अर्थ आखिर क्या समझा जाये ? हम लोग कैसे धैर्य धारण करते ? जिस दिन सवार आया था, उस दिन तो सभी बाजार बन्द हो गये थे। शहर में हाहाकार मचा हुआ था।...."

यह सुनते ही माधवराव को भयंकर सन्देह हुआ। 'मेरी मृत्यु की अफ़वाह फैलाने के पीछे जरूर कोई भयंकर षड्यन्त्र है'—यह सन्देह उन्हें हुआ। उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने पुकारा,

"कारा !"

"नहीं माधव ! इस सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं मालूम।"

"नाना !" माधवराव ने आज्ञा दी, "जो सवार पुने गया था, उसको मेरे सामने हाजिर करो।"

खोजबीन शुरू हो गयी। सवार का पता नहीं चल रहा था। दो दिन बीत गये। श्रीमन्त के सामने जाने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। नाना फड़नीस चिन्तित बैठे थे। पहले ही ज्वर और दाह था, उसपर यह क्रोध! सभी के मन उदास थे। अचानक रामजी नानाजी के सामने आकर खड़ा हो गया। नानाजी ने पूछा,

"रामजी ! क्यों आये हो भाई ?"

"नाना ! अब मुझसे देखा नहीं जाता। मैं ही हूँ वह !"

"कौन ? क्या कहते हो ?"

"मैं ही गया था सती के वस्त्र लेने के लिए। जो होना हो वह होने दो, परन्तु मालिक का गुस्सा तो दूर हो।"

"किसने भेजा था तुमको ?"

"प्राण जाने पर भी आपको नहीं बताऊँगा। सरकार के सामने हाजिर कर दीजिए मुझको।"

वृद्ध रामजी के चेहरे की दृढ़ता देखकर नाना को उसका विश्वास हो गया। भवन से वे दोनों बाहर निकले।

नाना और रामजी को देखते ही माधवराव बोले, "कौन, रामजी ! दूर-दूर क्यों रहते हो ? कभी दिखाई नहीं देते हो ?"

नाना थूक निगलकर पगड़ी सँवारते हुए बोले,

"श्रीमन्त, यही सती के वस्त्र लेने गया था।"

माधवराव को कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उनकी क्षीणता न जाने कहाँ चली गयी ! कठोर आवाज में उन्होंने पूछा,

"यह सच है ?"

रामजी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

हाथ फेंककर माधवराव चिल्लाये, "किसने कहा था ?"

हाथ फेंकने के साथ ही चाँदी का कटोरा आघात पाकर दूर लुढ़क गया। रामजी कुछ नहीं बोला।

"अच्छा ! यहाँ तक हिम्मत ! नाना, हमारे सामने इसके हाथ तोड़ो।"

रामजी ने चुपचाप हाथ आगे बढ़ा दिये। वृद्ध के चेहरे की एक झुर्री भी नहीं हिल रही थी। उसी समय आवाज आयी—

"ठहरिए।"

माधवराव ने मुड़कर देखा। रमाबाई जल्दी-जल्दी आ रही थीं। झटपट मुजरे करके सारे पीछे हट गये। रमाबाई पास आती हुई बोलीं,

"यह क्या कर रहे हैं? दण्ड देना है तो मुझे दीजिए।"

"आपको?" माधवराव चकित होकर बोले, "किस लिए?"

"सती के वस्त्र लाने के लिए!" निःश्वास छोड़कर रमाबाई बोलीं, "लाने के लिए मैंने ही कहा था।"

श्रीमन्त के चेहरे के भाव बदल गये। क्षण-भर में उनका चेहरा प्रसन्नता से प्रफुल्ल हो गया। रमाबाई ने खड़े हुए रामजी को जाने का संकेत किया। रामजी चला गया। रमाबाई माधवराव के समीप बैठ गयीं। माधवराव गद्-गद कण्ठ से बोले, "रमा, तुम्हारी निष्ठा असीम है। तुम्हारी श्रद्धा सफल हो। रमा, तुम सुनोगी तो आश्चर्य करोगी, परन्तु मृत्युपत्र लिखते समय तुम्हारे लिए कुछ भी करने को मन तैयार नहीं हुआ। सारा राज्य भी तुमको दिया होता, तो वह कम रहता। न जाने क्यों, इस बात पर मुझको विश्वास ही नहीं होता था कि मेरे बाद तुम रहोगी!"

"इसी में मुझको सब कुछ मिल गया। इसकी अपेक्षा और मुझको चाहिए ही क्या?" रमाबाई बोलीं, "और एक याचना है, देंगे?"

"माँगिए न।"

"कल से आपने कुछ खाया नहीं है। थोड़ा-सा माँड़ बनाया है। लेंगे?"

"रमा, तुम विष भी दोगी तो आनन्द से ले लेंगे।"

उस कथन को सुनते ही रमाबाई की आँखों में अश्रु तैरने लगे। यह देख-कर माधवराव बोले, "मैंने तो यों ही कहा! इसका भी बुरा मान गयीं!.... अब नहीं कहूँगा!"

उधर शान्ति के अनुष्ठान में ब्राह्मण बैठाये गये थे। मनौतियाँ मनायी जा रही थीं। श्री गजानन का अखण्ड अभिषेक चल रहा था। गंगा विष्णु, रूपेश्वर, रणछोड़ वैद्य आदि प्रसिद्ध वैद्य अपनी ओर से प्रयत्नों की पराकाष्ठा कर रहे थे। परन्तु सफलता दिखाई नहीं दे रही थी। जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे, बची हुई आशा भी तिरोहित होती जा रही थी। माधवराव यह जान गये और द्वादशी के दिन प्रातःकाल क्षौरान्त—विधिपूर्वक उन्होंने सभी शुद्धिकर्म किये। कांची-कामाक्षी को धर्मार्थ पचास हज़ार दान करने का संकल्प छोड़ा। भूमि लीप-पोतकर पवित्र बिछौना बिछाकर भूमि-शय्या स्वीकार की।

दिन घड़ियों को श्वास से गिन रहे थे। रातें कठिनाई से कट रही थीं। भयंकर मृत्यु दिखाई दे रही थी, फिर भी माधवराव ने दुःख अथवा निराशा का उद्‌गार नहीं निकाला। दान-धर्म नित्य की तरह चल रहा था। अपनी श्रेष्ठ गायें माधवराव ने ब्राह्मणों को बाँट दीं। स्वहस्त से स्वर्णधेनु का संकल्प करके दान किया।

बुधवार कृष्ण अष्टमी को प्रातःकाल माधवराव भली-भाँति होश में थे। सारे सरदार-सज्जनों को उन्होंने अत्यावश्यक बुलावा भेजा। सभी लोग जमा हो गये। उन सब पर नजर घुमाते हुए माधवराव ने पुकारा,

"बापू!"

बापू आगे बढ़े। बापू की आँखों से आँसू बह रहे थे। वे बोले,

"श्रीमन्त! बहुत कष्ट हो रहा है क्या?"

नकारात्मक सिर हिलाते हुए क्षीण हास्य करके माधवराव बोले, "नहीं बापू, अब शारीरिक व्याधि से कष्ट नहीं होता है। आप सब मिल गये, यह सन्तोष है। परन्तु —"

"परन्तु क्या श्रीमन्त! रुक क्यों गये?" बापू ने पूछा।

माधवराव कुछ नहीं बोले। उनकी आँखें भर आयीं। और दोनों आँखों की कोर से आँसू दोनों ओर नीचे गिरे। उन आँसुओं को दुपट्टे से पोंछते हुए बापू बोले,

"यह क्या श्रीमन्त..."

"बापू, जो आगे चले गये हैं, उनसे मिलने के लिए प्राण व्याकुल हो उठे हैं। जिन्होंने साथ दिया, वे सब यहीं हैं। उनसे विदा लेने में सन्तोष हो रहा है। परन्तु जिन्होंने हमको जन्म दिया, बड़ा किया, जिनका स्मरण किये बिना हमारा एक भी दिन नहीं बीता; उन पूजनीया माताजी के दर्शन अन्त समय में भी दुर्लभ रहे, इस बात का बड़ा दुःख है। उनसे कहना कि उनकी याद हमको हमेशा आती रही थी।"

गहरी साँसों में आँसू निगलते हुए माधवराव कुछ क्षण रुककर बोले,

"बापू, अब हम जा रहे हैं। इन आँसुओं को पोंछिए...यही स्नेह बनाये रखिए। नारायण को तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रहा हूँ। मेरे स्थान पर उसको समझाना। उसको सँभालना...."

माधवराव ने मैना और ज्योति को पुकारा। उनके आते ही माधवराव पटवर्धनजी से बोले,

"यह मैना और ज्योति की जोड़ी। हम दोनों की इन्होंने बहुत सेवा की है। आनन्दराव, आळेगाँव की लड़ाई में जब हम कैद हुए थे और जब हमारे

डेरे के चारों ओर दो हजार गारदियों का पहरा बैठा हुआ था, तब अकेला श्रीपति ही वहां था। इन दोनों का विवाह देखने की हमारी इच्छा थी। उसको आप पूर्ण करना। अपने ये विश्वासपात्र व्यक्ति आपको सौंप रहा हूं। इनको सँभालना..."

माधवराव की दृष्टि नारायणराव पर पड़ी। उन्होंने पुकारा,

"नारायण ऽ"

नारायणराव भरी हुई आंखों से जैसे ही पास पहुँचे, वे बोले, "नारायण, अब तुम बालक नहीं हो। तुमको बड़ा उत्तरदायित्व उठाना है। काकाजी और सखाराम बापू की सलाह के अनुसार चलना। इसी में तुम्हारी भलाई है। क्रोधी स्वभाव कर्तृत्ववान् व्यक्ति को शोभा देता है। अपने क्रोधी स्वभाव को बदलो....काका—"

राघोबा दादा आगे आये। नारायणराव का हाथ राघोबा दादाजी के हाथ में देते हुए माधवराव बोले, "काका, इसको तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूं। यह हठी है। इसको सँभालना। पेशवाई भले ही इसके नाम पर हो, फिर भी राज्य का कार्यभार आप ही देखें। कोई चिन्ता नहीं रही। बस यही लगता है कि इसका क्या होगा! आप इसको अपना कह देंगे तो मैं सुख से प्राण छोड़ सकूंगा।"

"नहीं....नहीं....माधव! ऐसी बात मत कहो—" राघोबा दादा बोले, "नारायण मेरा है। इन गजानन की शपथ लेकर कहता हूं कि नारायण मेरा है। उसकी चिन्ता मत करो...."

माधवराव खिन्नता से हँसे। बोले, "काका, काश मैं आपकी इस शपथ पर विश्वास कर सकता! यदि ऐसा कर सकता तो अन्त समय में गजानन का नाम न लेकर आपका नाम लेता। अस्तु। सब कुछ आपके हाथों में है। बापू, सँभालना।" सभी सरदारों की ओर मुड़कर वे बोले, "आज तक एक मत से, एक विचार से राज्य की रक्षा की है—ऐसे ही करते रहना। राज्य का सम्मान बढ़ाइए। मन में कुछ भी मत रहने दीजिए....।"

सभी को रुलाई आ रही थी। सिरहाने रमाबाई, पार्वतीबाई, गंगाबाई, राघोबा दादा, ढेरे, बापू, नाना—ये लोग थे। सारा मण्डप सरदार मण्डली से भरा हुआ था। प्रांगण में तो पैर रखने को भी स्थान नहीं था। माधवराव ने ब्राह्मण मण्डली को बुलाया। उनके आते ही माधवराव ने उनके हाथ जोड़े।

"हम जा रहे हैं। हमारी महायात्रा की तैयारी कीजिए..."

सभी खड़े-खड़े सिसकने लगे। माधवराव बोले, "शोक मत करो! जाते हैं हम। गजानन....गजानन...."

माधवराव को अब सिसकियाँ सुनाई नहीं दे रही थीं। गजानन का अखण्ड नामस्मरण चल रहा था। गर्भगृह में गजानन पर अखण्ड अभिषेक-धारा पड़ रही थी। अनुष्ठान पर बैठे हुए शास्त्री विनम्र चित्त से मन्त्रोच्चार कर रहे थे। अचानक अभिषेक-पात्र का जल समाप्त होने की ओर एक का ध्यान गया। जल्दी-जल्दी अभिषेक पात्र में जल भरने के लिए उसने जल से परिपूर्ण कलश उठाया—

—और उसी समय सभामण्डप में आक्रोश हो उठा। शास्त्री के हाथ में लगा हुआ कलश छूट गया और गजानन के सामने जल ही जल फैल गया....

दोपहर का सूर्य माथे पर चमक रहा था, फिर भी ठण्ड कम नहीं हुई थी। इस ठण्ड का अथवा मध्याह्न की धूप का ध्यान किसी को भी नहीं रहा था। थेऊर के चारों ओर पठार पर लगी हुई छावनियों से सिपाही गाँव के गणेश-मन्दिर की ओर दौड़ रहे थे। धूल के बादल उड़ाते हुए पुणे के रास्ते से घुड़सवारों के पथक थेऊर पहुँच रहे थे। थेऊर के भवन के सामने के शिवपंचायतन के चौक से गणेश मन्दिर के रास्ते तक भीड़ का ठिकाना नहीं था। चौटी की पास से लोग गणेश मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तथा अन्दर से बाहर आनेवाले लोग सिसकियों को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। मन्दिर के सभामण्डप में श्रीमन्त माधवराव की देह दर्भशय्या पर रखी हुई थी। ऊनी चादर से कण्ठ तक देह ढँकी हुई थी। आँखें बन्द थीं। सिरहाने के पास इच्छाराम पन्त डेरे, पटवर्धन आदि चुपचाप अश्रु बहा रहे थे। बगल के ओसारे से स्त्रियों का आक्रन्दन सुनाई दे रहा था। दर्शनों के लिए सभी को छूट थी। असंख्य जन-समुदाय चुपचाप दर्शन करके जड़ अन्तःकरण से आगे सरक रहा था। मन्दिर की सीढ़ी पर राघोबा दादा घुटनों में सिर रखे बैठे थे। उनके पास रामशास्त्री, सखाराम बापू आदि लोग खड़े थे। नाना नारायणराव को सँभालते हुए वहाँ आये और बोले,

"दादा साहब!"

दादा साहब ने सिर उठाया। नारायणराव को देखते ही उन्होंने हाथ फैला दिये। नारायणराव को बाँहों में भरकर सहलाते हुए वे बोले,

"नारायण! मेरा माधव चला गया रे [illegible]!"

—और वे सिसक उठे।

रामशास्त्री आँखें पोंछते हुए बोले,

"दादा साहब! आप ही इस तरह करेंगे तो फिर यह लड़का किसको

देखेगा ?"

अचानक स्त्रियों का क्रन्दन रुक गया। उस आकस्मिक शान्ति से सबने मुड़कर देखा—पूर्वाग्र ओसारे के दरवाज़े से रमाबाई अन्दर आ रही थीं। सबकी नज़रें उनपर केन्द्रित हो गयीं।

रमाबाई धीरे-धीरे पैर बढ़ाती हुई अन्दर आ रही थीं। रेशमी श्वेतवस्त्र वे धारण किये हुए थीं। हाल ही में स्नान करने के कारण मुक्त केश पीठ पर झूल रहे थे। मस्तक पर कुंकुम लगा हुआ था। कानों में हीरों के कुण्डल और मोतियों की बालियां चमक रही थीं। लम्बे सीधे गले में हीरों का हार चमक रहा था। उसके नीचे मणियों की माला चमक रही थी। हाथों में चूड़ियों की शोभा बढ़ाने के लिए ही शायद उन्होंने पन्नों के कंकण पहन रखे थे। मस्तक पर अर्धचन्द्राकार कुंकुम रेखा के ठीक मध्य में हरी बिन्दी चमक रही थी। नाक में हीरों की नथ शोभित हो रही थी। उपवासों से अतिकृश होने पर भी उनका लावण्य छिप नहीं पा रहा था। उनके शान्त चेहरे पर एक निराला ही तेज दिखाई दे रहा था। केशों से नखों तक अलंकारों से युक्त रमाबाई सभामण्डप की ओर आ रही थीं। ऐसा भास हो रहा था मानो सूर्यास्त के बाद आकाश-मण्डल में चन्द्रमा ने प्रवेश किया हो और अपने शान्त निर्मल सौन्दर्य से अन्धकार में डूबी हुई पृथ्वी को प्रकाशित कर दिया हो। धीरे-धीरे चरण रखती हुई रमाबाई सभामण्डप की ओर आ रही थीं। मन्दिर में होनेवाले आक्रोश या जनसमुदाय—किसी का भी भान उनको नहीं रहा था। वे वहां गयीं जहां माधवराव को लिटाया गया था। वे सिरहाने जाकर बैठ गयीं और पास रखा मयूरपंख लेकर माधवराव पर झलने लगीं।

रमाबाई द्वारा परिधान किये हुए वे वस्त्र, मस्तक पर वह कुंकुम, उनकी वह गम्भीर चर्या देखकर सभी के मन सकते में पड़ गये। सुन्न होकर सब उस दृश्य को भरी आंखों से देख रहे थे।

रमाबाई शान्तिपूर्वक पंखा झल रही थीं। एकाग्र दृष्टि से वे माधवराव को निरख रही थीं। उन्होंने माधवराव को इतनी शान्ति से सोते हुए कभी नहीं देखा था। भीतर धंसी हुई आंखों के चारों ओर काले वर्तुलों को छोड़कर उनके सारे चेहरे पर पीले रंग का तेज दिखाई पड़ रहा था। बन्द पलकों को यदि अचानक खोल दिया जाये तो वे तेजस्वी नयन मेरी ओर किस तरह देखेंगे—यह विचार रमाबाई कर रही थीं। क्षण-भर में उनके चेहरे पर मुसकराहट छा गयी। दृष्टि माधवराव पर स्थिर हो गयी।

"तुम्हारे-जैसा सात्त्विक सुन्दर प्रेम द्वार पर होने पर भी उस तक हमारे हाथ नहीं पहुंच सके। आज नगाड़े राज्य के यश के बज रहे हैं, मेरे यश के

नहीं। प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन की ओर देखकर ही जीवन की परम्परा का अनुमान लगाता है। इस भाव से यदि देखा जाये तो तुम्हारे पति के हाथ में कुछ भी नहीं रहा है। उसने एकाकी जन्म लिया और अन्त तक वह अकेला ही रहा। अब केवल तुम्हारे साहचर्य की ही आशा कर रहे हैं...वहीं मिल जाये तो बहुत है—"

"लड़की!" राघोबा दादाजी ने पुकारा। पीछे-पीछे आनन्दीबाई खड़ी थीं। परन्तु वह पुकार रमाबाई ने सुनी ही नहीं। उन्होंने पुनः पुकारा,

"लड़की ऽ"

रमाबाई ने सिर ऊपर किया। राघोबा दादा और आनन्दीबाई की ओर उन्होंने देखा।

"लड़की, तुम यह क्या कर रही हो? सती के वस्त्र किस लिए पहन रखे हैं? एक माधव का दुःख ही पर्याप्त नहीं है क्या हमको?"

आनन्दीबाई उनकी बगल में बैठती हुई बोलीं, "सुन लड़की! यह अविचार मत करो। हम नहीं हैं क्या तुम्हारे? क्यों छोड़कर जा रही हो हमको? हमारी सुनो!"

रमाबाई स्निग्धता से हँसीं। माधवराव के चेहरे पर पंखा झलती हुई वे बोलीं, "काकाजी, अब हमारे लिए साथ एक ही है। किसी अन्य साथ की हमको जरूरत नहीं है।" और इतना कहकर उन्होंने अपना मुख मोड़ लिया। पुनः मुड़कर देखेंगी, इस आशा से राघोबा दादा और आनन्दीबाई कुछ देर रुके, परन्तु रमाबाई का मुख फिर नहीं मुड़ा। हताश होकर राघोबा दादा उठे। आनन्दीबाई आँखें पोंछती हुई ओसारे की ओर मुड़ीं। स्थान-स्थान पर दर्शनार्थी लोगों की भीड़ बढ़ रही थी। रमाबाई माधवराव पर पंखा झल रही थीं। इतने कोलाहल में तथा आक्रोश में शान्तिपूर्वक निद्रा लेनेवाले माधवराव पर उनको आश्चर्य हो रहा था। माधवराव के चेहरे की ओर देखकर उनको मृत्यु पास नहीं लग रही थी। उस अशुभ विचार से उनकी देह में सिहरन दौड़ गयी....

"रमा, मृत्यु से कितना भय लगता है...? मृत्यु तो अटल है। जीवन अथवा मृत्यु से भयभीत होनेवाले लोग समृद्ध जीवन नहीं बिता सकते हैं। कितने वर्ष जीयें, इसकी अपेक्षा किस तरह जीयें—यह महत्त्वपूर्ण है। यदि ऐसा न होता तो चन्दन का नाम भी न रहता, सब वटवृक्ष का ही कौतुक करते..."

"रमा!" कन्धे पर रखे गये हाथ से रमाबाई को भान हुआ। उन्होंने सिर ऊपर उठाया। पार्वतीबाई समीप आकर बैठ गयी थीं। रमा के चेहरे पर हाथ फेरती हुई वे बोलीं,

"रमा, यह तुम क्या कर रही हो? यह कैसी हठ?"

"आपको मालूम नहीं है क्या ?" शान्तिपूर्वक रमाबाई ने पूछा।

"लड़की, पेशवाओं के घराने में सती की परम्परा नहीं है। अपनी सास गोपिकाबाई को याद कर। मेरी ओर देख।"

"काकीजी !" रमाबाई भयचकित होकर बोलीं।

"मेरा मन चाहे कुछ भी समझे, परन्तु लोगों की दृष्टि से...."

"नहीं....नहीं....ऐसा मत कहिए। आपकी श्रद्धा मुझे मालूम है और आपकी श्रद्धा में सन्देह करने का साहस देवता भी नहीं कर सकते, यह भी मैं जानती हूँ। सब कुछ मालूम होने पर भी इस तरह क्यों कहती हैं ? मुझको आशीर्वाद दीजिए..."

पार्वतीबाई का सिर झुक गया। आँचल मुँह में दबाकर सिसकती हुई वे उठीं। सारी देह थरथर काँप रही थी। रमाबाई ने मैना की ओर देखा। मैना ने पार्वतीबाई को सहारा दिया।

पार्वतीबाई के उठते ही सबकी आशा समाप्त हो गयी। रामशास्त्री नारायणराव से बोले,

"श्रीमन्त, अब आपके सिवाय और कोई यह नहीं कर सकता। आप यदि...."

"सच, नारायण ! अरे, तू ही एक बार अपनी भाभी से कहकर देख ! वह सती हो रही है रे !" राघोबा दादा बोले।

नारायणराव उस अन्तिम कथन से भयचकित हो गये। उन्होंने नज़र उठाकर रमाबाई की ओर देखा। दूसरे ही क्षण देहभान भूलकर 'भाभी' चीत्कार करते हुए वे दौड़े। पास पहुँचते ही उन्होंने रमाबाई के पैरों को पकड़ लिया और क्रन्दन करने लगे।

रमाबाई ने शान्तिपूर्वक मुख मोड़ा। पैर पकड़कर रोनेवाले नारायणराव की ओर देखते ही क्षण-भर को उनकी आँखें भर आयीं। इस नारायणराव की न जाने कितनी हठें उन्होंने पूरी की थीं। अनेक बार उनको भाई की कठोर दृष्टि से बचाया था। माधवराव का नारायण, रमा का नारायण आँसुओं से उनके पैर भिगो रहा था। रमाबाई की चर्या बदली और वे बोलीं,

"नारायणराव, उठिए।"

उस कठोर आवाज़ के साथ ही नारायणराव ने सिर उठाया। इस तरह रमाबाई ने कभी नहीं पुकारा था। उस आवाज़ में विलक्षण तेज था। नारायण-राव की अश्रुपरिपूर्ण किशोर दृष्टि से दृष्टि मिलाती हुई रमाबाई बोलीं, "कहती हूँ न कि उठिए ? अब आप अनजान नहीं रहे। न किसी के भाई और न किसी के देवर। आप अब राज्य के स्वामी हैं। ये आँसू, यह क्रन्दन आपको शोभा

नहीं देखा है। इन्होंने यदि आपकी आँखों में आँसू देख लिये, तो क्या कहेंगे ?"

भयचकित होकर नारायनराव की दृष्टि माधवराव के चेहरे की ओर गयी। रमाबाई के चेहरे पर क्षण-भर को मुसकराहट तैर गयी। वे बोलीं,

"उठिए! हमारी महायात्रा की तैयारी कीजिए! कहती हूँ न कि उठिए!"

मन्त्रमुग्ध होकर नारायनराव उठे।

देखते-देखते दावानल की तरह रमाबाई के सहगमन की वार्ता फैल गयी। दुःख में किंचित् अवरोध आ गया और उसका स्थान आश्चर्य ने ले लिया। भाला धारी दुःख भूलकर, गढ़ी की व्यवस्था देखने के लिए स्वयं सन्नद्ध हो गये। वायन लाये जा रहे थे। रमाबाई ने वायन दिये। अब तक दोपहर का सूर्य ढल गया था। माधवराव के साथ रमाबाई के दर्शन करने के लिए भीड़ हो रही थी। अवस्था का, मान का, जाति का विचार न करते हुए सभी रमाबाई के चरणों को स्पर्श कर रहे थे। राघोबा दादा और आनन्दीबाई रमाबाई का वन्दन करके अलग हट गये। पटवर्धन, घोरपड़े आदि लोग आ रहे थे। दर्शन करके जा रहे थे। सामने आनेवाले प्रत्येक को रमाबाई कोई न कोई आभूषण देह पर से उतारकर दे रही थी।

जब रामशास्त्री और इच्छाराम पन्त सामने आये तथा रामशास्त्री नत-मस्तक होकर चरण-स्पर्श करने झुके, तब पीछे हटती हुई रमाबाई बोलीं,

"शास्त्रीजी! अनेक बार इनको मैंने आपके सामने नतमस्तक होते देखा है। आप आशीर्वाद...."

"नहीं, मात! वह अधिकार अब नहीं रहा। देवता भी नतमस्तक हों, ऐसा आपका अधिकार है। आशीर्वाद दें...."

शास्त्रीजी उठकर वैसे ही खड़े हुए, रमाबाई ने अपनी अँगुलि से हीरे की अँगूठी उतारकर शास्त्रीजी के हाथ में दे दी।

सारी तैयारी हो गयी। रमाबाई मन्दिर के दरवाजे के पास आयीं। नारायनराव और गंगाबाई ने रमाबाई के पैर पकड़ लिये। उन दोनों को उठाकर गंगाबाई को सहलाती हुई रमाबाई ने राघोबा दादा की ओर देखा। राघोबा दादा आगे बढ़े। उनके पास आने पर नारायणराव का हाथ राघोबाजी के हाथ में देती हुई बोलीं,

"इन्होंने सब कुछ कह ही दिया है। इनको सँभालिए। नादान हैं। नट-खट हैं। सँभालना पड़ेगा।"

राघोबाजी ने कुछ न कहकर नारायणराव को छाती से लगा लिया। रमा-बाई ने अपनी नाक की नथ होले से उतारी और उसको गंगाबाई के हाथ में देती हुई वे बोलीं, "यह ले, सँभालकर रख। सासजी ने यह मुझको

दी थी....।"

अचानक रमाबाई के कानों में शब्द पड़े, "दीदी साहिबा !"

रमाबाई ने देखा कि रामजी काका पैर छू रहा था। जल्दी-जल्दी रामजी को उठाती हुई रमाबाई बोलीं,

"कौन ? रामजी काका ?"

रामजी की सारी काया खड़ी-खड़ी कांप रही थी। आंखें लाल हो गयी थीं। आधे गालों तक आयी हुई गलमुच्छें थरथरा रही थीं। मुख से शब्द नहीं निकल रहा था। रमाबाई बोलीं,

"काका, यह क्या ? इस आनन्द के अवसर पर आंखों में आंसू ?"

आंखों के आंसू पोंछते हुए रुलाई रोककर रामजी बोला,

"नहीं बेटी, रोऊँगा क्यों ? तुम्हारी शादी जब हुई थी, तब तुम इतनी छोटी थीं ; तब तुमको कन्धे पर बैठाकर घूमा था। तब सोचता था, यह लड़की कब बड़ी होगी ? गुड़िया की तरह आभूषण पहनकर पति के पीछे-पीछे जाती हुई कभी दिखाई देगी क्या ? वह इच्छा पूरी हो गयी ! अब क्यों रोऊँगा ? मेरी इच्छा पूरी हो गयी...."

रामजी से आगे न बोला गया। हाथों में मुंह छिपाकर सिसकता हुआ वह अलग हो गया।

पालकी उठायी गयी। पालकी के पीछे-पीछे रमाबाई जा रही थीं। जो भी आगे आता था, उसको अंजलि से सिक्के बांट रही थीं। ग़रीब स्त्रियों को देह पर से आभूषण उतारकर दे रही थीं। नदी तक पहुँचते-पहुँचते उनके कानों में कुण्डलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा। सारे रास्ते पर दोनों ओर सिपाही खड़े थे। मराठा मण्डली श्वेत साफ़े बांधे खड़ी थी। नंग-धड़ंग ब्राह्मण-मण्डली पीछे-पीछे जा रही थी। घाट पर पैर रखने को स्थान नहीं था। नदी के दोनों किनारों पर मनुष्य समा नहीं रहे थे। नदी-पात्र शान्तता से बह रहा था। हवा छूट गयी थी।

घाट पर पुरुष की ऊँचाई की चन्दन की चिता बनायी गयी थी। घी की ग्यारह आहुतियां देकर, अग्नि की प्रदक्षिणा करके रमाबाई धर्मशिला पर खड़ी हो गयीं। उनको देखते ही मैना अपने होश खो बैठी। वह दौड़ती हुई रमाबाई के पास गयी और उनसे लिपटकर रोने लगी। उसकी पीठ थपथपाती हुई रमाबाई बोलीं,

"मैना, रो मत। तुम्हारा विवाह देखने की हमारी इच्छा पूरी नहीं हुई.... हमारा आशीर्वाद है कि तुम्हारा विवाहित जीवन सुखी हो। यह ग़लत नहीं होगा। अब अधिक मत रोको।"

बड़े दुःख से मैना मुड़ी। रमाबाई ने पुकारा, "मैना!"

मैना मुड़ी। रमाबाई ने हँसते हुए अपने कानों से बंधे हुए कुण्डल उतारे और उनको मैना को देती हुई वे बोलीं,

"ले ले, मेरी याद के रूप में रख ले। जा।"

गले में सौभाग्यालंकार के अतिरिक्त उनकी देह पर कोई आभूषण न रखा। मैना के दूर होते ही गजमुख गणपति जनसमूह को उन्होंने हाथ जोड़े और छोटी से चित्तारोहण किया। माधवराव का सिर अपनी गोद में रखकर रमाबाई बैठी हुई थी। माधवराव के शान्त चेहरे को वे देख रही थी। जनसमुदाय से उठता हुआ आक्रोश उनके कानों तक नहीं पहुँच रहा था।

"यह स्थान बहुत सुन्दर है। प्रशस्त घाट है। इस घाट के थोड़ा-सा ऊपर की ओर खड़े होकर देखने पर काले पत्थरों से रेखांकित नदी का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। नदी के पात्र में पवन के साथ सरसराती आती हुई लहरें मन में तरंग उठाती है। नदी के दोनों ओर फैले हुए विस्तृत उद्यान और ऊपर नीला आकाश मन को मोह लेते हैं। यह स्थान मुझको बहुत अच्छा लगता है। जब समय मिलेगा तब मैं आपको इस स्थान पर अवश्य ले आऊँगा।"

रमाबाई ने सिर उठाया। दूर तक दिखाई देनेवाली नदी को वही आँखों में समा रही थी। तेज चलती हुई हवा से जल में तरंगें उठ रही थीं। रमाबाई एकाग्र चित्त से उस दृश्य को हृदय में अंकित कर रही थी। अचानक वह दृश्य धुंधला होने लगा और देखते ही देखते आकाशगामी लपलपाती लपटों ने परदा डाल दिया।

चिता चारों ओर से धधक रही थी। ज्वालाएँ ऊपर चढ़ रही थीं। चिता के चारों ओर हरे नुकीले बरछे लेकर खड़े हुए पहरेदार और दुःखित पण्डित होकर उन लपटों की ओर देख रहे थे। नगाड़े, झाँझवाले बजनिया बजा रहे थे। चटकती लकड़ियों के अतिरिक्त कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ रही थी। देखते ही देखते ज्वालाएँ भड़क उठीं....कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

—अनन्त को दर्शन हुए ज्वालाओं के साथ फरफराते रेशमी ध्वज पट के!

॥ केवल सीमा ॥

हमारे अन्य उपन्यास

उपन्यास	लेखक	मूल्य
		१०.००
…न-कथा	श्रीमती आशापूर्णा देवी	२५.००
…वर्णरेखा	आशापूर्णा देवी	१०.००
…परिवार परिवेश	डॉ. निहाररंजन भट्टाचार्य	१३.००
…प्रसंग	डॉ. देवेश ठाकुर	२६.००
…पथ पराजय	सुमंगल प्रकाश	१५.००
मुट्ठी भर कांकर	जगदीशचन्द्र	६.००
कगार की आग	हिमांशु जोशी	८.००
पुरुष पुराण	डॉ. विवेकीराय	२०.००
माटीमटाल भाग १ (पुन. द्वि. सं.)	गोपीनाथ महान्ती	२०.००
माटीमटाल भाग २ (पुन. द्वि. सं.)	" "	१५.००
देवेन : एक जीवनी	सत्यकाम विद्यालंकार	६.५०
दूर और दरिया	जगदीश चतुर्वेदी	१७.००
समुद्र संगम	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१५.००
मृत्युंजय (नवीन संस्करण)	शिवाजी सावंत	७.५०
छाया मत छूना मन	हिमांशु जोशी	१५.००
पूर्णावतार	प्रमथनाथ बिशी	२०.००
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	९.००
दायरे आस्थाओं के	सं. लि. भैरप्पा	१४.००
आधा पुल	जगदीशचन्द्र	१८.००
नमक का पुतला सागर में (द्वि. सं.)	धनंजय बैरागी	१२.५०
तीसरा प्रसंग	लक्ष्मीकान्त वर्मा	
टेराकोटा	लक्ष्मीकान्त वर्मा	५.००
हम वहशी हैं	कृष्णचन्दर	७.००
नहीं कुछ और	डॉ. गंगाप्रसाद विमल	१०.००
मेरी आँखों में प्यास	वाणी राय	३.५०
विपात्र (तृ. सं.)	ग. मा. मुक्तिबोध	१६.००
सहस्रफण (द्वि. सं.)	विश्वनाथ सत्यनारायण	
		१…

ई. सन् १७६९ सितम्बर ७	माधवराव पर शस्त्र प्रहार
,, १७६९ नवम्बर	कर्नाटक पर चढ़ाई
,, १७७० जून	मिरज में स्वास्थ्य बिगड़ने से पुणे वापिस
,, १७७१ जून	वर्ष-भर वायुपरिवर्तन पुणे से बाहर
,, १७७१ जून २६	कटोरा में स्वर्णतुला
,, १७७२ अप्रैल ४	रमाबाई को हरेश्वर की यात्रा
,, १७७२ अप्रैल	थेऊर में जानोजी-माधवराव भेंट
,, १७७२ अक्टूबर ६	दादाजी को पुनः क़ैद
,, १७७२ नवम्बर १८	श्रीमन्त पेशवा की मृत्यु
,, १७७२ नवम्बर १८	महाप्रयाण, रमाबाई सती

□

हमारे अन्य उपन्यास

बकुल-कथा	श्रीमती आशापूर्णा देवी	३०.००
सुवर्णलता	आशापूर्णा देवी	२५.००
दरबार परिहास	डॉ. चित्तरंजन भट्टाचार्य	१०.००
भ्रमभंग	डॉ. देवेश ठाकुर	११.००
जय पराजय	सुमंगल प्रकाश	२६.००
मुट्ठी भर कांकर	जगदीशचन्द्र	१५.००
कगार की आग	हिमांशु जोशी	६.००
पुरुष पुराण	डॉ. विवेकीराय	८.००
माटीमटाल भाग १ (पुर. द्वि. सं.)	गोपीनाथ महान्ती	२०.००
माटीमटाल भाग २ (पुर. द्वि. सं.)	,, ,,	२०.००
देवेश : एक जीवनी	सत्यकाम विद्यालंकार	१५.००
धूप और दरिया	जगजीत बराड़	६.५०
समुद्र संगम	डॉ. भोलाशंकर व्यास	१७.००
मृत्युंजय (नवीन संस्करण)	शिवाजी सावंत	३५.००
छाया मत छूना मन	हिमांशु जोशी	७.५०
पूर्णावतार	प्रमथनाथ बिशी	१५.००
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	२०.००
दायरे आस्थाओं के	सं. लि. भैरप्पा	९.००
आधा पुल	जगदीशचन्द्र	१४.००
नमक का पुतला सागर में (द्वि. सं.)	धनंजय वैरागी	१८.००
तीसरा प्रसंग	लक्ष्मीकान्त वर्मा	१२.५०
टेराकोटा	लक्ष्मीकान्त वर्मा	
धारें बहते हैं	कृष्णचन्दर	५.००
कहीं कुछ और	डॉ. गंगाप्रसाद विमल	७.००
मेरी आँखों में प्यास	बानी राय	१०.००
विपात्र (तृ. सं.)	ग. मा. मुक्तिबोध	३.५०
सहस्रफन (द्वि. सं.)	विश्वनाथ सत्यनारायण	१६.००

रणांगण	विश्राम बेडेकर		३.५०
कृष्णकली (पं. सं.)	शिवानी	पेपर बैक	७.००
		लायब्रेरी सं०	९.००
हँसली बाँक की उपकथा	ताराशंकर बन्द्योपाध्याय		२५.००
गणदेवता (पुर., पं. सं.)	,,		३५.००
अस्तंगता (द्वि. सं.)	'भिक्खु'		९.००
महाश्रमण सुनें : (द्वि. सं.)	,,		४.००
अठारह सूरज के पौधे	रमेश बक्षी		४.५०
जुलूस (च. सं.)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'		६.००
जो (द्वि. सं.)	डॉ. प्रभाकर माचवे		४.००
गुनाहों का देवता (सोलहवाँ सं.)	डॉ. धर्मवीर भारती		१४.००
सूरज का सातवाँ घोड़ा (नौवाँ सं.)	,,		३.५०
पीले गुलाब की आत्मा (द्वि. सं.)	विश्वम्भर 'मानव'		६.००
अपने-अपने अजनबी (सातवाँ सं.)	'अज्ञेय'		३.५०
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय		५.००
ग्यारह सपनों का देश (द्वि. सं.)	सम्पा. : लक्ष्मीचन्द्र जैन		७.००
राजसी	देवेशदास, आई. सी. एस्.		५.००
रक्त-राग (द्वि. सं.)	,,		५.००
शतरंज के मोहरे (पुर., चौथा सं.)	अमृतलाल नागर		१२.००
तीसरा नेत्र (द्वि. सं.)	आनन्दप्रकाश जैन		४.५०
मुक्तिदूत (पुर., च. सं.)	वीरेन्द्रकुमार जैन		१३.००

